व० केल्ले और म० कोवालजोन

ऐतिहासिक भौतिकवाद

समाज के मार्क्सवादी सिद्धांत की रूपरेखा

अनुवादक अली अशरफ

В КЕЛЛЕ и М КОВАЛЬЗОН

Исторический материализм

Очерк марксистской теории общества

На языке хинди

К $\frac{10503-539}{014(01)-74}$ 345—73

विषय सूची

सामाजिक सज्ञान की विशिष्टताए और कठिनाइया

मनुष्य समाज मे केवल रहते और काम ही नही करते बल्कि उसका ज्ञान भी प्राप्त करते हैं, ठीक उसी तरह जैसे वे प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं। समाज का सज्ञान मनुष्यो द्वारा उनके निकटतम सामाजिक वातावरण का बोध भर ही नही, बल्कि सम्पूण सामाजिक जीवन की छानबीन है। मानव समाज एक पचीदा वस्तु है, जो मनुष्य तथा प्रकृति की और मनुष्यो म एक दूसरे की पारस्परिक क्रिया से उत्पन्न होती है। मनुष्य, उनका क्रियाकलाप तथा उनके सबध वे सामाजिक तथ्य है, जो सामाजिक सज्ञान के विषय ह।

समाज स्थान मे व्याप्त होता है, क्योकि प्रागैतिहासिक समय मे भी मनुष्य सारी धरती पर फैल गय थे और उनके कमावेश अलग अलग, स्थानीय समूह बन गये थे, जैसे गण और कबीले, जो फिर विकसित होकर जाति बने और राज्यो का रूप धारण कर लिया। इसका अस्तित्व काल मे भी है और इसका एक निश्चित इतिहास होता है। अलग अलग मानव समुदायो के इतिहास तथा उनके आपस के सबध से मानवजाति का इतिहास अथवा समाज का इतिहास बनता है। सामाजिक सज्ञान मानव इतिहास की समस्त विविधता मे उसका सज्ञान है।

अकेले विज्ञान मे ही यह क्षमता है कि पूरे समाज के पैमाने पर मनुष्यो के कायकलाप तथा उनके सबधो के सारतत्व का तथा उसके इतिहास का परिज्ञान कर सके। सभी सज्ञान की तरह समाज का वैज्ञानिक सज्ञान भी तथ्यो तथा घटनाओ के वणन से आरम्भ होता है। परन्तु तथ्य विज्ञान की सामग्री से अधिक नही, और स्वय विज्ञान नही ह। विज्ञान का आरम्भ

सामान्यीकरण से होता है, जब नियमों का प्रकटन होता है और सिद्धांत सामने आता है, जिससे तथ्यों की विश्वस्त व्याख्या होती है। सामाजिक संज्ञान पर लागू किया जाये तो इसका अर्थ यह होता है कि मनुष्यों के कार्यकलाप तथा उनके संबंधों की व्याख्या करने में सिद्धांत का काम यह दिखाना है कि मनुष्य इतिहास का निर्माण जिस ढंग से करते हैं उसी ढंग से क्यों करते हैं, किसी और ढंग से क्यों नहीं करते। लेकिन क्या यह सम्भव भी है? मनुष्य तो बहरहाल आजाद है कि चाहे तो कोई और कार्य पद्धति अपना ले। अक्सर ऐसा होता है कि एक आदमी यह नहीं बता सकता कि उसने अमुक ढंग से क्यों काम किया, अन्य ढंग से क्यों नहीं किया। हम मनुष्यों के कार्यकलापों की व्याख्या, खासकर जब करोड़ों का सवाल हो तो कैसे कर सकते हैं? इसमें संदेह नहीं कि इतिहास में मनुष्यों के कार्यकलाप की वैज्ञानिक व्याख्या करना बहुत ही जटिल सैद्धांतिक कार्य है। क्या ऐसा करना सम्भव भी है? नवकांटवादियों* की तरह कुछ दार्शनिक इसे सम्भव नहीं समझते। उनका ख्याल है कि विज्ञान न केवल प्रकृति घटनाओं तथा प्रक्रियाओं की व्याख्या करने की क्षमता सिद्ध की है। जहां तक ऐतिहासिक प्रक्रिया का, समाज में मनुष्य के कार्यकलाप का सवाल है, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या की ही नहीं जा सकती। इस प्रकार नवकांटवादी एच० रिक्ट ने लिखा है "प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक विज्ञानों द्वारा स्थापित धारणाओं में सदा एक दूसरे के प्रति मौलिक तार्किक विरोध रहेगा।"** यह कोई आकस्मिक बात नहीं बल्कि एक निश्चित मत है। रिक्ट, विंडलबांड तथा बाडेन मत के अन्य प्रतिनिधि प्राकृतिक तथा सामाजिक

---

* नवकांटवाद—पूंजीवादी दर्शनशास्त्र की एक प्रवणता, जिसका उदय १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस प्रयास के रूप में हुआ कि प्रमुख जर्मन दार्शनिक इमानुइल कांट (१७२४–१८०४) के विचारों को पूंजीवादी समाज की नई सामाजिक तथा सैद्धांतिक आवश्यकताओं पर लागू करते हुए, विकसित किया तथा सुधारा जाये। नवकांटवाद में कई प्रवृत्तियां तथा मत शामिल हैं, जैसे बाडेन मत (१९वीं शती का अंत तथा २०वीं का प्रारम्भ) जिसने इतिहास के पद्धतिशास्त्र पर अपना ध्यान संकेंद्रित किया।

** Heinrich Rickert *Die Grenzen der naturwissenschaftlichen Begriffsbildung Eine Logische Einleitung in die historischen Wissenschaften* Tübingen 1921 s 145

विज्ञानो मे भेद का कारण यह बताते है कि प्रकृति के विपरीत समाज की सभी परिघटनाए व्यक्तिगत तथा अनन्य है, और इसी लिये प्राकृतिक विज्ञान सामान्यीकरण का तरीका अपना सकते है जबकि ऐतिहासिक विज्ञान विशिष्टीकरण के तरीके का प्रयोग करने के सिवा कुछ नही कर सकते। पूर्वोक्त प्रकृति मे निहित नियमो तथा कार्य कारणो की खोज निकालते ह (इसी लिये उनको विधिकर्ता अथवा नियम बनानेवाला कहा जाता है) और प्राकृतिक प्रक्रियाओ की व्याख्या तथा भविष्यवाणी करते ह, जबकि अवराक्त का हाल यह है कि उन्ह अपने आपको ठोस इतिहास की अलग अलग तथा अनन्य घटनाओ के वर्णन तक ही सीमित रखना पडता है। नवकाटवादियो ने सामाजिक विज्ञानो को भावचित्रीय (वर्णनात्मक) की सज्ञा दी। यह धारणा समाजविज्ञान को आज तक प्रभावित करती आ रही है। बहुत से लोग अभी भी सामाजिक सज्ञान की सभावना को अविश्वास की दृष्टि से देखते ह। इसके विपरीत दूसरे लोगो ने सामाजिक विज्ञान की सज्ञानात्मक क्षमताओ तथा अतर्वेधी शक्ति म अविश्वास पर आश्चर्य और यहा तक कि रोष भी प्रकट किया है। लेकिन मनोभाव यहा कुछ तर्कसगत नही। प्रश्न के सारतत्व की छानबीन करनी चाहिये। वास्तव म क्या हमे समाज तथा प्रकृति मे, और सामाजिक सज्ञान तथा प्राकृतिक विज्ञानो मे नवकाटवादियो द्वारा बताया हुआ अतर स्वीकार करना होगा? प्रत्यक्ष रूप से ऐसा लगेगा कि चूकि समाज वास्तव मे प्रकृति से भिन्न है इसलिये उनके विचार के पक्ष मे भी तर्क मौजूद है और यह विचार इसलिये और भी तर्कसगत लगेगा कि वह प्राकृतिक और सामाजिक परिघटनाओ की प्रकृतिवादी एकरूपता के प्रति अनुक्रिया का प्रतिफल है। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि विज्ञान मे अपरोक्ष इद्रियबोध, इस प्रसग मे समाज तथा प्रकृति के बीच प्रत्यक्ष अन्तर बिलकुल पर्याप्त नही है। आखिर आज का स्वसिद्ध विचार भी कि पृथ्वी गोल है, किसी समय म इसलिये अमान्य था कि प्रत्यक्ष रूप से देखने म बात उलटी लगती थी। इसलिये समाज तथा प्रकृति के बीच का प्रत्यक्ष अतर भी नवकाटवादी विचार के पक्ष मे प्रत्यायक प्रमाण नही माना जा सकता। अत हमे प्रारम्भ सामाजिक सज्ञान की विशिष्टताओ की तथा उसको जिन कठिनाइयो का सामना करना पडता है उनकी छानबीन से करना चाहिये। आगे हम देखेगे कि समाजशास्त्र ने उन कठिनाइयो को दूर करने के लिये क्या किया।

प्रकृति के मुकाबले में सामाजिक जीवन की विशिष्टताओं तथा परिणामस्वरूप सामाजिक मकान की कठिनाइयों का 'सामान्यीकरण' निम्नलिखित ढंग से किया जा सकता है

प्रथम प्रकृति में जो कुछ होता है उसके प्राकृतिक कारण होते हैं। प्रकृति में अंधी, स्वतःस्फूर्त शक्तियां एक दूसरे पर अमल करती रहती हैं। किसी पेड़ पर बिजली गिरती है, हवा से आग की लपट तेज होती है, जंगल की आग वृक्षों को जलाकर राख कर देती है, राख में भूमि को खाद मिलती है—और इस प्रकार प्राकृतिक कारणों तथा परिणामों का अनवरत तारतम्य है जिसका कारण बताया जा सकता है, वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है व्याख्या की जा सकती है। इनमें से कोई भी चीज पूर्वनिर्धारित उद्देश्य अथवा चेतन इरादे से नियंत्रित नहीं है।

मानव समाज का मामला भिन्न है। यहां जो कुछ भी होता है उसका कारण मनुष्यों का कार्यकलाप तथा एक दूसरे पर उनका अमल है। परंतु मनुष्य चेतन प्राणी है और प्रत्येक मनुष्य जो कुछ करता है, वह चाहे किसी भी ढंग से हो, पहले उसके मन से होकर गुजरता है। मनुष्य मनोवेग, चिंतन अथवा, कितना ही बुरा हो जाये तो, मन की तरंग के प्रभाव में काम करता है। ऐसी स्थिति में यही स्वाभाविक लगता है कि प्रकृति की तरह समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करना असम्भव है। सच तो यह है कि उन सभी विचारों तथा सिद्धांतों, आकांक्षाओं तथा कामनाओं, मनोवेग तथा मनतरंगों का, जिनसे मनुष्य को कुछ करने तथा निश्चित सामाजिक परिणाम उत्पन्न करने की प्रेरणा मिलती है, ध्यान में रखना असम्भव है। प्रसिद्ध फ्रांसीसी दार्शनिक पाल द हाल्बाख ने लिखा "उन भयंकर उपद्रवों में जो समय समय पर राजनीतिक समाजों की नींव हिला देते हैं और जिनसे अकसर साम्राज्यों का तख्ता उलट जाया करता है क्रांति के अभिकर्ताओं का, चाहे विध्वंसकों के रूप में हो या आहतों के, एक भी काम, एक भी शब्द, कोई विचार, कोई मनतरंग कोई मनोवेग ऐसा नहीं है जो अपने द्वारा उत्पन्न होनेवाले परिणामों के कारणों के रूप में अचूक ढंग से इस नैतिक चक्र में इन अभिकर्ताओं के स्थान के अनुसार काम न करते हों। यह बात उस मानस के लिये बिल्कुल प्रत्यक्ष होगी, जिसमें यह क्षमता हो कि इस क्रांति में भाग लेनेवालों के मन तथा शरीर की सभी

क्रियाओ तथा प्रतिक्रियाओ का बोध तथा अनुभव कर सके।"* निस्सन्देह हाल्बाख गलती पर है। भौतिक कणो की परस्पर क्रिया के मामले मे भी भौतिकविद सभी परिणामो की बिल्कुल ठीक ठीक भविष्यवाणी करने से इनकार करते है क्योकि उनकी परस्पर क्रिया मे न केवल अनिवार्यता, बल्कि सयोग भी सन्निहित होता है। समाज के मामले मे यह काम व्यावहारिक तथा सैद्धातिक दोनो दृष्टियो से असम्भव है क्योकि केवल यही नही कि प्रकृति की तरह समाज मे भी सयोग हुआ करता है और क्योकि किसी भी सामाजिक प्रक्रिया मे विविध प्रकार के नाते, सबध, परस्पर क्रियाए तथा कारक अपार सख्या मे सन्निहित होते, काम करते और घुलमिल जाते है, बल्कि इसलिये भी कि यहा चेतना, सकल्प, मनोवेग इत्यादि का प्रभाव भी पडता है। इन सब के कारण समाज के सज्ञान के लिये कुछ विशेष बातो को पूरा करना जरूरी हो जाता है। सामाजिक क्रिया के सज्ञान मे ध्यान देने की बात यह है कि सामाजिक क्रिया के सज्ञान मे हमेशा आत्मनिष्ठ तत्व मौजूद है। इसी मे सामाजिक सज्ञान की विशिष्टता तथा कठिनाई निहित है, जो कठिनाई वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ के सबध की समस्या के समाधान द्वारा ही दूर की जा सकती है।

दूसरे, प्रकृति मे हर जगह पुनरावृत्ति होती है। प्रतिदिन पूरब से सूरज निकलता है तथा हर बसत मे वृक्ष हरे भरे हो जाते है। भौतिक पदार्थ गर्म होने पर फैलते है तथा प्रत्येक प्राणी जन्म लेता, जीवन व्यतीत करता और फिर मर जाता है। यद्यपि प्रकृति मे भी बिल्कुल समान रूप से पुनरावृत्ति नही होती, तो भी किसी हद तक भिन्न प्रक्रियाओ तथा वस्तुओ मे प्रत्यावर्त्ती तत्वो का अवलोकन सापेक्षतया आसान है। प्राकृतिक परिघटनाओ मे प्रत्यावर्त्ती तत्वो के अध्ययन से—चाहे यह अध्ययन प्राकृतिक स्थिति मे किया जाय अथवा प्रयोगशाला मे—देर सवेर उन नियमो का प्रकटन होता है, जो प्रकृति का नियन्त्रण करते है। आखिर नियम तो परिघटनाओ मे सामान्य, आवश्यक, अनिवार्य, स्थायी तथा प्रत्यावर्त्ती के सिवा और कुछ नही है।

मानव समाज मे मामला भिन्न है। यहा ठाम क्रियाए तथा ऐतिहासिक घटनाए सचमुच प्रगाढ रूप म विशिष्टीकृत होती है और यही उनका पुनरावृत्ति नही हाती। किसी भी ऐतिहासिक घटना का लीजिये, चाहे यूनान फारस के युद्ध हो अथवा सिकन्दर महान के सैनिक अभियान हो, या फ्रास का महान पूजीवादी क्राति, अथवा रूस मे महान अक्तूबर समाजवादी क्राति दूसरा विश्व युद्ध हो, या साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था का विघटन—ये सभी वास्तव म अद्वितीय है और अपन ठाम रूप म इनकी पुनरावृत्ति कभी नही हाती। इमस यह बात निकलती मालूम हागी कि समाज म कोई नियम नही ह कि पुनरावृत्ति के सामान्य वैज्ञानिक मानदड समाज पर लागू नही हो सकत और यह कि सामाजिक विज्ञान नाम की काई चीज नही हा सकती। लेकिन इस अनोखेपन का अबाधित नही समझना चाहिये। सामाजिक जीवन मे भी बहुत कुछ ऐसा है, जिसकी पुनरावृत्ति हाती है। आदमी जन्म लेते ह, बहुत सी बात सीखत ह, काम करत, परिवार बनाने मित्रा से भेंट मुलाकात करते, अपने उद्देश्य निर्धारित करते ह, इत्यादि इत्यादि। इसका अर्थ यह ह कि विभिन्न जिला, इलाका देशा, राष्ट्रा तथा राज्या मे जीवन स्थितिया, लोकाचार की अपार विविधता इतिहास की विशिष्टता के बावजूद सामाजिक जीवन को निकट से देखने पर मालूम होगा कि उसम भी बहुत अधिक ऐसा है, जो सामान्य है तथा प्रत्यावर्ती हे पर जो पहली नजर मे ऐसा लगता नही है और परिणामस्वरूप सामाजिक विज्ञान की सम्भावनाए उतनी बेरग तथा निराशाजनक नही है। मूल बात यहा **सामान्य तथा विशिष्ट का सबध** है, जिस रूप मे इतिहास पर उसे लागू किया जाये।

आगे चल। नक्षत्र मडला का विकास तथा सूक्ष्म ब्रह्माड मे गति, भूगर्भ सबधी प्रक्रियाए और वनस्पति तथा जान्तव जातिया का विकास, अर्थात प्रकृति म गति तथा विकास के सभी रूप अपेक्षाकृत स्थायी परिस्थिति मे होते ह, जिसस प्रभेद तुलना तथा मापन सम्भव होता है।

समाज म स्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। इसका विश्लेषण हम शुरू कैसे कर? कुछ लोगा का कहना है कि मानव समाज का इतिहास निरतर बहाव की स्थिति मे है। करोडा अरबा आदमी, मर्द और औरते, जीवन बिताते और काम करते घर बसाते और बच्चे पालते, नगर बनाते और नई भूमि का विकास करत, पढत तथा खेलते, दोस्ती करते, लडाई झगडा

इन ऐतिहासिक मिसाला से यह जाहिर हाता है कि वर्गीय हिता का प्रभाव प्राकृतिक विज्ञाना द्वारा मुहैया की गयी सामग्री की दाशनिक व्याख्या पर तथा उन निष्कर्षों पर जा वैज्ञानिक आविष्कारा स दाशनिक उद्देश्य स निकाल जाते हैं पडता है।

हमारे अपने जमाने म धम ने बहुत अधिक सावधानी का रास्ता अपना लिया है और पुराहित वग के लाग खुल्लमखुल्ला इससे ज्यादा कुछ नही कहते कि विज्ञान का चाहिये कि जो भगवान का है उसे भगवान के लिय छोड दे अर्थात उसे धार्मिक विचारा की आलाचना नही करनी चाहिये। भौतिकी, रसायनशास्त्र, गणितविज्ञान, साइबरनेटिक्स, प्राणिविज्ञान तथा चिकित्साविज्ञान की महान उपलब्धिया ने प्राकृतिक विज्ञाना को किसी भी आधुनिक समाज का "प्रिय पात्र" बना दिया है, यद्यपि उनका प्रयोग हर जगह समान साथकता से अथवा एक ही सामाजिक उद्देश्य के लिये नही किया जाता।

समाज का सज्ञान बिल्कुल दूसरी चीज है। विराधपूण समाजा म लाग व्यवस्था उसके परिवतन या सरक्षण के सबध म भिन्न और यहा तक कि विरोधी विचार रखत ह, जिसका कारण यह है कि उसम सम्पत्तिवान तथा सम्पत्तिहीन वग शाषक तथा शाषित, उत्पीडक तथा उत्पीडित, स्वामी तथा चाकर वग हाते ह। कुछ लोग विद्यमान व्यवस्था को लाभकर समझत ह तथा उसको कायम रखने तथा मजबूत बनाने म सलग्न होत है, जबकि अय लाग उसस घणा करते तथा उससे छुटकारा पाना चाहते ह। पहला के लिये वह वरदान है, दूसरो के लिये विपदा का कारण। लोग सामाजिक तथ्या का क्या मूल्याकन करते ह तथा उनसे क्या निष्कष निकालते ह इसपर लागो के हिता का भारी प्रभाव पडता है। परन्तु यदि सामाजिक वस्तुस्थिति के सबध म निष्पक्षता नही होगी तो ऐसा लगेगा कि उनके अध्ययन म भी वस्तुनिष्ठता नही आ सकती। सवाल यह उठता है क्या समाज विज्ञान के लिय यह गुण हाना सम्भव है कि वह वस्तुनिष्ठता की दष्टि से सच्चा हा एक विज्ञान हो, अथवा उसस हम केवल इस याग्य हात हैं कि इतिहास के तथ्यो का वर्गीयकरण कर सके तथा अच्छे या बुरे न्याय या सामजस्य के किसी आदश की कसौटी पर उनका मूल्याकन करे? अभी तक हम यह देखत ह कि प्राकृतिक विज्ञाना जसे भौतिकी और गणित की उपलब्धिया का सभी देशा म समान मायता दी जाती तथा लागू किया

जाता है (किन उद्देश्यों और तरीकों से, यह दूसरा सवाल है), ऐसे देशों में भी, जिनकी सामाजिक व्यवस्थाएं भिन्न हैं लेकिन मानवशास्त्र जैसे दर्शनशास्त्र, समाजविज्ञान इतिहास तथा अर्थशास्त्र के निष्कर्षों के साथ ऐसा नहीं होता। इसमें सवाल पैदा होता है कि सामाजिक विज्ञानों में वर्गीय भावना तथा वस्तुनिष्ठता में, पार्टी भावना तथा सत्य में क्या संबंध है। इस समस्या पर हम आगे विचार करेंगे।

अतः इससे यह बिल्कुल प्रत्यक्ष है कि ज्ञान के विषय के रूप में समाज प्रकृति से बहुत कुछ भिन्न है, और यहां सैद्धांतिक विचार के समक्ष अवश्य ही बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं।

यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति तथा विकास में इतना अधिक समय लग गया तथा इतना जटिल प्रयास करना पड़ा, यद्यपि मनुष्य सदा इन कठिनाइयों से अभिज्ञ भी नहीं था और इन कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित करना ही विज्ञान की एक उपलब्धि थी।

लिखित इतिहास के हजारों बरसों में सामाजिक संज्ञान विकसित हुआ तथा धीरे धीरे उन शाखाओं में बंटता गया, जिनमें समाज के ज्ञान का संग्रह हुआ था और जिन्होंने वह आधार मुहैया किया जिसपर सामाजिक विज्ञान के तीन मूल क्षेत्रों का विशिष्टीकरण किया गया।

विज्ञान का पहला कदम उन ऐतिहासिक तथ्यों का, जो मनुष्य की स्मृति में सुरक्षित रखने योग्य थे, संग्रहण, संकलन तथा वर्णन था। इससे इतिहास के विज्ञान की उत्पत्ति हुई, जिसका धीरे धीरे शाखाविभाजन हुआ और जो अब ऐतिहासिक ज्ञान की एक सम्पूर्ण शाखा के रूप में विकसित हो चुका है।

राजनीति, कानून, शिक्षण, सौंदर्यशास्त्र, भाषाविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि संबंधी ज्ञान की आवश्यकता सरकार, न्याय व्यवस्था, राजनयिक तथा सैनिक कार्यकलाप की जरूरतों, शिक्षा तथा कला के विकास तथा अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई जटिलता के कारण पैदा हुई। इससे ऐसे विज्ञानों का एक समूह उत्पन्न हुआ, जो पूरे समाज का अध्ययन नहीं करते बल्कि केवल उसके विभिन्न पहलुओं का, सामाजिक जीवन के खास वृत्तांत तथा प्रक्रियाओं का अध्ययन करते हैं। ये विज्ञान, जिनमें समाज के किसी विशेष, ठोस 'हिस्सों' अथवा पहलुओं का अध्ययन किया जाता है आम तौर से विशिष्ट या ठोस सामाजिक विज्ञान कहे जाते हैं।

अत म, ऐतिहासिक ज्ञान के विकास तथा सामाजिक जीवन के अलग अलग पहलुओ के अध्ययन के साथ साथ एसी धारणाए भी विकसित हुई, जिनम समाज तथा उसके इतिहास का एक अखड दृष्टिकोण व्यक्त किया गया था। यह सामाजिक सज्ञान का आवश्यक तत्व है क्योकि कोई भी ठोस सामाजिक विज्ञान पूरे समाज को अपनी परिधि म नही लेता। मानव इतिहास की इस प्रकार की धारणा की आवश्यकता सभी ठोस सामाजिक विज्ञानो को ह, क्योकि इससे उन्ह पहला कदम उठाने का प्रारम्भिक स्थल तथा एक सामान्य सैद्धातिक आधार मिल जाता है। यही कारण है कि पहले दिनो म बहुत से प्रमुख इतिहासकारो, दार्शनिको तथा समाजशास्त्रियो ने सामाजिक जीवन को एक सम्पूर्ण वस्तु के रूप म समझने का प्रयास किया तथा ऐतिहासिक ज्ञान के स्वरूप, इतिहास के अर्थ, जीवन म मनुष्य के उद्देश्य तथा समाज की नियति के सबध म सवालो का उत्तर ढूढने की चेष्टा की। य सवाल अभी से ही **दार्शनिक** समस्याए हो गये ह क्योकि ये विश्व तथा उसम मनुष्य के स्थान के बारे म सपूर्ण दृष्टिकोण का एक अग ह।

दर्शनशास्त्र एक विशिष्ट विज्ञान है जो अन्य सभी विशेष प्राकृतिक तथा सामाजिक विज्ञानो स इस बात मे भिन्न है कि वह विश्व का तथा विश्व म मनुष्य के स्थान का बोध सबस सामान्य प्रवर्गो तथा सबसे सामान्य नियमो के सदर्भ म करने का प्रयत्न करता है। यह विश्व क्या है, जिसका एक अग हम मनुष्य भी ह? वस्तुओ तथा क्रियाओ की इस अपार विविधता की उत्पत्ति कैसे हुई? क्या इस जगत का निर्माण किसी अतिप्राकृतिक शक्ति ने किया अथवा यह सदा स चला आ रहा है, स्वय अपने नियमो के अनुसार विकसित होता आ रहा है जिनका निर्माण किसी ने नही किया? ये सभी सवाल उसी मूल प्रश्न के अग ह, जिसका उत्तर दिये बिना विश्व का एक सुसगत दृष्टिकोण प्रस्तुत करना असम्भव है। **दर्शनशास्त्र का मूल प्रश्न** यह है पहले कौन हुआ—भौतिक अथवा आध्यात्मिक? अनगिनत दार्शनिक मतो प्रवृत्तियो तथा विचारधाराओ को **दो मुख्य मतो** अथवा पक्षो मे बाटा जा सकता ह **भौतिकवाद**, जो भौतिक वस्तुओ को प्राथमिकता प्रदान करता है, तथा **भाववाद** जो आध्यात्मिक चीजो को प्राथमिकता देता है। अत इनमे से प्रत्येक पक्ष न विश्व के सज्ञान के सबध म अपना सिद्धात तयार किया है। भौतिकवादियो का कहना है कि मनुष्य की सवेदना तथा सबोधना जिनके जरिये सज्ञान प्राप्त होता है, जगत का प्रतिबिम्ब ह, जबकि भाव

वादियो का मत है कि ज्ञान या तो विश्व के अलौकिक ईश्वरीय सार की अभिव्यक्ति है, या मनुष्य द्वारा ज्ञान का स्वय अपना निर्माण है। भौतिकवादी दृष्टिकोण वज्ञानिको को बताता है कि विश्व जसा है उसको वैसा ही देखें, और वह ठोस विज्ञानो पर आधारित एक विश्व दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न करता है। भाववादी दृष्टिकोण विश्व का एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत करता है, जो मूलत विकृत है, विज्ञानो पर स्वय अपनी स्कीमें थोपता है, और इनके कारण उनके विकास मे बाधा पडती है तथा सच्चे ज्ञान की प्रगति मद पड जाती है। लेकिन इसका यह मतलब नही कि भाववादी वैज्ञानिको ने ज्ञान की प्रगति के लिये कुछ किया ही नही। ऐसा कहना बहुत ही भद्दी और घटिया बात होगी। इस सवाल पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करना होगा। यह मालूम है कि दार्शनिक ज्ञान का विकास भौतिकवाद के आधार पर तथा भाववादी दृष्टिकोण के चौखटे के भीतर, दोनो पक्षो के बीच विचारो की टक्कर और मुकाबले के दौरान म हुआ है। एक और बात जिसे ध्यान म रखना चाहिये यह है कि अतीत काल मे स्वय भौतिकवाद म एक मौलिक सवाल पर बडी कमजोरी थी वह **अतिभूतवादी** था। वह एक ऐसा भौतिकवाद था, जो विकास और परिवतन की स्थिति म विश्व का अवबोध और ज्ञान प्राप्त करने म असमर्थ था। जहा उसने मानवीय अवधारणाओ की भौतिक प्रकृति की, भौतिक सार की सही व्याख्या की, वहा उसने इनको बधा-टका, गतिहीन तथा अपरिवर्तनशील मान लिया। अतिभूतवादी भौतिकवादी विचारक मनुष्य की चेतना को भूत का निष्क्रिय प्रतिबिम्ब मानते थ और उसकी सक्रिय भूमिका देखने मे असमथ थे। इस बीच, भाववादी, जो चारो ओर विश्व की विविधता को आत्मा, चेतना की सजनात्मक भूमिका का परिणाम मानते थे, दरअसल चेतना के सक्रिय पक्ष की व्याख्या म सलग्न थे। वह हेगल थे, जिन्होने चेतना का सिद्धात, धारणाओ की सवव्यापी लचक तथा गतिशीलता, अर्थात, धारणाओ की द्वद्वात्मकता के सिद्धात का ताना बाना सजग पूणतया बुना। उन्होने बिलकुल सचेत ढग स द्वद्ववाद का विवेचन उन नियमो के एक सिद्धात के रूप म किया, जो आत्मा के विकास को नियन्त्रित करते है, और ऐसा करने म उनकी प्रतिभा ने वास्तविक भौतिक जगत की द्वद्वात्मकता का आभास पा लिया। मार्क्स तथा एगेल्स ने हेगल के दर्शन की त्रुटियो की आलोचना करते तथा उनको दूर करते हुए भौ

द्वद्ववाद की व्याख्या की। इससे भौतिकवाद गुणात्मक दृष्टि से एक नई सतह पर पहुच गया तथा द्वद्वात्मक बन गया। अपने इस रूप म भौतिकवाद ने वज्ञानिक अनुसधान के लिये एक सच्चा दाशनिक तथा सैद्धातिक आधार तथा भाववाद के विरुद्ध सघष म एक कारगर अस्त्र प्रदान किया।

द्वद्वात्मक भौतिकवाद की उपलब्धि के साथ एक और बात जुडी हुई थी वह यह कि दशनशास्त्र मे मनुष्य का समावेश एक सक्रिय सामाजिक प्राणी क रूप म हुआ, जो अपने कम द्वारा व्यवहार मे विश्व का रूपातरण करता ह। कम प्रधानतया भौतिक उत्पादन के विश्लेषण स वस्तुगत रूप से अस्तित्वमान यथाथ की अवधारणा को मानव चिन्तन के सक्रिय पक्ष स जोडने म सहायता मिली। मानव कम की सही समझ सज्ञान के वज्ञानिक सिद्धात तथा सज्ञान के पूरे इतिहास दोना के लिये प्रारम्भिक बिदु का काम देती है।

यहा कुछ देर के लिये मूल दाशनिक धारणाओ के क्षत्र म इसलिय जाना पडा कि आगे की विवचना पर अधिक प्रकाश डाला जा सके क्योकि हम इन धारणाओ का अक्सर प्रयाग करना पडेगा। यह एक ऐसा विषय है जिसम दाशनिक शब्दावली का प्रयोग किये बिना काम नही चल सकता। दशन म सामान्य सामाजिक सिद्धात शामिल ह, और उसके रचयिता जिन दाशनिक उसूलो को लेकर चलते ह उनका प्रभाव स्वय इन सिद्धातो के सार तत्व पर तथा विभिन्न समस्याओ के समाधान की दिशा पर पडता है। सामाजिक विकास के माक्सवादी सिद्धात – ऐतिहासिक भौतिकवाद (इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण) का स्वरूप भी दाशनिक है।

इस प्रकार सामाजिक सज्ञान के इतिहास म ये बाते शामिल ह प्रथम, ऐतिहासिक विज्ञानो का विकास, दूसरे, ठोस सामाजिक विज्ञानो का विकास और, तीसरे सामान्य धारणाओ के निर्माण का बारम्बार प्रयास, जिनसे सम्पूर्ण सामाजिक प्रक्रिया का एक सश्लिष्ट दृष्टिकोण प्राप्त हो सके। यहा हम सबसे अधिक दिलचस्पी सामाजिक विज्ञान के इस तीसरे मौलिक क्षत्र म है।

दाशनिक-ऐतिहासिक सिद्धात तो बहुतेरे होते ह परन्तु वास्तविक सत्य एक ही होता है। इसलिये स्वाभाविक रूप म यह सवाल पैदा होता है क्या किसी एस सामान्य सिद्धात की सृष्टि करना सम्भव भी है, जो वास्तविकता क अनुरूप हो? क्या यह समझना अधिक सहज नही होगा

कि प्रत्यक सामान्य सिद्धात उसके रचियता के ग्रात्मगत दाशनिक दष्टिकोण ग्रथवा उसकी निश्चित मनाभावना की ग्रभिव्यक्ति के सिवा ग्रौर कुछ नही है? क्या मानवजाति इतनी प्रौढ हो चुकी है कि ग्रपने सामाजिक ग्रस्तित्व का गूढ ग्रथ समझ सके?

ग्राइये हम इन प्रश्ना के कुछ सक्षिप्त उत्तर दन का प्रयास कर। ग्रवश्य ही, जहा कोई सामाजिक सिद्धात समाज के सबध म विचारक के दाशनिक विचारा का वहिर्वेशन मात्र है, तो हमारा यह समझना उचित होगा कि यह एतिहासिक यथाथ के ग्रनुकूल नही है, बल्कि इसके विपरीत ऐतिहासिक यथाथ को एक वने-वनाये साचे म ढालन की कोशिश की गयी है। एक वनानिक सामाजिक सिद्धात की रचना के लिये समाज की प्रमुख विशेषताग्रा, उसके ग्रपने स्वरूप पर सवतोमुखी ढग से विचार करना ग्रावश्यक है। इस ग्रावश्यक्ता की विवेचना इन शब्दा मे की जा सकती है एक सामान्य सामाजिक सिद्धात को केवल दाशनिक नही वल्कि **दाशनिक समाजशास्त्रीय** होना चाहिये, जिससे यह प्रकट हो कि वह दशनशास्त्र की परिधि म है तथा साथ ही केवल दाशनिक ही नही बल्कि सामाजिक सज्ञान की व्यवस्था के भीतर भी है। सामाजिक विज्ञान की व्यवस्था के जिस तीसरे तत्व की चर्चा ऊपर की गयी वह यही समाजशास्त्रीय ज्ञान का क्षेत्र है। समाज के सवध म शुद्ध दाशनिक धारणाग्रो से दाशनिक-समाजशास्त्रीय धारणाग्रो मे सक्रमण, जो १६वी शताब्दी मे ही शुरू हो चुका था सामाजिक सज्ञान के विकास म एक वडा कदम था। यह इस वात का परिचायक था कि मानव चिन्तन ऐतिहासिक प्रक्रिया के ग्रधिक सही ज्ञान के सनिकट पहुच गया है, ऐसे ज्ञान के, जो समाज की खास विशिष्टताग्रा, सामाजिक तथ्या के समीक्षण पर ग्राधारित था।

इस स्थान पर हम ग्रालोचकगण यह कहत सुनाई देत है कि इतना व्यापक सामाजिक सिद्धात, जो समस्त सामाजिक यथाथ पर छाया हुग्रा हो, ग्रसम्भव है, केवल इस कारण कि इसे वहुत वडी सख्या मे तथ्या को ग्रहण करना चाहिये ग्रौर समाज का उसकी तमाम तफसीलो म पर्याप्त ग्रध्ययन नही किया गया है। यह वात कुछ पूजीवादी समाजशास्त्री ग्राज भी कहते ह। इस सवाल की विशेष छानबीन करने की जरूरत है।

निस्सदेह यह वात सही है कि जो सिद्धात तथ्या को नजरग्रन्दाज कर वह बेकार है। लेकिन क्या यह कहना सही है कि इतिहास तथा ग्रन्य

सामाजिक विनानो की बडी प्रगति ने इतनी पर्याप्त सामग्री नही मुहैया की है कि एक सामान्य सिद्धात की रचना की जा सके? फिर इस आलोचना का क्या कारण है? इसको समझने के लिये आइये हम पीछे चलकर यह देखें कि सवाल मूल रूप मे उठा कैसे था।

उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में आग्युस्त कोन्त ने यह सिद्ध किया कि ख्याली दार्शनिक ऐतिहासिक स्थापनाए बेकार है और यह सुझाव रखा कि एक समाजशास्त्र की स्थापना की जाय, जिसका दर्शन से कोई सबध न हो और जो अनुभवमूलक सामग्री पर उसी तरह निर्भर करे जैसे प्राकृतिक विज्ञान करते है। लेकिन स्वय कोन्त ने इस विज्ञान की स्थापना नही की। यह बात आम तौर पर स्वीकार की जाती है कि "कोन्त ने समाजशास्त्र को उसका नाम तथा कार्यक्रम प्रदान किया, जिसका उन्होने उपदेश दिया मगर जिसपर स्वय अमल नही किया।"* दर्शनशास्त्र को समाजशास्त्र से निकालने के नाम पर उन्होने बस अपना प्रत्यक्षवाद का दर्शन उसपर थोप दिया। इसके आगे के विकास पर जिन प्रमुख पूजीवादी दार्शनिकों का प्रभाव पडा उनमे हर्बर्ट स्पेन्सर, एमिली दुर्खाइम, मार्क्स वेबर तथा विल्फ्रेदो पारेतो के नाम लिये जा सकते है।

यह समाजशास्त्र जिसको कोन्त, स्पेंसर तथा अन्य लोगो ने जन्म दिया, जिसका विकास प्रत्यक्षवादी दर्शन के साथ गहरे सम्पर्क की हालत मे हुआ और जो मार्क्सवाद के सिद्धात का विरोधी है, साधारणतया 'पारपरिक' कहा जाता है। लेकिन आगे चलकर यह बात स्पष्ट हो गयी कि इतिहास का केवल भाववादी दर्शन ही नही, जिसकी आलोचना कोन्त ने की था, बल्कि स्वय उसका अपना सद्धातिक समाजशास्त्र भी परिकल्पना मात्र का ही पत्र है और उसका व्यावहारिक महत्व कुछ नहीं है। समाजशास्त्र को एक ऐसे विज्ञान के रूप में जिसका व्यावहारिक महत्व हो स्थापित करने के प्रयास मे सयुक्त राज्य अमरीका के समाजशास्त्रियो ने, जिनमे उपयोगवादी प्रवृत्ति प्रबल था, एक पूजीवादी अनुभववादी समाजशास्त्र को रचा था, जिसे २०वी शताब्दी के लगभग पूरे पूर्वार्द्ध मे व्यापक रूप

---

* *Modern Sociological Theory in Continuity and Change* Ed by Howard Becker and Alvin Boskoff New York 1957 p 7

से स्वीकार किया जाता था। इसने सिद्धात को उपेक्षणीय घोषित किया और अपना ध्यान सकेंद्रित किया ठोस सामाजिक अनुसधान के तरीको तथा प्रविधिया पर तथा समाजशास्त्रीय धारणाश्रा का एक विशेष सग्रह तैयार करने पर जसे "सामाजिक क्रिया", "सामाजिक परिवतन", "समूह', "सचारण", "सघष", "अनुकूलन", "समीकरण' तथा "सामूहिक आचरण" आदि, आदि। आनुभविक अनुसधान की प्रगति तजी से हुई, अनुसधान की विशेष उपकरण-सामग्री तैयार की गयी उसके विशेष केंद्र तथा सस्थान खुले और कालिजा तथा विश्वविद्यालया मे विभाग स्थापित किये गये। "अनुभव – नान के आधार के रूप म नही, वल्कि सिद्धातवादिता के विरोधी उमूल के रूप म – सर्वोपरि घोषित किया गया। यह घोषणा कर दी गयी कि समाजशास्त्र एक आनुभविक विज्ञान है, जो आदमिया के 'सामाजिक आचरण का अध्ययन करता है और अव 'इसका चलन नही रहा' कि प्रत्येक समाजशास्त्री अपना सिद्धात वनाये तथा एक विचारधारा का जम दाता कहलाये।"*

परन्तु इस बात के बावजूद कि व्यापक पैमाने पर आनुभविक अनुसधान से कुछ सीमित व्यावहारिक सफलताए मिली तथा कुछ कृतिया जसे डब्ल्यू० आई० टामस तथा एफ० ज्नानेत्स्की की कृति 'यूरोप तथा अमरीका म पोलिश किसान', आर० ई० पाक तथा ई० डब्ल्यू० वरजस द्वारा लिखित 'समाजशास्त्र की भूमिका', रावट तथा हेलेन लिंड की 'मिडलटाउन तथा एल्टन मेओ के प्रसिद्ध 'हायन प्रयोगो' और स्टाउफर दल द्वारा स० रा० अमरीका के सनिक अध्ययनो ने सफलता पायी, १९६० के दशक तक कुछ ममाजशास्त्री, गैरमाक्सवादी भी, आनुभविक समाजशास्त्र की त्रुटिया वतान तथा उनकी आलाचना करने लगे। इसका कारण यह था कि आनुभविक अनुसधान काय का व्यावहारिक फल वहुत ही सीमित था तथा सद्धातिक दृष्टि से वह विल्कुल वेकार था। समाजविनान म प्रगति की युक्ति स यह वात समझ मे आने लगी थी कि यथाथ से अलग होकर परिकल्पित स्थापनाए और मद गति से रगनवाला अनुभववाद, यदि वह

---

* Robert E C Faris American Sociology" *Twentieth Century Sociology* Ed by Georges Girvitch and Wilbert E Moore New York 1945 pp 545 46

समाज के ग्राम सद्धातिक दृष्टिकोण के मुकाबले म रखा हुआ है, दोनो ही कोई वैज्ञानिक समाजशास्त्र स्थापित करने म असमथ ह। "यदि पहल का समाज सिद्धात प्रमाणित प्रेक्षणा के बिना निराधार था तो सिद्धात के निदशन के बिना तथ्या की खाज लक्ष्यहीन है तथा सद्धातिक सामान्यीकरण किय बिना उनका सग्रह बेमानी है।"*

परिणामस्वरूप, पूजीवादी समाजशास्त्र म इस बात की जरूरत का अनुभव काफी स्पष्ट रूप से किया जान लगा था कि सामाजिक अनुसधान तथा सामाजिक विज्ञान को जाडना चाहिये, और यह पराक्ष प्रमाण है इस बात का कि आनुभविक अनुसधान तथा विज्ञान के रूप म समाजशास्त्र को एक समझन का कोई वास्तविक आधार नही है। इस आवश्यकता को स० रा० अमरीका क समाजशास्त्री राबट के० मटन ने अपनी पुस्तक सामाजिक सिद्धात तथा सामाजिक सरचना' (१६४६) मे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है।

'लौकिक तथ्या के छूत से सुरक्षित शुद्ध विचारो के तेजोलोक मे उडानें भरनेवाला सामाजिक सिद्धातकार का नमूना जिस तेजी से समयानुकूल नही रहा, उसी तजी से वह सामाजिक अनुसधानकर्त्ता का नमूना भी समयानुकूल नही रहा जो हाथ मे प्रश्नावली और पेन्सिल लिये बिखरे तथा अथहीन आकडा के पीछे दौडा फिरता है।'**

पूजीवादी समाजशास्त्र मे अनेक प्रतिद्वन्द्वी धारणाए ह, जिनम से हर एक समाजशास्त्रीय सिद्धात की प्रतिनिधि होने की दावदार है। पाश्चात्य समाजशास्त्रियो का कहना है कि वे फिर लौटकर परिकल्पी साचो तक जाना नही चाहते। समाजशास्त्र के विकास म जा अनुभव प्राप्त हुआ वह आखिर बिल्कुल ही निष्फल नही हुआ। आज उनमे से बहुतेरे इस बात पर जार देत है कि समाजशास्त्रीय सिद्धात को आनुभविक सामग्री का समथन प्राप्त होना चाहिय। लेकिन यहा पर एक बुनियादी अतविरोध सामने आता है। विज्ञान की स्वाभाविक आवश्यकताओ के कारण एक आम समाजशास्त्रीय सिद्धात स्थापित करन की समस्या उठ खडी होती है जबकि समाजशास्त्र को शुद्ध विशिष्ट कार्यों (जनमत-सग्रह छोटे दला के भीतर के सबध,

---

* वही, पृ० ४१।

** Robert K Merton *Social Theory and Social Structure* Glancoe Illinois 1957 p 102

आदि) के समाधान के लिये इस्तेमाल करने की सीमित परिपाटी से इसके लिये कोई प्रेरणा नही मिलती। यही वह अतविरोध है, जिसपर परदा डालने के लिय कहा जाता है कि अभी इतनी पर्याप्त सामग्री ही नही है कि एक आम समाजशास्त्रीय सिद्धात की स्थापना की जा सके। अत उनके कहने के अनुसार अभी तत्काल यह आवश्यक है कि ऐसे सामायीकरण तक ही जो अधिक व्यापक न हो, एक "मध्यस्थ सिद्धात" तक ही सीमित रहा जाये और एक सामाय समाजशास्त्रीय सिद्धात को उस समय तक के लिये स्थगित कर दिया जाये, जब आवश्यक सामग्री पर्याप्त मात्रा मे इकट्ठी हो जायेगी और जब आदमी उस सतह तक पहुच जायेगा जब वह अधिक व्यापक सामान्यीकरण कर सके। पश्चिम म इस समस्या के समाधान के लिये टाल्कट पारसस के सरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धात से बडी उम्मीदे बाधी गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिम मे कायवाद का मत बहुत फैल गया और बहुत से लोग उसे समाजशास्त्रीय चिन्तन के आधार के रूप मे देखने लगे।

लेकिन समाजशास्त्र मे सरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धात, जो सामाजिक परिघटनाओ का सपूण सामाजिक सघटन के ढाचे के अदर उनके स्थान की दृष्टि से तथा उस सघटन का स्थायित्व बनाये रखने मे उनके कायवाद की दृष्टि से देखता है, यह दिखाने मे समर्थ नही होता कि उस समाज के ढाचे के विभिन्न तत्व किस कारणवश जुडे हुए हैं, न यह दिखाने म कि उसके विकास के नियम तथा शक्तिया क्या हैं। यही वजह है कि सरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण को अधिक से अधिक आम सिद्धात के एक तत्व के रूप मे स्वीकार तो किया जा सकता है परन्तु आम सिद्धात को इस दष्टिकोण तक सीमित नही रखा जा सकता है।

अत न तो कोन्त, जिसे परम्परागत रूप से पूजीवादी समाजशास्त्र का जमदाता माना जाता है, और न उसके बाद आनेवालो ने ही कोई सामान्य समाजशास्त्रीय सिद्धात स्थापित किया, जिससे सामाजिक जावन के वैज्ञानिक आकलन का रास्ता साफ हो जाता। यह काम मार्क्स और एगेल्स न किया, जिन्होंने १९वी शताब्दी के मध्य म वज्ञानिक समाजशास्त्र की सचमुच बुनियाद डाली।

मार्क्स ही उस दाशनिक-समाजशास्त्रीय सिद्धात के जमदाता ह जिसे ऐतिहासिक भौतिकवाद कहा जाता है, जिसने सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक

प्रक्रिया के सार का वज्ञानिक बोध प्राप्त करने के लिये आधारशिला रखी और ना पूरे समाजविज्ञान का सद्धातिक आधार सावित हुआ, जिसकी इतने दिना स खाज थी। इस सिद्धात की स्थापना के अनुभव से यही प्रकट हाता है कि ऐतिहासिक दष्टि से सामाजिक सज्ञान न इतनी पर्याप्त सामग्री जुटा ली ह कि एक सामाय सामाजिक सिद्धात की रचना सम्भव है, अवश्य ही मुकम्मल रूप म नही, क्याकि काई भी सिद्धात साधारणतया इस स्तर तक शायद हा कभी पहुच सकता हो, बल्कि सामाय उसूलो के रूप म। परिणामस्वरूप इसका अथ यह है कि मानवजाति आत्मसज्ञान के लिये तयार है। इस सिद्धात के निरूपण के अनुभव स यह प्रकट हाता है कि पूजीवादी सिद्धातकार एक वनानिक दाशनिक-समाजशास्त्रीय सिद्धात की स्थापना नही कर सके तो इसका कारण तथ्या का, आनुभविक सामग्री का अभाव नही था वल्कि यह था कि उनकी आखा पर उनके वर्गीय दष्टिकाण की, उनका सकीण सामाजिक आवश्यकताओ की पट्टी वधी हुई थी।

काई भी विनान, जिसम समाजविनान भी शामिल है, तभी जम लता तथा प्रगति करता है जव उसके लिय ठोस सामाजिक परिस्थिति द्वारा निर्मित सम्भावनाए मौजूद हा और जव समाज को उसकी आवश्यकता हो।

प्रत्यक सामाजिक युग न प्रकृति का ही नही वल्कि समाज का भी नान प्राप्त करन की निश्चित सम्भावनाए उपस्थित की ह। उदाहरण के लिये पूजीवाद स पहले तथा इसकी प्रारम्भिक अवस्थाओ म भी मनुष्या के लिय प्रकृति का तथा स्वय अपन सामाजिक सवधो का वैज्ञानिक नान प्राप्त करन की सम्भावना वहुत सीमित थी। लेकिन आगे चलकर ज्या ज्या पूजीवाद का विकास हुआ सामाजिक जीवन की भौतिक स्थितिया इतनी परिपक्व हा गयी कि सम्पूण रूप से ऐतिहासिक प्रक्रिया का वज्ञानिक वाध व्यावहारिक सम्भावना वन गया। य नयी सम्भावनाए क्या थी?

ज्या ज्या पूजावाद का विकास हुआ अलग अलग देशा तथा कौमा का विलगाव दूर हान लगा, व सव इस प्रक्रिया के भीतर खिच आइ, जिसम आधुनिक राष्ट्रा की उत्पत्ति हाती है तथा उनम अनेक प्रकार के सवध स्थापित हान लगत ह। इससे स्पष्ट रूप स प्रकट हाता है कि मानवजाति का इतिहास एक हा प्रक्रिया है जिसम प्रत्यक जाति अपन ऐतिहासिक विकास के दौरान म अनेक नियमवद्ध अवस्थाओ स हाकर गुजरती ह। इस वात

की व्यापक सम्भावनाएं पैदा हो गयी थीं कि विभिन्न राष्ट्रों के इतिहासों की तुलना की जाये, विभिन्न देशों की आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था में समान तत्वों का गमन पाया जाये और सामाजिक सबंधों में नियमबद्ध दोहराव का पता लगाया जाये। एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'ड्यूहरिंग मत खंडन' में कहा है कि 'आधुनिक भौतिकवाद इतिहास को मानवजाति के विकास की प्रक्रिया के रूप में देखता है, जिसकी गति के नियमों का पता लगाना उसका काम है"।

पूंजीवाद में संक्रमण के, जिसके साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तूफानी गति से क्रांतिकारी परिवर्तन हुए, इतिहास के रंगमंच पर प्रबल सामाजिक शक्तियों को उतार दिया, जिनकी टक्कर और संघर्ष से परिपक्व सामाजिक समस्याएं हल होने लगी। इस संघर्ष की एक बुनियादी विशेषता थी। मध्य युगों में संघर्ष मुख्यतः धर्म के झंडे के तले हुआ करते थे (सलीबी युद्ध, धर्मद्रोह, धर्म सुधार, इत्यादि) और इसके चलते उनके वास्तविक कारणों पर पर्दा पड़ जाता था। परन्तु आगे चलकर पूंजीवादी क्रांतियों में भूमि के लिये किसानों का संघर्ष, पूंजीवाद के अंतर्गत धनवानों और धनहीनों के बीच, अमीरों और गरीबों के बीच की टक्कर ने सामाजिक द्वंद्व के आर्थिक आधार पर से पर्दा हटा दिया और इससे स्वभावतः आदमियों को यह प्रेरणा मिली कि समाज की अर्थव्यवस्था में ऐतिहासिक विकास के कारणों का पता लगायें।

श्रम के व्यापक सामाजिक विभाजन तथा उत्पादन की विभिन्न शाखाओं (उद्योग, कृषि, इत्यादि) के बीच सबल संबंधों की स्थापना से वे आवश्यक स्थितियां पैदा हो गयीं, जिनमें स्वयं भौतिक उत्पादन के विकास का, चाहे उसका विशेष रूप कुछ भी हो, विश्लेषण किया जा सकता था।

अतः पूंजीवाद ने मनुष्य की जीवन स्थितियों में क्रांति लाकर वे वस्तुनिष्ठ आवश्यक स्थितियां पैदा कर दीं, जिनमें ऐतिहासिक प्रक्रिया के सार का अनुकलन करना तथा उसकी बुनियादों का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव हो गया।

पूंजीवाद के विकास ने सामाजिक ज्ञान के लिये नयी सम्भावनाएं

---

* फ़्रे० एंगेल्स, 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन', विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, पृष्ठ ८२

ही नही पैंदा की वल्कि समाजविज्ञान के लिये सामाजिक ग्रावश्यकता भ पदा कर दी।

पूजीवाद का ज्या ज्या विकास होता है उसके ग्रतविरोध ग्रधिक स्पष्ट तथा तज़ होत जाते हैं। उत्पादन मे प्रतियोगिता ग्रौर ग्रव्यवस्था, वार वार सक्ट का ग्राना सामाजिक ग्रौर राष्ट्रीय उत्पीडन तथा ग्रन्य प्रतिरोधी ग्रतविरोधो ने, जो पूजीवाद मे निहित हैं, समाज के सामने एक महत्वपूर्ण तात्कालिक कायभार प्रस्तुत कर दिया है कि इन ग्रतविरोधा के समाधान के उपाय ग्रौर तरीके निकाले जाय। पूजीवाद के ग्रन्तगत उत्पादन उस स्तर पर पहुच गया है, जहा पूर समाज के पमाने पर उसके चेतन नियत्रण तथा व्यवस्था की ग्रावश्यकता पैंदा हो गयी है। इससे पहले किसी समाज को इस समस्या का सामना नही करना पडा था। परन्तु पूजीवादी व्यवस्था के ग्रन्तगत, उत्पादन के साधनो पर निजी स्वामित्व के प्रभुत्व के ग्रतगत सुसगत रूप से इस प्रकार का नियत्रण लागू करना ग्रसम्भव है। इसके लिये, पहल, सामाजिक स्वामित्व पर ग्राधारित एक नयी व्यवस्था की ग्रौर, दूसरे, विनान की ग्रावश्यकता है। ठीक जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान ने प्रकृति की जवरदस्त शक्तिया का प्रयोग करन मे मनुष्यो की सहायता की है, उसी प्रकार समाजविनान भी सामाजिक विकास की दानवीय शक्तिया को ग्रभिभूत करन म उनकी सहायता कर सकता है तथा उसे करनी चाहिय। चूकि सामाजिक ग्रतविरोधो पर काबू पाने की वडी ग्रहम जरूरत समाज के लिय पदा हो जाती है, इसलिये एक विज्ञान की जरूरत भी हाता है, जो इन ग्रतविराधा का ज्ञान प्रदान करे तथा उनको दूर करने का उपाय वताय। वास्तव म नयी सामाजिक व्यवस्था की कल्पना ही नही की जा सकती, जव तक सामाजिक विनान उसका सद्धातिक ग्राधार न हो जिसके सहार मनुष्य की उन्नति ग्रौर ग्राजादी क लिय समस्त सामाजिक प्रक्रियाग्रा का क़ाबू म किया जा सक तथा उन्ह समाज द्वारा युक्तिसगत तथा सचेत नियत्रण म लाया जा सक।

ग्रत पूजीवादी ममाज क विकाम तथा उसक ग्रन्तविराधो क तज हान स इतिहास क वनानिक दृष्टिकाण की सम्भावना तथा उसकी ग्रावश्यकता पना हुई। मास्म तथा एगल्म की शानदार उपलब्धि यह है कि उन्हाने पुरान परम्परागत भाववादी विचारा का त्याग दिया ग्रौर समाज क विकास के नियमा का पता लगाया, जिन नियमा क ग्रस्तित्व स ही भाववादी इनकार

करते थे। मार्क्स तथा एंगेल्स ने इतिहास के वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टिकोण की रचना की और इस युग ने जो समस्या प्रस्तुत की थी उसका समाधान कर दिया।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की उत्पत्ति उस महान आलोचनात्मक प्रयास के बिना नहीं हो सकती थी, जिससे पहले के समाजविज्ञान पर छाये हुए भाववाद को परास्त किया गया, अथवा दर्शनशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र तथा सम्पूर्ण रूप से सामाजिक चिन्तन के विकास में जो मूल्यवान तत्व पाये जाते हैं उनके संरक्षण तथा आलोचनात्मक प्रयोग के बिना भी नहीं हो सकती थी। इसी के साथ ऐतिहासिक भौतिकवाद ने सत्य तथा स्वार्थ के अन्तर्द्वन्द्व का भी हल कर दिया।

किसी वस्तु का रूपांतरण करने के लिये उसका ज्ञान आवश्यक है। अपने कर्म द्वारा मनुष्य केवल उन वस्तुओं का रूपांतरण ही नहीं करता है, जिन पर वह काम करता है, बल्कि अपने उद्देश्य, आकांक्षाएं तथा हित भी पूरे करता है। फलस्वरूप मानव कार्यकलाप में वस्तुनिष्ठ ज्ञान, आवश्यकताएं तथा हित सब मिले होते हैं। परन्तु उनके मिलने का तरीका भिन्न हो सकता है, क्योंकि आदमियों के हित भिन्न और एक दूसरे के विरुद्ध भी होते हैं। सामाजिक जीवन के संज्ञान में हितों, खासकर वर्गीय हितों के विरोध के चलते ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें प्रत्येक दृष्टि-कोण का उलटा दृष्टिकोण भी होता है, जो समान तथ्यों की भिन्न भिन्न व्याख्या करता है। तब प्रश्न होता है फिर हम सच्चा ज्ञान कैसे प्राप्त कर सकते हैं? शायद समाज तथा वर्गों से ऊपर उठकर और मनुष्यों के संघर्ष, उनके हितों के टकराव तथा मनोभाव के तूफान पर एक तरफ से नजर डालकर यह किया जा सके? मगर अनुभव बतलाता है कि इससे काम नहीं चलेगा तथा समाज के ऊपर होने की स्थिति बस एक धोखा है और कुछ नहीं। सिद्धांत की बात सोचने पर भी यही ख्याल होता है कि ऐसा सामा-जिक अनुसंधान, जिसका निदेशन ठोस सामाजिक अथवा वर्गीय हितों द्वारा, निश्चित **मूल्य मानकों*** द्वारा नहीं हुआ हो, असम्भव तथा बेकार है।

---

*मूल्यों का अर्थ है परिघटनाएं, वस्तुएं, विचार आदि जिनका मनुष्य को अपने भौतिक तथा बौद्धिक कार्यकलाप के दौरान में सामना करना पड़ता है, जो उसके लिये एक विशेष मानी रखते हैं और जिनसे उसकी

आखिर सामाजिक नान की जरूरत सबस बढकर स्वय मानव कायकलाप के लिय ह। यही कारण है कि सामाजिक नान की सच्चाई की समस्या का समाधान एक भिन्न आधार पर हाता है स्वय समाज क भीतर एक एस सामाजिक वग, एक ऐसी सामाजिक शक्ति का पता लगान का जरूरत है जा वस्तुनिष्ठ सामाजिक ज्ञान क विना काम नही करगी तथा सफलतापूवक काम कर नही सकेगी अर्थात एक ऐमी शक्ति का, जा इम प्रकार क नान पर आश्रित हागी। ऐसी हालत म नान तथा हित म अनुरूपता स्थापित हा जाती है जिसक फलस्वरूप सच्च नान की तलाश म ही हित की अभि व्यक्ति हाती ह। परन्तु जब इन दोना म पारस्परिक विराध पदा हा जाय ता ज्ञान की जगह काल्पनिक कथा भ्रातिया तथा विकृत धारणाए उत्पन्न होती हैं। हित बडी प्रबल शक्ति है, चुनाचे ज्यामितीय स्वयतथ्य अथवा प्रमेय भी यदि किसी के हित के खिलाफ पडें, ता निश्चय ही एस लाग सामन आयेंगे जा उसके भी खडन का काई न काई उपाय निकाल लेंग।

इस तथ्य का स्वीकार करना कि सामाजिक सिद्धात का सबध किसी न किसी सामाजिक समूह या वग के हिता स हाता है, **पार्टी सिद्धात** कहा जाता है। मार्क्सवादी समाजविज्ञान खुल्लमखुल्ला मजदूर वग के हिता का, श्रमजीविया का शापण से मुक्ति दिलान क सघप का तथा समाज का समाजवाद तथा कम्युनिज्म की दिशा म ल जाने का समथन करता हे। यही वात माक्सवादी समाजविज्ञान म पार्टी भावना पदा करती ह। परन्तु एकमात्र तरीका जिससे वह श्रमजीविया के वास्तविक सघप को वढावा द सकता हे यह है कि वह वास्तविकता का शक्तिया के सवध का, वतमान अतविरोधो तथा विकास की प्रवत्तियो का सही चित्रण कर। जब यह हो जाता हे तो इस विज्ञान को व्यावहारिक कायकलाप पर लागू करके –और इसका अथ अलग व्यक्तिया का कायकलाप नही, वल्कि जनता का, वर्गों और सामाजिक समूहा का सघप है–कम के फला को उसके उद्देश्या के

आवश्यकताए पूरी हाती तथा हितसाधन होता है। **मूल्य मानक** दरअसल ऐस प्रमाप ह जिनसे वस्तुनिष्ठ जगत की परिघटनाओ और मनुष्यो के भौतिक तथा बौद्धिक कायकलाप क परिणामा के प्रति किसी व्यक्ति (सामाजिक समूह वग समाज) का सकारात्मक अथवा नकारात्मक रवया निर्धारित हाता है। मूल्य मानका स मनुष्या को सनान मामान्य रूप स रचनात्मक कायकलाप तथा उनक सामाजिक आचरण म निदेशन मिलता है।

अनुकूल बनाया जा सके। सर्वहारा वर्ग के संघर्ष से गहरा और अटूट संबंध समाजविज्ञान को तथा पूरे मार्क्सवादी दृष्टिकोण को वैज्ञानिक, क्रांतिकारी तथा आलोचनात्मक बना देता है, एक ऐसा विज्ञान, जिसकी निगाह भविष्य की ओर है। समाजविज्ञान में अतीत की व्याख्या वर्तमान का विश्लेषण तथा भविष्य का पूर्वानुमान करने का सामर्थ्य तभी होता है, जब वह समाज विकास के वस्तुनिष्ठ नियम का पता लगा लेता है। भविष्य के पूर्वानुमान से कदापि हमारा आशय भविष्य की ठोस घटनाएं नहीं, बल्कि केवल समाज विकास का सामान्य घटना प्रवाह है। मनुष्य जब किसी प्राकृतिक ऐतिहासिक नियम का पता लगा लेता है तो यह उसके बूते में नहीं कि उसको बदल या मिटा सके। लेकिन वह नये की जन्मपीडा को कम कर सकता है। समाजविज्ञान का बड़ा महत्व यही है।

जहां कोई सामाजिक सिद्धांत किसी भी तरीके से ऐसे विशेषाधिकृत सामाजिक समूहों या वर्गों के आत्मापकारी हितों से नाता जोड लेता है, जो समाज पर अपनी इच्छा लादने तथा सामाजिक प्रगति को धीमा करने पर उतारू है ताकि अपने विशेषाधिकारों को कायम रख सकें, जिनका स्रोत उनकी उत्पत्ति, धन तथा सत्ता है तो अनिवार्यतः वह ऐसा मत अपना लेता है, जिसके कारण यथार्थ के संबंध में वह कोई वस्तुनिष्ठ राय नहीं दे सकता और इससे अवश्य ही विकृतियां उत्पन्न होती है। ऐसी हालत में पार्टी दृष्टिकोण वैज्ञानिक भावना से टकराता है वस्तुनिष्ठ ज्ञान के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करता है और परिकल्पित बातों का प्रचार करता है। लुडविग कुगेलमन के नाम ११ जुलाई, १८६८ के अपने एक पत्र मे मार्क्स ने इस समस्या का निचोड इस तरह प्रस्तुत किया है "जब एक बार परस्पर संबंध समझ में आ जाता है तो विद्यमान स्थितियों के वास्तविक पतन से पहले ही उनकी स्थायी आवश्यकता में समस्त सैद्धांतिक आस्था का पतन हो जाता है। अतः यहां यह बात सर्वथा शासक वर्गों के हित मे है कि इस बेमतलब उलझन को सदा बनाये रखे।"

वस्तुनिष्ठता तथा वस्तुनिष्ठवाद में फर्क करना चाहिये। पूर्वोक्त का प्रयोग वैज्ञानिक ज्ञान का वर्णन करने के लिये किया जाता है तो अवरोक्त का प्रयोग सामाजिक जीवन का ज्ञान प्राप्त करने में सिद्धांतकार के 'निष्पक्ष" मनोभाव का वर्णन करने के लिये किया जाता है, ऐसे मनोभाव का जो सामाजिक रंगमंच के एक बजाहिर वस्तुनिष्ठ तथा निरपेक्ष दर्शक

का है। लेनिन ने वस्तुनिष्टवाद की कडी आलोचना की थी, जिसे वह पार्टी दृष्टिकोण का ही पोशीदा रूप मानते थे। पूजीवादी विचारको के लिए यह बात लाभदायक नही है कि वे खुलेआम अपना पक्षीय मत या पार्टी भावना व्यक्त करे और इस प्रकार अपनी सैद्धातिक स्थापनाओ तथा शासक वर्ग के आत्मापकारी हितो को सब की निगाहो के सामने ले आये। ऐसी स्थिति मे आत्मनिष्ठवादी रुख अपनाना, चाहे जान-बूझकर हो या बिना जाने बूझे, उनके लिये बहुत सुविधाजनक होता है।

इस तरह, सामाजिक परिघटनाओ तथा क्रियाओ के मौलिक तत्वो के वस्तुनिष्ठ ज्ञान का रास्ता जिस चीज से खुलता है वह किनारे से बैठे तमाशबीन का अकमण्य मनाभाव नही, बल्कि प्रगतिशील शक्तियो के पक्ष मे सामाजिक जीवन मे सक्रिय भाग लेना है। समाजविज्ञान मे पार्टी दृष्टिकोण को ठुकराने से नही बल्कि वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता तथा पार्टी दृष्टिकोण को मिला देने के प्रयास से ही विज्ञान इस योग्य होता है कि सामाजिक यथार्थ के सज्ञान तथा रूपातरण के कारगर उपकरण का काम दे सके।

पाठक यह पूछ सकते हैं कि आखिर लेखक उसे क्या यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि समाजविज्ञान को एक निश्चित मत अपनाना चाहिये, व्यवहार से सबधित होना चाहिये इत्यादि। यह क्या जरूरी है कि किसी सामाजिक सिद्धात का, समाजविज्ञान का सार बताने के साथ साथ इस बात पर जोर दिया जाये कि वह वैज्ञानिक भी है? आखिर विज्ञान शब्द अपने आप मे स्पष्ट है। उदाहरण के लिये भौतिकी की पाठयपुस्तकें विज्ञान की व्याख्या करने लगती है बिना यह कहे कि वह वैज्ञानिक है। क्वाटम यात्रिकी के लेखो मे यह तक नही दिया जाता कि उसी के समाधान एकमात्र वैज्ञानिक हैं। पहाडा सीधे सीधे रट लिया जाता है। लेकिन समाजविज्ञान की स्थापनाओ को क्यो सिद्ध करना चाहिये। निस्सदेह ये प्रश्न बहुत युक्तिसगत है तथा उनका उत्तर सामाजिक विज्ञानो के विशेष कार्यों से निकलता है, खासकर उन विज्ञानो के जिनका निकट सबध मनुष्य के सामाजिक तथा राजनीतिक कायकलाप से है। समाजविज्ञान मे बराबर विचारो का, हितो का टकराव होता रहता है, जिस कारण ज्ञान पर आधारित विश्वास केवल व्यक्तिगत महत्व की चीज नही रहती उसका बडा सामाजिक महत्व होता है। समाजविज्ञान की स्थापनाओ तथा निष्कर्षों के सही होने का दृढ विश्वास ही व्यक्ति के सामाजिक दृष्टिकोण निर्धारित करता है। किसी समाजविज्ञान

का प्रभाव उसके समथका की सख्या पर निभर करता है और यदि अधिक सख्या म लोगा को इस सिद्धात का समथक बनाना है तो इसका वस्तुनिष्ठ वणन करके तथा अय धारणाग्रा स इसकी तुलना करके उह इसके सही होन का विश्वास दिलाना आवश्यक है। एक सिद्धात के समथन म यदि निर्णायक नही तो एक महत्वपूण तक यह निश्चित करना है कि उससे किन उद्देश्या की पूति होती है, किनके हिता से उसका सबध है, किन मूल्य-मानका द्वारा वह निदेशित होता है।

सामाजिक विकास के मार्क्सवादी सिद्धात के इन सभी प्रश्नो का स्पष्ट और निश्चित उत्तर दिया गया है। इससे नये, समाजवादी समाज के निर्माण का उद्देश्य पूरा होता है, इसका सबध मजदूर वग तथा सारी श्रमजीवी तथा शोषित जनता के हिता से है, और इसका निदेशन मानववाद के मूल्य-मानको द्वारा होता है, अर्थात परिणामत इसका सबध मानवजाति के हिता से है। मनुष्य का गुण उसके कायकलाप मे, उसके श्रम म प्रदशित होता है। मार्क्सवादी सिद्धात का मानववादी उद्देश्य अमानवीय श्रम स्थितिया को दूर करना, मनुष्य के गुण वियोजन को वस म लाना, श्रम को उमुक्त करना तथा श्रमजीवी जनता के लिये सुख समृद्धि लाना है। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केद्रीय कमिटी के महासचिव ले० इ० ब्रेज्नेव के मन मे इसी सिद्धात की बात थी, जब उन्होने सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४वी काग्रेस के मच से कहा "सारे ससार मे समाजवाद के उद्देश्य की पूण विजय अवश्यम्भावी है। और हम इस विजय के लिये, मेहनतकशा के सुख-समृद्धि के लिये सघष मे कुछ भी उठा नही रखेगे।"

सामाजिक अनुसधान की दार्शनिक आवश्यकताए

हम सिद्ध कर चुके ह कि समाज के सच्चे वैज्ञानिक तथा सवतामुखी सन्धान म अवश्य ही एक सामान्य सामाजिक सिद्धात शामिल होता है। परन्तु इस बात का खतरा हमेशा बना रहता है कि ऐसा सिद्धात कही बदलकर एक इतिहासेतर मूलमत्र का रूप न धारण कर ले, जिस ठोस ऐतिहासिक यथार्थता पर थोपा जाता है और जिसके परिणामस्वरूप परिकल्पित धारणाओ की रचना होती है जो हो सकता है कि तर्कसगत तथा आकर्षक लगे लेकिन जिनका कोई लगाव इतिहास की वास्तविक धारा से नही होता।

इसी लिए समाज के मार्क्सवादी सिद्धात की व्याख्या करते हुए प्रारभ म ही इस बात पर जोर देना आवश्यक है कि वह मुख्यत इतिहास के अध्ययन म पथ प्रदर्शक है पर इतिहास के मार्ग निर्माण का साधन नही है। वह कोई छूमत्र नही है जिसम उसके रहस्यो के अध्ययन की जरूरत नही रह जाती हो। ऐतिहासिक भौतिकवाद किसी एक या अन्य समय किसी एक या अन्य देश के इतिहास की ठोस धारा की व्याख्या करने का दावा नही करता। वह समाज विकास के सामान्य नियमो का अध्ययन करता तथा केवल उन सामान्य निर्देशक उसूलो को प्रस्तुत करता है, जो ब्रिटेन म फ्रास से भिन्न रूप म, फ्रास म सयुक्त राज्य अमरीका म भिन्न रूप म, पूजीवादी देशो म समाजवादी देशो से भिन्न रूप म तथा औद्योगिक दशा म विकासमान देशो म भिन्न रूप म लागू होते ह क्योकि इन देशो म अथवा देश समूहो म ठोस स्थितिया तथा इतिहास का सारा मार्ग अपने आप म अलग होता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्सवाद की सम्पूर्ण धारणा का एक साघटिक अग है तथा उसके सामान्य दार्शनिक दृष्टिकोण से जुडा हुआ है। मगर इसमे दार्शनिक उसूलो को सामाजिक सिद्धात की शब्दावली मे प्रस्तुत किया जाता है, और वे किसी भी सामाजिक अनुसधान की आवश्यक शर्त होते है।

हम इन उसूलो की ओर ध्यान इसलिये आकृष्ट कर रहे है कि इन पर आधारित सामाजिक सिद्धात सामाजिक जीवन के अनुसधान के लिए वैज्ञानिक विधि का काम दे सकता है।

समाज के मार्क्सवादी सिद्धात का एक अत्यत महत्वपूर्ण उसूल जिसमे इसका सार व्यक्त होता है और जो उसे अतीत तथा वर्तमान की विभिन्न सामाजिक दार्शनिक धारणाओ से अलग करता है, **भौतिकवाद का उसूल**, सामाजिक जीवन का भौतिकवादी दृष्टिकोण है।

इतिहास के अवलोकन मे भौतिकवाद का अर्थ यह स्वीकार करना है कि समाज का भौतिक जीवन, सर्वप्रथम भौतिक उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक जीवन का मात्र एक और आवश्यक तत्व ही नही बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक परिघटनाओ की परस्पर क्रिया का भौतिक आधार है, जिससे अतत बौद्धिक तथा सामाजिक जीवन के अन्य सभी रूप निश्चित होते है।

इतिहास मे भौतिकवाद के विचार के सबध मे विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते है। एक दल इसे स्वाभाविक मानता है, दूसरे का कहना है कि यह एक आदिम विचार है, जिससे विज्ञान को कोई सहायता नही मिलती। एक तीसरा दल यह मानता है कि भौतिकवाद सभी सामाजिक सिद्धातो मे वर्तमान है और एक चौथा दल इसको पूरी तरह अस्वीकार करता है। लेनिन ने कहा कि समाजशास्त्र मे भौतिकवाद का विचार मानवचिन्तन की एक महान उपलब्धि है।

ठीक जिस प्रकार प्राकृतिक परिघटनाओ की सीधी-सादी पौराणिक तथा धार्मिक व्याख्याओ की अस्वीकृति तथा इन परिघटनाओ के अध्ययन की ओर सक्रमण से प्राकृतिक विज्ञान की युक्तियुक्त रूप से आवश्यक जमीन तयार हुई, उसी प्रकार मानवीय तथा अतिमानवीय चेतना की बुनियाद पर इतिहास की व्याख्या करने के प्रयत्नो का त्याग तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण मे सक्रमण समाज के भीतर की प्रक्रियाओ के वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक बोध

की आवश्यक शत तथा आधार है। परतु यहा भौतिकवाद की अभिव्यक्ति ठोस शब्दा म होनी चाहिये तथा उसको धारणाओ की एक ऐसी प्रणाली म प्रस्तुत करना चाहिये जिससे उसकी सिद्धि हो सके।

आखिर इसम हजारा बरस का समय लग गया था कि उन धारणाओ की रचना की जाय, जिनसे यान्त्रिक गति का वैज्ञानिक वणन मिल सक तथा उसके नियमो का पता लगाया जाये। किन्तु गतिविज्ञान मे भौतिक कणा की गति का स्थान मे वस्तुओ के सचालन का अध्ययन किया जाता है, अर्थात उसम मनुष्या को नात उन सभी गतिया का अध्ययन किया जाता है जिनसे उन्हे आये दिन काम पडता था और जो सबसे सरल तथा सबसे प्राथमिक प्रकार की है। क्लासिकी यान्त्रिकी विज्ञान, जिसका निमाण गलिलिओ गालिलेो न्यूटन, लाग्राज तथा अन्य प्रतिभाशाली वैज्ञानिका की कृतियो म किया गया था, कुछ जानी मानी धारणाओ पर आधारित है, जसे वेग, त्वरण, द्रव्यमान, सवेग, शक्ति आदि। उनके सबधा द्वारा विज्ञान प्रकृति के नियमा को अभिव्यक्त करता है, जिनका ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य प्रकृति की शक्तियो से व्यवहार रूप मे काम ले सकता है। यही बात ऐतिहासिक भौतिकवाद की धारणाओ पर भी लागू होती है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद की अपनी धारणाए ह, जिन्ह **प्रवग** कहते ह।

प्रवग किसी विज्ञान की मौलिक धारणाए होती ह, जो उसके विषय क अलग अलग बुनियादी पहलुओ को प्रतिबिंबित करत ह। समाज की ही बात नही, विज्ञान के किसी भी विषय द्वारा उसके विभिन्न पक्षा, विभिन्न सबधा तथा अतरागमना की एकता अगीभूत हाती है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि किसी एक धारणा द्वारा मन म विचाराधीन वस्तु की प्रत्युत्पत्ति उसके समस्त पक्षा तथा सबधा की सपूण विविधता समेत नही की जा सकती। धारणाओ की एक सहति द्वारा ही, जिनम स प्रत्येक स अलग अलग उस वस्तु का एकागी, अथवा अमूत ज्ञान प्राप्त होता है, यह सभव हो सकता है कि मन म यथाथ का प्रत्युत्पत्ति उसकी समस्त विविधता, उसकी गति तथा विकास समेत की जा सके। प्रवर्गों का निर्माण वस्तु क विश्लेषण, उसक विभाजन द्वारा किया जाता है, तथा व उसक सज्ञान की अवस्थाओ क परिचय चिह्नो का काम दत ह। उनका निर्माण मनमाने ढग से नही किया जाता, बल्कि व मन म किसी निश्चित वस्तु क निश्चित पक्षा, विशेष गुणा तथा सबधा का प्रतिबिंब हात ह।

नान के ऐतिहासिक विकास म प्रवर्गा की रचना की जरूरत इस बात स निश्चित होती है कि किसी वस्तु का समुचित सबोध प्राप्त करना तब तक असभव है जब तक उसका विभाजन न किया जाये तथा उसके अलग अलग पक्षा का प्रवर्गों के रूप म सहत न किया जाय। परतु यह मामल का एक ही पहलू ह।

इसक सिवा, प्रवर्गा की रचना का जरूरत वस्तुनिष्ठ जगत के नियमा क सनान म उनकी भूमिका से पैदा होती है। सनान का काय चिन्तन म किसी वस्तु की प्रत्युत्पत्ति मात्र नही, बल्कि उसके अतनिहित नियमा का तथा बुनियादी सबधा और रिश्ता का पता लगाना है। मगर किसी वस्तु का मूलतत्व तथा उसके नियम परिघटनाग्रा की ऊपरी सतह पर नही दिखाई देत। वे छिप रहते ह तथा सवदना की पहुच के बाहर हात ह। इसी लिय आवश्यक हाता है कि प्रतीति स आगे बढकर मूलतत्व तक पहुचा जाय, जरूरी हाता ह कि वस्तु के मूलतत्व की गहराइया तक सद्धातिक रूप से उतरा जाये तथा सनान जिस अवस्था तक पहुच चुका है, उसके तदनुरूपी प्रवर्गों म उसका सहत किया जाये। वस्तुनिष्ठ नियमा द्वारा मूलतत्वा का सबध व्यक्त होता है। चिन्तन म वे विज्ञान के नियमा के रूप म प्रतिबिबित हात ह, जिनकी अभिव्यक्ति प्रवर्गा के सबध द्वारा होती है। फलस्वरूप, प्रवर्गों की रचना विज्ञान के नियमा की रचना की एक स्वाभाविक आवश्यक शत है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद का मत है कि उसकी विषय वस्तु को भी वज्ञानिक प्रवर्गों म प्रतिबिबित हाना चाहिये और यह कि एक भौतिक वस्तु की तरह समाज म भी वस्तुनिष्ठ नियम विद्यमान तथा क्रियाशील होते ह। इस अथ मे समाज अन्य भातिक वस्तुआ स किसी प्रकार भिन्न नही है। फिर भी यह अनुसधान की एक विचित्र वस्तु है। प्राकृतिक विज्ञानो के प्रवग, जिनकी रचना प्राकृतिक परिघटनाग्रा के विश्लेपण के आधार पर हुई ह, तथा अतिसामान्य दाशनिक धारणाए सामाजिक जीवन की विशिष्टताओ को प्रतिबिबित तथा व्यक्त नही करती। यही कारण है कि सामाजिक जीवन के सनान मे ऐतिहासिक भातिकवाद स्वय अपने प्रवर्गों की रचना करता है, जिस प्रक्रिया के दौरान म वह सभी सामाजिक विज्ञाना की उपलब्धियो को काम म लाता है।

ऐतिहासिक भौतिकवाद मे अनुसधान का विषय प्रवर्गो की बनावट को भी निश्चित करता है। उनमे मौलिक, प्रधान व होते है, जो या तो सामाजिक जीवन के बुनियादी पहलुओ को प्रतिबिबित करते है, जो ऐतिहासिक विकास की सभी अवस्थाओ मे समान होते है (जैसे सामाजिक अस्तित्व, सामाजिक चेतना, उत्पादन प्रणाली, बुनियाद, ऊपरी ढाचा, आदि), या समाज के विकास की प्रत्येक अवस्था मे इसकी अतर्निहित एकता को व्यक्त करते है (जैसे सामाजिक आर्थिक सरचना, आदिम व्यवस्था, पूजीवाद, कम्युनिस्ट सरचना)। ऐतिहासिक भौतिकवाद मे कुछ प्रवर्ग सामाजिक जीवन के अलग अलग पहलुओ को प्रतिबिबित करते है, जिनका औचित्य कुछ ही व्यवस्थाओ मे होता है, परतु जो उनके विकास का बोध करने के लिए आवश्यक होते है (जैसे वर्ग, राज्य, राजनीति, युद्ध, आदि)।

समाज परस्पर सबद्ध वृत्तातो, घटनाओ तथा प्रक्रियाओ का एक पेचीदा जाल सा दिखाई देता है। लेनिन ने लिखा है "प्रवर्ग विश्व को पहचानने अर्थात उसका सज्ञान प्राप्त करने की मजिले है, जाल के केद्रबिंदु, जिनसे उसका सज्ञान प्राप्त करने तथा उसपर हावी होने मे सहायता मिलती है।"* ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रवर्ग सामाजिक जीवन के विश्लेषण तथा इसके मूलतत्व की गहराइयो तक पहुचने का नतीजा है, अत वे सज्ञान का निश्चित परिणाम है। इसके साथ ही वे ज्ञात से अज्ञात तक सज्ञान की प्रगति के आधार, सामाजिक जीवन की वास्तविक विविधता को अतग्रहण करने के माध्यम, सामाजिक परिघटनाओ के पेचीदा जाल को काबू मे लाने के माध्यम की भूमिका अदा करते है। दूसरे शब्दो मे प्रवर्ग सज्ञान का परिणाम तथा साधन दोनो है।

अत मे, ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रवर्गो को ठीक से समझ पाने के लिये यह बात ध्यान मे रखना जरूरी है कि अन्य सामाजिक विज्ञानो के विपरीत ऐतिहासिक भौतिकवाद एक दार्शनिक तथा विधि सबधी विज्ञान है, अर्थात ऐसा विज्ञान, जो सामाजिक जीवन के अलग अलग पक्षो और प्रक्रियाओ का नही, बल्कि समाज, सामाजिक जीवन का, एक समुचित प्रक्रिया के रूप मे, अध्ययन करता है, उसके सभी पहलुओ का उनके परस्पर सबधो तथा परस्पर क्रियाओ समेत आकलन करता है, जिस कारण

---

*व्ला० इ० लेनिन, हेगेल की पुस्तक 'तर्क विज्ञान' का साराश।

यह समाज सज्ञान का एक सामान्य सिद्धात तथा विधि है। परिणामस्वरूप, ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रवग सामाजिक जीवन के सज्ञान म तथा मनुष्या के व्यावहारिक कायकलाप मे विधिगत महत्व रखते है। परतु इसका अथ यह नही है कि ये स्वय सद्धातिक निष्कर्षो तथा व्यावहारिक निणया का आधार वन सकते हैं।

ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रवग तथा उनकी सहायता से अभिव्यक्त नियम यथाथ को समुचित रूप से तथा उसके अलग अलग पक्षो का सज्ञान प्राप्त करने मे निर्देशक रेखा का काम देते है। इसलिये सही सैद्धातिक निष्कष, जो व्यवहार मे निदेशन कर सक, स्वय इन प्रवर्गो से नही, बल्कि ठोस स्थिति के अध्ययन से प्राप्त होते ह, जिसका विश्लेषण ऐतिहासिक भौतिकवाद की विधि, उसके प्रवर्गो तथा नियमा की सहायता से किया जाता है। इसी लिये आगे चलकर ऐतिहासिक भौतिकवाद की अपनी व्याख्या मे हमने प्रवर्गों के वस्तुनिष्ठ सार के दृष्टिकोण से और सामाजिक जीवन का सज्ञान प्राप्त और रूपातरण करन, विज्ञानो के नियमा को सूत्रबद्ध करने तथा उनका अध्ययन करने, इतिहास की प्रक्रिया की एकता और विविधता तथा उसके परस्पर सवधा और सश्लेष का बोध करने की विधि सबधी महत्व के दृष्टिकोण स इस विज्ञान के मौलिक विशेषताओ का वणन करने का प्रयत्न किया है।

भौतिकवाद के सामान्य विचार को सामाजिक सिद्धात की शब्दावली म अनुदित करने मे सामाजिक अस्तित्व तथा सामाजिक चेतना के बुनियादी प्रवर्गो का प्रयोग किया गया है। इन धारणाओ को "अस्तित्व" तथा "चेतना" के सामान्य दाशनिक धारणाओ से मिलाकर समानाथ नही समझना चाहिए। **सामाजिक अस्तित्व**–समाज का भौतिक जीवन–एक विशेष सामाजिक प्रवग है। सामाजिक अस्तित्व को प्राकृतिक अस्तित्व से भिन्न रूप म प्रस्तुत करने म मार्क्स का विचार यह था कि समाज गुणात्मक दृष्टि से एक विशेष वस्तु है, जिसे भौतिक, जविकीय या बौद्धिक धरातल तक सीमित नही किया जा सकता। यद्यपि समाज का अस्तित्व प्रकृति के भीतर है तथा उसे उससे अलग नही किया जा सकता, यद्यपि जीवित मनुष्य एक जविकीय व्यवस्था है, फिर भी न ता भौतिक और न जविकीय जगत के नियम, जिनसे न तो मनुष्य और न समाज ही उन्मुक्त है, समाज के विशिष्ट स्वरूप को प्रतिबिंबित करते है और इस कारण उसकी व्याख्या का

साधन नही बन सकते। सामाजिक अस्तित्व का तथा उसके आधार पर सपूर्ण सामाजिक जीवन का बोध करने के लिये, उसके अपने नियमो का ज्ञान जरूरी है।

समस्त भौतिक परिघटनाओ तथा प्रक्रियाओ मे विशेष वस्तुनिष्ठ नियम विद्यमान है और काम करते है। सामाजिक अस्तित्व का सपूर्ण सामाजिक जीवन के भौतिक आधार के रूप मे प्रस्तुत करने से इसके नियमो के सज्ञान का रास्ता खुल जाता है अर्थात उन नियमो के सज्ञान का, जो इतिहास मे काम करते है। इससे भी सामाजिक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करने के लिये भौतिकवाद का महत्व प्रकट होता है।

सामाजिक चेतना अर्थात विभिन्न विचार, दृष्टिकोण, सिद्धात, धारणाए, सामाजिक भावनाए इत्यादि, जिनकी सहायता से मनुष्य, सामाजिक समूह तथा समाज परिवर्ती जगत का बौद्धिक रूप से अतग्रहण करते है, स्वय अपने अस्तित्व का बोध प्राप्त करते है, अपने समक्ष समस्याओ का समाधान करते है समाज के भौतिक जीवन से, सामाजिक सबधो तथा मनुष्य के कायकलाप की विविधता से उत्पन्न होती है। चेतना सामाजिक जीवन का एक आवश्यक पक्ष है क्योकि यह जीवन अपनी सारी अभिव्यक्तियो मे मनुष्यो के कायकलाप का नतीजा है, जो चेतन प्राणी है। सामाजिक चेतना के विकास का स्वरूप, स्तर तथा प्रवृत्तिया अतत सामाजिक अस्तित्व से निर्धारित होती है, यद्यपि जसा कि हम आगे चलकर देखेगे उनकी वास्तविक परस्पर क्रिया बहुत ही पेचीदा तथा विविधतापूर्ण है।

अत सामाजिक अस्तित्व तथा सामाजिक चेतना के प्रवर्गो मे वह प्रश्न हल किया जाता है, **जो प्रत्येक दार्शनिक सामाजिक सिद्धात का मूल प्रश्न है, अर्थात यह प्रश्न कि भौतिक अथवा बौद्धिक मे से किसको सामाजिक जीवन का प्राथमिक, प्रधान, निश्चयात्मक तत्व माना जाये।** भौतिकवादी दृष्टिकोण यह है कि सामाजिक अस्तित्व को सामाजिक चेतना से पहले का मानना चाहिये। यही इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण का आधार है। इसीलिये ये प्रवर्ग ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रवर्गो की सपूर्ण व्यवस्था के लिये निर्णायक, बुनियादी महत्व रखते है।

परतु सामाजिक जीवन का विश्लेषण करने मे भौतिकवादी सिद्धात कितना ही महत्वपूर्ण क्यो न हो, इसे सुसगत रूप से तब तक लागू नही किया जा सकता जब तक यह न तय कर लिया जाये कि विचाराधीन वस्तु

परिवतनशील है या नही, तथा इसको किस प्रकार की–निश्चल या परिवतनशील–धारणाग्रा द्वारा प्रतिविंबित किया जाये। हमारे इस गतिशील युग म, जब एक पीढी के जीवनकाल मे समाज म भारी परिवतन हो जात ह, इस प्रश्न का उत्तर स्वत स्पष्ट जान पडता है। इसमे कोई सदेह नही कि समाज का विकास होता है ग्रौर उसको लचक्दार, परिवतनशील धारणाग्रो द्वारा ही प्रतिविंबित करना चाहिये। लेकिन पिछले समय मे ग्रौर ग्राज भी बहुतर समाजशास्त्रिया, इतिहासकारा की काशिश हाती है कि साचो से काम लेकर उन धारणाग्रो को लागू करके, जिनकी रचना उन्हाने की है ग्रौर जो उन्हे बहुत पसद ह, समाज के ग्रदर होनेवाली घटनाग्रा का बाध प्राप्त करे। वे "समाज", "मानव स्वभाव", "व्यक्ति", "स्वतत्रता" जैसी धारणाग्रो का प्रयोग यह समझकर करते ह मानो उनका मूलतत्व प्रत्यक युग म एक समान रहता ह। उन्ह ग्रादिम समाज मे ही "पूजी', "ग्रतिरिक्त मूल्य" तथा इसी प्रकार की ग्रन्य परिघटनाए दिखाई दन लगती ह। वे ग्रतीत ग्रौर वतमान के विभिन्न समाजो का मूल्याकन इस दष्टिकोण से करते ह कि किस हद तक वे ग्रमूत ग्रादर्शों की कसौटी पर पूरे उतरते हैं। वे समाज की घटनाग्रा पर उपदेश देने लगते ह, इन घटनाग्रो का नतिक उपवर्गो द्वारा इतिहास के प्रसग से ग्रलग करके जाचने का प्रयास करते ह। इन सब बाता के कारण वे समाज म हानेवाले परिवतनो के वास्तविक स्वरूप को समझने म ग्रसमथ रहते ह। वे उनका वस्तुनिष्ठ ग्रध्ययन कर ही नही सकते। इसके विपरीत ऐतिहासिक भौतिकवाद का दाशनिक ग्राधार यह विचार है कि समाज के भीतर होनेवाले परिवतन नियमबद्ध हैं ग्रौर समाज विकासमान गति की ग्रवस्था म है। ग्रत वह वज्ञानिक धारणाग्रा से काम लेने का ऐसा तरीका निकालने की चेष्टा करता है, जिससे समाज के भीतर होनेवाले परिवतना का उनकी समस्त विविधता समेत, उनके विभिन्न परस्पर सबधा समेत, ग्रतीत मे ग्रौर भविष्य म, उनकी प्रवत्तिया तथा ग्रतविरोधा समेत समझना सभव हो सके। सामाजिक जीवन तथा इसे ग्रभिव्यक्त करनेवाले प्रवर्गो के प्रति ऐसा दष्टिकोण द्वद्वात्मक कहा जाता ह।

समस्त सामाजिक परिघटनाग्रो के समान, समाज के ग्रध्ययन के प्रति द्वद्वात्मक दष्टिकोण सामाजिक ग्रनुसधान की सबसे महत्वपूण दाशनिक ग्राधार-स्थापना है क्याकि उसस शाधकर्त्ता का यह दायित्व हो जाता है कि वह

समाज का द्वद्वा के माध्यम से विकास की स्थिति मे देखे और यह निश्चित करे कि अमुक सामाजिक परिघटना का आविर्भाव क्योकर हुआ, उसका विकास किन मजिलो से गुजरकर हुआ है, वर्तमान समय मे वह क्या हो गई है और इसके भीतर भविष्य के कौन से बीज दबे पडे है। फलस्वरूप सामाजिक अनुसधान मे द्वद्ववाद प्रधानत समाज तथा सामाजिक परिघटनाओ के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण का रूप धारण करता है, जिसे सक्षेप मे ऐतिहासिक सिद्धात कहते है।

चूकि समाज तथा इसके अग प्रत्येक क्षण मे एक बिलकुल निश्चित वस्तु के रूप मे दिखाई देते है इसलिये उनको प्रतिबिंबित करनेवाली धारणाओ को भी बिलकुल निश्चित तथा स्थिर होना चाहिये। परतु चूकि समाज तथा समस्त यथार्थ जिसका ज्ञान हम करना चाहते है, अनवरत प्रगति तथा परिवर्तन की स्थिति मे है, इसलिये उन्हे प्रतिबिंबित करनेवाली धारणाओ को उनके बारे मे हमारे ज्ञान को भी बदलना चाहिये। परिणामस्वरूप सज्ञान की सामाजिक धारणाओ के प्रयोग की द्वद्वात्मकता मे सापेक्षता की धारणा शामिल है। वह यह मानकर चलती है कि वैज्ञानिक धारणाए सापेक्ष तथा परिवर्तनशील है। लेकिन इसको खीच-तानकर यदि सापेक्षवाद की सतह पर पहुचा दिया जाये तो यह सरासर गलत होगा। क्योकि जैसा कि लेनिन ने कहा है द्वद्वात्मकवाद मानव ज्ञान की सापेक्षता को स्वीकार करता है 'वस्तुनिष्ठ सत्य से इनकार करने के अर्थ मे नही, बल्कि इस अर्थ मे कि हमारे ज्ञान के लिये इस सत्य के निकट पहुचने की सीमाए ऐतिहासिक तौर पर निश्चित होती है।"* दूसरे शब्दो मे वैज्ञानिक ज्ञान के भीतर वस्तुनिष्ठ सत्य विद्यमान है जिसकी अभिव्यक्ति सज्ञान मे सब एक बार नही पूरी तरह और सपूर्ण रूप मे नही, बल्कि सापेक्ष तथा आशिक सत्यो के रूप मे होती है। ज्ञान की प्रगति सापेक्ष सत्यो से परम सत्य की ओर होती है। इसके विपरीत, सापेक्षवाद मानव ज्ञान के सापेक्ष स्वरूप से अधिक कुछ भी स्वीकार नही करता जो परिवर्तन की अतिशयोक्ति है, परिवर्तन को परम मान लेना है और वह यह स्वीकार करता है कि दुनिया मे हर चीज सिर्फ सापेक्ष है जो अतत आत्मनिष्ठ भाववाद मे परिणत हो जाती है। यह इस बात को नहीं मानता कि अलग

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'भौतिकवाद और अनुभवसिद्धआलोचना'

अलग वैज्ञानिक सिद्धातो मे ही नही बल्कि आम तौर पर मानव ज्ञान मे भी कोई वस्तुनिष्ठ सत्य, वस्तुनिष्ठ सार है। ऐतिहासिक सज्ञान मे भी वह यह मानने से इनकार करता है कि विभिन्न घटनाओ का वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता तथा उचित मूल्याकन किया जा सकता है, समाज के किसी वस्तुनिष्ठ ज्ञान की सभावना को, सामाजिक विज्ञानो की धारणाओ मे किसी वस्तुपरक, स्थायी तत्व को मानने से इनकार करता है, इत्यादि। लेकिन वास्तव मे सामाजिक विज्ञानो मे जिन धारणाओ का प्रयोग किया जाये उन्हे द्वद्वात्मक रूप से एक ओर सुस्पष्ट, निश्चित और स्थायी तथा दूसरी ओर लचकदार, परिवर्तनशील और सापेक्ष भी होना चाहिये।

यह सहज ही देखा जा सकता है कि समाज के अध्ययन मे भौतिकवाद का सिद्धात तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण का द्वद्वात्मक सिद्धात, दोनो का उद्देश्य एक ही है और वह यह है कि विचाराधीन वस्तु दरअसल जैसी है वैसा ही उसका ज्ञान प्राप्त किया जाये। इसीमे दोनो की मौलिक एकता व्यक्त होती है।

समाज एक ऐसी व्यवस्था है, जिसका वस्तुनिष्ठ अस्तित्व है और विकास होता है। परतु इस व्याख्या के कारण समाज सज्ञान की एक विशेष वस्तु के रूप मे प्रकृति से अलग नही हो जाता, क्योकि दोनो ही सूरतो मे उन नियमो का अध्ययन किया जाता है, जो भौतिक व्यवस्थाओ की कृत्यकारिता और परिवर्तन को नियत्रित करते है।

लेकिन जैसा कि हमने पिछले अध्याय मे कहा था, समाज एक ऐसी वस्तु है, जो प्रकृति से बुनियादी तौर पर भिन्न है, क्योकि इसमे कर्त्ता भी शामिल है। इसी लिये समाजविज्ञान को समाज का अध्ययन सामाजिक सबधो की एक व्यवस्था के रूप मे ही नही, और मनुष्य का उस व्यवस्था के एक तत्व के रूप मे, सामाजिक सगठन के एक कण के रूप मे ही नही, बल्कि इन सबधो के कर्त्ता के रूप मे भी करना चाहिये, एक व्यक्ति के रूप मे, जिसमे कार्यकलाप की, रचनात्मक प्रयास की क्षमता है, जिसका अपना बौद्धिक जगत है, जो प्रेम भी करता है और घृणा भी। जो समाजविज्ञान अपने आपको कर्त्ता से अलग कर लेता है वह मानवतावादी मूल्यो से विमुख हो जाता है, उससे मनुष्य को दुख देने का काम भी लिया जा सकता है। मगर विज्ञान के लिये महत्वपूर्ण बात यह भी है कि उसे केवल मानवीय समस्याओ के अध्ययन की जरूरत को ही नही स्वीकार करना चाहिये,

वल्कि इस अध्ययन के सिद्धात तथा उसकी विधिया भी विकसित कर देनी चाहिये। इसस सवप्रथम यह सवाल पैदा होता है क्या समाजविज्ञान सिद्धातत इतिहासकर्त्ता के रूप म मनुष्य को, उसक कायकलाप का, उसके भीतरी बौद्धिक जगत का, उसके सुख और दुख का, उसकी आकाक्षाओ तथा भावावेगो को अपन अध्ययन के विषय के रूप म स्वीकार कर सकता है? क्या ये केवल कला और साहित्य का विषय नही ह? यह सही है कि समाजविज्ञान मनुष्य क भीतरी जगत का अध्ययन केवल भीतरी क रूप म नही करता, वल्कि वह उसका अध्ययन वाह्य पक्ष स, लोगो के कायकलापों म कर सकता है और उसे करना चाहिये। लेकिन कायकलाप के सिद्धात का एक अधिक सामान्य दार्शनिक अथ भी है। मनुष्य केवल एक विचारशील नही वल्कि क्रियाशील प्राणी है। कायकलाप के दौरान म ही सामाजिक मानव ससार को और अपने आपको भी वदलता है। मनुष्य की भौतिक शक्तिया उसके कायकलाप मे ही व्यक्त होती तथा भौतिक रूप धारण करती ह। मार्क्स ने कहा कि स्वय इतिहास मनुष्य के श्रम याने उसके अपन कायकलाप द्वारा मनुष्य की रचना है। कायकलाप के प्रसग स अलग न कोई इतिहास है, न समाज है, न स्वय मनुष्य है। सामाजिक जीवन का स्वरूप मूलत व्यावहारिक है। यही कारण है कि एक विषय के रूप म मनुष्य का विश्लेषण केवल उसके कायकलाप द्वारा ही किया जा सकता है। कायकलाप के सिद्धात को सामाजिक अनुसधान म एक मूल दार्शनिक स्थापना समझना चाहिये।

मार्क्सवाद मे कायकलाप के सिद्धात का भौतिकवाद तथा द्वद्ववाद से आगिक सवध ह। इसका अथ यह ह कि, पहले, स्वय कायकलाप की भौतिकवादी द्वद्वात्मक व्याख्या की जाती है, और दूसरे, कायकलाप का सिद्धात समाज के प्रति अकमण्य दष्टिकोण पर हावी होने मे सहायक होता है विज्ञान को केवल वस्तु के अध्ययन की ओर ही नही वल्कि कायकलाप के कर्त्ता का भी अध्ययन करने की ओर आकृष्ट करता है और उससे यथाथ का रूपातरण करन तथा कर्त्ता के सामाजिक कायकलाप को विकसित करने के साधन का काम लेता है।

कायकलाप मनुष्य की केवल स्वत स्फूत जीवनशक्ति की ही अभिव्यक्ति नही जसा कि उपयोगवादियो की धारणा ह वल्कि सामाजिक मानव तथा भौतिक जगत की जिसमे प्रकृति तथा समाज दोनो शामिल ह, भौतिक पारस्परिक क्रिया है। मानव अपने भौतिक कायकलाप के दौरान मे वस्तु

पर काम करता है और उस सदा पूर्वनिर्धारित उद्देश्य के अनुसार रूपान्तरित करता है। इसी लिए कार्यकलाप मनुष्य के उद्देश्यों, आकांक्षाओं तथा ज्ञान का और भौतिक वस्तु का संगम होता है, उसमें जो अन्तर्निहित है उस और भौतिक का संगम होता है। सामाजिक जीवन का कार्यकलाप उसका व्यवहार उसकी एकता का मूर्त रूप है। मनुष्य के प्रयास के अनुसार वस्तु का रूपान्तरण होता है, वह बदल जाता है, अर्थात उसके प्रयास उसकी आकांक्षाएं, उसका ज्ञान उसके कार्यकलाप तथा उसके परिणामों में मूर्तिमान होते तथा भौतिक रूप धारण करते हैं।

सामाजिक अनुसंधान के लिए कार्यकलाप के सिद्धान्त का एक और भी महत्त्व है और वह यह कि इसके समाज में चेतना तथा भौतिक तथा भावात्मक का प्रतिपादन का समाहार निर्धारित करते तथा उनके सापेक्ष स्वरूप का समन्वय के जरिए मिलता है। यह प्रतिस्थापना स्वाभाविक रूप से हो जाती है कि यह तय करना होता है कि कौन पहले हुआ, समाज में कौन प्राथमिक है और कौन द्वितीय। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इस सवाल का जवाब दिए बिना वास्तविक समाज सिद्धान्त संभव नहीं है, परन्तु इस सवाल की परिधि के बाहर भौतिक तथा भावात्मक का प्रतिवाद गायब है क्योंकि उसमें अटूट एकता है। यही कारण है कि कार्यकलाप, जो इस एकता का मूर्त रूप है, भूत तथा चेतना का प्रतिस्थापना का अवहेलन बना रहता है।

कार्यकलाप के सिद्धान्त पर विचार करते हुए कार्यकलाप तथा सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया की वस्तुनिष्ठ स्थितियों तथा नियमों के संबंध का तदनुसार करना बेहद अहम है। मार्क्सवाद के समाज सिद्धान्त में दो बजाहिर विरोधी स्थापनाएं मौजूद हैं, एक यह कि ऐतिहासिक प्रक्रिया मानव कार्यकलाप का फल है, और दूसरे जीवन तथा समाज का विकास वस्तुनिष्ठ नियमों द्वारा निर्धारित है, जो मनुष्य की इच्छा, चेतना तथा कार्यकलाप से स्वाधीन हैं। यदि इतिहास का निर्माण मनुष्य करते हैं, यदि उनका कार्यकलाप सजनात्मक है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता मालूम पड़ेगा कि मनुष्य इतिहास का निर्माण विभिन्न रूपों में कर सकते हैं कि वे उसे जिस दिशा में चाहें मोड़ सकते हैं। आखिर जर्मनी में फासिज्म की विजय क्या अनिवार्य थी? क्या घटनाओं को किसी और दिशा में मोड़ा नहीं जा सकता था? आखिर फ्रांस में युद्ध के पूर्व फासिज्म की स्थापना

नहा की जा सकी यद्यपि इसका प्रयास किया गया था। क्या चीन म माम्रो की 'सास्कृतिक क्राति" अनिवाय थी? उस देश म ऐसी शक्तिया मौज थी जा चीन को ऐसी अराजकता और मनमानेपन का शिकार हान से बचा सकती थी। इसका अथ यह है कि हर ठोस स्थिति मे घटनाए कोइ और रास्ता अपना सकती थी। सब कुछ मनुष्यो पर, उनके विचारा पर, उनकी आकाक्षाओ, कायकलाप तथा क्षमता पर निभर करता था। परतु घटनाओ ने जो माग अपनाया उसको स्वाभाविक तथा नियमबद्ध मान लिया जाय तो ऐसा लगेगा कि मनुष्या के कायकलाप तथा उनकी पहलकदमी का हिस्सा बहुत कम है। क्या इतिहास म वस्तुनिष्ठ नियमो को मानने का अथ कायकलाप के आत्मनिभर महत्व को अस्वीकार करना नही है? क्या कायकलाप के सिद्धात मे और इस मान्यता मे कि इतिहास का माग वस्तुनिष्ठ नियमो के अधीन है, कोई अनुकूलता है?

समाजविज्ञान का इतिहास बताता है कि यह एक ऐसा विराध है, जिसने अनेक महामानसो को उलझन मे डाल रखा था। वे सभी किसी न किसी एक पक्ष पर ज़ोर दिया करते थे। कुछ का विश्वास था कि इतिहास एक ऐसी लीक पर चल रहा है, जो अनिवाय है और जिससे बचना असभव है। लोगा का यह केवल भ्रम है कि वे जो कुछ कर रहे ह अपनी इच्छा से कर रहे है। वास्तव म वे वही कर रहे ह जिसपर कठोर आवश्यकता (अथवा भाग्य, या किसी सर्वोच्च शक्ति) ने उन्हे मजबूर कर दिया है। इसके खिलाफ, दूसरो का कहना था कि कायकलाप प्राथमिक है। व इतिहास के किसी नियम को नही मानते थे।

लेकिन सच्चाई कहा है? क्या ये दोना स्थापनाए वास्तव म एक दूसरे को काट देती ह या व एक दूसरे के अनुकूल है? पता यह लगा कि व सवथा अनुकूल ह और ऐसा होना आवश्यक है। न तो भाग्यवादी दृष्टिकाण, जो हर बात को अनिवाय मानता और मनुष्य को कठपुतला बना देता है, और न सकल्पवादी आत्मवादी दृष्टिकोण ही वह आवश्यक आधार मुहैया करता है, जिससे ऐतिहासिक यथाथ का ज्ञान प्राप्त किया जा सके। भाग्यवाद का परिणाम अनगलता के सिवा कुछ नहा हाता क्योकि वह आकस्मिक घटनाओ को ऐतिहासिक रूप से अनिवाय बना देता है। जहा तक सकल्पवाद का सबध है, जा इतिहास का मनुष्या के स्वतत्र सजनात्मक प्रयास का नतीजा, उनकी अपनी स्वतत्र इच्छा तथा मनपसद उद्देश्या की

पदावार मानता है, वह अनेक सवाला का जवाव देने म असमथ रहता है। उदाहरण के लिये वह इस बुनियादी तथ्य की व्याख्या कैसे करे कि इतिहास म अकसर मानव कायकलाप का नतीजा यह नही होता जो मनुष्य निश्चित करते है, वल्कि उसके विलकुल विपरीत होता है? लोग चाहते ह अच्छा काम करना, मगर अकसर बुरा काम कर जाते ह। इतिहास के एक वडे भाग पर यह पुरानी कहावत लागू हाती है कि नरक का माग शुभकामनाश्रा की इटे विछाकर तैयार हाता है। उद्देश्या तथा परिणामा के भेद से यही प्रकट होता है कि इतिहास मे ऐसी शक्तिया काम कर रही ह, जो आदमी के काबू म नही ह और अतिम रूप म उसके कायकलाप के परिणामा को निर्धारित करती ह। वस्तुगत नियम केवल उस वातावरण मे ही क्रियाशील नही है, जो समाज का वाह्य पक्ष है, वल्कि स्वय समाज म भी है। लेकिन मनुष्य के कायकलाप को यदि सामाजिक विकास के नियमा से इस तरह सबधित करना है कि वह अपने सजनात्मक स्वरूप से वचित नही होने पाये, तो द्वद्ववाद की आवश्यकता होती है, जो चितन की अतिभूत-वादी प्रणाली के एकागीपन को दूर कर देता है।

मनुष्यो की हर पीढी जब जीवन मे प्रवेश करती है तो उसे सामाजिक स्थितिया पहले से बनी वनायी मिलती है और उसे उनके आधार पर काम करना पडता, उन्ह प्रत्युत्पन्न करना या वदलना पडता है। [illegible] परिस्थितिया एक या दूसरे प्रकार के कायकलाप की निश्चित [illegible] प्रस्तुत करती ह और उन्ही पर इस कायकलाप के भौतिक तथा [illegible] साधन निभर करते है। विकास का जो स्तर पहले प्राप्त हो [illegible] कुछ सामाजिक समस्याए निहित होती ह, जिन्हे मनुष्य [illegible] और जिनको हल करना वे अपना उद्देश्य वनाते ह। [illegible] कायकलाप को उन वस्तुगत स्थितिया के प्रसग से, [illegible] है, अलग नही किया जा सकता। इन वस्तुगत [illegible] मनुष्य के कायकलाप के महत्व या उसकी स्वतत्रता [illegible] वल्कि इसके विपरीत उसे उसकी वेहतर [illegible] मिलती है। ऐतिहासिक युगो की शृखलावद्धता [illegible] प्रवत्तिया के हावी होने की साक्षी है, [illegible] गति को निर्धारित करते है और [illegible] की अभिव्यक्ति करते ह। वस्तुगत [illegible]

के बीच सबध ग इस प्रश्न के प्रति माम सद्वातिक दृष्टिकोण म निम्नलि
यान ह

पहले मानव कायकलाप का मार्ग उन घटनाओं के वस्तुगत
म आवश्यक तारतम्य के भीतर से होकर गुजरता है, जिनसे इतिहास
प्रक्रिया बनता है। मनुष्य वह सब कुछ बनाते ह, जिसकी जरूरत उन्हे
जीवन म होता है। वे श्रम के ओजारो को बेहतर बनाते, अपने निधा
उद्देश्यो को पूरा करते, अपनी जीवन स्थिति को सुधारने के लिये सघप क
ह, इत्यादि और इस प्रकार स्वय अपने सामाजिक जीवन का निमाण क
ह। सामाजिक जीवन वह कायकलाप है, जो सदा जारी रहता ह। मनु
के व्यावहारिक कायकलाप के बाहर सामाजिक विकास के किसी नियम
सवाल ही नही हो सकता। परतु इतिहास की द्वद्वात्मकता ऐसी है कि मन
परिस्थितियो को स्वय परिस्थितियो के दबाव से परिवर्तित करते ह औ
यह कि सामाजिक विकास के नियम जो केवल मनुष्यो के व्यावहारि
कायकलाप द्वारा व्यक्त होते ह, इस कायकलाप के सार तथा उसके मा
को निर्धारित करते ह। सारे ससार म समाजवाद की विजय अवश्यभाव
है। यह बात आधुनिक युग म सामाजिक विकास के नियमो के सचलन द्
निधारित होती है। परतु यह विजय प्राप्त हो सकती है केवल करोडो
इनमानो के व्यावहारिक कायकलाप द्वारा, केवल उन्नत सामाजिक शक्तियो
के निस्स्वार्थ सघप द्वारा जिसके दौरान म वे पुराने समाज के अनुयाइयो
के प्रतिरोध पर काबू पाते ह।

दूसरे इन नियमो द्वारा ऐतिहासिक प्रक्रिया की केवल आम रूपरेखा
ही निर्धारित होती है। प्रत्यक समय मे इस प्रक्रिया का तफ्सीली "साचा',
विकास के रूप तथा उसकी रफ्तार अधिक ठोस कारणो से निर्धारित होते
ह, जिनमे मनुष्यो की सजनात्मक पहलकदमी भी है। समाज का विकास
वस्तुगत नियमो के अनुसार होता है, और अपने कायकलाप म मनुष्यो को
निश्चित भौतिक परिस्थितियो के भीतर ही सीमित रहना पडता है। परतु
वस्तुगत आवश्यकता की परिधि के भीतर—और यह परिधि काफी व्यापक
होती है—मनुष्य को आजादी है कि चाहे तो भिन्न भिन्न फसले करे, अपने
अपने हितो, वस्तुगत स्थिति की अपनी अपनी समझ अपने कायकलाप की
ठोस परिस्थितियो, आदि के अनुसार अनगिनत ढग म पहलकदमी से काम
ले। मनुष्य के काम को यात्रिक नियतिवाद की दृष्टि से देखना सही नही

क्याकि मनुष्य कोई यान्त्रिक अणु नही ह और उसके काम किसी यान्त्रिक गति के समान नही, जिसे किसी बाह्य कारण से प्रेरणा मिलती हा। आखिर हर राष्ट्र का अपना अलग इतिहास हाता है, यद्यपि जिन देशा म समान सामाजिक आर्थिक व्यवस्थाए हैं, वहा समान नियम लागू हाते ह। इसी लिये यह खयाल कि सामाजिक विकास के वस्तुगत नियमा को मानने तथा समाज म मानव कार्यकलाप के सजनात्मक स्वरूप को मानने म विरोधाभास है, गलत ह। यह कार्यकलाप सामाजिक विकास की असल शक्ति और इतिहास का, सही मान म तथा इस शब्द की सारी विविधता समेत, स्रष्टा है।

फलस्वरूप, मनुष्य अपना इतिहास आप बनाते हैं मगर मनमाने ढग से नही। वे उसकी रचना वस्तुगत स्थितियो और सामाजिक नियमा के अनुसार करत ह, जिनके अस्तित्व से इनकार नही किया जा सकता, परतु जो दवापत्ति की भाति नही है, क्याकि व कार्यकलाप म, विभिन्न सामाजिक शक्तिया की मुठभेड म व्यक्त होते ह और किसी भी अर्थ म इतिहास का ठास माग निदिष्ट नही करते।

इस बात पर लेनिन ने बहुत जोर दिया था। उन्हाने लिखा "मार्क्सवाद अन्य सभी समाजवादी सिद्धाता से इस माने मे भिन ह कि उसन वस्तुगत परिस्थिति तथा विकास के वस्तुगत माग के विश्लेषण मे पूर्णत वैज्ञानिक रुख को जनता क–और निस्सदेह व्यक्तियो, समूहो, सगठना तथा पार्टियो के भी, जो किसी एक या अन्य वग से सबध खाज निकालना और स्थापित करना जानते ह–क्रातिकारी ओज, क्रातिकारी सजनात्मक प्रतिभा तथा क्रातिकारी पहलकदमी के महत्व की अत्यत दढ मान्यता के साथ शानदार रूप से सयोजित किया है।"*

यथार्थ के प्रति विवेकसगत, वास्तववादी दृष्टिकाण के विरुद्ध है वामपक्षी जोखिमबाजी प्रयोजनवाद, जनता की सजनात्मक पहलकदमी, उदार आकाक्षाओ तथा क्रातिकारी ओज की भूमिका की मान्यता के विरुद्ध है वतमान स्थितिया से अवसरवादी अनुकूलन।

इतिहास के प्रति द्वद्वात्मक भौतिकवादी दृष्टिकाण विवेकसगत यथार्थवाद तथा क्रातिकारी उद्देश्यपूर्णता का सयोजन है।

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'बहिष्कार के विराध म (एक सामाजिक-जनवादी लोकलेखक की टीपा से)'

इस दृष्टिकोण का तकाज़ा एक ओर यह है कि सिद्धात को निरतर विकसित किया जाय ताकि बदलती हुई ऐतिहासिक स्थिति से उसका तालमेल कायम रहे, और दूसरी ओर, मार्क्सवाद के सभी दुश्मनो के खिलाफ, जो इतिहास के हर नये टेढे-मेढे मोड का, सज्ञान की प्रगति मे हर कठिनाई का सामाजिक विकास के वज्ञानिक सिद्धात पर नित्य नये हमले करने के लिये इस्तेमाल करते हैं, निर्मम सघर्ष किया जाये। इतिहास के प्रति यही दृष्टिकोण सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी ने हमेशा अपनाया है, क्योंकि उसने केवल यही नही कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी विज्ञान से अपना मार्ग प्रज्जवलित किया वरन् उसको विकसित करने के लिए भी यथासभव पूरा प्रयत्न कर रही है। ले० इ० ब्रेज्नेव ने सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४वी काग्रेस को सबोधित करते हुए कहा "पूजीवाद तथा समाजवाद की शक्तियो के बीच विश्वव्यापी पैमाने पर सघर्ष तथा रग बिरगे सशोधनवादियो द्वारा क्रातिकारी सिद्धात को निर्जीव बनाने और समाजवादी तथा कम्युनिस्ट निर्माण की कार्यप्रणाली को विकृत करने के प्रयत्नो का तकाज़ा है कि हम सिद्धात की समस्याओ तथा उसके सृजनात्मक विकास की ओर एकाग्रता के साथ ध्यान दे।"

सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक-आर्थिक सरचना एक सामाजिक व्यवस्था के रूप मे

काई भी समाज हो आदमियो से मिलकर बनता है, इसलिय देखन म यह स्वाभाविक मालूम हागा कि इसका अध्ययन व्यक्ति स शुरू किया जावे। परतु इससे कुछ अधिक फायदा नहीं हागा क्याकि हम मनुष्य के बारे म काद काम की बात समाज स उसके सबधा क प्रसग के बाहर इसलिय नही कह सकत कि खुद उसको भी समाज ही बनाता-सवारता है। फिर इमस भी बडी बात यह है कि समाज व्यक्तियो का सीधा-सादा समूह नही बल्कि एक पचीदा गतिशील व्यवस्था है। आदमी जन्म लेत, जीवन बिताते और मर जात ह, मगर समाज एक व्यवस्था के रूप म कायम रहता है।

इस व्यवस्था का स्वरूप क्या है? किन सिद्धाता के आधार पर इसके तत्वा को स्पष्ट रूप म देखा जा सकता है? आखिर इतिहास म विभिन्न सरचनाए पायी जाती हैं, जस जातीय, नस्ली, क्षेत्रीय आदि। कुछ लोगो न सामाजिक जीवन का विश्लेपण सस्कृति की विशेपताओ जैसे पाश्चात्य अथवा *प्राच्य सस्कृति* के *आधार पर*, *या धम के आधार जस मसीही धम अथवा* मूर्ति पूजा, आदि के आधार पर किया है। लेकिन समाज कोई जविकीय अथवा सास्कृतिक सस्था नही बल्कि एक सामाजिक व्यवस्था है। इसलिए हम शुरू म समाज का वणन एक सामाजिक व्यवस्था के रूप मे करेगे, जिसमे हमारे सामने काम यह होगा कि इसकी बनावट का तथा उन नियमा का जिनके अनुसार उसका सचालन तथा विकास हाता है, स्पष्टीकरण करे।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि जब तक हम समाज पर सामान्य रूप मे विचार करेगे, हम इतिहास का वज्ञानिक, वस्तुगत विश्लेपण नहा कर सकते क्योंकि इतिहास मे वास्तविक, ठोस समाज विद्यमान थे

ग्रौर ग्राज भी विद्यमान हैं जैसे रोम का दास प्रथा पर ग्राधारित सा
सम्राट लुइ चौदहवें के ग्रधीन सामती फ्रास, पूजीवादी सयुक्त राज्य ग्र
ग्रौर समाजवादी सोवियत सघ, ग्रादि। इन समाजो ने इतिहास क व
ज्ञान क लिय एक ऐसी धारणा की जरूरत है, जिससे हमारे लिय यह
हो सके कि ऐतिहासिक घटनाग्रो के बहाव म उस चीज का पहचान
जिसके कारण इनम से प्रत्येक समाज दूसरा से भिन्न होता है इसके
सिद्धात उनके विशेप रूप को निधारित नही कर सकता ग्रौर इसका
यह है कि यथाथ को समझने म उससे हम कोई सहायता नहा मिलगी।

मार्क्सवादी विज्ञान द्वारा निरूपित ऐसा मूल धारणा, जिससे सामा
व्यवस्थाग्रो के रूप मे ऐतिहासिक तौर पर विभिन्न समाजा की विशि
निर्धारित करन म सहायता मिलती है, **सामाजिक ग्राथिक सरचना का प्र**
है।*

सामाजिक सरचना एक ऐसा प्रवग है, जिसम एक तरह से वि
इतिहास के बारे मे सद्धातिक चिन्तन का समेट कर उसका निष्कष निका
गया है, विश्व इतिहास का ग्रध्ययन एक ग्रोर, कालातर म बबरता
वतमान सभ्यता तक मनुष्य के उत्थान की प्रक्रिया के रूप म, ग्रौर दूस
ग्रोर, स्थान म फैले हुए ग्रलग ग्रलग देशा, क्षेत्रीय समूहा तथा राज्या
जनगण क इतिहासा की समष्टि के रूप म किया जाता है।

यह सही है कि 'सामाजिक ग्राथिक सरचना" एक ऐसा प्रवग है
जिससे ग्रभी तक हम समाज का कोई ठास ज्ञान नही प्राप्त हुग्रा, मगर
इससे इसका वज्ञानिक ग्रध्ययन शुरू करने म सहायता जरूर मिलती है।
मिसाल क लिय "सामती समाज" या 'सामती सरचना" के प्रवग का
काम म लान स विज्ञान को इतिहास के सामायीकरण के ग्राधार पर इसक
प्रवाह म ऐतिहासत निश्चित काल को, समाज की एक ग्रवस्था को, जा
पहल (दास प्रथा) तथा बाद क (पूजीवादी), दोना युगो स भिन्न
है, शिनाख्त करन म सहायता मिलती है। प्रत्यक सरचना एक सामाजिक
व्यवस्था है, ग्रथात, गुणात्मक दष्टि स वह एक निश्चित तथा ग्रपक्षाकृत
स्थायी वस्तु है।

---

*ग्रागे इसक लिय 'सामाजिक सरचना' या केवल 'सरचना" का
प्रयाग किया गया है।

परतु प्राचीन रोम दास प्रथावाला एकमात्र समाज नही था। उसके अलावा एथेस स्पार्टा तथा कार्थेज भी थ। फ्राम एकमात्र सामती समाज नही था। उसके अलावा रूस चीन जमनी और दूसर भी थे। सयुक्त राज्य अमरीका एकमात्र पूजीवादी समाज नही है। उसके अलावा फ्रास, इटली, जापान तथा अन्य देश भी ह। "सरचना" एक ऐसी धारणा है, जो ऐतिहासिक विकास की किसी एक समान अवस्था म विभिन्न देशा की पद्धतिया के मूलत सामान्य सावलक्षणिक पहलुग्रा को उस सामान्य बात को, जा उनके इतिहास की अपनी अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ की तह मे विद्यमान हाती है, सामन ले आती है। एक बार इस सामान्य तथा मूल तत्व को प्रकाश म ले आन पर यह सभव हा जाता है कि पुनरावृत्ति के सामान्य वज्ञानिक मापदड का इतिहास पर लागू किया जाय तथा एक *निश्चित सामाजिक व्यवस्था की परिधि म, ऐतिहासिक विकास की एक* निश्चित अवस्था म क्रियाशील नियमा का ज्ञान प्राप्त करन की दिशा मे कदम उठाया जाय। क्योकि पुनरावृत्ति का हाना इस बात का लक्षण है कि कुछ नियम ह जो उस वस्तु पर लागू होत ह।

मार्क्स की प्रधान कृति 'पूजी' उन आर्थिक तथा सामाजिक नियमा का विश्लेषण है, जिनके अनुसार एक सामाजिक सरचना -- पजीवादी सरचना -- काम करती तथा विकसित होती है। मार्क्स न अपनी सद्धातिक स्थापनाओ को समझाने के लिये जा उदाहरण दिये, वे ब्रिटेन के जीवन तथ्या स लिये गय थे, क्योकि १६वी शताब्दी म, जब वह कृति लिखी जा रही थी, ब्रिटेन सबसे उन्नत पूजीवादी देश था। लेकिन एक सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के रूप मे पूजीवाद के विकास की जिन प्रवत्तिया का उन्हान खोज निकाला, वे केवल ब्रिटेन ही नही, बल्कि पूजीवादी अवस्था के किसी भी देश के लिये सही ह, क्योकि वस्तुगत नियम किसी एक देश के नियम नही, बल्कि एक सरचना के नियम होते ह, यानी समाज के ऐतिहासिक विकास की एक निश्चित अवस्था के।

सरचनाओ तथा उनके नियमा के भेद से ही यह स्पष्टीकरण हाता है कि विभिन्न ऐतिहासिक स्थितियो म हानेवाली असाधारण तौर पर समान घटनाओ से बिलकुल भिन्न नतीजे क्या निकलत ह। एक उदाहरण लीजिये। मार्क्स न दो समान प्रक्रियाओ की तुलना की प्राचीन रोम म भूमिदार किसाना की बेदखली तथा आदिम पूजीवादी सचय के दौरान म भूमिदार

किसानो की वेदखली। दोनो ही स्थितियो मे इसके कारण सर्वहारा की उत्पत्ति हुई यानि आदमियो के एक ऐसे समूह की, जो स्वतत्र थे, मगर जिन्हे उत्पादन के साधनो से वचित कर दिया गया था। लेकिन हमे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि रोमन सर्वहारा एक निकम्मा जनसमूह था, जो समाज के टुकडो पर गुजारा करता था, जबकि पूजीवादी समाज के औद्योगिक सर्वहारा श्रमिको की एक सेना है, जिनको लूटकर शासक वर्ग धनवान होता है।*

सरचना के प्रवर्ग की विषयवस्तु तथा अर्थ को निर्धारित करने मे एक और महत्वपूर्ण बात पर ध्यान देना जरूरी है प्रत्येक समाज विभिन्न सामाजिक परिघटनाओ का एक ऊलजलूल एकत्रीकरण नही, बल्कि एक सुसबद्ध व्यवस्था है जिसके तत्व परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते तथा सावयविक रूप मे एक दूसरे से सबधित है।

बहुतेरे पूजीवादी समाजशास्त्री तथा इतिहासकार "कारको के सिद्धात" को स्वीकार करते है, जिसके अनुसार इतिहास की प्रक्रिया विभिन्न "कारको" की परस्पर क्रिया का परिणाम है, जिनमे समान रूप से अर्थव्यवस्था, व्यक्ति, राज्य, भौगोलिक स्थिति, विचार, जन सख्या मे वृद्धि आदि शामिल है। "कारको के सिद्धात" मे कमजोरी यह है कि वह उस **आधार** को नही बता पाता, जिसपर समस्त सामाजिक घटनाए एक दूसरे को प्रभावित करती है, जिस कारण समाज इन सभी घटनाओ के एक यात्रिक योग के रूप मे सामने आता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इससे बिलकुल इनकार नही करता कि समाज मे विभिन्न कारक मौजूद है तथा एक दूसरे को प्रभावित करते है, लेकिन सर्वग्राही "कारको के सिद्धात" के विपरीत मार्क्सवाद समाज को उसके विकास के हर युग मे एक सपूर्ण तथा सुसबद्ध "सामाजिक शरीर' मानता है, जिसमे विभिन्न सामाजिक परिघटनाए एक दूसरे से मूलत सबधित है, परन्तु परस्पर प्रभावित करनेवाली शक्तिया समान महत्व की नही है। ऐतिहासिक भौतिकवाद ने यह पता लगाया कि **भौतिक पदार्थों की उत्पादन प्रणाली** ही वह आधार है, जिसपर सभी सामाजिक परिघटनाए एक दूसरी को प्रभावित करती है। वह सामा

---

*कार्ल मार्क्स, 'ओतचेस्त्वेन्निये जापीस्की' के सम्पादकमण्डल के नाम एक पत्र।

जिक आर्थिक सरचना का भौतिक आधार ह (इस बात पर हम आगे चलकर विस्तारपूवक विचार करगे)।

अतिम वात यह कि सामाजिक आर्थिक सरचना एक ऐसी धारणा है, जिससे सबधा की ठोस ऐतिहासिक व्यवस्था का ही नही, वल्कि इन सबधा को प्रत्युत्पन्न तथा परिवर्तित करनेवाले आदमिया के सामाजिक कायकलाप का भी स्वरूप निश्चित करने म सहायता मिलती है। आकाक्षाए तथा कायकलाप की प्रेरणाए, वह स्थितिया जिनम कायकलाप होता है तथा उसके परिणाम ठास परिस्थितिया से निर्धारित होते ह, अथात अतत इस वात स कि सामाजिक सरचना किस प्रकार की है। सामती किसान भूमि पर अधिकार तथा लगान और वेगार से छुटकारा पाना चाहता ह उजरती मजदूर अधिक मजदूरी के लिय सघप करते ह जवकि समाजवादी समाज क मजदूर को केवल अपने भल की चिता नही होती, वल्कि उन वाता की भी होती है जा नये समाज क निर्माण मे उमके और दूमरा मवक भले की ह। मनुष्या की आकाक्षाआ, प्रेरणाआ, प्रात्साहना तथा कार्यां म यह भिन्नता तव तक समझ म नही आ सकती जव तक कि उन्ह इतिहास द्वारा निश्चित सरचनाआ के सदभ म न दखा जाये।

अत सामाजिक आर्थिक सरचना एक निश्चित, ऐतिहासिक तौर पर ठोस समाज है, ऐसी सामाजिक परिघटनाआ तथा सबधा की व्यवस्था, जिनम सावटिक एकता और पारस्परिक क्रिया एक निश्चित उत्पादन प्रणाली क आधार पर पायी जाती है, एक ऐसी व्यवस्था, जो स्वय अपने विशेष नियमो के अनुसार विकसित होती है।

सरचना एक ऐमा प्रवग है, जिसकी सहायता स सामाजिक जीवन का बजाहिर अस्तव्यस्तता की जगह नियमबद्ध रूप स एक के बाद एक आनवाला सामाजिक व्यवस्थाआ का इतिहास सामने आता है आदिम सामुदायिक व्यवस्था— ऐतिहासिक दृष्टि स प्रथम सामाजिक सरचना, दास प्रथावाली सरचना, सामती सरचना तथा पूजीवादी सरचना, जिसस इस समय मानव समाज कम्युनिस्ट सामाजिक सरचना म सक्रमण की स्थिति म है। आदिम सामुदायिक सरचना क दायर म मनुष्य का विकास आदिम उत्पादन क आधार पर हुआ तथा सस्कृति क विकास क जरूरी आधार का निर्माण हुआ। दास प्रथा सामतवाद तथा पूजीवाद विरोधपूर्ण सरचनाए ह क्योंकि उनका आधार निजी स्वामित्व है। इन सब म यह बात समान रूप स पायी जाती है कि

उन सवा का आधार प्रभुता तथा अधीनता के सवध ह तथा उनके विनाशक द्वद्वा क कारण वग सघप, युद्ध तथा नातिया उत्पन्न हाती ह।

कम्युनिस्ट सरचना समाज के विकास की उच्चतम अवस्था है, जिसका आधार सहयाग तथा सामाजिक समानता के सवध ह और जिसकी विशपना यह ह कि उसम व्यक्तित्व उभरकर सामने आता है और मानवजाति की भौतिक तथा बौद्धिक सस्कृति विकसित होती है।

सामाजिक-आर्थिक सरचना की धारणा का महत्व इस बात म है कि इससे इतिहास का अध्ययन मानवजाति के विकास की एक सुसगत नियमबद्ध प्रक्रिया के रूप म करना सभव हा जाता है। इस धारणा के निरूपण म यह सभव हा गया कि **पहले**, इतिहास के एक युग को दूसरे स अलग किया जाय, समाज के इतिहास म गुणात्मक दष्टि स विशिष्ट अवस्थाआ को निर्धारित किया जाये, जिनम स हर एक के गति के अपन खास नियम होत ह, और सामाजिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन शुरू किया जाय। **दूसरे**, सामाजिक विकास की एक ही समान अवस्था म विभिन्न देशा म जो सामान्य तथा प्रत्यावर्ती तत्व होत ह उनको स्पष्ट किया जाय, जसे स्वामित्व के रूप, उत्पादन के सवध, शोपण के रूप तथा मुख्य वग, तथा सामाजिक जीवन के नियमा का ज्ञान प्राप्त करने की दिशा म कदम उठाया जाये। **तीसरे**, प्रत्यक निश्चित युग म सामाजिक जीवन की विभिन्न परिघटनाआ की एकता और द्वद्वात्मक सबध को स्पष्ट किया जाय तथा उस भौतिक आधार का पहचाना जाय जिसपर समस्त सामाजिक परिघटनाआ की परस्पर क्रिया हाती है। **अतिम बात** यह कि सरचना के प्रवग स हम यह दखने म सहायता मिलती है कि सामाजिक विकास मनुष्या के कायकलाप का नतीजा है क्योकि वह उस कायकलाप को ऐतिहासिक दष्टि से ठोस समाजा की स्थितिया से सयोजित करता ह। **सामाजिक सरचना इतिहास के भौतिकवादी दष्टिकोण की आधारशिला है।**

सामाजिक व्यवस्थाआ – सामाजिक सरचनाआ – म तात्विक तथा मौलिक प्रभेदा के पाये जान से यह बात गलत नही सावित हा जाती कि वे सभी मानवजाति के एतिहासिक विकास की मजिल ह और उनके प्रभदा क साथ साथ सरचनाआ म सामान्य विशेपताए तथा समान प्रक्रियाए होती ह। उदाहरण क लिए औद्योगिक विकास तथा वज्ञानिक और प्राविधिक क्राति पूजीवाद तथा समाजवाद दाना म हाती है। वेशक व गुणात्मक दष्टि स

भिन्न सामाजिक रूप धारण करती ह और उनके सामाजिक परिणाम भिन्न हात ह। लेकिन उनमे कुछ समान तत्व भी होत ह जस ग्रामीण आबादी का शहरा म स्थानातरण नागरीकरण वमानिका, इजीनियरो तथा टेकनीशियना की सख्या म वद्धि विनान की भूमिका म वद्धि, आदि।

इसके अलावा, चूकि ऐतिहासिक विकास असमान हाता है इसलिय समान प्रक्रियाए विभिन्न देशा म विभिन्न युगा म उत्पन्न हाती ह। कुछ दश आगे निकल जाते है जबकि कुछ अन्य दशा की प्रगति म विलब होता है। यही कारण है कि एक ही युग म हम ऐसे दश मिलत ह जो विकास की विभिन्न अवस्थाम्रा म है, जिनका सबध विभिन्न सरचनाम्रा स है, जिनम सह अस्तित्व होता है जो परस्पर क्रिया तथा एक दूसरे का प्रभावित करते है, और इसका भी उनके विकास तथा उनकी भावी स्थिति पर अनिवाय रूप से असर पडता है। इससे एक बार फिर यही विदित होता है कि सरचना एक ऐसा प्रवग है, जा इतिहास के अध्ययन म एक साधन का काम देता है परतु स्वय उस अध्ययन का स्थान नही ले सकता।

सामाजिक सरचना की धारणा म समूचे समाज पर **व्यवस्थात्मक दृष्टिकोण** लागू किया जाता है। परतु एक सामाजिक व्यवस्था की हैसियत से समाज म अनेक भिन्न तत्व होते ह, जिनम से हर एक तत्व स्वय ही एक व्यवस्था के रूप म दखा जा सकता है। इसी लिये समाज (और सरचना) मे बहुत सी उप-व्यवस्थाए होती ह, जिसके कारण सपूण व्यवस्था की हैसियत से उसका तफसीली विश्लेषण एक अत्यत जटिल समस्या बन जाती है। अत समाज का सपूण रूप स, एक सामाजिक व्यवस्था के रूप म विश्लेषण करने मे यह स्वाभाविक है कि अपना ध्यान अनेक तफसीली बातो स खीच लिया जाय और उन्ही तत्वा को उभारा जाय, जो बुनियादी, सबसे महत्वपूण तथा अत्यत सामान्य रचनामूलक हैं।

बेशक, ऐतिहासिक प्रक्रिया का सपूण तथा सवतामुखी नान प्राप्त करने के लिये जरूरी ह कि उन सभी परिघटनाम्रा पर विचार किया जाय, जो उसको किसी न किसी रूप म प्रभावित करती है। लेकिन इनम से कुछ का प्रभाव अधिक होता है और कुछ का कम। इसी लिये आम सिद्धात को अपन पहले तखमीने म इसका अधिकार है कि सामाजिक जीवन मे उन्ही पहलुम्रा तथा परिघटनाम्रा के विश्लेषण पर ध्यान दे जो प्रधान और तात्विक हैं, जिनस सामाजिक व्यवस्था का, पूरे समाज का ढाचा बनता है। एक

विश्वव्यापी सरचना सबधी विश्लेषण स किसी भी सामाजिक परिघटना के अनसधान के लिये मौलिक विधि-सबधी उसूलो के निरूपण म सहायता मिलती है। लेकिन उनकी ठोस व्याख्या करन म जरूरी है कि इसस आगे बढा जाये और जो तत्व शक्तिया कारण तथा परिस्थितिया काम कर रही ह उनकी समस्त विविधता पर अधिक से अधिक जहा तक सभव हो विचार किया जाय। इसस यह सभव होता है कि आदमी समाज की घटनाओ के तत्वाथ की गहराइयो तक नज़र डाल सक और यह न सोच कि उसका समाज का मौजूदा रूप अतिम मुकम्मल और अपरिवतनशील है।

विभिन्न सरचनाओ म सामान्य तथा विशिष्ट रचनात्मक तत्व होते ह। पहले हम इनम से चद ऐस तत्वो पर विचार कर, जो सभी सामाजिक आर्थिक सरचनाओ म पाये जात ह।

उत्पादन प्रणाली – सामाजिक सरचना का भौतिक तथा आर्थिक आधार

मानव समाज मे विन्यास प्रबध जसा भी हो, इसके विकास की जो भी अवस्था हो इसके अस्तित्व की बुनियादी शत प्रकृति से पदार्थों का विनिमय है, आदमियो की खाने, कपडे वासस्थान आदि की भौतिक जरूरतो की पूर्ति है। लेकिन आदमी को जिदा रहने के लिये जिन चीजो की आवश्यकता होती है, वे सब उसे प्रकृति मे बनी-बनाई नही मिलती और इसलिये उसे उन्ह बनाना पडता है। इसका अथ यह है कि जसी भी परिस्थिति हो, उत्पादन मानव अस्तित्व का आधार, उसकी स्थायी तथा स्वाभाविक आवश्यकता है। लेकिन समाज के जीवन म उत्पादन का महत्व यही तक सीमित नही कि इससे लोगो को जीवन निर्वाह के साधन प्राप्त होते ह। मार्क्स और एगेल्स ने यह वैज्ञानिक आविष्कार किया कि **मनुष्य अपने भौतिक सामान का उत्पादन करने मे अपने जीवन के पूरे ढाचे का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करते ह और यह कि उत्पादन के दौरान मे वे सामाजिक प्राणियो के रूप मे ढल जाते ह।**

उत्पादन प्रणाली 'व्यक्तियो के कायकलाप का एक निश्चित रूप उनके जीवन की अभिव्यक्ति का एक निश्चित रूप, उनकी एक निश्चित

जीवन प्रणाली है। व्यक्ति जिस प्रकार अपने जीवन की अभिव्यजना करते हैं, वैसे ही वे होते ह। इसलिये वे क्या ह, यह उनके उत्पादन के अनुकूल है, **जिस चीज** का उत्पादन करते तथा **जिस प्रकार** करते हैं दोना के अनुकूल। अत व्यक्तियो का स्वरूप उनके उत्पादन की भौतिक परिस्थितिया पर निभर करता है।"* इसी लिये **प्रत्येक सामाजिक आर्थिक सरचना का ढाचा सामाजिक जीवन की उस उत्पादन प्रणाली से निर्धारित होता है, जो उसके उपयुक्त है।**

श्रम की प्रक्रिया म मनुष्य प्रकृति के पदाथ को वदल डालते ह, उसका उन वस्तुओ का रूप देत हैं, जिनसे उनकी ज़रूरत पूरी हाती है। पशुओ के विपरीत मनुष्य अपनी आवश्यकताए पूरी करने के लिय ज़रूरत की सारी चीजें खुद बनाते है। यही वात प्रकृति से मनुष्य के सबध को बुनियादी तौर पर वदल देती है और उसे अन्य सभी प्राणिया से अलग कर देती है।

सभी प्राणिया के जीवन के लिये वाह्य प्रकृति केवल आवश्यक ही नही बल्कि उसकी निर्णायक शत है। प्रत्येक जीव का अस्तित्व अपने वातावरण से परस्पर जव क्रिया की स्थिति मे होता है। जैविकीय विकास जीवो की सरचना के परिवतन म व्यक्त होता है, जो अपने को वातावरण की वदलती स्थितियो के अनकूल वनाते जात हैं।

मानव समाज का विकास बिलकुल भिन्न तरीके से होता है। उत्पादन की सहायता से मनुष्य पशु-जगत से निकल आता है। वह अपने को अकमण्य ढग से परिवर्ती प्राकृतिक स्थितियो के अनुकूल नही वनाता, वल्कि श्रम के औजारो का इस्तेमाल करते हुए उनपर काम करता, उन्हे अपनी आवश्यक्तानुसार वदलता है, एक "द्वितीय प्रकृति" का निर्माण करता है और इस आधार पर अपने अस्तित्व की सामाजिक स्थितिया का निर्माण करता है। यही कारण है कि अगर पशु जगत का विकास जविकीय नियमो से निर्धारित होता है तो मानव समाज का विकास सामाजिक *नियमा द्वारा निर्धारित होता है, जो एक निश्चित* **उत्पादन प्रणाली** पर आधारित होते है।

उत्पादन प्रणाली उत्पादन के दो पक्षो की एकता है, जो अभिन्न रूप से जुड़े हुए ह उत्पादन शक्तिया तथा उत्पादन सबध, जो मनुष्यो के वो

---

* मार्क्स और एगेल्स, 'जमन विचारधारा'

प्रकार के सबधा को क्रमश व्यक्त करते ह, अर्थात, उनका सबध प्रकृति से और एक दूसरे से।

उत्पादन शक्तिया प्रकृति स मनुष्य तथा समाज का सबध व्यक्त करता ह। उनके विकास क स्तर स यह मालूम हाता है कि प्रकृति पर मनुष्य के शासन की सीमा क्या है।

बिलकुल सामान्य शब्दा म कहा जाय ता उत्पादन श्रम का प्रक्रिया है, अर्थात मनुष्या का सक्रिय चेतन तथा उद्देश्यपूण भौतिक कायकलाप है, जिसका ध्येय प्राकृतिक साधना का मानवीय आवश्यकताओं के रूपानुसार बनाना है। **श्रम की विषयवस्तुए, श्रम के साधन तथा स्वय श्रम**—य तीना श्रम की प्रक्रिया के सामान्य तथा आवश्यक तत्व हं, जिनके बिना श्रम नहा किया जा सकता। लेकिन उत्पादन की प्रक्रिया म उनम से हर एक का भूमिका भिन्न होती है। **श्रम की विषयवस्तुए** निष्क्रिय होती ह। उनम हर वह चीज़ शामिल है जिसको उत्पादन की प्रक्रिया म शोधन तथा परिवतन का पात्र बनाया जाता है और **श्रम के साधनो** की सहायता से मनप्य की आवश्यकतानुसार वस्तु का रूप दिया जाता है। "श्रम का साधन एक ऐसी वस्तु है या वस्तुओं का एक ऐसा सश्लेष होता है जिसे आदमी अपन और अपने श्रम की विषयवस्तु के बीच म जगह देता है और जो उसकी क्रियाशीलता के सवाहक का काम करता है।' * श्रम के साधनो का दायरा बहुत व्यापक है। उनम बिजलीघर औद्योगिक इमारते गोदाम, परिवहन तथा सचार के साधन आदि शामिल है, मगर इनम प्रधान **उत्पादन के उपकरण, श्रम के औजार** ह जैसे मशीने, कलपुर्जे जो श्रम की विषयवस्तु पर मनुष्य के प्रभाव के प्रत्यक्ष सवाहक हैं।

श्रम की विषयवस्तुए तथा साधन श्रम की प्रक्रिया के भौतिक तत्व ह। श्रम की विषयवस्तुओं के विपरीत श्रम के साधन उत्पादन मे सक्रिय भूमिका अदा करते हैं। लेकिन उनकी यह भूमिका कितनी बडी क्या न हो उनका प्रयोग जीवित श्रम यानी मानव क्रियाशीलता के योग से ही किया जा सकता है। उत्पादन म निणयात्मक भूमिका मनुष्य का अदा करनी पडती है। फलस्वरूप श्रम प्रक्रिया के **सक्रिय** तत्व ही, यानी **श्रम के साधन** तथा उत्पादन

---

* का० मार्क्स 'पूजी' प्रगति प्रकाशन मास्को खड १ पष्ठ २०८

दक्षता, नान और अनुभव रखनेवाले मनुष्य, जो भौतिक सामान का उत्पादन करते हैं, समाज की उत्पादन शक्तिया होत ह।

श्रम के साधना तथा विपयवस्तुओ का प्रभेद सापेक्ष है क्याकि एक ही चीज़ से उत्पादन म विभिन्न काम लिये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये चूकि भूमि पर औज़ारा तथा मशीना के ज़रिय काम किया जाता है, वह श्रम की विपयवस्तु जान पडती हे, परतु वह श्रम के साधन के रूप म भी सामने आती है, समाज की एक उत्पादक शक्ति के रूप मे जब वह उन पौधा का उत्पादन करती है जिनकी मनुष्य का आवश्यकता है और इन पौधा पर उसके प्रभाव के सवाहक का काम करती है। यही बात कोयले, तल, विभिन्न सश्लिष्ट पदार्थों मवेशी आदि पर भी लागू होती है जो उत्पादन की प्रक्रिया म श्रम की विपयवस्तुआ तथा साधना दोना का काम देते हैं।

लेकिन श्रम के साधनो तथा विपयवस्तुओ के मौलिक प्रभेदा को देखना ज़रूरी है। विपयवस्तुए उत्पादन का निष्क्रय तत्व होने के कारण प्रकृति से समाज के सबधो के स्वरूप को नही बल्कि प्रकृति के उन अनुगुणो को विलक्षित करती ह, जिन्ह मनुष्य उत्पादन म इस्तेमाल करता है। उदाहरण के लिए लकडी पुराने ढग की दस्ती आरी से भी काटी जा सक्ती है तथा बिजली की आरी से भी। गेहू उगाने के लिए खेत लकडी के हल से भी जोता जा सक्ता है तथा मशीनी हल द्वारा भी इत्यादि। श्रम के दौरान मे प्रकृति से मनुष्य के सबध तथा उसके श्रम की उत्पादनशीलता श्रम के साधना द्वारा निर्धारित होती है।

बेशक यह कहा जा सकता है कि मनुष्य जो भौतिक पदाथ प्रयोग करता है उनसे भी उत्पादन शक्तिया के विकास का स्तर विलक्षित होता है क्याकि उत्पादन मे प्रगति का मतलब नये पदार्थों का प्रयोग भी है, जिससे मनुष्य प्रकृति के अनुगुणो को अधिक व्यापक पमाने पर इस्तेमाल कर सकता है। इस प्रकार पुरातत्वविद् पाषाण, कास्य तथा लोह युगा म फर करते ह। विरल धातुओ के, जा कुछ दिना पहले तक लगभग किसी काम नही आती थी, तथा विभिन्न सश्लिष्ट पदार्थों आदि के व्यापक प्रयोग के बिना आधुनिक प्रविधि को विकसित करना असभव है। मगर ज़ोर देने की महत्वपूर्ण बात यह है कि पत्थर, कासा, लाहा, विरल धातुए, प्लास्टिक तथा अन्य पदाथ उत्पादन शक्तियो के विकास का मापदड तभी बनते तथा उत्पादन म

सक्रिय भूमिका ग्रदा करते है, जब वे उत्पादन म श्रम के साधना क रूप मे भाग लेते ह तथा उनके विशेप गुणा का प्रयोग श्रम की विषयवस्तुग्रा पर काय करने के लिए किया जाता है, ठीक उसी तरह जस बारूद स युद्ध के तरीको म क्राति तभी ग्राई, जब उसका प्रयोग केवल ग्रातिशबाजी म नही बल्कि तोप-बदूक म किया जान लगा।

इस तरह श्रम की विषयवस्तु प्रकृति का वह भाग है, जो उत्पादन मे लगा हुग्रा है ग्रौर जिसका परिवतन होता है। श्रम की विषयवस्तु प्रकृति के उन गुणा की दस्तावेज है, जिन्ह मनुष्य किसी निश्चित समय म उत्पादन के प्रयोग म ला सका है, मगर केवल श्रम के उपयुक्त साधना के होन पर ही इस सभावना को यथाथ का रूप दिया जा सकता है।

प्रत्येक ऐतिहासिक युग मे मनुष्य श्रम के विभिन्न साधना को प्रकृति पर ग्रपनी क्रिया के सवाहक के रूप मे इस्तेमाल करते ह। ग्राज उत्पादन मे तरह तरह की मशीनरी, कलपुर्जे, बिजली सस्थापन, परिवहन, ग्रौजार तथा ग्रनेक सहायक श्रम-साधन का प्रयोग किया जाता है, जिनकी जरूरत उदाहरण के लिये, खाद्यान्न सचय करने के लिये होती है। लेकिन माक्स ने श्रम के तमाम साधनो मे, जिनका प्रयोग विभिन्न युगा मे होता रहा है, उन **उत्पादन के ग्रौजारो** पर जोर दिया, जो प्रकृति पर मनुष्य की क्रिया के प्रत्यक्ष सवाहक का काम देते है ग्रौर इस तरह उसकी श्रम की उत्पादनशीलता का निर्धारित करते ह। उनका मतलब उन ग्रौजारो से है, जिनपर **सामाजिक** उत्पादन की प्रक्रिया की विशेपता निभर करती है ग्रौर जो विकास के किसी स्तर के उपलक्षक हात है। माक्स के ग्रनुसार वे "उत्पादन की हड्डिया ग्रौर मास पेशिया"* ह जो उत्पादन के स्तर तथा समाज ग्रौर प्रकृति के सबधो का निर्णायक सूचक ह। "ग्रलग ग्रलग ग्राथिक युगो मे भेद करने के लिये हम यह नही देखते कि उन युगो मे कौन कौन सी वस्तुए बनाई जाती थी, बल्कि यह पता लगाते है कि वे किस तरह ग्रौर किन ग्रौजारो से बनाई जाती थी।"**

उत्पादन शक्तियो के तत्व के रूप मे उत्पादन के मुख्य ग्रौजारा के निर्णायक महत्व पर जोर देते हुए हमे यह खयाल रखना चाहिये कि हम

---

* का० माक्स, 'पूजी', प्रगति प्रकाशन मास्को खड १, पृ० २०५

** वही।

इसमे अतिशयोक्ति से काम न ले। सामाजिक विकास की निम्न अवस्थाओ म, जब मनुष्य बहुत सादा औजारो से काम लेते थे और जब स्वय उत्पादन सादा था, तकनीकी प्रगति का अर्थ ले-देकर यही था कि श्रम के इन औजारो मे परिवतन हुआ करे। ब्रिटेन मे १८वी शताब्दी म जो औद्योगिक क्राति हुई उसका सारतत्व यह था कि दस्ती औजारो की जगह मशीनो से काम लिया जाने लगा। मशीनो के आविष्कार से इजन की आवश्यकता हुई। इस कारण वाष्प इजन का आविष्कार हुआ, जिसने परिवहन के साधनो म क्रातिकारी परिवतन कर दिया, आदि। इस समय उत्पादन बहुत पेचीदा तथा विविधतापूण हो गया है। इसमे श्रम के मुख्य औजारो का प्रयोग उत्पादनो के अन्य कई पहलुओ से सबद्ध है, जैसे सगठन, प्रविधि, शक्ति के स्रोत, आदि। स्थिति के अनुसार उत्पादन के बिलकुल विभिन्न क्षेत्र तकनीकी प्रगति के निर्णायक केद्र बन सकते ह। उदाहरणार्थ, उत्पादन लाइनो के जारी होने से सबद्ध मशीनरी म कोई परिवतन करना आवश्यक नही होता, मगर इससे श्रम की उत्पादनशीलता मे भारी वद्धि होती है।

गत कई दशको म वैज्ञानिक आविष्कारो तथा उनके व्यावहारिक प्रयोगो के कारण उत्पादन शक्तिया मे नई बढोतरी हुई है। परमाणु शक्ति के शातिपूण इस्तेमाल, जेट इजनो, सेमी-कडक्टरो, सिथेटिक सामानो, रेडियो-इलेक्ट्रानिकी तथा इलेक्ट्रानिक कप्युटरो के उपयोग ने केवल आधुनिक उत्पादन के विभिन्न पहलुओ मे क्रातिकारी परिवतन ही नही कर दिया, बल्कि उत्पादन शक्तियो को एक बिलकुल नये गुणात्मक स्तर पर पहुचा दिया है, जिससे स्वचालित उत्पादन के विकास का आधार तथा आवश्यक स्थितिया पैदा हो गई ह। स्वचालित उत्पादन, जो वतमान वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्राति की मुख्य दिशा है, के विकास म साइबरनेटिक्स तथा इलेक्ट्रानिक कप्युटरो को अगर निर्णायक नही तो बहुत महत्वपूण भूमिका अदा करनी है। इलेक्ट्रानिक कप्युटरो की हैसियत साधारण मशीनो से, जिनसे आदमी श्रम के विषयवस्तुओ पर काम लिया करता था, अधिक है। वे उत्पादन क्रियाओ के नियत्रण मे मानसिक कायभार भी पूरे करती हैं और केवल हाथ का विस्तारण नही, बल्कि मस्तिष्क का विस्तारण ह।

श्रम-साधन मनुष्य के व्यावहारिक कायकलाप के परिणाम के रूप म, सचित अनुभव तथा ज्ञान के मूत रूप म केवल उन सफलताओ का लक्षण मात्र नही, जो मनुष्य ने प्रकृति से अपने सघप मे प्राप्त की है, बल्कि

उत्पादन तथा पूरे समाज के विकास का आधार भी हैं। और फिर, हर पीढ़ी अपने पहले की पीढ़ी से विरासत में जो श्रम-साधन पाती है वे प्रगति के नये कदम उठाने का प्रारंभिक बिंदु बन जाते हैं और यह इतिहास की क्रमबद्धता का आधार है।

मनुष्य समाज की उत्पादन शक्ति केवल इसलिये नहीं है कि उनके हाड मांस नस मांसपेशियां, मस्तिष्क तथा हाथ-पैर हैं (ये चीजें पशुओं के पास भी होती हैं) बल्कि इसलिये कि वे उत्पादन के औजार बनाते हैं और उनसे काम लेना जानते हैं। उत्पादन का अनुभव तथा श्रम कौशल प्रकृति के उपहार नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन का फल है, जिसका आधार भौतिक उत्पादन क्रिया है। मतलब यह कि उत्पादन शक्ति के रूप में मनुष्य इतिहास की पतवार है।

प्राकृतिक वस्तुएं उत्पादन के औजार तभी बनती हैं, जब मनुष्य उन्हें हाथ लगाता है और अकेले वही उनको हरकत में ला सकता है। इसी लिये मनुष्य **मेहनतकश लोग ही उत्पादन शक्तियों का प्रधान तत्व हैं।**

कोई मशीन जिससे उत्पादन में काम नहीं लिया जाता, मात्र एक संभावी उत्पादन शक्ति है, और व्यवहार की दृष्टि से केवल धातु का एक ढेर है। केवल जब मेहनतकश आदमी उसको हाथ लगाता है तो उसमें जान पड जाती है और वह एक सक्रिय कारगर तथा सचमुच में उत्पादक शक्ति बन जाती है। मनुष्य तथा श्रम-साधन मिलकर ही किसी समाज की उत्पादन शक्ति बनते हैं चाहे उस एकता का रूप कुछ हो। इस एकता की परिधि में श्रम साधन, जहां एक ओर ज्ञान का भौतिक रूप हैं, समस्त तकनीकी साधनों के सजनहार मनुष्य की बौद्धिक कार्यकलाप की पैदावार हैं वहां साथ ही वे प्रकृति से उसके संबंध को निर्धारित करने में सहायक होते हैं और मनुष्य तथा पूरे समाज के विकास के स्तर का मापदंड भी हैं। मनुष्य अपने आपको समाज में उपलब्ध श्रम-साधनों के अनुकूल बनाता और फिर उनको बदलता है। मनुष्य जब श्रम-साधनों में सुधार करता है, जिन्हें वह अपने तथा प्रकृति के बीच लाता है और उत्पादन में उनसे काम लेता है, तो वह अपने आपको भी बदलता है।

आदमी का अनुभव तथा कार्य कौशल सबसे बढ़कर इस बात से निर्धारित होता है कि वह अपने काम में किस प्रकार के औजार इस्तेमाल करता है। प्रविधि में ज्यों-ज्यों तरक्की होती है, मनुष्य के ज्ञान तथा अनुभव की भी

अधिक अपव्यय होने लगता है। लकडी के हल से काम लेना और बात है तथा मशीनी हल से काम लेना और।

प्राकृतिक विज्ञान के चेतन प्रयोग से सबधित मशीनी उत्पादन के विकास का तकाजा केवल यही नही है कि उत्पादक के पास प्रयोगसिद्ध अनुभव हो बल्कि यह भी है कि प्राकृतिक तथा प्राविधिक विज्ञानो की जानकारी हो। वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति का एक अत्यत महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उत्पादन मे **बौद्धिक तत्व का महत्व तथा विज्ञान की भूमिका**, बढती हुई तकनीकी पचीदगियो के प्रत्यक्ष परिणामस्वरूप बढ रहा है और इससे उत्पादन शक्तियो की बनावट मे अधिक विस्तार की प्रवृत्ति और जोर पकडती है। केवल हाथ से काम करनेवालो का ही श्रम नही, बल्कि टैक्नीशियनो, इजीनियरो तथा शोध कार्यकर्ताओ का श्रम भी, जो उत्पादन की प्रक्रिया मे प्रत्यक्ष वैज्ञानिक तथा तकनीकी सेवाए उपलब्ध कराते है, उत्पादनशील हो जाता है। उत्पादन शक्तियो की धारणा के सार मे आगे चलकर भी परिवर्तन होता रहेगा खासकर वर्तमान वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्राति के प्रसग मे, जिससे उत्पादन को स्वचालित बनाने की सभावना उत्पन्न होती है। स्वचालित उत्पादन की वजह से मनुष्य को केवल उत्पादन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया से छुटकारा ही नही मिल जायगा, बल्कि इस प्रक्रिया के नियत्रण का कार्यभार भी उसके ऊपर नही रहेगा, उसे मशीने निबट लेगी। मनुष्य के लिये केवल सर्वोपरि नियन्त्रण, देख रेख, मरम्मत, बहाली का काम रह जायेगा। श्रम-साधना तथा मनुष्य की एकता एक नये तथा उच्चतर स्तर पर पहुच जायगी। वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्राति के अतर्गत उत्पादन की समस्त प्रक्रिया विज्ञान के प्राविधिक प्रयोग का रूप धारण कर लेती है। ज्यो-ज्यो यह प्रक्रिया विकसित होती है विज्ञान उत्पादन प्रक्रिया मे सीधा साझीदार यानी एक सामाजिक उत्पादन शक्ति बन जाता है।

उत्पादन के आर्थिक सबध भी उत्पादन का उतना ही आवश्यक पक्ष है, जितना उत्पादन शक्तियां, क्योकि मनुष्य जब तक मिलकर काम करने तथा काम के विनिमय के लिये किसी रूप मे साथ नही आयेंगे वे उत्पादन नही कर सकेंगे।

उत्पादन सबध वस्तुगत, भौतिक सबध है, जो मनुष्यो की चेतना पर निर्भर नही करते और जो सामाजिक पदावार के उत्पादन के दौरान मे, तथा उसके पर विनिमय तथा वितरण से लेकर व्यक्तिगत उपभोग के क्षेत्र

तक उस पदावार की अग्रगति के दौरान मे मनुष्या के वीच स्थापित होत ह।

प्रत्यक समाज मे इनकी एक समग्र व्यवस्था होती है, जिसमे उत्पादन की प्रत्यक्ष प्रक्रिया मे आदमियो के सबध, श्रम के सामाजिक विभाजन तथा क्रिया क विनिमय के भिन्न रूप तथा भौतिक पदार्थों के वितरन के विशेप सवध शामिल है। इन सवधा की समस्त विविधता **स्वामित्व के** ऐतिहासिक दप्टि से विशिष्ट **रूप** की अभिव्यक्ति है, क्याकि वह मनुष्यो के सवधा को उत्पादन क साधना के प्रसग म मनुष्यो की अवस्था के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। **स्वामित्व के रूप ही से उस प्रणाली की विशेपता निर्धारित होती है, जिससे मनुष्य उत्पादन के साधनो तथा पदावार को अपनाते ह।**

जव उत्पादन के साधना पर पूरे समाज का स्वामित्व होता है तो उत्पादन के साधना के प्रसग म उस समाज के सदस्यो की हैसियत समान हाती है और उनमे **सहयोग तथा परस्पर सहायता के सबध** एक ही उत्पादन समूह के सदस्यो के रूप म स्थापित होते ह। इस सहयाग के रूप, सामाजिक सपत्ति के रूपा ही की तरह भिन्न हो सकते ह। उदाहरणाथ हम दखते ह कि इतिहास मे सपत्ति कभी गण तथा कबीले की सपत्ति के रूप म रहा तो कभी समुदाय, सहकारी समिति तथा कम्यून म सगठित मेहनतकशो के समूहा की सपत्ति, और राज्य तथा समस्त जनता की सपत्ति के रूप म रही है।

जव उत्पादन के साधनो पर अलग व्यक्तिया का स्वामित्व होता है, जव उत्पादन के मुख्य साधन समाज के किसी एक भाग के हाथा म होते ह और दूसरा भाग उनसे वचित होता है, तो सपत्ति का स्वरूप निजी हो जाता है, समाज म अनिवाय रूप से **प्रभुता तथा अधीनता के सबध** उत्पन्न हात ह। इन सवधो के रूप भी भिन्न भिन्न हो सकते ह तथा वे इस वात पर निभर करते ह कि किसी समाज मे किस प्रकार की निजी सपत्ति का प्रभुत्व है। परिणामस्वरूप उत्पादन के साधना पर स्वामित्व के सवध ही हर सूरत म यह तय करत ह कि मेहनतकश इनसान तथा उत्पादन साधना के याग का विशिष्ट रूप क्या हागा।

इतिहास म **स्वामित्व के तीन मूल प्रकार** पाय जाते ह दास प्रथा, सामतवादी तथा पूजीवादी – और इसी के अनुकूल **मनुष्य के शोषण क तीन मौलिक रूप** रहे ह। इनक अतिरिक्त उत्पादन के व्यक्तिगत श्रम पर

आधारित निजी स्वामित्व होता है, मगर स्वामित्व का यह रूप सदा उन उत्पादन सबधो के अधीन रहा है, जो किसी समाज मे छाये हुए थे और स्वय कभी वह हावी नही रहा। उदाहरण के लिये, पूजीवाद के अतगत छोटी काश्तकारी, कारीगरो तथा व्यापारियो के छोटे कारोबार एक अलग आर्थिक क्षेत्र है, जिसपर प्रभुत्ववान पूजीवादी सबधो का बराबर प्रभाव पडता रहता है। अत **सपत्ति के मौलिक रूप** -- सामाजिक और निजी -- इतिहास म **मनुष्यो के बीच उत्पादन सबधो के दो मौलिक रूपो** की हैसियत से सामने आते है सहयोग तथा परस्पर सहायता के सबध और प्रभुता तथा अधीनता के सबध।

उत्पादन सबधो के इन दो मौलिक रूपो के अलावा **उत्पादन के सक्रामक सबध** उस समय उत्पन्न होते ह, जब एक सरचना विघटित तथा दूसरी उभरने लगती है। इन सबधो की विशेषता यह है कि एक ही आर्थिक व्यवस्था की परिधि मे विभिन्न प्रकार के आर्थिक सबध मिल जाते हैं। मसलन आदिम सामुदायिक व्यवस्था का जब विघटन होने लगा तो उसके अवशेष तथा दास-प्रथा के सबधो के अकुर पितृसत्तात्मक परिवार (जिसम कई पीढिया तथा सगोत्रीय शाखाओ के लोग होते हैं) की परिधि के अदर पाये जाते थे। इसी तरह जब दास-प्रथा का विघटन होने लगा तो कोलोन जसा मिला-जुला समाज उत्पन्न हुआ, जिसमे दास-प्रथा तथा सामतवाद दोनो के सबधो के तत्व मौजूद थे। पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण के काल मे कुछ आर्थिक क्षेत्रो म समाजवादी सबधो तथा निजी स्वामित्व के सबधो के अवशेष मिले होते ह जिनके रूप तथा आकार भिन्न होते ह, जैसे राजकीय पूजीवाद तथा देहात मे सहकारिता के अर्द्धसमाजवादी रूप, आदि। लेकिन पूजीवाद और समाजवाद की अतरकालीन अर्थव्यवस्था का स्वरूप, सपूर्ण दृष्टि से देखने पर, अपने अनेक क्षेत्रो तथा सामाजिक तौर पर पचमेल क्षेत्रो के बीच विशेष सबधो समेत, जिसकी परिधि म समाजवादी क्षेत्र धीरे धीरे अन्य क्षेत्रो को बेदखल कर देता है, सक्रामी है।

उत्पादन शक्तियो तथा उत्पादन सबधो का अतर एक ही उत्पादन के दो पक्षो का अतर है, ऐसे दो पक्षो का, जिनका अस्तित्व कभी एक दूसरे से अलग नही होता। केवल अमूर्त रूप मे यह सभव होता है कि उत्पादन शक्तियो पर उत्पादन सबधो के बिना या उल्टे, उत्पादन सबधो पर उत्पादन शक्तियो के बिना विचार किया जा सके। उत्पादन शक्तिया सामाजिक

उत्पादन का मूलतत्व है तथा उत्पादन सबध उसका आवश्यक भौतिक रूप। उत्पादन सबध उत्पादन शक्तिया द्वारा निर्धारित होते ह, उ ह इन शक्तिया के अनुकूल होना पडता है क्याकि उत्पादन सबध वह आकार ह, जिसम यह शक्तिया काम करती तथा विकसित होती हैं। इनमे यह सुसगति आवश्यक क्या है? उत्पादन शक्तिया ही मुख्य प्रकार के मानव कायकलाप से सबधित ह, उस कायकलाप से, जिसका उद्देश्य मानव अस्तित्व का कायम रखना है। इसलिय यह बात स्वाभाविक है कि यह कायकलाप मनुष्यो के एस परस्पर सबधो का आधार बनता है, जिनके दायरे के अदर उत्पादन शक्तिया क्रियाशील तथा विकसित हो सकती ह। आखिर मनुष्य आपस मे निश्चित सबध इसी लिये स्थापित करत ह कि अपने अस्तित्व को कायम रख सकें, और वह चीज, जिसस उनका अस्तित्व कायम रहता है, उत्पादन है, जो श्रम के साधना का प्रयाग करके प्रकृति को बदल रहा है।

परिणामस्वरूप, उत्पादन सबध मनुष्यो की इच्छा स मुक्त रूप स और उत्पादन शक्तिया तथा अतत श्रम के साधना के विकास के स्तर तथा स्वरूप के अनुकूल रूप ग्रहण करत ह। मार्क्स ने लिखा है कि "श्रम के साधन न केवल इस बात के मापदड का काम देते ह कि मानव-श्रम किस हद तक विकास कर चुका है, बल्कि वे यह भी इगित करत हैं कि वह श्रम किन सामाजिक परिस्थितियो म किया जाता है।"*

उत्पादन शक्तियो की क्रिया अर्थात श्रम की प्रक्रिया भी उत्पादन सबधो से सक्रिय रूप मे प्रभावित होती है जो उत्पादन शक्तिया का एक निश्चित सामाजिक गुण प्रदान करते ह जिस कारण उत्पादन, उदाहरणाथ, दास प्रथा का अथवा सामतवादी पूजीवादी या समाजवादी होता है।

उत्पादन शक्तियो की सामाजिक विशेषताए, चाहे हम श्रम के औजारो पर विचार कर या उनसे काम लेनवाल आदमिया पर, सवथा उत्पादन सबधा पर निभर करती ह। श्रम के औजार या साधन किस सामाजिक रूप म क्रियाशील होते ह वह खुद उनपर निभर नही करता। मशीन तो केवल मशीन है। केवल जब वह मशीन किसी पूजीपति की सपत्ति बनती है यानी केवल निश्चित सामाजिक परिस्थितिया म वह पूजी बनती तथा शोषण के साधन के रूप म इस्तेमाल की जाती है।

---

* काल मार्क्स 'पूजी', प्रगति प्रकाशन मास्को, खड १ पृ० २०५

मनष्य अपने अनुभव तथा कायकौशल समत एक उत्पादन शक्ति ह, मगर कुछ परिस्थितिया मे वह दास है, दूसरी म भूदाम और तीसरी म उजरती मजदूर है। दास स्वामिया की विचारधारा के अनुसार मनुष्य स्वाधीन पैदा होते हैं या दास, भूदास-स्वामिया की विचारधारा क अनुसार प्रकृति कुछ लोगा को अभिजात वग का सदस्य बनाती है और दूसरा को भूदास। पूजीपति वग के विचारका का कहना हे कि पूजीपति व लोग हात है, जिनमे मजदूरा से अधिक प्रतिभा तथा सामथ्य है। माक्सवाद इस प्रतिक्रियावादी विचारधारा का जोरदार खडन करता है। **मनुष्य स्वभावत न तो दास ह, न भूदास और न ही उजरती मजदूर।** रूसो न बडी कटु भावना स कहा था कि मनुष्य स्वाधीन पैदा हाते ह, पर सब जगह वे जजीरो म जकडे हुए हैं। उनका ये जजीर निजी स्वामित्व-सबध ही पहनात ह। मनुष्य निश्चित उत्पादन सबधा के स्थापित होने के कारण ही दास या उजरती मजदूर बनत है। उन्ह यह तय करने की आजादी नही कि इन सबधो को स्थापित किया जाये या नही, और न ही उनके चुनने की आजादी है। किसी निश्चित समाज म जा उत्पादन सबध मौजूद होत ह उनम प्रवेश करने पर मनुष्य मजबूर होत है।

अत, यद्यपि उत्पादन सबध उत्पादन शक्तिया द्वारा निर्धारित होते ह, मगर यह उत्पादन सबध ह, जो प्रत्येक उत्पादन प्रणाली को एक निश्चित सामाजिक स्वरूप प्रदान करते ह।

समाज मे उत्पादन सबधो का ताल्लुक अन्य सामाजिक परिघटनाओ स भी है। इसमे सदह नही कि बहुत सी परिघटनाओ तथा उत्पादन के सबध बिलकुल अप्रत्यक्ष है, मगर ह जरूर, और **माक्सवादी सामाजिक ऐतिहासिक सिद्धात का एकत्ववाद** इस बात मे ह कि वह इन्ही सबधो को दर्शाता है। बात यह ह कि हम जिस सामाजिक परिघटना को भी ले—चाहे भापा हो या कला, राज्य हा या राष्ट्र, विनान या नैतिकता, आदि—किसी का भी बोध अपन आप म नही किया जा सकता, बल्कि केवल ऐसी परिघटना के रूप म किया जा सकता है, जो समाज द्वारा उत्पन्न हाती तथा निश्चित सामाजिक आवश्यकताए पूरी करती है। चूकि किसी भी समाज म जीवन पद्धति की विशेपता उत्पादन प्रणाली से निर्धारित होती है, इसलिय उस समाज की अन्य सभी परिघटनाए अतत उत्पादन प्रणाली पर निभर करती, उसी से उत्पन्न तथा निर्धारित होती हैं।

हम अब जो प्रतिपत्ति प्रमाणित कर रहे है वह ऐतिहासिक भौतिकवा
की समस्त धारणा के लिये बुनियादी महत्व रखती है और यही कारण
कि जो लोग ऐतिहासिक भौतिकवाद को नही मानते वे इसी पर कडी चो
करते है। सच पूछिये तो सैंकडो सैद्धांतिक कृतियो मे ऐतिहासिक भौतिकवा
को आर्थिक भौतिकवाद की सज्ञा दी गयी है क्योकि वह यह मानता है कि
अर्थव्यवस्था को निश्चायक भूमिका अदा करनी होती है। लेकिन क्य
ऐतिहासिक भौतिकवाद यह कहता है कि सभी सामाजिक वृत्तात तथ
घटनाए प्रत्यक्ष रूप मे उत्पादन प्रणाली से उत्पन्न होती है तथा सिर्फ
अर्थव्यवस्था से उनकी व्याख्या की जा सकती है? समाज मे बहुत से वृत्तात
तथा घटनाए ऐसी है, जिनका अर्थव्यवस्था से लगाव नही के बराबर है
सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप तथा उसके परिवर्तन मात्र केवल अतत ही
भौतिक उत्पादन की प्रणाली से निर्धारित होते है।

कुछ लेखको जैसे पितीरिम सरोकिन का कहना है कि कार्ल मार्क्स ने
इस प्रसग मे कोई नई खोज की ही नही क्योकि अर्थव्यवस्था के प्रभाव के
बारे मे प्राचीन काल के लोग लिख चुके थे। वह बहुत ही कमजोर तर्क
है। आखिर प्राचीन काल के लोगो को चुबकत्व के गुणकारिता की जानकारी
थी और उन्होने बादलो की घनगरज के साथ बिजली की चमक भी देखी
होगी। लेकिन क्या इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि उन्हे विद्युत
चुबकत्व के सिद्धात का भी ज्ञान था? यही बात मार्क्स के सुसगत सिद्धात
पर लागू होती है, जिसमे अर्थव्यवस्था की एक निश्चित भूमिका है। इस
सिद्धात के अनुसार प्रत्येक सामाजिक आर्थिक सरचना के भीतर सभी सामाजिक
परिघटनाए एक सुसबद्ध सपूर्ण व्यवस्था का अग है, जिसका कारण सामा
जिक जीवन और विकास मे उत्पादन की निर्णायक भूमिका है। उत्पादन
प्रणाली किसी भी सामाजिक सरचना का भौतिक, आर्थिक आधार है, और यह
**ऐतिहासिक विकास का अटल नियम है कि उत्पादन प्रणाली तमाम
दूसरी सामाजिक परिघटनाओ के प्रसग मे एक निश्चायक भूमिका अदा
करती है।**

उन मूल धारणाओ मे, जो सभी सरचनाओ मे पाये जानेवाले
रचक तत्वो को प्रतिबिबित करते है, 'बुनियाद' और 'ऊपरी ढाचा"
के प्रवर्ग है।

बुनियाद और ऊपरी ढाचा

इन प्रवर्गों का महत्व इस बात मे है कि इनसे ठोस रूप मे यह जानने मे सहायता मिलती है कि उत्पादन प्रणाली का प्रभाव सामाजिक जीवन के अन्य सभी पहलुओ पर, ऐतिहासिक प्रक्रिया के बौद्धिक पहलू समेत, क्या पडता है।

उत्पादन प्रणाली द्वारा समाज के जीवन मे सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक प्रक्रियाए निर्धारित होती ह। परतु इस सवाल पर विचार करने पर हम देखत है कि उत्पादन के दो पक्ष – उत्पादन शक्तिया तथा उत्पादन सबध – प्रत्येक समाज के विशेष विचारो, धारणाओ तथा सबधो को निर्धारित करने मे भिन्न भूमिका अदा करते ह। यह भूमिका क्या हे?

सामाजिक आर्थिक सरचनाए सामाजिक सुसघटित शरीर हैं, जिनमे आपस मे उतना ही गहरा अतर है, जितना पौधो तथा पशुओ मे। यह अतर जसा कि हम कह चुके हैं उनकी भिन्न उत्पादन प्रणालियो के कारण पदा होता है। उत्पादन शक्तिया उत्पादन प्रणाली का निश्चायक पक्ष ह, इसलिये सामाजिक विकास की प्रत्येक मजिल की गुणात्मक विशेषताए अतत उन्ही के द्वारा निर्धारित होती ह। लेकिन कभी कभार सामाजिक जीवन के तथ्य इस स्थापना का खडन करत दिखाई पडते हैं। उदाहरण के लिये सयुक्त राज्य अमरीका म उत्पादन शक्तिया, अभी की अवस्था मे, सोवियत सघ से उच्चतर स्तर पर है, यद्यपि स० रा० अ० मे पूजीवादी व्यवस्था है, यानी वह समाजवाद से नीचे के स्तर पर है। इसलिये प्रत्यक्षत स० रा० अ० तथा सोवियत सघ की सामाजिक व्यवस्था, विचारधारा, राजकीय सघटन, आदि के बीच की विषमताओ की व्याख्या केवल उत्पादन शक्तियो के स्तर क हवाले से नही की जा सकती। यह बात पूजीवादी समाजशास्त्रियो को बहुत सुविधायुक्त जान पडती है और माक्सवादी सिद्धात को गलत सिद्ध करने के लिये वे इसी को प्रमाण क रूप मे पेश करते हैं। *माक्सवादियो के नजदीक यह नियम के सार तथा उसकी अभिव्यक्ति के रूप* की विसगति है जिसका कारण मध्यस्थ तत्वो का प्रभाव है। आखिर एक भौतिकीविद बलून की उडान देखकर गुरुत्वाकर्षण से इनकार नही करता, बल्कि सोचता है कि मध्यस्थ तत्वो के कारण इस नियम की यह विशेष अभिव्यक्ति हो रही है।

उत्पादन शक्तिया की निश्चायक भूमिका इस बात मे निहित है कि उनको ऐस उत्पादन सबधा की जरूरत होती है, जो उनके अनुकूल हो और सामाजिक जीवन के अय पहलुआ पर उनका प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप स, अर्थात इन सबधा के माध्यम से पडता हे। लेकिन चूकि उत्पादन शक्तिया के विकास के कारण उत्पादन सबध अपने आप नही बदल जात, इसलिये इतिहास म कभी कभार यह भी देखने म आता है कि एक ऐसा देश जिसकी उत्पादन शक्तिया अधिक विकसित हैं कुछ समय तक सामाजिक विकास के निम्नतर स्तर पर पडा रहता है, और यही हाल स० रा० अ० का हे।

यद्यपि उत्पादन शक्तिया का विकास सपूण रूप म ऐतिहासिक प्रक्रिया का आधार ह यह काम उत्पादन सबधा का है कि समस्त सामाजिक परिघटनाआ के विशेष गुणो को निर्धारित करे, जिनके कारण एक सरचना दूसर स भिन्न दिखाई देती है। अपनी इसी भूमिका म उत्पादन सबधो को **समाज की आर्थिक बुनियाद** कहा जाता है।

समाज की आर्थिक बुनियाद उत्पादन सबधो का कुल योग है, अर्थात उत्पादन, विनिमय तथा वितरण के क्षेत्र के सबधो का। इसी बुनियाद पर अय सभी सामाजिक सबध मनुष्या के विचार धारणाए तथा आकाक्षाए, तथा समाज की राजनीतिक तथा अन्य सस्थाए जिन्ह **ऊपरी ढाचा** कहते ह, उत्पन्न हाती ह। यद्यपि ऊपरी ढाचा विभिन्न प्रकार के तत्वो से मिलकर बनता है इनमे समान लक्षण पाये जाते हैं तथा इनके विकास के कुछ नियम समान हात हैं और इसलिये यह समझना सभव होता है कि ऊपरी ढाचा सपूण रूप से एक विशेष सामाजिक परिघटना है।

बुनियाद और ऊपरी ढाचे की धारणाए आपस म सबद्ध ह तथा सामाजिक सरचना के प्रवग से इनका गहरा सबध है। **बुनियाद समूचे सामाजिक शरीर रचना के आर्थिक ढाचे के समान है** तथा प्रत्यक सामाजिक आर्थिक सरचना की **गुणात्मक** विशेषताआ को निर्धारित करती है और इस प्रकार एक सरचना का दूसरी से भिन्न बनाती है जबकि **ऊपरी ढाचा प्रत्येक सामाजिक सरचना मे सामाजिक तथा बौद्धिक क्षेत्र की विशेषताओ को निर्धारित करता है।** यही कारण है कि सामाजिक सरचना के प्रसग क बाहर य धारणाए अर्थहीन और निर्जीव ह, उन अगा की भाति, जिन्ह उनकी शरीरव्यवस्था से अलग कर लिया गया हो।

उत्पादन सबधो के सपूण समवाय को, जो किसी सरचना की बुनियाद होता है, आर्थिक सबधा के कुल याग के रूप मे देखना चाहिये, जो उम समाज मे **प्रचलित** स्वामित्व के रूप से उत्पन्न होते हैं। परतु वास्तविक जीवन मे, विभिन्न देशो तथा जातिया के इतिहास मे उन उत्पादन सबधा के साथ साथ जो युक्त काल मे हावी होते है, आम तौर से ऐसे आर्थिक सबध भी पाये जाते ह, जो या तो पुराने के अवशेष हैं या नई, भावी उत्पादन प्रणाली के अकुर। इन्हे प्राय क्षेत्र की सज्ञा दी जाती है। लेकिन यह नही समझना चाहिये कि बुनियाद किसी समाज के आर्थिक क्षेत्रो का कुल योग है क्याकि इससे अनेक असगतिया पैदा हागी। उदाहरण के लिय १८वी सदी म फ्रास मे व्याप्त सामती सबधो के साथ साथ एक पूजीवादी क्षेत्र भी मौजद था। अगर हम यह मान ले कि बुनियाद क्षेत्रो का कुल याग है तो उस समय के फ्रास की आर्थिक व्यवस्था को सामतवादी-पूजीवादी कहना होगा। यही कारण है कि किसी भी समाज के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन का ठोस विश्लेषण करने मे हमे विभिन्न क्षेत्रो के अस्तित्व तथा उनकी परस्पर क्रिया को ध्यान मे रखना चाहिये—और हम रखते है। लेकिन एक सरचना का दूसरी से अलग केवल यह देखकर किया जा सकता है कि उत्पादन के कौन से प्रमुख सबध उस सरचना की बुनियाद है।

किसी सैद्धातिक विश्लेषण मे विचाराधीन परिघटना का उसके शुद्ध रूप मे सामने रखना जरूरी होता है ताकि हम थोडी देर के लिये उन सभी पक्षा तथा सबधा को, जो उसके असली सार को ढाक देते हैं, आखा से ओझल कर दे। यद्यपि पूजीवादी सरचना अपन शुद्ध रूप म, जो उसकी धारणा के अनुकूल हो, नही पायी गयी, मार्क्स अपनी कृति 'पूजी' मे शुद्ध पूजीवाद के विकास के नियमो का अध्ययन करते ह, सभी गौण तथा अनुवर्ती तत्वा को किसी हद तक मानो नजरअदाज कर देत ह। इसी प्रकार सामाजिक सरचना के अपने सैद्धातिक विश्लेषण म हमे इसकी बुनियाद के रूप म उन सबधो को सामने लाना है, जिनके द्वारा इसका सार निर्धारित होता है। "सरचना" तथा "बुनियाद" धारणाए है, परतु व वज्ञानिक विविक्तिया हैं, जिनसे हमे इतिहास का अध्ययन उसकी समस्त विविधता म, उसके सारे सबधा तथा अतवर्ती स्थितिया म करने मे सहायता मिलती है।

उत्पादन के वे सबध, जो अपव्यवस्था के नये क्षेत्र के साथ पुरान समाज के भीतर उत्पन्न होते ह, अभी पूरे समाज की बुनियाद नही बन

हैं। नये उत्पादन सबधो का परिवर्तित होकर सरचना की बुनियाद बन जाना ही **सामाजिक क्रांति का आर्थिक अर्तय**, समाज के विकास म छलाग लगाना है।

समाजवादी उत्पादन सबध पूव के सभी उत्पादन सबधो के विपरीत पुराने समाज के भीतर एक क्षेत्र के रूप म उत्पन्न नही होते। यही कारण है कि पूजीवादी सरचना का कम्युनिस्ट सरचना मे परिवर्तन तथा उसके अनुकूल पूजीवादी बुनियाद की जगह समाजवादी बुनियाद की स्थापना के लिये एक विशेष क्रातिकारी काल की आवश्यकता होती है, जिसे **पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमणकाल** कहते हैं।

इस काल म पुरानी सामाजिक आर्थिक सरचना नष्ट कर दी जाती है और एक नई सरचना स्थापित की जाती है, जैसे पुरानी बुनियाद को तोडकर नई बुनियाद का निर्माण किया जाता है। यही कारण है कि इस काल को कोई विशेष सरचना नही समझना चाहिये। सक्रमणकाल की विशेषता पूजीवादी क्षेत्र के विरुद्ध समाजवादी क्षेत्र का सघप है, जो नई बुनियाद का अकुर है और जो मुख्य भूमिका अदा करता है। समाजवाद की विजय का अथ है कि समाजवादी क्षेत्र पूरे समाज की बुनियाद के रूप मे स्थापित कर लिया गया है। समाजवाद से कम्युनिज्म की ओर बढने म समाजवादी बुनियाद को विलुप्त नही किया जाता, बल्कि उसे और अधिक विकसित किया जाता तथा सुधारा जाता है, और समाजवादी उत्पादन सबधो को कम्युनिस्ट उत्पादन सबधो मे परिवर्तित कर दिया जाता है, और वही मुकम्मल कम्युनिस्ट सरचना की बुनियाद होते ह।

जिस तरह ककाल को समूचा शरीर नही कह सकते उसी तरह बुनियाद को समूची सामाजिक सरचना नही समझना चाहिये। सामाजिक सरचना के ढाचे का दूसरा आवश्यक सघटक, जसा कि हम कह चुके ह, ऊपरी ढाचा है जो ककाल पर गोश्त पोस्त चढाता है।

ऊपरी ढाचा विचारधारात्मक सबधो, विचारो तथा सस्थानो का कुल योग है, जो एक निश्चित आर्थिक बुनियाद से उत्पन्न होते है। उपरोक्त से उसका आगिक सबध होता है तथा वह उसपर सक्रिय प्रभाव डालता है।

ऊपरी ढाचे की बनावट अत्यत पेचीदा तथा विविधतापूण होती है। इसम सवप्रथम **विचारधारा** शामिल है, जिसका स्वरूप वर्गो म बटे समाज मे वर्गीय होता है। विचारधारा का काम व्याप्त आर्थिक सबधो को या तो

मज़बूत बनाना या नष्ट करना है, समाज के सामने जो सामाजिक कायभार हैं उनको पूरा करने मे सहायता करना है तथा युक्त सरचना के विचारधारात्मक सबधो की सष्टि करना ह। ऊपरी ढाचे के विचारधारात्मक उपादान विभिन्न सामाजिक आर्थिक सरचनाओ मे भिन्न हैं, केवल अतय ही नही वल्कि रूप मे भी। वग विभाजित समाज के उत्पन्न होने के बाद से वह राजनीतिक, वैधानिक तथा धामिक विचारो, दाशनिक सिद्धाता, नतिकता-सबधी नियमा, कला और सौंदयशास्त्र के विचारो की ऐतिहासिक तौर पर निश्चित समष्टि के रूप मे सामने आया है।

विचारधारात्मक रूपो से सामाजिक विरोधो को शनाख्त करने मे तथा उनके समाधान के उपाय और तरीके तय करने मे सहायता मिलती है। वे विभिन्न वर्गों के विरोधपूण हितो के सघप को प्रतिविवित करते हैं। आज के जमाने मे माक्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा तथा पूजीवादी विचारधारा का सघप सवहारा तथा पूजीपति वग के बीच, समाजवादी तथा पूजीवादी जगत के बीच वास्तविक विरोध का प्रतिविव है।

प्रत्येक वर्गीय सामाजिक सरचना मे शासक वग की विचारधारा हावी रहती है। चूकि भौतिक उत्पादन के क्षेत्र म इस वग का प्रभुत्व होता है इसलिए वह बौद्धिक उत्पादन साधना पर भी अधिकार कर लेता है। गिरजाघर तथा स्कूल, जन सचार साधन तथा सावजनिक शिक्षा शासक वग के हाथो मे होत हैं, जिससे "सामान्य रूप मे, जो लोग बौद्धिक उत्पादन के साधना से वचित हैं उनके विचार इसके अधीन होते हैं।"*

ऐतिहासिक विकास के दौरान मे सामाजिक विरोध ज्यो-ज्यो तेज होत जाते हैं, एक नई विचारधारा क्रातिकारी वर्गों के हितो के प्रतिविव के रूप मे उत्पन्न होती है। यह विचारधारा शासक वग की विचारधारा से लोहा लेती है और धीरे धीरे जनता म अधिकाधिक लोगा का समथन प्राप्त कर लेती है। जनता को अपने प्रभाव म लेकर नई विचारधारा एक ऐसी शक्ति बन जाती है, जो सामाजिक विकास के तत्काल आवश्यक कार्यों को हल करने के योग्य है।

समाजवाद के अतगत, जिसम कोई शापक वग नही होता, विभिन्न विचारधाराओ के अस्तित्व का कोई आधार नहा रह जाता। यही कारण

*का० माक्स तथा फ्रे० एगेल्स, 'जमन विचारधारा'

है कि समाजवाद ा अतगत यनानिक मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा धीरे धीरे सपूर्ण समाज की विचारधारा बन जाती है।

विचारधारा के अतिरिक्त ऊपरी ढाचे म साधारण विचारो, धारणाओं, भावनाओं तथा दृष्टिकोणो का कुल योग, जिसे सामाजिक मनोवृत्ति कहते ह, शामिल होता है। विचारधारा और मनोवृत्ति एक दूसरे को प्रभावित करते ह। इस प्रकार, पूजीवादी समाज म सर्वहारा वर्ग की मनोवृत्ति, उसकी साधारण चेतना एक ओर समाजवादी विचारधारा के प्रचार के लिये अनुकूल परिस्थिति पैदा करती है (क्योकि मजदूर वर्ग स्वत स्फूर्त ढग से समाजवाद के लिये सचेष्ट रहता है) और दूसरी ओर, अनेक पूर्वाग्रह, भ्रातिया तथा पूजीवादी विचार उसके मन म जमे होते हैं, जिनसे क्रातिकारी सघर्ष के दौरान म ही सर्वहारा वर्ग छुटकारा पाता है। समाजवादी विचारधारा सर्वहारा की बुद्धि के द्वारा अपनाई जाती है, तो पूजीवादी विचारधारा उसके पूर्वाग्रहो से लाभ उठाकर अपने पैर जमाती है। जहा शोषको की प्रभुताशाली विचारधारा का विरोध उत्पीडित वर्गों की स्वतत्र विचारधारा द्वारा नही किया जाता वहा पूर्वोक्त विचारधारा महनतकश जनता पर थोप दी जाती है एक तो स्वत स्फूर्त ढग से, वातावरण के माध्यम से और दूसरे जान-बूझकर शासक वर्ग तथा उसके विचारको राजनीतिज्ञो पत्रकारो इत्यादि की कोशिशो के जरिये। वैज्ञानिक मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा तब तक विजयी नही हो सकती तथा मेहनतकश जनता के मन मे इसका प्रभाव कायम नही हो सकता, जब तक कि पूजीवादी विचारधारा के विरुद्ध निर्मम सघर्ष न किया जाय।

वास्तविक जीवन मे मनुष्य एक दूसरे के साथ केवल उत्पादन सबध ही स्थापित नही करते बल्कि अन्य बहुत से सामाजिक सबध भी स्थापित करते ह। ऐसी हालत मे हम यह कैसे पता लगाये कि बुनियाद के सबध कौन ह तथा ऊपरी ढाचे के कौन?

सामाजिक सबध विविध रिश्ते हैं जो मनुष्यो म सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे इतिहासत निश्चित उत्पादन प्रणाली के आधार पर उनके कार्यकलाप के दौरान मे कायम होते ह। ये सबध विशेष प्रकार के सबध होते ह, जो कुल मिलाकर समाज को मनुष्य के सामाजिक सार का रूप प्रदान करते ह। इस तरह वे एक ओर पशुओ से उसके गुणात्मक भेद की विशेषता स्पष्ट करते, और दूसरी ओर यह बताते ह कि सबसे अलग

थलग व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करना असभव है। मनुष्य का अस्तित्व और विकास केवल एक सामाजिक प्राणी के रूप मे, अर्थात समाज के भीतर विविध सामाजिक सबधो की व्यवस्था के भीतर ही होता है। साथ ही यह ध्यान रखना चाहिये कि सामाजिक सबध व्यक्तियो के बीच सबधो से भिन्न है, यद्यपि मनुष्य सामाजिक प्राणियो की हैसियत से यह सबध कायम करते है। सामाजिक सबध, इस शब्द के सही अर्थ मे, मनुष्यो के विभिन्न सामाजिक समूहो, वर्गों के बीच तथा उनके भीतर के सबध है, राज्य के भीतर के सबध राज्यो तथा राष्ट्रो के सबध, इत्यादि।

लेनिन ने कहा कि इतिहास मे भौतिकवाद का मुख्य विचार यह है कि "सामाजिक सबध भौतिक तथा बौद्धिक मे बटे हुए है। अवरोक्त की हैसियत पूर्वोक्त पर केवल एक ऊपरी ढाचे की है, जो मनुष्यो की इच्छा और चेतना से स्वाधीन, मनुष्य द्वारा अपना अस्तित्व कायम रखने के लिये उसके कार्यकलाप के रूप (परिणाम) के तौर पर उत्पन्न होते है।"* **विचारधारात्मक सबध** भौतिक, आर्थिक सबधो से भिन्न है क्योकि वे परवर्ती, व्युत्पादित है और वे पहले मनुष्यो के मन मे होकर ही उत्पन्न हो सकते है। इसका अर्थ यह है कि यद्यपि वे भौतिक सबधो से निर्धारित होते तथा सर्वथा उनपर निर्भर करते है, उनकी उत्पत्ति युक्त आर्थिक सबधो को प्रतिबिबित करनेवाले निश्चित विचारो के अनुकूल होती है। विचारधारात्मक सबध प्रत्येक सरचना मे उत्पन्न होते है क्योकि उनकी आवश्यकता उसकी आर्थिक बुनियाद को कायम तथा सुरक्षित रखने और मजबूत बनाने के लिये होती है। ये सबध अनिवार्यत वर्गीय सरचनाओ की अर्थव्यवस्था द्वारा उत्पन्न होते है और उनका स्वरूप तथा अतर्य सर्वथा बुनियाद पर निर्भर करता है। लेकिन मनुष्य इन सबधो मे चेतन प्रवेश करते है। उदाहरण के लिये राजनीतिक सबधो का विचारधारात्मक सबध इस तथ्य से प्रकट होगा कि यद्यपि वे किसी युक्त सरचना मे वर्गों के आर्थिक प्रतिरोध को व्यक्त करते है, फिर भी उनकी उत्पत्ति वर्गीय आत्मचेतना के आविर्भाव के साथ होती है। पूजीपति वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा का राजनीतिक सघर्ष एक क्रातिकारी पार्टी के बिना, मजदूर वर्गीय आदोलन मे क्रातिकारी सिद्धात के समावेशन के बिना, जनता मे राजनीतिक चेतना मे लगातार वद्धि के

---

*ब्ला० इ० लेनिन, '"जनता के मित्र" क्या है और वे सामाजिक-जनवादियो के विरुद्ध कैसे लडते है?'

विना विकसित नहीं हो सकता। परिणामस्वरूप, विचारधारात्मक संबंध केवल विचारों के परस्पर संबंध नहीं बल्कि निश्चित विचारों के मुताबिक आदमियों के बीच के संबंध हैं और ये प्रत्येक सामाजिक संरचना के अत्यावश्यक तत्व तथा इसके ऊपरी ढांचे का भाग होते हैं।

समाज की विचारधारा तथा उसके रूपों के अनुसार प्रत्येक सामाजिक आर्थिक संरचना में केवल विचारधारात्मक संबंध ही नहीं, बल्कि विभिन्न संस्थाए और संगठन भी उत्पन्न होते हैं। इनमें राज्य तथा न्यायिक संस्थाए, राजनीतिक पार्टियां, ट्रेड-यूनियनें, गिरजा तथा अन्य धार्मिक संस्थाए, सांस्कृतिक शैक्षणिक तथा वैज्ञानिक संस्थान तथा संगठन, आदि होते हैं।

वर्गीय समाज में राज्य ऊपरी ढांचे का प्रधान संस्था है, जो उसके लिए निर्णायक हैसियत रखती है और जिसको अर्थव्यवस्था में प्रभुताशाली वर्ग ऊपरी ढांचे में भी प्रभुताशाली बनने के लिए इस्तेमाल करता है।

एंगेल्स ने लिखा है "किसी मुकत समाज के आर्थिक संबंध अपने आप को सर्वप्रथम हितों के रूप में प्रस्तुत करते हैं।" *

ज्यों-ज्यों हित निर्धारित होते हैं तथा वर्गीय संघर्ष विकसित होता है, त्यों-त्यों आम वर्गीय हितों की तथा विरोधी वर्गों के हितों से उनके प्रतिरोध की, तथा आम वर्गीय हितों की अभिव्यक्ति, रक्षा और बचाव करनेवाली संस्थाओं तथा संगठनों की आवश्यकता की चेतना उत्पन्न होती है।

फलस्वरूप यद्यपि ऊपरी ढांचे में संस्थाओं की स्थापना मनुष्यों की चेतना पर, सामाजिक विचारों पर निर्भर करती है, मगर ये विचार आराम कुर्सी पर बैठकर चिंतन करने का फल नहीं और न संस्थाओं की स्थापना स्वच्छिक राजीनामा या सामाजिक करार का परिणाम है।

अंतर्विरोधी संरचनाओं का ऊपरी ढांचा, अपने समस्त विचारों, विचारधारात्मक संबधों तथा संस्थाओं समेत वर्गों के परस्पर संघर्ष का परिणाम तथा उसका उपकरण है।

ऊपरी ढाचे की संस्थाओं की एक खास बात यह है कि वे कवल विचारधारात्मक ही नहीं, बल्कि भौतिक शक्ति भी हैं। चुनांचे, राज्य के पास सत्ता के भौतिक उपकरण, जैसे सेना, पुलिस, कारागार आदि होते हैं, जिन्हें वह अपना काम पूरा करने तथा समाज को शासक वर्ग के हितों

---

*फ़्रे० एंगेल्स, मकानों की समस्या

और उसकी इच्छा के आगे चलाने के लिये इस्तेमाल करता है। विभिन्न संगठन, जैसे राजनीतिक पार्टियां, संगठन, समान उद्देश्य, अनुशासन आदि की भौतिक एकता द्वारा एकतावद्ध होते है, जिसके चलते वे बडी संख्या मे लोगों की, वर्गों की क्रियाकलाप का निदेशन करके समाज के समक्ष जो कार्य हैं उनका समाधान करते है। लेनिन ने कहा है कि **सत्ता के संघर्ष मे सर्वहारा के पास संगठन के सिवा और कोई हथियार नहीं है।** इस प्रकार उन्होंने एक भौतिक शक्ति के रूप मे इसके विशाल महत्व पर जोर दिया है।

विचारधारात्मक संबंध, जिनकी अभिव्यक्ति समाज मे विभिन्न सामाजिक समूहों के निश्चित कार्यों द्वारा होती है, तथा उनसे संबद्ध संस्थाएं सामाजिक जीवन का एक विशेष क्षेत्र – **सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र** है। यह बात कि ऊपरी ढांचे की संस्थाओं का एक भौतिक पक्ष होता है, उन्हें यह योग्यता प्रदान करती है कि वे बुनियाद पर सामाजिक अस्तित्व पर निश्चित विचारों के प्रभाव के संवाहक का काम करें, और इस प्रकार इन विचारों को एक भौतिक शक्ति बना दें। सामाजिक जीवन के इस क्षेत्र के अस्तित्व के बिना विचारों की हैसियत इच्छा से अधिक नही होगी और समाज के विकास को वे प्रभावित नही कर सकेंगे। केवल लोगों के कार्यकलाप द्वारा, ऊपरी ढांचे की विभिन्न संस्थाओं तथा संगठनों के कार्यकलाप द्वारा ही सामाजिक विचारों में यह क्षमता पैदा होती है कि वे समाज के जीवन तथा विकास को प्रभावित कर सकें।

ऊपरी ढांचे की आवश्यकता निम्नलिखित बातों से निर्धारित होती है, जो विभिन्न संरचनाओं मे समान रूप से पाई जाती है। पहले, जब मनुष्य आवश्यक भौतिक संबंधों को स्वीकार करते तथा अपने आपको वस्तुनिष्ठ नियमों की सक्रिया के अधीन करते हैं, तो वे किसी न किसी तरीके से इन नियमों के तकाजे चेतना तथा इच्छा से सुसज्जित प्राणियों की हैसियत से पूरे करते हैं। दूसरे शब्दों में, सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ तकाजों और नियमों को मनुष्य के कार्यकलाप द्वारा पूरा होने के लिये किसी प्रकार उनमे प्रतिबिंबित होना चाहिये, अर्थात, उनके मन से गुजरना चाहिये तथा उनके कार्यकलाप के वैचारिक अभिप्रेरणा के रूप मे उत्पन्न होना चाहिये। यही कारण है कि विचारधारा और तदनुरूपी सामाजिक संबंध तथा संस्थाएं, जिनसे किसी युक्त संरचना का ऊपरी ढांचा बनता है, अनिवार्यतः भौतिक संबंधों के आधार पर उत्पन्न होते हैं। दूसरे, समाज के समक्ष जो सामाजिक

कायभार होते ह उन्हें विशाल जन समूह ही पूरा कर सकते ह, वर्गीय समाज मे वग तथा विभिन्न सामाजिक समूह, जिनके सयोजन और सगठन के लिय भी विचारधारा की तथा विभिन्न प्रकार की सस्थाग्रा, यानी ऊपरी ढाचे की आवश्यकता हाती है।

ऊपरी ढाचा एक ऐसी परिघटना है, जो अनिवाय रूप स सभी सामाजिक सरचनाओ मे मौजूद होती है और हर सरचना म जिसका अलग विशिष्टताए होती हैं। ऊपरी ढाचा उन सामाजिक शक्तिया म है, जिनकी परस्पर क्रिया के फलस्वरूप सामाजिक सरचनाग्रा का विकास होता है और जिनके प्रभाव का अध्ययन करना ऐतिहासिक प्रक्रिया की किसी भी छानवीन के लिय आवश्यक है।

दास-स्वामी, सामतवादी तथा पूजीवादी ऊपरी ढाचे अपनी अपनी सरचनाग्रा म प्रभुत्वशाली थ। लेकिन हर अतविरोधी सरचना के ऊपरी ढाचे म ऐसे विचार, सस्थाए और सगठन भी होत ह, जो उत्पीडित वर्गों के दृष्टिकोण से बुनियाद को प्रतिबिबित करत ह और जा प्रभुत्वशाली ऊपरी ढाचे का भाग नही होत। सच तो यह है कि अवरान्त उनको कुचलन या कम स कम, उनके प्रभाव के क्षेत्र को सीमित करना चाहते है। व उक्त बुनियाद को मजबूत करना नही, बल्कि उसको नष्ट करना तथा मूल रूप स परिवर्तित करना चाहते है। व नकारात्मक तत्व है, जिन्ह स्वय उस सरचना के विकास न जन्म दिया है। प्रत्येक सरचना का विकास हाता ह और केवल उसकी अर्थव्यवस्था ही म नहा, बल्कि ऊपरी ढाचे म भी अतीत क अवशेष तथा भविष्य क अकुर मौजूद होत ह। पूजीवाद के अतगत इस प्रकार क अकुर मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचार, कम्युनिस्ट पार्टिया तथा मजदूर वर्ग के अन्य क्रातिकारी सगठन ह, जो पूजीवादी ऊपरी ढाचे का भाग नहा ह। समाजवाद क अतगत अतीत क इस प्रकार क अवशेष ह धम और चच, जा समाजवादी ऊपरी ढाच का भाग नही ह।

अतविरोधी सरचनाग्रा क प्रभावी ऊपरी ढाच क विपरीत, जिसका सबध शोषक वर्गों क हिता स हाता है, समाजवादी समाज का ऊपरी ढाचा स्वय महनतकश जनता क हिता का व्यक्त करता है और इस प्रकार समाजवादी बुनियाद का कायम रखन और उसकी रक्षा करन क लिय एक उपकरण का काम दता है स्वय जनता क हिता म इसका बदलन और विकसित करन क एक शक्तिशाली उपकरण का।

समाज के ढाचे के अन्य तत्व

उत्पादन प्रणाली, बुनियाद तथा ऊपरी ढाचा प्रत्यक सामाजिक सरचना के ढाचे के सबसे आवश्यक तत्व ह। इनसे प्रत्यक सामाजिक सरचना के भौतिक आधार, आर्थिक गठन, सामाजिक-राजनीतिक तथा बौद्धिक बनावट की विशेषता जाहिर हाती है। लेकिन इनके अतिरिक्त समाज म ढाचे के अय तत्व भी हैं, जिनपर विचार किय बिना किसी सामाजिक व्यवस्था का सद्धातिक विश्लेषण, चाह कितना ही सामान्य क्या न हो, मुकम्मल नही हो सकता।

ढाचे के तत्वा की विविधता को छात कर अलग अलग करने के लिये समाज के विश्लेषण म कम स कम दो पहलुओ को स्पष्ट करना जरूरी है। पहले, समाज, सामाजिक सरचना के प्रति यह दृष्टिकोण कि वह विभिन्न सामाजिक सस्थाओ, सामाजिक जीवन के विभिन्न परस्पर सबधित पक्षो, सस्थानो, सगठनो, इत्यादि की एक वस्तुनिष्ठ व्यवस्था है जिसम इन सबो को एक पेचीदा सामाजिक शरीर के अगो के रूप मे देखा जाता है। इस दृष्टिकोण से किसी सरचना के ढाचे का विश्लेषण करने म उत्पादन, बुनियाद और ऊपरी ढाचे के अतिरिक्त, जिनपर हमने अभी विचार किया, अय तत्व जो सामने आते ह, वे ह **जीवन पद्धति, परिवार, विद्यालय, भाषा, सामाजिक सगठन**, जसे वनानिक सस्थाए, क्रीडा सस्थाए, आदि।

दूसरे, समाज के प्रति यह दृष्टिकोण कि वह मनुष्यो की परस्पर क्रिया की पैदावार है, मनुष्यो के परस्पर सबधो का कुल योग, उनके कायकलाप का परिणाम। इस दृष्टिकोण से ढाचे के जो तत्व सामने आते हैं, वे हैं **इतिहास मे मूलबद्ध मानव समुदाय** (कबीला, जाति, राष्ट्र), वग, पेशावर समूह और सामान्य रूप म सामाजिक समूह तथा उनके सबध (देखिये पाचवा अध्याय)। वास्तविक जीवन म सामाजिक ढाचे के ये दोनो पहलू एक दूसरे से होकर गुजरते ह और बिलकुल अलग थलग नही रहते।

सामाजिक ढाचे के प्रत्येक तत्व की खास विशेषताओ को समझने के लिय इन बातो पर ध्यान देना चाहिये

१ युक्त सामाजिक तत्व की विशेषताए,

२ सामाजिक आवश्यकता का स्वरूप, जिससे वह तत्व उत्पन्न होता है, उसके सामाजिक काय,

३ सामाजिक व्यवस्था के भीतर युक्त तत्व का स्थान और उत्पादन, बुनियाद, ऊपरी ढाचे तथा सरचना क ढाचे क अन्य तत्वा से उनके सबध का स्वरूप।

अब इनम से कुछ तत्वा पर हम विचार कर।

जीवन पद्धति भौतिक तथा बौद्धिक पदार्थों के व्यक्तिगत उपभोग का क्षेत्र है काम के समय के बाहर प्रतिदिन व्यक्तिगत जीवन बिताने का क्षेत्र। यह मानव सबधो का एक विशेष क्षेत्र भी है, जिनका ताल्लुक उपभोग की प्रक्रिया तथा इस प्रक्रिया की प्रबध सेवा से है।

प्रतिदिन जीवन विताने के क्षेत्र की रचना सामाजिक जीवन के एक विशेष क्षेत्र के रूप मे होती है क्योकि हर व्यक्ति के लिये जरूरी होता है कि अपने काम के दौरान म उसने जो शारीरिक तथा बौद्धिक ताक्त लगाई है, उसका बहाल करे। यद्यपि यह व्यक्तिगत उपभोग का क्षेत्र है, मनुष्य सामाजिक प्राणिया के रूप म उपभोग करते हैं। यही कारण है कि इस क्षेत्र मे भी मनुष्या के विविध प्रकार के सबध कायम होत ह, परिवार के भीतर और विभिन्न परिवारा मे, पडोसियो के सबध तथा ऐसे सबध, जिनका ताल्लुक उपभोग की पदार्थों के सयुक्त प्रयोग से है, आदि।

किसी भी समाज म प्रतिदिन जीवन की लाक्षणिक विशेषताए उत्पादन के स्तर सस्कृति तथा अन्य बातो पर निभर करती ह। इस पर वर्गीय भेदो का भी प्रत्यक्ष प्रभाव पडता है। प्रतिदिन जीवन की बहुतरी विशेषताए राष्ट्रीय विशिष्टताओ, भौगालिक स्थिति तथा ऐतिहासिक परपराओ से निर्धारित होती ह। प्रतिदिन के जीवन पर सामाजिक चेतना के विभिन्न रूपा जैसे धम, कला, नैतिकता आदि का भी प्रभाव पडता है। प्रतिदिन जीवन के क्षेत्र मे मूल्यो, प्रतिमाना तथा नियमा की विभिन्न प्रणालिया बनती हैं और सामाजिक मनोवत्ति की कुछ विशेषताओ का निरूपण होता है। यह क्षेत्र भी उत्पादन तथा सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओ को प्रभावित करता है। आजकल एक प्रवत्ति यह है कि बढती हुई सख्या मे लोगा को सेवाओ के क्षेत्र मे काम पर लगाया जाये। यह बात भली भाति सिद्ध हो चुकी ह कि कारखाना और कार्यालयो मे उत्पादनशीलता बडी हद तक इस पर निभर करती है कि प्रतिदिन की सेवाओ और सुविधाओ का प्रबध क्याकर किया जाता है सेवाओ के क्षेत्र मे जो लोग काम करते ह उनकी उत्पादनशीलता कैसी है।

ज्यो-ज्या समाज विकसित होता है विशिष्ट उद्योगो की एक पूरी व्यवस्था कायम हा जाती है ताकि प्रतिदिन के जीवन के लिए सेवाग्रो का प्रवध किया जा सके, और इसका मतलब होता है घरलू उपकरणा का विकास तथा प्रतिदिन की सेवाग्रा का प्रवध करने के लिये अधिकाधिक सख्या म लोगा का काम पर लगाना। प्रतिदिन सेवाग्रा के क्षेत्र के विकास मे **दो** बिलकुल प्रत्यक्ष तथा **विरोधी प्रवृत्तिया** दिखाई देती है। एक ओर प्रतिदिन के जीवन का सामाजीकरण करने की प्रवृत्ति है, समाज प्रतिदिन की आवश्यक्ताए पूरी करने के लिये आधुनिक प्राविधिक उपलब्धिया का प्रयोग करता है (सावजनिक भोजनालय, शिशु कल्याण सस्थाए, सावजनिक धुलाईघर, आदि)। दूसरी ओर प्रतिदिन के जीवन के व्यक्तीकरण की प्रवत्ति है मनुष्य इस क्षेत्र मे भी अपन व्यक्तित्व का प्रदशन करना तथा अपनी व्यक्तिगत अभिरुचि, पसद तथा जरूरतो को पूरा करना चाहता है।

समाजवाद इन दोनो प्रवत्तिया को विकसित करने और धीरे धीरे दाना के ऐसे युक्ततम सयोजन की ओर वढने का प्रयत्न करता है, जिसके अतगत, एक ओर प्रत्येक व्यक्ति को उपभोग के सामाजिक उपाया के चलते प्रतिदिन के चल्हे चक्की के झझट से अधिक से अधिक छुटकारा मिल जायेगा और दूसरी आर उस अपनी जरूरतो, अभिरुचियो और शौक को पूरा करने का अवसर मिलेगा। यही वह आधार है, जिसपर प्रतिदिन जीवन के क्षेत्र मे कम्युनिस्ट सवधा का भी विकास होगा। प्रतिदिन जीवन के कम्युनिस्ट सामाजीकरण की प्रक्रिया को "वारिक नुमा कम्युनिज्म" के भोडे विचारा से कोई सवध नही है।

परिवार। परिवार एक ऐसी सस्था है, जिसे हम प्रत्यक समाज मे पाते है और जो पति-पत्नी के ववाहिक सवधो पर आधारित है (यहा हम आदिम समाज के यूथ विवाह की चर्चा नही कर रहे ह)। परिवार ऐसे लोगा का समूह है, जिन्ह ववाहिक सवध (पति-पत्नी) तथा रक्त सवध (मा-वाप और वच्चे, भाई और वहन) एकतावद्ध करते है। एक और वात, जा लोगो के इस समूह को एक ही परिवार का सदस्य बनाती है यह है कि वे सव एक ही घर म रहते और प्रतिदिन का जीवन साथ वसर करते ह।

परिवार की सस्था की उत्पत्ति और उसके कायम रहने का मुख्य कारण **मानवजाति के पुनजनन तथा बच्चो को पालने की आवश्यक्ता है।** परतु

मानव समाज म ये काय सामाजिक ह, और यही कारण है कि प
के रूप और इसकी विकास प्रणाली उस सामान्य नियम के अनुसार निध
होती है, जिनके द्वारा सामाजिक परिघटनाओ, आर्थिक स्थितिया
आवश्यकताओ का विकास नियत्रित होता है। जस, उदाहरण के लि
व्यक्तिगत स्वामित्व की उत्पत्ति के साथ यह जरूरत हुई कि सपत्ति का
उत्तराधिकारी हो। उत्पादन म चूकि मुख्य भूमिका पुरुष अदा करत
इसलिय उत्तराधिकार का सिलसिला बाप से बेटे की ओर चला। इ
एकपत्निक या बहुपत्निक के परिवार म सक्रमण निर्धारित हुआ। इस दूस
स्थिति म भी उत्तराधिकार बाप स बेटे की ओर चला। आगे चलकर न
नारी के सबधो के स्वरूप पर, परिवार के रूप पर अन्य सामाजि
ऐतिहासिक बातो का भी प्रभाव पडा।

परिवार का सामाजिक स्वरूप इस बात म भी व्यक्त होता है f
परिवार की उत्पत्ति तो मानव जाति के पुनजनन की आवश्यकता के कार
हुई, परतु समाज के इतिहास म इसे विविध प्रकार को सामाजिक क्रिया
अदा करनी पडी ह। परिवार वह जगह है जहा इसके सदस्य साथ मिलक
उपभोग किया करते ह और इसके लिय आवश्यक गृहस्थी का प्रबध करते
ह। साथ मिलकर उपभोग की सम्भावना का यह मतलब है कि आमदनी
के निश्चित स्रोत है, जिसकी रकम तथा कमाने का तरीका समाज म व्याप्त
उत्पादन के स्तर तथा उत्पादन सबधो पर निभर करता है। जहा समाज
मे निजी स्वामित्व की प्रभुता हो, वहा बडे तथा छोटे सपदा-स्वामियो के
परिवारो का काय धन का सचय तथा रक्षा और उसको उत्तराधिकारियो
को विरासत म दे जाना है।

किसानो और दस्तकारो मे परिवार सीधे सीधे उत्पादक इकाई का
रूप धारण करता है। यह काय विशेषकर छोटे पमाने की निजी स्वामित्व
के आधार पर विकसित होता है।

परिवार वह जगह भी है, जहा बच्चो का पालन पोषण किया जाता
है और जहा एक पीढी अपना अनुभव, अपने बौद्धिक मूल्य, अपने
नतिक नियम, अपनी परपरागत धारणाए आदि आनेवाली पीढी के हवाले
कर जाती है।

परिवार के सारतत्व और सामाजिक कार्यों की यह सामान्य तथा बडी
हद तक अमूर्त्त व्याख्या का एक निश्चित कायपद्धतिमूलक महत्व विभिन्न

ऐतिहासिक परिस्थितियो मे परिवार की सस्था का विश्लेपण करने के लिये है, मगर परिवार का गहरा अध्ययन करने के लिये जरूरी है कि इसका विश्लेपण इन परिस्थितियो के निकट सवध म तथा परस्पर निभरता की हालत में किया जाये।

परिवार समाज मे व्याप्त सामाजिक सबधो का प्रतीक है। परिवार के भीतर के सवधा पर युक्त समाज के आर्थिक, कानूनी, नतिक तथा धामिक सवधो की छाप होती है और यह छाप इतनी गहरी होती है कि वास्तव मे हर सामाजिक सरचना मे एक प्रकार का परिवार होता है, जो केवल उसकी विशेपता होती है।

समाज के ढाचे मे परिवार का स्थान निर्धारित करने के लिये इस तथ्य पर विचार करना जरूरी है कि यह एक विशेप सामाजिक सस्था है, जिसका स्वय अपना एक पेचीदा ढाचा है, जिसमे रक्त सबध, भौतिक-आर्थिक सवध तथा बौद्धिक सवध शामिल हैं।

मनुष्य परिवार मे बनता है, परिवार मे ही उसके व्यक्तिगत गुणा तथा सबधा, जस प्रेम, वधुत्व, एक दूसरे की देखरेख, नतिक जिम्मेदारी, इत्यादि का भी निरूपण होता है। विश्व साहित्य की कुछ चिरस्मरणीय कृतिया मे उस निमम सघप का चित्रण किया गया है, जो दरअसल मान वीय भावनाओ तथा सबधो की उत्पत्ति और विरोधपूण समाजा की पाशविक सामाजिक स्थितिया के बीच जारी था, जिनके कारण उनकी पूरी तथा सवतोमुखी अभिव्यक्ति नही होने पाई और जिन्होने उनको विकलाग और विकृत कर दिया। समाजवाद के अतगत धनलोलुप तथा अन्य घटिया स्वार्थों पर वैवाहिक तथा पारिवारिक सवधा की निभरता अव आखिरकार दूर की जाने लगी है। कम्युनिस्ट सामाजिक सवधा के विकास के कारण वे स्थितिया पैदा होने लगी हैं, जो मनुष्या के वीच सच्चे मानवीय सवधो के, जिनम नर-नारी के तथा पीढिया के सवध भी शामिल हैं, निरूपण तथा पूण अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक है।

भापा। सामाजिक जीवन का एक आवश्यक तत्व भापा है, जिसके विना समाज का अस्तित्व नही हो सकता।

भापा सचार के एक माध्यम के रूप म, **विचारो के आदान प्रदान के एक उपकरण** के रूप मे समाज के काम आती है। भापा, चाहे मौखिक हो या लिखित, मनुष्य के विचारा को एक भौतिक आवरण

प्रदान करती है, उन्हें संकेतों की एक निश्चित व्यवस्था से जोड़ती है और इस प्रकार उन्हें एक दूसरे के लिये बोधगम्य बनाती है। मार्क्स और एंगेल्स ने कहा है कि भाषा "विचार का प्रत्यक्ष तथ्य" है, कि वह "व्यावहारिक चेतना है, जिसका अस्तित्व अन्य लोगों के लिये भी है, और केवल इस कारण ही वास्तव में उसका अस्तित्व मेरे लिये भी है।"*

भाषा की उत्पत्ति उत्पादन की प्रक्रिया के दौरान में मनुष्यों के एक दूसरे से संचार करने की जरूरत से हुई। वह मानवजाति के अनुभवों तथा उसकी सांस्कृतिक उपलब्धियों का भंडार है। यही कारण है कि भाषा एक आवश्यक माध्यम है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति जीवन की सामाजिक स्थितियों से, संस्कृति से संसर्ग स्थापित करता है। व्यक्ति मानस का निरूपण भाषा में दक्षता प्राप्त करने के दौरान में तथा उसके आधार पर ही होता है। श्रम तथा भाषा ने मनुष्य को मानव बनाया और आज भी वे प्रत्येक व्यक्ति के सामाजीकरण के आवश्यक तथा स्थायी उपकरण हैं।

चूंकि भाषा उतनी ही पुरानी है जितनी स्वयं चेतना तथा उससे सीधा संबंध रखती है, इसलिये इसका स्वाभाविक **स्थान सामाजिक जीवन के बौद्धिक क्षेत्र में है।** परंतु चूंकि इसका अस्तित्व, विकास तथा खास विशेषताएं आर्थिक बुनियाद से निर्धारित नहीं होतीं, इसलिये **भाषा को ऊपरी ढांचे में नहीं रखा जा सकता।** इस विचार का मौलिक महत्व यह है कि वे सारी परिघटनाएं, जो ऐतिहासिक विकास को प्रभावित करती हैं, "बुनियाद" तथा "ऊपरी ढांचे" की परिधि में समेटी नहीं जा सकतीं। समाज विविधतापूर्ण है। समस्त सामाजिक परिघटनाओं की खास विशेषताओं तथा अन्य सामाजिक परिघटनाओं से उनके परस्पर संबंधों के स्वरूपों का गहन विश्लेषण समाज के जीवन और विकास में उनकी भूमिका की व्याख्या सैद्धांतिक और व्यावहारिक दृष्टि से परम महत्वपूर्ण है। प्रत्येक सामाजिक परिघटना की ओर हमारा रुख उसकी खास विशेषताओं से निर्धारित होता है। सामाजिक परिघटनाओं की खास विशेषताओं पर विचार न करने के कारण गंभीर गलतियां होती हैं, केवल सिद्धांत में ही नहीं बल्कि व्यवहार में भी। चुनांचे यदि हम भाषा को ऊपरी ढांचे में रख दें तो हमें कहना पड़ेगा कि पुरानी बुनियाद पर

---

*का० मार्क्स और फ्रे० एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा'

उत्पन्न भाषा को क्रांतिकारी ढंग से नष्ट कर दिया जाये तथा नई बुनियाद के अनुकूल एक भाषा स्थापित की जाये। लेकिन यह गलत ही नहीं असम्भव भी होगा। मनुष्य अपनी भाषा का जो संचार का साधन है छोड नहीं सकते। ऊपरी ढांचे के विपरीत भाषा किसी एक बुनियाद से नहीं, बल्कि दीर्घ काल में इतिहास के पूरे विकासक्रम से उत्पन्न होती है और मनुष्यों के बीच, चाहे समाज में उनका जन्म किसी भी वर्ग में हुआ हो, संचार के एक माध्यम के रूप में निरूपित होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भाषा का विकास नहीं होता। संसार की हर वस्तु की तरह इसका भी विकास होता है, लेकिन जिन नियमों के अनुकूल होता है, वे बुनियाद तथा ऊपरी ढांचे के विकास के नियमों से भिन्न हैं। भाषा प्रत्यक्ष प्रतिबिंब है उत्पादन, विज्ञान, संस्कृति तथा सामाजिक-राजनीतिक जीवन के विकास का, अर्थात उन परिवर्तनों का, जो सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहे हैं। भाषा निरंतर नये शब्दों, मुहावरों से समृद्ध होती रहती है जबकि अप्रचलित शब्द छटते जाते हैं। व्याकरण तथा भाषा के अन्य उपादान भी परिवर्तनशील हैं।

सामाजिक क्रांतियां, जो सामाजिक जीवन में मौलिक परिवर्तन ले आती हैं, स्वभावतः ही भाषा पर भी ज़बरदस्त प्रभाव डालती हैं। लेकिन उनके चलते यह नहीं होता कि एक भाषा को हटाकर दूसरी भाषा उसका स्थान ले ले।

अतः समाज के ढांचे के तत्वों के अपने विश्लेषण का खुलासा करते हुए, हमें एक बार फिर इस बात पर जोर देना चाहिये कि सामाजिक-आर्थिक संरचना एक अत्यंत पेचीदा और अनेक पहलूदार सामाजिक व्यवस्था है। ऐतिहासिक प्रक्रिया की सही समझ प्राप्त करने के लिये जरूरी है कि सामाजिक जीवन के हर पहलू को, सारी सामाजिक परिघटनाओं को उनकी परस्पर क्रिया में ध्यान में रखा जाये। संरचना एक ऐसा प्रवर्ग है, जो हमें सामाजिक परिघटनाओं की जटिल भूलभुलैया को समझने में सहायक होता और विधिगत भूमिका ठीक इसी लिये अदा कर सकता है कि वह समाज को, उसकी अभिव्यक्तियों की सारी विविधता समेत, एक संपूर्ण वस्तु मानता है। यदि कोई परिघटना इस प्रवर्ग के अंतर्गत में नहीं शामिल की जायेगी तो किसी युक्त समाज के विश्लेषण

म उस नजरअदाज करना होगा, और ऐसा करने से वास्तविक समाज का सही अन्दाजा नहीं हो सकेगा।

किसी वस्तु का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि उस पर सर्वतोमुखी दृष्टि डाली जाये और उसके समस्त पहलुओं, संबंधों और मध्यस्थताओं समेत उसका अध्ययन किया जाय। द्वंद्वात्मक विज्ञान सर्वतोमुखी दृष्टिकोण की माग करता है। हम संपूर्ण रूप में तो कभी इसकी पूर्ति नहीं कर सकेंगे, यानी, हम कभी भी किसी वस्तु या परिघटना के सभी संबंधों और रिश्तों को पूर्णतः प्रदर्शित नहीं कर पायेंगे, परंतु सर्वतोमुखी होने की माग ही इसके लिये काफी है कि हम गलती से बचायें और किसी वस्तु के बारे में आज जो हमारी सापेक्ष धारणाएं हैं उन्हें परम समझने से जिसका मतलब पुराशव का दांत फिरना है, रोके रखे।

* * *

आधुनिक पूंजीवादी समाजशास्त्र भी सामाजिक ढाचे का विश्लेषण करने में व्यवस्थात्मक तथा संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण का व्यापक प्रयोग करते हैं। मगर पूंजीवादी समाजविद समाज के ढाचे तथा उसके प्रधान पक्षों के परस्पर संबंध की बाबत मार्क्सवादियों से मूलतः भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हैं।

पूंजीवादी समाजशास्त्र में सामाजिक ढाचे के बारे में सबसे प्रचलित सिद्धांत, जैसा कि हम कह चुके हैं, टाल्काट पारसन्स तथा राबर्ट मर्टन का संरचनात्मक कार्यात्मक सिद्धांत है। इस सिद्धांत का मुख्य विचार यह है कि समाज एक ससक्त व्यवस्था है, जिसके ढाचे के हर तत्व को उसके संतुलन तथा संस्थिति को कायम रखने में एक निश्चित कार्य पूरा करना है।

पारसन्स के अनुसार कोई भी सामाजिक व्यवस्था मनुष्यों से मिलकर बनती है, जो व्यक्तियों की हैसियत से काम करते हुए निश्चित उद्देश्यों को पूरा करना चाहते हैं, आसपास की वस्तुओं तथा परिघटनाओं का प्रतिकार करते हैं और परिस्थिति तथा अपने बारे में चेतन हैं। व्यक्तियों की क्रियाओं से उनकी परस्पर क्रियाओं तथा संबंधों की व्यवस्था यानी सामाजिक व्यवस्था बनती है। उनके अनुसार 'समाज एक इस प्रकार

की सामाजिक व्यवस्था है, जिसके भीतर एक स्वावलवी व्यवस्था के रूप म अपन अस्तित्व को कायम रखन की सभी आवश्यक पूवापक्षित वस्तुए मौजूद हैं।* सरचनात्मक-कार्यात्मक मत के विचारक कहत ह कि किसी सामाजिक व्यवस्था के समाकलन के पीछे जो तत्व काम कर रहे हैं, व मूल्य है। किसी सामाजिक व्यवस्था म स्वीकृत **प्रतिमान** तथा **मूल्य** मनुष्य को आचरण के आदश मापदड मुहैया करते हैं, जिनको मानकर उसे चलना चाहिए और इस प्रकार व्यवस्था के भीतर सस्थिति सुनिश्चित करनी चाहिये। अपने कामा द्वारा मनुष्य सामाजिक व्यवस्था की कृत्यकारिता मे भाग लेता है, जिस (व्यवस्था) के भीतर उसे अपनी हैसियत के अनुसार एक निश्चित भूमिका अदा करनी है। उसे अपनी भूमिका उन लोगो की आशाओ के अनुसार अदा करनी हैं, जो उसके चारा ओर हैं, यानी उसका आचरण ऐसा होना चाहिये कि व्यवस्था की नियमित कृत्यकारिता को बढावा मिले। इसी लिये पारसन्स मूल्या, प्रतिमानो, भूमिकाओ आदि को किसी सामाजिक व्यवस्था के मुख्य उपादान मानते हैं।

पारसन्स के सिद्धात से जाहिर होता है कि व्यवस्थात्मक तथा सरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण के लाभजनक विचारो से किस प्रकार काम लेकर पूजीवादी समाजशास्त्र पूजीवाद का प्रतिपालन कर रहा है, जिस कारण इस दृष्टिकाण का सारतत्व ही विकृत हुआ जा रहा है। मामला यह है कि समाज के ढाचे की वाता के पीछे, चाहे उसका ठोस रूप कुछ ही क्या न हो, वास्तव म ठोस पूजीवादी समाज रहता है, जिसकी "सस्थिति" का सिद्धात यह वायवादी विचारक निरूपित करना चाहते हैं। *हम यहा यह भी कह दे कि पारसन्स सिद्धात को साधारणत* रूढिवादी तथा पक्षपाती माना जाता है। पारसन्स समाज के ढाचे को विकास के प्रसग से बाहर मानते ह, जिसमे कोई गतिशीलता नही है। उनके सरचनात्मक दृष्टिकोण का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से जोडा नहीं गया है। इस त्रुटि को दूर करने के प्रयास मे मटन न **विक्रिया** अर्थात ऐस काय की धारणा प्रस्तुत की, जिससे व्यवस्था की सस्थिति विगड जाती है।

---

* *Toward a General Theory of Action* New York 1962, p 26

परतु इस धारणा के समावशन से कायवाद के अविकासशील (स्थतिक) स्वरूप म कोई अतर नही हुआ क्योकि विक्रियात्मक आचरण का विकास का तत्व भविष्य का अकुर नही माना जाता, बल्कि केवल इस रूप म कि वह व्यवस्था की ऐसी पैदावार है, जिसस उसकी अस्थिरता क बढन की प्रवत्ति होती है। विक्रियाओ का विश्लषण करन का उद्देश्य यह पता लगाना है कि उनको दूर करन का तरीका क्या है ताकि व्यवस्था की कृत्यकारी एकता और सस्थिति का मजबूत किया जाये, दूसरे शब्दा म पूजीवाद को कायम रखा जाये। परिणामस्वरूप, समाज इस मत की नज़रो म एक कृत्यकारी व्यवस्था है, विकासमान नही है।

पारसस द्वारा निरूपित क्रियावाद की एक मौलिक त्रुटि यह है कि उन्होन सामाजिक ढाचे का विश्लेषण करने म सामाजिक जीवन क कारणवाचक आधार को उभारकर सामन लान से इनकार किया। अपन इनकार का उचित ठहरान के लिये उन्होने यह तक पेश किया कि सामाजिक जीवन का प्रत्येक तत्व "युक्ति" (स्वावलबी परिवर्ती) तथा 'क्रिया" (अवलबित परिवर्ती) के रूप मे काम कर सकता है। मतलब यह है कि सामाजिक व्यवस्था मे उनके अनुसार सामान्य रूप में कोई प्रभावी कारण नही हुआ करते। फलस्वरूप, क्रियावादी अपने आपको सवथा केवल सतही परस्पर क्रिया को पहचानने की परिधि के भीतर सीमित रखत है और गहराई मे जाकर उस आधार को नही ढूढते, जिस पर यह परस्पर क्रिया होती है। इस प्रत्यक्षवाद की तह मे दरअसल भाववाद है, क्योकि पारसस के अनुसार, सामाजिक काय की व्यवस्था कार्यो की अभिप्रेरणाओ तथा सामाजिक आचरण के स्थापित मानदडो, अर्थात मूल्यो तथा प्रतिमानो से मिलकर बनती है। फलस्वरूप, कायवादी दशनशास्त्र के मौलिक प्रश्न को टाल नही सके बल्कि उन्होने केवल उसका आत्मनिष्ठ, भाववादी उत्तर दिया है।

इस समस्या के समाधान क प्रति एकमात्र भौतिकवादी, मार्क्सवादी दष्टिकोण ही समाज के सामाजिक ढाचे के वैज्ञानिक विश्लेषण क उसूल प्रस्तुत करता है।

विश्व इतिहास की वस्तुगत युक्ति

सामाजिक आर्थिक सरचना के विश्लेषण से इसका ढाचा तथा इसके अगभूत तत्वा का परस्पर सबध निर्धारित करने मे सहायता मिली। समाज की यह मुख्यत "स्थतिक" जाच पडताल, इसकी चीर-फाड, इसके अलग अलग परस्पर क्रियाशील तत्वा का अध्ययन जरूरी था क्योकि उसके बाद ही आगे बढकर विश्लेषण की दूसरी मजिल म कदम रखा जा सकता है। समाज एक स्थान पर खडा नही रहता। उसका लगातार विकास हो रहा है। पाल लफाग ने सामाजिक ऐतिहासिक विकास के दष्टिकोण की व्याख्या जब मार्क्स से सुनी, तो उहने लिखा कि "मानो मेरी आखो के सामने से एक परदा हट गया। पहली बार मने स्पष्ट रूप से विश्व इतिहास की युक्ति का अनुभव किया।' * ऐतिहासिक भौतिकवाद जब यह बताता है कि भौतिक उत्पादन का विकास किन नियमा के अधीन है और उन पर सामाजिक जीवन के अय सभी तत्वा की निर्भरता सिद्ध करता है तो इससे विकास की वस्तुगत युक्ति ही को समझने की [illegible] पैदा होती है। लेकिन इस सवाल पर विचार करने से पहले हम [illegible] कि समाज के विकास पर प्राकृतिक भौतिक स्थितिया [illegible] पडता है, क्योकि समाज यदि प्रकृति से भिन है, [illegible] अभिन अग भी है।

---

* Paul Lafargue et Wilhelm Liebknecht, [illegible] Marx, Paris, 1935, p 11 (शब्दो पर जोर [illegible])

समाज और प्रकृति

समाज भौतिक जगत का एक ऐसा हिस्सा है, जो जसा कि हम देख चुके हैं स्वय अपने आतरिक नियमो के अधीन है। लेकिन उसको प्रकृति से अलग नही किया जा सकता। अपने विकास के दौरान म वह उसको प्रभावित करता तथा उससे प्रभावित होता है। यही कारण है कि समाजविज्ञान के लिये इस सबध का अध्ययन करना आवश्यक है। यहा भी ऐतिहासिक भौतिकवाद विधि-सबधी पहलू पर ध्यान केंद्रित करता है।

प्रकृति मनुष्य के जीवन तथा समाज के अस्तित्व और विकास की एक जरूरी शत है। वे प्राकृतिक स्थितिया, जिनमे मानव समाज कायम रहता है, वह क्षेत्र, जिसमे समाज तथा प्रकृति प्रत्यक्ष रूप से एक दूसरे का प्रभावित करते ह, **भौगोलिक वातावरण** कहा जाता है। यह धरती, जो ब्रह्माड से, और सबसे बढकर सूय से सम्बद्ध है, वायुमडल, नदिया, समुद्र और सागर, जलवायु और भूमि, खनिज—इन्ही सबसे मिलकर प्राकृतिक भौगोलिक स्थितिया बनती ह, जिनमे मानव समाज की उत्पत्ति और विकास हुआ है। हेगेल ने इन्ह विश्व इतिहास का "भौगोलिक अस्तर" कहा है।

प्रकृति से समाज का सबध सबसे बढकर उत्पादन के जरिये कायम होता है। सामाजिक सपदा का निर्माण श्रम द्वारा होता है, जो प्रकृति के पदाथ को रूपातरित करता तथा मानव आवश्यकताओ के मुताबिक ढालता है। दूसरे शब्दो मे कह सकते ह कि सपदा का पिता श्रम तथा माता प्रकृति है। इस धरती की प्राकृतिक स्थितिया उत्पादन का प्राकृतिक आधार हैं। इसी लिये इनका असर इन बातो पर पडे बिना नही रहता कि मानव कायकलाप का प्रचलन किन रेखाओ पर होगा, उत्पादन शक्तिया कैसे विकसित तथा कहा स्थित होगी, श्रम का विभाजन किस आधार पर होगा, आदि।

भौगोलिक वातावरण का प्रभाव विभिन्न जातियो के ऐतिहासिक विकास की रफ्तार पर भी पडता है। अनुकूल भौगोलिक स्थितिया स उत्पादन क विकास को बढावा मिलता है प्रतिकूल स्थितिया के कारण उसकी गति मद पड़ जाती है। यह सही है कि ज्यो-ज्यो समाज का विकास होता है मनुष्य प्रतिकूल स्थितियो पर अधिकाधिक काबू पाने

तथा प्रकृति पर अधिकार जमाने के योग्य होता जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ज्यो-ज्यो उत्पादन का विकास होता है मनुष्य प्राकृतिक स्थितियो के प्रभाव से बिल्कुल मुक्त होता जाता है। समाज और प्रकृति का एक दूसरे पर प्रभाव कही ज्यादा पेचीदा और द्वद्वात्मक ढग का है। भौगालिक वातावरण द्वारा उत्पादन के विकास की निश्चित स्थितियां निर्मित होती है, लेकिन इन स्थितियो से फायदा उठाना समाज का काम है। **समान प्राकृतिक स्थितियो का असर समाज के विकास पर उसके विकास स्तर के अनुसार भिन्न पड सकता है।** मार्क्स ने समाज के विकास मे इन स्थितियो की भूमिका के अनुसार इन्हे दो बडी आर्थिक श्रेणियो म बाटा है *

१ जीवन निर्वाह के साधनो, जसे उपजाऊ ज़मीन, पानी, मछली, पौधे, फलो के वक्ष, पक्षी आदि का प्राकृतिक धन,

२ श्रम साधनो, जसे धातु, कोयला, लकडी, पेटरोलियम आदि का प्राकृतिक धन, साथ ही जहाज़रानी के योग्य नदियां, जलप्रपात आदि।

प्रथम की भूमिका सामाजिक विकास की निम्न अवस्थाओ मे अधिक होती है और दूसरे की उच्चतर अवस्थाओ म। मसलन उत्पादन मे कोयले और पेटरोलियम का उपयोग सम्भव और आवश्यक तभी होता है, जब स्वय उत्पादन विकसित होकर काफी उच्च अवस्था मे पहुच जाता है। पहले की अवस्थाओ मे उनका पता भी चला तो बेकार था क्योकि सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया मे उनसे कोई काम नही लिया जा सकता था। आज पेटरोलियम के बिना उत्पादन की कल्पना भी नही की जा सकती और यही कारण है कि आज ससार के राजनीतिक मामलो मे पेटरोलियम एक मौलिक समस्या बना हुआ है।

इसमे कोई सन्देह नही कि मनुष्य और उसके जीवन पर प्रकृति का प्रभाव पडता है और इसका इज़हार उसकी जीवन पद्धति (उसके आवास, उसके पहनावे, उसके खान-पान आदि) म तथा विभिन्न नस्ली और राष्ट्रीय विशेषताओ आदि म होता है। इस प्रभाव पर विचार करना मानवजातिवैज्ञानिक, डाक्टर, गृहशिल्पी आदि के लिये व्यावहारिक रूप म लाभदायक हो सकता है, लेकिन सामाजिक ढाचे के

---

*का० मार्क्स, 'पूजी', प्रगति प्रकाशन, मास्को, खण्ड १, पृ० ५७६

स्वरूप तथा उसके परिवतन की दिशा का पता लगाने मे मनुष्य पर प्रकृति के प्रत्यक्ष प्रभाव का कोई वडा महत्व नही हो सकता। ज़रा एक अमरीकी भूगोलविद एल्सवथ हटिंगटन के इस हास्यास्पद दावे पर विचार कीजिये कि महान अक्तूवर समाजवादी क्राति का कारण यह था कि रूस का जलवायु कुछ गम होने लगा था।

"भौगोलिक नियतिवाद" के सिद्धातो के विपरीत माक्सवाद का मत यह है कि सामाजिक विकास भौगोलिक वातावरण से निर्धारित नही होता है और न हो सकता है। इतिहास म हम प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण मे कोई खास सवध नही देखने म आता है। हम देखते ह कि लगभग एक सी प्राकृतिक स्थिति के देशा म बिल्कुल भिन सामाजिक व्यवस्थाए है (जैसे सोवियत तुकमानिस्तान और ईरान, सोवियत करेलिया और फिनलड आदि)। इसके विपरीत विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रो के देशा म हम समान सामाजिक व्यवस्था मिलती है जहा उत्पादन शक्तिया लगभग एक ही स्तर पर पहुच गयी ह। इसका कारण यह है कि मनुष्य अपने आप को वातावरण के अनुकूल ही नही बनाते, जसा कि अय प्राणी करते हैं, बल्कि उसको बदलते भी हैं और प्राकृतिक वातावरण के बहुधा प्रतिकूल प्रभाव की काट करते ह।

समाज का अस्तित्व निश्चित प्राकृतिक स्थितियो मे होता है, वह उनको लगातार प्रभावित करता तथा उनसे प्रभावित होता है, परन्तु उसका अपना विकास स्वय अपने नियमा के अनुसार होता है। समाज का इतिहास प्रकृति के इतिहास का सिलसिला है, जिसम स्वय प्रकृति को एक उच्चतर मजिल पर पहुचा दिया जाता है। "इतिहास खुद प्राकृतिक इतिहास का एक वास्तविक भाग है--प्रकृति का, जब वह आदमी बन जाती है।"*

ज्यो ज्यो समाज का विकास होता है प्रकृति पर मनुष्य का प्रभाव बढता जाता है। आज हमारे चारो ओर जो भौगोलिक वातावरण है, वह सही मान म शुद्ध प्राकृतिक विकास की पैदावार नही है, क्योकि इसका रूपरग बडी हद तक प्रकृति पर समाज के प्रभाव का, मनुष्य के परिवतनकारी कायकलाप का नतीजा है। आदमी नहर खोदते, बाध बाधते और विशाल जलाशय बनाते ह। मनुष्य के प्रभाव के कारण

---

* K Marx *Economic and Philosophic Manuscripts of 1844*, Moscow 1961 p 111

ससार के प्राणि तथा वनस्पति जगत मे भारी परिवतन हुआ है, और यह केवल इस अर्थ मे नही कि उसन जगल काट दिये, बहुत से जगली जानवरा को मार भगाया और कुछ का तो नाम निशान मिटा दिया, वल्कि इस अथ म भी कि उसने कई नय पौधे और मवेशी की नयी नस्ले भी विकसित की ह। आज के सजावटी पौधे, अनाज, सब्जी-तरकारी और फल अपने पूवजो से वहुत भिन ह। और पौधा का यह परिवतन अभी पूरा नही हुआ है। आदिम काल के गिनती के चद पशुआ स मनुष्य ने चार सौ किस्म के मवेशी, डेढ सौ किस्म के घोडे लगभग चार सौ किस्म के कुत्ते आदि विकसित किये हैं। विज्ञान के विकास तथा कावनिक प्रकृति की नियमितताओ की जानकारी से वनस्पति तथा प्राणि जगत को मनुष्य की जरूरत पूरी करने के उद्देश्य से तजी के साथ परिवर्तित करने के लिये नये रास्ते खुलते और नई सभावनाए सामने आती हैं। अत मानव कायकलाप द्वारा भूदश्य मे, भौगोलिक परिस्थितियो म काफी वडी तब्दीलिया होती ह, और यह कायकलाप भौगोलिक वातावरण को वनानेवाले एक तत्व का काम करता है।

जाहिर है कि मनुष्य अभी तक (लघु पमाने पर मौसम की सष्टि करने के वावजूद) मौसम को, भौमिकी प्रक्रियाओ, आदि को प्रभावित करने के समथ नही ह, पर ऐसा करने की उनकी क्षमता दिना दिन वढ रही है। मनुष्य ने वाहर अतरिक्ष मे कदम रखा है और इस तरह प्रकृति के साथ अपनी परस्पर त्रिया के क्षेत्र को बढाया है। परमाणु शक्ति के व्यावहारिक उपयोग, पालिमर पदार्थों का आविष्कार, जिनके गुण पूवनिर्धारित होते ह, रेडियो इलेक्ट्रानिकी का विकास आदि के चलते प्रकृति पर मनुष्य के प्रभाव की व्यापक सम्भावनाए उत्पन हो गयी ह। आधुनिकतम वैज्ञानिक तथा तक्नीकी उपलब्धियो ने मानवजाति के समक्ष पृथ्वी को रूपातरित करने का रास्ता खोल दिया है।

लेकिन प्रकृति पर मनुष्य के अनगल प्रभाव के कारण क्षितिज पर खतरे भी मडलाने लगे हैं।

प्रकृति को लापरवाही के साथ, केवल आज की तात्कालिक जरूरता की रोशनी मे, यह सोचे बिना कि आगे चलकर हमारी कारवाइयो का क्या परिणाम होगा, रूपातरित नही किया जा सकता। मसलन कौन नही जानता कि पूरा का पूरा जगल काट दने से नदियो म पानी कम हो

जाता और खेती की स्थिति बिगड जाती है। कृषिविद्या से गलत काम लिया जाय तो खेतो में उवरता-क्षय और भूक्षरण होने लगता है। औद्योगिक कारखानो का निर्माण किया जाय मगर उनके मल पानी को साफ करने का कोई प्रबंध न हो तो दरियाओ का पानी गन्दा हो जाता और मछलिया मरने लगती है। संकीर्ण दृष्टि से प्राकृतिक क्रियाओ में हेर फेर करने से प्रकृति का सिलसिला टूट जाता है तथा प्राकृतिक क्रियाओ की नियमितता में फर्क आने लगता है।

मनुष्य के हाथ में ज्यो ज्यो प्रकृति को प्रभावित करने के ज्यादा शक्तिशाली साधन आते जायेगे त्यो-त्यो उसे अधिक सावधानी से काम लेने की जरूरत होगी, नही तो प्रकृति पर हानिकारक प्रभाव का खतरा बढता जायेगा। सबसे अधिक नुकसान दरियाओ, समुद्रो और महासागरो में औद्योगिक कारखानो, परमाणु शक्ति तथा रसायन के तलछट से होता है। मनुष्य के वातावरण को स्वस्थ बनाये रखने की समस्या आज बहुत व्यापक रूप में सामने आ गयी है। चूकि यह एक विश्व समस्या है, इसलिये इसे सभी राष्ट्रो के सामूहिक प्रयास से ही हल किया जा सकता है।

लेओनीद इल्यीच ब्रेज्नेव ने सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवी कांग्रेस के समक्ष अपनी रिपोर्ट में इस बात पर जोर देते हुए कहा था कि "हमारा देश वातावरण का संरक्षण, शक्ति स्रोतो तथा अन्य प्राकृतिक साधनो का विकास, परिवहन तथा संचार का विकास, सबसे खतरनाक तथा व्यापक रोगो की रोक थाम तथा उन्मूलन और अंतरिक्ष तथा पृथ्वी के सागर के गवेषण और विकास जैसी समस्याओ को अन्य संबंधित राज्यो से मिलकर हल करने मे भाग लेने के लिये तैयार है।"

समाज के सामने दो ही रास्ते है या तो वातावरण को गन्दा होने दे जिससे, मानवजाति के लिये कभी अचानक कोई भयंकर परिणाम उत्पन्न हो सकता है, या इसकी रोक थाम का उपाय करे। मार्क्सवादियो का विश्वास है कि कम्युनिज्म इस समस्या का मौलिक हल पेश करता है।

सोवियत संघ में कम्युनिस्ट निर्माण का अनुभव इसका ज्वलंत उदाहरण है। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की चौबीसवी कांग्रेस ने वातावरण के संरक्षण की समस्या पर विशेष ध्यान दिया। यह बात साफ कही गयी कि वैज्ञानिक तथा प्राविधिक प्रगति की रफ्तार को तेज करते हुए इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि साथ ही साथ प्राकृतिक साधनो के संरक्षण

का प्रवध भी किया जाये और यह कि इमसे हवा और पानी म ग दगी न फल और भूक्षरण न होने लगे। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी न योजना आर्थिक प्रवध तथा डिजाइन सवधी सस्थाओ पर उच्चतर और कडी जवाबदेही रखी है कि नये कारखाना की योजना वनाते और उनका निर्माण करत समय या पुराने कारखाना का नवीकरण करते समय वातावरण के सरक्षण का ख्याल रखे। प्रकृति की सुविधाओ से लाभान्वित होने का अवसर सभी आनेवाली पीढियो को मिलना चाहिये।

भविष्य के कम्युनिस्ट समाज म, जब युद्ध का खतरा हमेशा के लिए मिट जायगा और लडाई के हथियारो पर खच करने की जरूरत नही रहेगी, राष्ट्रो का विभाजन खत्म हो जायेगा, उत्पादन साधनो पर निजी स्वामित्व की दीवार ढह जायेगी और मानवजाति प्रकृति पर विजय पाने के लिये अपने प्रयासो तथा भौतिक साधनो को एकत्रित कर लेगी, तो समाज विश्वव्यापी पैमाने पर प्राकृतिक प्रक्रियाओ पर अपने प्रभाव को नियत्रित कर सकेगा और इसलिये पृथ्वी को मनुष्य के हित म और उसके फायदे के लिये बदल सकेगा।

प्राविधिक प्रगति के बारे मे यह नही समझना चाहिये कि उससे समाज का प्रकृति से बिलगाव हो जाता है। मनुष्य प्रकृति की परम उपलब्धि है। लेकिन सार रूप म वह प्रकृति का एक भाग है। उसकी शक्ति और ताकत उतनी ही अधिक होती है, जितना प्रकृति पर उसका अधिकार और उत्पादन मे इसके नियमो का उपयोग बढता है, यानी प्रकृति के साथ उसकी परस्पर क्रिया जितनी व्यापक होती है।

स्वय मनुष्य का जविकीय विकास भी सामाजिक विकास का एक प्राकृतिक तत्व है। जन्म और मृत्यु, मानव शरीर का विकास और उसका बुढापा, नर-नारी की भिन्नता—ये सभी जविकीय प्रक्रियाए और परिघटनाए हैं। परन्तु आबादी म वृद्धि और नर-नारी तथा जवान-बूढे का फक हर समाज मे सामाजिक महत्व भी धारण कर लेता है और इसके चलते सामाजिक समस्याए उत्पन्न होती हैं। यही कारण है कि आबादी के पुनजनन तथा अन्य जनाकिकीय परिघटनाओ का अध्ययन केवल जीव विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञानो मे ही नहीं किया जाता, बल्कि अनेक सामाजिक विज्ञानो (जसे जनाकिकी, समाजशास्त्र, कानून, अर्थशास्त्र, मानवजातिविज्ञान) द्वारा किया जाता है।

आवादी के वढन और इसकी मघनता के घटने वढने स उत्पादन की प्रगति का क्या सवध है ? सामाजिक विकास म उनकी क्या भूमिका है ?

ऐतिहासिक भौतिकवाद की दृष्टि स आवादी क यत्न का प्रभाव उत्पादन तथा समाज के विकास पर पडता ता है, मगर यह उनके विकास की निर्णायक शक्ति नही है। अगर वह निर्णायक शक्ति हाती ता जहा घनी आवादी होती वहा इस कारण अवश्य ही उत्पादन का स्तर ऊचा होता और एक उच्चतर सामाजिक व्यवस्था होती। परन्तु हम दखत हैं कि ऐसा हे नही। आवादी की घनता वदलती रहती है। ससार म आवादी का विभाजन सव जगह समान नही है। वल्कि सच पूछिय ता वहुत असमान ह। पथ्वी पर सव से घनी आवादी सात प्रतिशत भाग म है, जहा कुल आवादी का ७० प्रतिशत इक्ट्ठा हा गया है, जवकि दूसरा आर १० प्रतिशत भूमि (रेगिस्तान, ध्रुवक्षेत्र, आदि) विल्कुल गरआवाद है। पथ्वी की आवादी की घनता समय के साथ भी वदलती रही है। दो हज़ार साल पहले पृथ्वी की आवादी लगभग १८–२० करोड थी। सन १००० मे लगभग ३० करोड हो गयी, और १९६८ म ३४५ कराड हो गयी थी। आवाद महाद्वीपा म आवादी की औसत धनता २८ व्यक्ति प्रति वग किलोमीटर थी।

लेकिन पहले की तरह आज भी किसी देश की सामाजिक व्यवस्था उसकी आवादी की घनता पर निभर नही करती। और न आवादी के पुनजनन तथा आवादी की वृद्धि से, उसकी घनता म कमी वेशी होने से किसी दश म एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था म, जैसे सामतवाद स पूजीवाद म, अथवा पूजीवाद से समाजवाद म सक्रमण की व्याख्या की जा सकती हैं। वल्कि वात यह है कि स्वय पूर्वोक्त ही मनुष्यो की सामाजिक स्थितियो पर निभर करत ह, जसे उत्पादन की अवस्था, सस्कृति का स्तर, प्रतिदिन की जीवन स्थिति, जातीय तथा धामिक परम्पराए तथा वहुतेरी और वातं। यही वजह है कि इतिहास के प्रसग के वाहर आवादी का कोई सवव्यापी नियम नही है।

मार्क्स ने सिद्ध किया था कि हर सामाजिक व्यवस्था का अपना विशष आवादी-सवधी नियम होता है। पूजीवाद के अतगत जहा उत्पादन का उद्देश्य नफा कमाना है श्रम विधि म सुधार तथा उत्पादन के मशीनीकरण

और स्वचलन के कारण श्रम की उत्पादनशीलता म वृद्धि तो होती है, लेकिन इसर साथ ही मजदूरा के एक भाग को उत्पादन के काम स अलग कर दिया जाता है और बेरोजगारी फैलती है। पूजीवाद निरतर अपेक्षाकृत फाज़िल श्रमिक आबादी की उत्पत्ति करता हे जो जीवन निर्वाह के साधना स वचित होती है। आबादी का यह नियम पूजीवाद की विशेषता है।

समाजवाद के अतरगत आबादी का एक बिल्कुल भिन्न नियम काम करता है। यहा उत्पादन का उद्देश्य मनुष्य का हितसाधन, उसकी जरूरते पूरी करना है। यहा बढती हुई आबादी विकासमान उत्पादन के काम म लग जाती है, यहा न सकट आते ह और न बेरोजगारी होती है और श्रमिका की भौतिक जीवन स्थिति म बराबर सुधार होता रहता है।

आबादी का पुनजनन एक स्वत स्फूत प्रक्रिया है, मगर इतिहास म हम देखते ह कि विभिन्न युगो म ऐसे समाज और राज्य हुए हैं, जिन्होने किसी इलाके म अपने फायदे की खातिर यह निर्धारित करने का प्रयत्न किया कि आबादी कितनी बडी हो और उसकी बनावट क्या हो। उदाहरण के लिये इसी बात को लीजिये कि विभिन्न राज्य आबादी के स्थानातरण को नियत्रित करने, आवसन या उत्प्रवासन को प्रोत्साहित करने, मजदूरो की भरती, आदि के लिये कारवाई करते ह। आबादी म वद्धि के लिये बडे परिवारा को प्रोत्साहन दिया जाता और वृद्धि की रफ्तार तेज करने के लिये कदम उठाये जाते ह।

लेकिन कभी कभी समाज की जन्मदर कम करने की जरूरत भी पडती है। जैसे कुछ देशो मे, जिन्होने औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति प्राप्त कर ली है और जो अपनी जनता का जीवन स्तर ऊचा करना चाहते ह, आबादी वृद्धि की ऊची दर नकारात्मक तत्व साबित हो सकती है क्याकि राष्ट्रीय आय म जितनी वृद्धि होती है उससे अधिक वृद्धि आबादी म होती है और इसका नतीजा यह होता है कि सामान्य जीवन स्तर ऊचा नही हो पाता।

निस्सन्देह यह निरपेक्ष अतिजनसख्या का उदाहरण नही, बल्कि उपनिवेशवाद का असर है जिसके कारण अनेक देशा म आर्थिक विकास की गति कम थी और उन्हे सापेक्ष अतिजनसख्या की समस्या का सामना करना पडा। अत इन देशो मे जन्मदर कम करने के लिये जो कदम

उठाये जाते ह, वे दरअसल उन कारवाइया का एक भाग हैं, जो राष्टीय विकास क कार्यो को पूरा करन के लिय की जाती है। लकिन जमन्र कम करन से कुछ फायदा तभी हागा, जब उसक साथ साथ आर्थिक और सामाजिक परिवतन भी हा।

आवादी के पुनजनन को प्रभावित करने के लिये राज्य द्वारा अपनायी जानेवाली कायपद्धति को **आबादी नीति** कहत ह, और माक्सवाद इस नीति पर अमल करने की जरूरत से किसी अथ म भी इनकार नही करता। समाजवादी उत्पादन का उद्देश्य समाज की जरूरत पूरी करना है। उसके विकास और आवादी तथा उसकी आवश्यकताओ की वृद्धि म दीघकालीन योजनाओ द्वारा सामजस्य स्थापित होना चाहिये। इस बात पर विशेष रूप स जोर देना माल्थुसवाद तथा नवमाल्थुसवाद के सिद्धाता का निराकरण करने के लिय जरूरी है।

आवादी क सबध म प्रतिक्रियावादी माल्थुसवादी सिद्धात की उत्पत्ति अठारहवी शताब्दी के अत म हुई थी, लेकिन इसका प्रभाव आज भी फला हुआ है। माल्थुस न १७९७ म एक पुस्तक लिखकर यह सावित करना चाहा कि सभी प्राणियो म यह प्रवत्ति पायी जाती है कि उपलब्ध खाद्य सामग्री म जितनी गुजाइश होती है उससे अधिक तेजी से उनकी सख्या बढती है। उन्हाने लिखा कि जनसख्या म वृद्धि ज्यामितीय माला याने १ २ ४ ८ की रफ्तार से होती है, जबकि उनके निर्वाह साधन म वद्धि अधिक से अधिक अक माला याने १ २ ३ ४ की रफ्तार से होती है। उसन कहा कि यदि कोई खास रुकावट न हो ता ससार की आबादी हर १५ वष म दो गुनी हो जायगी। इस प्रकार अगर ससार की जनसख्या को एक मान लिया जाये तो दो शताब्दी के भीतर वह बढकर २५६ हो जायेगी जबकि उसका निर्वाह साधन एक स बढकर केवल ९ होगा। माल्थुस का कहना था कि यह ' नियम " "प्रत्येक युग और दश पर, जहा मनुष्य रहता था या आज रहता है, लागू होता है।" * उन्हाने कहा

* Thomas Robert Malthus *An Essay on the Principle of Population or a View of its Past and Present Effects on Human Happiness with an Inquiry into Our Prospects Respecting the Future Removal or Mitigation of the Evils Which It Occasions,* London 1890 p 295

कि निर्वाह साधना म धीमी वृद्धि का कारण जमीन की उवरता का "नियम" ह, जिसस वह इस निष्कर्ष पर पहुचे कि गरीबी के प्रधान और सबस स्थायी कारण का सरकार के स्वरूप या सम्पत्ति के असमान विभाजन स प्रत्यक्ष सबध नही ह या बहुत कम है और चकि धनवाना म दरअसल यह सामर्थ्य नही ह कि गरीबा का रोजगार या निर्वाह का साधन मुहैया कर सक इसलिय गरीबा का वस्तुस्थिति म इसकी माग करन का अधिकार ही नही है। * जो आदमी गरीब पैदा हुआ ह वह अनावश्यक है। "प्रकृति क विशाल भोज म उसक लिय कोई खाली स्थान नही है। प्रकृति का उसस कहना है कि यहा स निकल जाओ और वह शीघ्र अपने आदेश का पूरा करायगी।" ** माल्थुस न इस बात पर परदा डालन का कोइ प्रयत्न नही किया कि इस सिद्धात की रचना वर्गीय उद्देश्या स की गयी है। उसका कहना ह कि इस नियम" को समझ लेन पर मनुष्य अपने दुखदद का चुपचाप सह सकेगा तथा "अपनी गरीबी के कारण सरकार या समाज के उच्च वर्गों के विरुद्ध उसम असतोष या चिडचिडाहट की भावना कम होगी।" ***

माक्स और एगेल्स न माल्थुस के इस आवादी के नियम की कडी आलोचना की और इसकी धज्जिया उडा दी क्योकि वह "सवहारा के विरुद्ध पूजीपति वग की सबस प्रत्यक्ष युद्धघोषणा थी।" **** एक अन्य स्थान पर माक्स ने बड क्रोध और आवेग के साथ लिखा कि "निरा कमीनापन माल्थुस की एक खास आदत है—इस कमीनेपन पर एक पादरी ही उतर सकता है, जो मनुष्य की पीडा को आदिम पाप का फल समझता है " *****

१९ वी शताब्दी के सामाजिक विकास से ही यह जाहिर हो गया था कि माल्थुस का सिद्धात मानन लायक नही है। चुनाचे १८०४ से १९१४ तक जनसख्या म प्रतिवष ०८६८ प्रतिशत औसत वृद्धि हुई, जबकि

---

*वही, पृ० ४८१

**वही, पृ० ४६५

***वही, पृ० ५४२

****फ्रे० एगेल्स, 'ब्रिटेन म मजदूर वग की स्थिति'

*****का० माक्स, 'अतिरिक्त मूल्य का सिद्धात'

गेहू का उत्पादन औसत २१ प्रतिशत की दर से वढा। पश्चिम जमन अथशास्त्री फिटज बादे के अनुसार २००० तक अनाज की उपज १२००-१६०० कराड टन सालाना तक वढाई जा सकती है, जा ३००० कराड आदमिया के लिये काफी होगी,* जवकि २१वी सदी के प्रारम्भ तक ससार की कुल जनसख्या ६००–७०० करोड होगी। इस समय खेती के अतगत सारी पथ्वी का ६ प्रतिशत भाग है, जवकि ४० प्रतिशत का जोत म लाया जा सकता है। इसका मतलव यह है कि अभी इसकी सम्भावनाओ से पूरा काम नही लिया गया है। सागर म जा सम्भावनाए निहित ह उनकी बात अलग है।

अत माल्थुस का "नियम ' विज्ञान की कसौटी पर पूरा नही उतरा, मगर माल्थुसवाद के समथक आज भी पाये जाते ह। आज के माल्थुसवादियो का कहना है कि पृथ्वी पर जितनी गुजाइश है उससे अधिक उसकी आबादी हो गयी हं और यदि आवादी मे और वद्धि हुई तो मानवजाति को विनाश का सामना करना पडेगा, क्याकि उनकी समय के अनुसार सकटा, क्रातिया, युद्धो तथा अय सभी सामाजिक उथल पुथलो का कारण यही अतिजनसख्या है।

आदमी भूखे रहते हैं तो इसलिये कि उनकी सख्या बहुत हा गयी है, सबके लिये काफी रोटी नही है, आवादी मे अतिवद्धि ही सारी बुराइयो की जड है, इत्यादि, इत्यादि। नवमाल्थुसवादियो के लेखो म इसी प्रकार की बातें भरी पडी ह। कम्युनिज्म के आदर्शो और आवश्यकतानुसार विभाजन के उसके सिद्धात के विपरीत माल्थुसवादी भविष्य का एसा अधकारमय चित्र पेश करते हैं जिसमे मानवजाति जनसख्या की अतिवद्धि के जजाल म फसी होगी।

मगर वास्तविकता यह है कि उत्पादन शक्तिया तथा विनान की प्रगति की वतमान सतह पर भी, कृषि की उपलब्ध भूमि को लेकर यह सम्भव है कि ससार मे हर एक को खाना मिले भूख आर भूखमरी का नामनिशान मिटा दिया जाये और कृपि श्रम की उत्पादन शक्तिया को बहुत वढाया जाये। इसके रास्ते म असल बाधा ससार के अनेक भागा का आथिक पिछडापन है, सामाजिक सवधो की वह व्यवस्था है जा

---

* Fritz Baade *Der Wettlauf zum Jahre 2000* Oldenburg 1961 S 65

उनको आगे बढने नही देती, उपनिवेशवाद के अवशेषा का बोझ और इसी प्रकार के अन्य कारण है।

आधुनिक विज्ञान न इस बात का विश्वसनीय सबूत दे दिया है कि रूसी वैज्ञानिक क० अ० तिमिर्याज़ेव न सही कहा था कि अगर दुनिया की आबादी इतनी बढ जाये कि लोगा का बजरा पर रहना पडे तब भी धरती इतना अन्न उपजेगी कि सब लोग भर पेट खा सकेंगे। परन्तु माल्थुसवाद की आलोचना करत समय हम उन वास्तविक समस्याआ स अवगत रहना चाहिय, जिनका विकृत प्रतिबिब यह सिद्धात है। इस प्रकार की कम स कम दा समस्याए ह एक, कृषि उत्पादन को विकसित करन की समस्या ताकि बढती हुई आबादी की जरूरत पूरी की जा सक, और दूसरी, जन्मदर को, परिस्थिति के अनुसार ऊपर या नीचे, नियत्रित करने की समस्या। समाज को इन समस्याआ का सामना करना है, और सिद्धातत इनका समाधान सम्भव है बशर्ते कि सामाजिक अतविरोधा को दूर कर दिया जाये और समस्त मानवजाति सचेतन ढग से मिलकर प्रयास करे।

परन्तु प्रकृति, भौगोलिक वातावरण और आबादी, जो सामाजिक जीवन की आवश्यक और महत्वपूर्ण शर्तें ह और सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं, यदि सामाजिक विकास के पीछे निर्णायक शक्ति नही हैं, तो फिर शक्ति है क्या? वह क्या चीज है जो सामाजिक विकास को एक नियमबद्ध प्राकृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का रूप देती है? सामाजिक विकास के पीछे निर्णायक शक्ति **उत्पादन** है।

चूकि उत्पादन समाज के जीवन और विकास का आधार है, इसलिये समाजशास्त्र का पहला काम इसके विकास के नियमो का विश्लेषण करना तथा यह देखना है कि समाज के इतिहास मे वे लागू किस तरह हुए। उत्पादन म जो नियम लागू होते ह उनम अलग अलग सरचनाओ के विशेष नियम भी है और ऐसे नियम भी, जो सभी सरचनाओ म समान रूप से पाये जाते है। लेकिन उत्पादन शक्तियो के स्वरूप तथा विकास स्तर के साथ उत्पादन सबधा की अनुकूलता का नियम विशेष महत्त्व रखता है, क्योकि यह एक आम सामाजिक नियम है, जो पूरे मानव इतिहास के दौरान मे हमेशा लागू होता है। अत इसका विश्लेषण करने से ऐतिहासिक प्रक्रिया के सारतत्व का अवबोध होता है।

उत्पादन शक्तियो के स्वरूप तथा विकास स्तर के साथ उत्पादन सबधो की अनुकूलता का नियम

अनुकूलता का नियम सभी सामाजिक सरचनाओ के विकास म उत्पादन शक्तिया तथा उत्पादन सबधा के ताल्लुक का जाहिर करता है। उत्पादन सबध उत्पादन शक्तिया पर निभर करत तथा उनके द्वारा निर्धारित होत है मगर खुद भी इन शक्तिया के विकास का प्रभावित करते है। उत्पादन सबधा का यह प्रभाव दा प्रकार का हाता है जहा य सबध उत्पादन शक्तिया के अनुकूल हात ह, वे उनके विकास को प्रोत्साहित करते ह और जहा इन शक्तिया से उनका प्रतिरोध होता है, वे उनके विकास म बाधक बन जाते ह। इसी लिय यह आवश्यक है कि उत्पादन सबध उत्पादन शक्तिया के स्वरूप तथा उनके विकास स्तर के अनुकूल हा। अत अनुकूलता के नियम की विशेषता यह है कि उत्पादन सबध उत्पादन शक्तियो के विकास पर निभर हो और इसी तरह उलट क्रम से। मगर उत्पादन के इन दोना पक्षा की परस्पर क्रिया म हर एक की भूमिका भिन्न होती है जिसमे चालक शक्ति उत्पादन शक्तिया हाता है। परिणामस्वरूप, अनुकूलता का नियम उत्पादन शक्तिया तथा उत्पादन सबधो की द्वन्द्वात्मकता अथवा परस्पर क्रिया का अभिव्यक्त करता है, जो क्रिया उत्पादन शक्तिया के विकास के **आधार पर** होती है।

सामाजिक उत्पादन की प्रक्रिया का मतलब ह श्रम के साधन बनाना तथा उपभोग सामग्री के उत्पादन म उनसे काम लेना। इसी लिय सामाजिक उत्पादन हमेशा दो बडे विभागा म होता हे **विभाग १–उत्पादन साधनो का उत्पादन, और विभाग २–उपभोग सामग्री का उत्पादन।** निस्सन्देह, सामाजिक विकास की विभिन्न मजिला पर उत्पादन के इन दोना विभागो का भेद कभी अधिक और कभी कम स्पष्ट हो सकता है, परन्तु सामाजिक उत्पादन म उनका भेद हमेशा देखा जा सकता है, जिसका आधार यह होगा कि श्रम की प्रक्रिया मे लोग कितना समय लगाते हैं, पैदावार का प्राकृतिक स्वरूप क्या है और इन दोना बडे विभागो मे कौन क्या भूमिका अदा करता है। सामाजिक उत्पादन की विकास पद्धति का समझने के लिये इस विभाजन का मौलिक महत्त्व है। उपभोग साधनो क उत्पादन मे वृद्धि केवल उत्पादन की पद्धति और

प्रविधि का सुधार करके ही की जा सकती है, इसलिये विभाग १ का विकास सामाजिक उत्पादन की प्रगति की मूल आधारभूमि है। विभाग १ म उत्पादन का सिलसिला और विस्तार सुनिश्चित करने के लिये जरूरी है कि उन श्रम साधना का पुनरुत्पादन निरतर जारी रहे, जो उपभोग सामग्री बनाने के काम आते ह, तथा उन श्रम साधनो का जो उत्पादन साधन बनाने के काम आते ह, और साथ ही अतिरिक्त श्रम साधनो का निमाण करना भी जरूरी है जो सामाजिक उत्पादन मे परिवद्धन करने के काम आत ह। इसी लिय उत्पादन म तजी से परिवद्धन करने के लिये उत्पादन साधना (विभाग १) के उत्पादन की प्राथमिकता जरूरी है। लेकिन परिवद्धित पुनरुत्पादन का मतलब उत्पादित श्रम साधना की मात्रा म केवल वद्धि से कही ज्यादा है। इसम शामिल है श्रम के प्रचलित औजारा और साधनो मे सुधार तथा नित्य नये उत्पादन उपकरणो और श्रम के साधना का निर्माण, नयी प्रविधि, बिजली उद्याग का विकास, आदि, तथा राष्टीय अथव्यवस्था की प्रत्यक शाखा मे उनको लागू करना, अर्थात, **तकनीकी प्रगति, जो सामाजिक उत्पादन के विकास के लिये धूरि का काम देती है।**

सभी विकासा की तरह उत्पादन के विकास के भी दा पहलू ह **क्रमबद्धता तथा नये तत्वा की उत्पत्ति।** श्रम के नये साधना का निर्माण पहले के प्रचलित साधना की सहायता से तथा उत्पादन के प्राप्त स्तर द्वारा निर्मित सम्भावनाआ क आधार पर ही किया जा सकता है। इसी लिये क्रमबद्धता, जिसका मतलब है पहले के विकास के लाभदायक परिणामा का सरक्षण, उत्पादन शक्तिया के विकास का एक आवश्यक तत्व और शत है।

यह नही समझना चाहिये कि इस विकास की रेखा सीधी और अखड है। ऐसा नही है। यह बहुत पेचदार है। एक बात तो यही कि उत्पादन के विभिन्न औजारो के आधार पर तकनीकी प्रगति भिन्न भिन्न रास्ता अपनाती है। सीधी सादी दस्तकारी के औजारा का विकास गुणात्मक रूप से मशीनी उत्पादन के विकास स भिन्न होता है। यह बात मार्क्स पहल ही कह चुके ह जिन्हाने लिखा कि पूजीवादपूव की सभी उत्पादन प्रणालिया का तकनीकी आधार मूलत रूढ़िवादी था, जबकि पूजीवादी

उत्पादन का तकनीकी आधार क्रांतिकारी है।* ऐसा क्यों है? एक मामूली औजार और मशीन में फर्क यह है कि औजार को आदमी स्वयं अपने हाथ से चलाता है जबकि मशीनों में वे यंत्रक्रियाविधि द्वारा चालू होते हैं। पुराने जमाने में पहले आदमी औजार की सहायता से करता था अब मशीनें करती हैं। जब कोई औजार अनुभव के आधार पर किये श्रम क्रिया के अनुरूप बनाया जाता है तो उसमें गतिहीन स्थिरता की प्रवृत्ति होती है। कुल्हाड़ी, हथौड़ा और हल जैसे औजार हजारों बरस से इस्तेमाल किये जा रहे हैं, मगर इनमें विशिष्टता पैदा करने के लिये केवल मामूली सा परिवर्तन किया गया। यही कारण है कि इन औजारों के आधार पर तकनीकी प्रगति बहुत सुस्त रही और एक स्थान पर जमे रहने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी। ऐसी हालत में श्रम की उत्पादकता में वृद्धि मूलत श्रमिक के हस्तकौशल तथा पैदावार के निर्माण में श्रम के तफसीली विभाजन के कारण होती है।

बड़े पैमाने के उद्योग के तकनीकी आधार का हाल बिल्कुल भिन्न है। मशीन के कारण समूचे औद्योगिक तथा कृषि उत्पादन, परिवहन तथा अन्य उद्योगों का रूपांतरण हो जाता है। मशीनी उत्पादन की कल्पना श्रम के व्यापक सामाजिक विभाजन और उत्पादन की विभिन्न शाखाओं में मौलिक संबंधों के बिना की ही नहीं जा सकती। उत्पादन की किसी एक शाखा में कोई बड़ा सुधार हो तो अन्य शाखाओं में भी, जिनका सम्बंध पहली शाखा से हो, इसी प्रकार का सुधार जरूरी हो जाता है ताकि उत्पादन में अनुपात बना रहे और कहीं कोई रुकावट न पैदा हो। मिसाल के लिये, जेट इंजिन की उत्पत्ति से धातुकर्म, रासायनिक तथा अन्य उद्योगों में, जो इंजिन बनाने के लिये सामग्री मुहैया करते थे, नये मापदंड स्थापित हुए। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि मशीनी उत्पादन में विशाल पैमाने पर और तेजी के साथ बढ़ने और फलने की क्षमता है, जो दस्तकारी में कभी नहीं थी।

अंत में, बड़े पैमाने के उद्योग में संक्रमण का संबंध उत्पादन में विज्ञान के चेतन तकनीकी उपयोग से है और इस कारण अनंत सम्भावना है कि

---

*का० मार्क्स, 'पूंजी', प्रगति प्रकाशन, मास्को, खण्ड १, पृ० ५४८–५५०

उत्पादन म प्रकृति की अधिक स अधिक शक्तिया को लगाया जा सके, पदार्थों के नये नय पता लगनेवाले गुणा तथा प्राकृतिक नियमो को लागू किया जा सके और इस तरह उत्पादन शक्तिया के विकास के लिये अनत सभावनाए उपस्थित होती ह। आधुनिक मशीनी उत्पादन को, जो विज्ञान का भौतिक आधार है, इससे अपने आगे के विकास मे ज़ोरदार बढावा मिला है। वतमान वैज्ञानिक तथा प्राविधिक क्राति के पीछे अय चीजो के विकास के अलावा परमाणविक भौतिकी, अर्द्धचालका की भौतिकी, साईबरनेटिक्स आदि हैं आधुनिक मशीनी उत्पादन के तकनीकी आधार म तज़ी स छलाग लगाकर बढने और क्रातिकारी परिवतन की क्षमता मौजूद है। इसम सदेह नही कि आधुनिक प्रविधि की क्षमताओ का उपयोग सामाजिक स्थितिया पर भी निभर करता है। इसका ब्योरा हम आगे चलकर करगे।

इस तरह, तकनीकी प्रगति ही वह आधार है, जिसपर उत्पादक शक्तिया का विकास होता है। लेकिन यह विकास तकनीकी विकास तक ही सीमित नही है। उसके लिय उत्पादन के सगठन मे सुधार, उत्पादक शक्ति के रूप मे मनुष्य का विकास यानी उसके अनुभव और कायकौशल, उसके सास्कृतिक स्तर तथा तकनीकी ज्ञान आदि का विकास भी जरूरी है।

मनुष्य का अनुभव तथा कायकौशल भी, जिनमे तकनीकी प्रगति के साथ परिवतन होता है, उत्पादन शक्तिया का एक सक्रिय तत्व है। मशीने आदमी के बिना नही चल सकती, जो मशीना को सिफ चलाता ही नही बल्कि मशीन और प्रविधि म सुधार करता, उहे तरक्की देता, नये उपकरणा का आविष्कार करता तथा उत्पादन का वैज्ञानिक आधार पर पुनगठन करता है। यही कारण है कि यदि अय स्थितिया समान हा तो मशीनरी का विकास तथा उसकी क्षमताओ का उपयोग आदमियो के अनुभव, कायकौशल, ज्ञान, सास्कृतिक स्तर तथा क्षमता पर निभर करता है।

फलस्वरूप, उत्पादन शक्तियो का विकास एक पेचीदा क्रिया है, जिसम विभिन तत्व एक दूसरे को प्रभावित करते है, लेकिन प्रगति का सामाय माग सबसे बढकर श्रम साधना के विकास और सुधार से निर्धारित होता है, जा उत्पादन शक्तिया का कारणवाचक तत्व है।

उत्पादन शक्तिया उत्पादन सबधो को निर्धारित करता है इसलिए कि उत्पादन शक्तिया, खासकर उत्पादन के साधनो और औजारो के स्वरूप तथा विकास स्तर का तकाजा होता है कि श्रम की प्रक्रिया में लगे हुए लोगो के बीच निश्चित सबध कायम हो, और इस निर्भरता की अभिव्यक्ति एक प्रवृत्ति के रूप में होती है, जो मानवजाति के इतिहास में बहुत स्पष्ट है।

इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण यह बताता है कि श्रम के औजारो के विकास में इतिहास के प्रातःकाल के आदिम पत्थर के बने कुल्हाड़ और नोकीले डडे से लेकर आधुनिक काल की मशीनरी उपकरणो, बिजलीघरो आदि तक जो महान प्रगति हुई है, उसका एक परिमाणात्मक पहलू है और एक गुणात्मक पहलू। जब हम कहते हैं कि उत्पादन शक्तियो का विकास कम या अधिक हुआ है तो हम उनका मूल्याकन परिमाणात्मक दृष्टि से करते हैं और उनके विकास के विभिन्न स्तरो की तुलना करते हैं। उत्पादन शक्तियो का गुणात्मक उल्लेख इस बात पर निर्भर करता है कि श्रम के औजारो को चालू और उनका उपयोग कैसे किया जाता है। गुणात्मक दृष्टि से देखने पर उत्पादन शक्तियो का दोहरा स्वरूप हो सकता है जब श्रम के औजारो का व्यक्तिगत श्रम द्वारा चालू किया जाता है (जैसे दस्तकारी के औजारो को) और उससे वह व्यक्ति जीवन निर्वाह के आवश्यक साधन प्राप्त करता है, तो कहा जाता है कि उत्पादन शक्तियो का **निजी स्वरूप** है, और जब उन्हे चलाने के लिये सामूहिक श्रम की जरूरत पड़े (जैसे मशीनी व्यवस्था में होती है) तो उत्पादन शक्तियो का **सामाजिक स्वरूप** होता है।

उत्पादन शक्तियो के सामाजिक तथा निजी स्वरूपो के अनुकूल उत्पादन सबधो के भी दो सम्भव रूप हो सकते हैं, दो मौलिक प्रकार, जो इतिहास में देखने में आते हैं। एक उत्पादन साधनो के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित **उत्पादन प्रक्रिया मे भाग लेनेवाले लोगो मे सहयोग और परस्पर सहायता के सबध** हैं और दूसरा उत्पादन साधनो के निजी स्वामित्व पर आधारित **प्रभुत्व और अधीनता के सबध**।

मानवजाति जब पशु अवस्था से बाहर निकल आयी तो मनुष्यो ने पत्थर लकड़ी और हड्डी के बने औजार इस्तेमाल किये। यद्यपि इन औजारो का उपयोग व्यक्तिगत रूप में ही किया जा सकता था, लेकिन

इनसे राम लनेवाला व्यक्ति अकेले इनके ज़रिये जीवन निर्वाह का आवश्यक मामान जुटान म असमथ था। इसलिये व्यक्तिगत उत्पादन का काई सवाल नही था और लागा को मिल-जुलकर एक दूसर की सहायता से काम करना पडता था। इम तरह उस युग म वुनियादी उत्पादक शक्ति **समूह की शक्ति** थी और आदिम समाज मे जा सामूहिक सवध कायम हुए उसका आधार वही था।

उत्पादन शक्तिया या विकास हान पर आदिम कम्यून म पत्थर के औज़ारा के वजाय तावे और फिर आगे चलकर लोहे के औज़ारो का उपयाग हान लगा। इनके कारण श्रम की उत्पादकता इतनी वढी कि व्यक्ति और अलग अलग परिवार उत्पादन का काम करने लगे। उत्पादन शक्तिया ने जव **निजी स्वरूप** धारण कर लिया ता उनके विकास म एक गुणात्मक छलाग लगायी गयी। इसके ज़बरदस्त सामाजिक नतीजे निकल। उत्पादन शक्तिया के निजी स्वरूप के अनुकूल, उनके आधार पर अनिवायत उत्पादन के निजी स्वामित्ववाले सवध, यानी दाम प्रथा सामतवादी तथा पूजीवादी व्यवस्था स्थापित होती है। प्रत्येक उच्चतर किस्म क निजी स्वामित्व के सबध **निजी स्वरूप** वाली उत्पादन शक्तिया के एक उच्चतर **स्तर** के आधार पर विकसित हाते हैं। निजी उपयाग के श्रम औज़ारा का विकास और सुधार एक ओर गुणात्मक छलाग के लिये परिमाणात्मक तयारी था—दस्तकारी के औज़ारा से मशीनी उत्पादन म सक्रमण के लिय, जिसने श्रम की प्रक्रिया को सामाजिक स्वरूप प्रदान किया। इसम शक नही कि सबसे सादा मशीन (जैसे पवनचक्की या पनचक्की) वहुत प्रारम्भिक काल मे ही इस्तेमाल की जाने लगी थी पनचक्की आदिम काल मे और पवनचक्की कोई १०वी शताब्दी से। लेकिन उत्पादन म उनकी भूमिका गौण थी तथा उनके उपयोग से उत्पादन का स्वरूप निर्धारित नही होता था। केवल पूजीवाद न, जिसकी उत्पत्ति प्रारम्भ म ऐसे श्रम उपकरणो के आधार पर हुई, जिनका स्वरूप निजी था, धीरे धीरे उत्पादन प्रक्रिया का सामाजिक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार पूजीवाद और उसके साथ समस्त निजी स्वामित्व ने अपन आपको लुप्तप्राय वना लिया क्याकि उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के लिय उत्पादन क साधना की सामाजिक स्वामित्व आवश्यक होती है। आधुनिक वडे पैमान के उद्याग का विकसित करके पूजीवाद ने उत्पादन साधनो पर

उत्पादन शक्तिया उत्पादन सबधो को निर्धारित करता है इसलिये कि उत्पादन शक्तिया, खासकर उत्पादन के साधनो और औजारो के स्वरूप तथा विकास स्तर का तकाजा होता है कि श्रम की प्रक्रिया में लगे हुए लोगो के बीच निश्चित सबध कायम हो, और इस निर्भरता की अभिव्यक्ति एक प्रवृत्ति के रूप मे होती है, जो मानवजाति के इतिहास मे बहुत स्पष्ट है।

इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण यह बताता है कि श्रम के औजारो के विकास मे इतिहास के प्रात काल के आदिम पत्थर के बन कुल्हाड़े और नोकीले डडे से लेकर आधुनिक काल की मशीनरी उपकरणो, बिजलीघरो आदि तक जो महान प्रगति हुई है, उसका एक परिमाणात्मक पहलू है और एक गुणात्मक पहलू। जब हम कहते हैं कि उत्पादन शक्तियो का विकास कम या अधिक हुआ है तो हम उनका मूल्याकन परिमाणात्मक दृष्टि से करते है और उनके विकास के विभिन्न स्तरो की तुलना करते हैं। उत्पादन शक्तियो का गुणात्मक उल्लेख इस बात पर निर्भर करता है कि श्रम के औजारो को चालू और उनका उपयोग कैसे किया जाता है। गुणात्मक दृष्टि से देखने पर उत्पादन शक्तियो का दोहरा स्वरूप हो सकता है जब श्रम के औजारो को व्यक्तिगत श्रम द्वारा चालू किया जाता है (जैसे दस्तकारी के औजारो को) और उसमे वह व्यक्ति जीवन निर्वाह के आवश्यक साधन प्राप्त करता है, तो कहा जाता है कि उत्पादन शक्तियो का **निजी स्वरूप** है, और जब उन्हे चलाने के लिये सामूहिक श्रम की जरूरत पडे (जैसे मशीनी व्यवस्था मे होती है) तो उत्पादन शक्तियो का **सामाजिक स्वरूप** होता है।

उत्पादन शक्तियो के सामाजिक तथा निजी स्वरूपो के अनुकूल उत्पादन सबधो के भी दो सम्भव रूप हो सकते है दो मौलिक प्रकार, जो इतिहास मे देखने मे आते है। एक उत्पादन साधनो के सामाजिक स्वामित्व पर आधारित **उत्पादन प्रक्रिया मे भाग लेनेवाले लोगो मे सहयोग और परस्पर सहायता के सबध** है, और दूसरा उत्पादन साधनो के निजी स्वामित्व पर आधारित **प्रभुत्व और अधीनता के सबध।**

मानवजाति जब पशु अवस्था से बाहर निकल आयी तो मनुष्यो ने पत्थर लकडी और हड्डी के बने औज़ार इस्तेमाल किये। यद्यपि इन औजारो का उपयोग व्यक्तिगत रूप मे ही किया जा सकता था, लेकिन

इनसे काम लेनेवाला व्यक्ति अकेले इनके जरिये जीवन निर्वाह का आवश्यक सामान जुटाने म असमथ था। इसलिये व्यक्तिगत उत्पादन का कोई सवाल नही था और लागा को मिल जुलकर एक दूसरे की सहायता से काम करना पडता था। इस तरह, उस युग म बुनियादी उत्पादक शक्ति समूह की शक्ति थी और आदिम समाज मे जा सामूहिक सबध कायम हुए उसका आधार वही था।

उत्पादन शक्तिया का विकास होने पर आदिम कम्यून म पत्थर के औजारा के बजाय तावे और फिर आगे चलकर लोहे के औजारा का उपयाग होने लगा। इनके कारण श्रम की उत्पादकता इतनी बढी कि व्यक्ति और अलग अलग परिवार उत्पादन का काम करने लगे। उत्पादन शक्तिया ने जब निजी स्वरूप धारण कर लिया तो उनके विकास म एक गुणात्मक छलाग लगायी गयी। इसके जबरदस्त सामाजिक नतीजे निकले। उत्पादन शक्तिया के निजी स्वरूप के अनुकूल, उनके आधार पर अनिवायत उत्पादन के निजी स्वामित्ववाले सबध, यानी दास प्रथा सामतवादी तथा पूजीवादी व्यवस्था स्थापित होती है। प्रत्येक उच्चतर किस्म के निजी स्वामित्व के सबध निजी स्वरूप वाली उत्पादन शक्तिया के एक उच्चतर स्तर के आधार पर विकसित होत ह। निजी उपयोग के श्रम औजारा का विकास और सुधार एक और गुणात्मक छलाग के लिय परिमाणात्मक तयारी था – दस्तकारी के औजारो से मशीनी उत्पादन म सक्रमण के लिये, जिसन श्रम की प्रक्रिया को सामाजिक स्वरूप प्रदान किया। इसम शक नही कि सबसे सादा मशीने (जसे पवनचक्की या पनचक्की) बहुत प्रारम्भिक काल म ही इस्तेमाल की जाने लगी थी पनचक्की आदिम काल मे और पवनचक्की काई १०वी शताब्दी से। लेकिन उत्पादन मे उनकी भूमिका गौण थी तथा उनके उपयोग से उत्पादन का स्वरूप निर्धारित नही होता था। केवल पूजीवाद ने, जिसकी उत्पत्ति प्रारम्भ म ऐसे श्रम उपकरणो के आधार पर हुई, जिनका स्वरूप निजी था, धीरे धीरे उत्पादन प्रक्रिया को सामाजिक स्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार पूजीवाद और उसके साथ समस्त निजी स्वामित्व ने अपने आपको लुप्तप्राय बना लिया क्योकि उत्पादन की सामाजिक प्रक्रिया के लिये उत्पादन के साधना की सामाजिक स्वामित्व आवश्यक होती है। आधुनिक बडे पैमाने के उद्योग को विकसित करके पूजीवाद ने उत्पादन साधनो पर

सामाजिक समाजवादी स्वामित्व के उत्पन्न होने के लिये भौतिक तथा प्राविधिक शर्तें पूरी कर दी है।

फलस्वरूप दस्तकारी के औज़ारो से मशीन उत्पादन तक परिवर्तन के कारण उत्पादक शक्तियो के स्वरूप मे जो गुणात्मक परिवर्तन आया वह उत्पादन साधनो मे निजी स्वामित्व संबध से सामाजिक स्वामित्व तक सक्रमण का परम कारण तथा आधार है।

इस समय हम उत्पादन के विकास मे एक नयी छलाग का दष्टिपात कर रहे हैं। इससे आगे चलकर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी, जिसमे मनुष्य अपने और प्रकृति के बीच केवल एक मशीन या मशीनो की व्यवस्था को नही बल्कि स्वचालित स्वनियंत्रित उत्पादन प्रक्रिया को ले आयेगा। मशीनरी के विकास मे स्वचलीकरण से एक नये युग का प्रादुर्भाव हो रहा है।

सर्वतोमुखी मशीनीकरण तथा स्वचलीकरण द्वारा केवल अलग अलग कारखाने अथवा उद्योग ही नही, बल्कि पूरे के पूरे आर्थिक क्षेत्र, जो एक सम्पूर्ण इकाई के रूप मे काम करते है, एक सूत्र मे बंध जाते है, आगे चलकर अलग अलग देशो तथा देश समूहो के सारे के सारे आर्थिक क्षेत्र इसी तरह एकत्रित होगे और दीर्घ काल मे पूरे ससार की अर्थव्यवस्था एक सुसबद्ध उत्पादन व्यवस्था बन जायेगी। यह प्रवत्ति अभी से विशाल क्षेत्रो मे, जसे सोवियत सघ के यूरोपीय भाग मे, महान विद्युत व्यवस्थाओ की स्थापना के रूप मे प्रकट होने लगी है। उत्पादन के और अधिक समाजीकरण से उसमे गुणात्मक परिवर्तन हो रहे है। इस भौतिक आधार से वस्तुगत सम्भावना और आवश्यकता पदा होती है कि उत्पादन की प्रक्रिया को पूरे समाज के हितो तथा सचेत नियत्रण के अधीन ले आया जाय राष्ट्रो और देशो के अलगाव को दूर किया जाये और दीर्घ काल मे पूरे विश्व के पमाने पर स्वतत्र श्रमजीवी लोगो का समाकलन ही समाज के रूप मे किया जाये।

उत्पादन औज़ारो के विकास के परिमाणात्मक तथा गुणात्मक पहलुओ का तथा उनके स्वरूप मे परिवर्तन का सवाल सभी सामाजिक आर्थिक सरचनाओ के भौतिक तथा तकनीकी आधार को स्पष्ट करने और एक प्राकृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप मे उनके विकास का अवबोध करने के लिये निर्णायक महत्व रखता है।

उत्पादक शक्तियां को उत्पादन संबंध किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

किसी समय तक उत्पादक शक्तियां का विकास प्रचलित उत्पादन संबंधों के सारतत्व को प्रभावित किये बिना ही होता है। अतः उन संबंधों को हटाकर कोई नया रूप उनकी जगह उस समय तक नहीं लेता, जब तक कि उत्पादक शक्तियों के लिए विकास की गुंजाइश बाकी रहती है, ठीक उसी तरह जैसे बच्चा अपने कपड़े उस समय तक पहनता रहता है, जब तक कि वे उसके लिये बिल्कुल छोटे न हो जायें।

लेकिन विकास के दौरान में आगे चलकर उत्पादन संबंध पुराने पड़ जाते हैं, *विकासमान उत्पादक शक्तियों से उनका अंतर्विरोध होने लगता है* और वे उनके रास्ते मे बाधा बन जाते हैं। इस स्थिति पर पहुंचकर उन्हें नये उत्पादन संबंधों के लिये स्थान खाली करना पड़ता है, जो उत्पादक शक्तियों के विकास के रूप का काम देते हैं।

मार्क्स ने पा० वा० आन्नेनकोव के नाम २८ दिसम्बर, १८४६ के अपने प्रसिद्ध पत्र में लिखा था "मनुष्य जो उपार्जित करते हैं उसे फिर कभी छोड़ते नहीं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे उस सामाजिक रूप का कभी परित्याग नहीं करते, जिसमें उन्होंने किन्हीं उत्पादक शक्तियों को प्राप्त किया है। इसके विपरीत, प्राप्त परिणाम से वंचित न होने और सभ्यता के फलों को न गंवाने के लिये मनुष्य उस क्षण से ही अपने सारे परम्परागत सामाजिक रूपों को बदलने को बाध्य होते हैं, जब से उनके वाणिज्य की प्रणाली का उत्पादक शक्तियों के साथ सामंजस्य नहीं रह जाता।"*

उत्पादन संबंध, जिनके दायरे के अंदर उत्पादक शक्तियों का विकास होता है, इनका एक विशेष ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करते हैं। इतिहास पर आधारित प्रत्येक उत्पादन प्रणाली के अपने विशेष आर्थिक नियम होते हैं जिनके आधार पर उस युग में उत्पादक शक्तियों का विकास होता है।

चूंकि उत्पादन संबंधों का प्रत्येक रूप उत्पादन को एक निश्चित ध्येय के अधीन कर देता है, इसलिये मनुष्यों में, उनके विशाल समूहों में, और वर्गीय समाज के अंदर वर्गों में, कार्यकलाप की निश्चित

---

*का० मार्क्स, अन्नेन्कोव के नाम एक पत्र, २८ दिसंबर, १८४६

सामाजिक समाजवादी स्वामित्व के उत्पन्न होने के लिये भौतिक तथा प्राविधिक शर्तें पूरी कर दी हैं।

फलस्वरूप दस्तकारी के औजारों से मशीन उत्पादन तक परिवर्तन के कारण उत्पादक शक्तियों के स्वरूप मे जो गुणात्मक परिवर्तन आया वह उत्पादन साधनों मे निजी स्वामित्व सबंध से सामाजिक स्वामित्व तक सक्रमण का परम कारण तथा आधार है।

इस समय हम उत्पादन के विकास मे एक नयी छलांग का दृष्टिपात कर रहे हैं। इससे आगे चलकर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी, जिसमे मनुष्य अपने और प्रकृति के बीच केवल एक मशीन या मशीनों की व्यवस्था को नही बल्कि स्वचालित स्वनियन्त्रित उत्पादन प्रक्रिया को ले आयेगा। मशीनरी के विकास मे स्वचलीकरण से एक नये युग का प्रादुर्भाव हो रहा है।

सर्वतोमुखी मशीनीकरण तथा स्वचलीकरण द्वारा केवल अलग अलग कारखाने अथवा उद्योग ही नही बल्कि पूरे के पूरे आर्थिक क्षेत्र, जो एक सम्पूर्ण इकाई के रूप मे काम करते हैं, एक सूत्र मे बध जाते है, आगे चलकर अलग अलग देशो तथा देश समूहो के सारे के सारे आर्थिक क्षेत्र इसी तरह एकत्रित होगे और दीर्घ काल मे पूरे ससार की अर्थव्यवस्था एक सुसबद्ध उत्पादन व्यवस्था बन जायेगी। यह प्रवृत्ति अभी से विशाल क्षेत्रो मे, जैसे सोवियत सघ के यूरोपीय भाग मे, महान विद्युत व्यवस्थाओ की स्थापना के रूप मे प्रकट होने लगी है। उत्पादन के और अधिक समाजीकरण से उसमे गुणात्मक परिवर्तन हो रहे हैं। इस भौतिक आधार से वस्तुगत सम्भावना और आवश्यकता पैदा होती है कि उत्पादन की प्रक्रिया को पूरे समाज के हितो तथा सचेत नियन्त्रण के अधीन ले आया जाये, राष्ट्रो और देशो के अलगाव को दूर किया जाये और दीर्घ काल मे पूरे विश्व के पैमाने पर स्वतन्त्र श्रमजीवी लोगो का समाकलन ही समाज के रूप मे किया जाये।

उत्पादन औजारो के विकास के परिमाणात्मक तथा गुणात्मक पहलुओ का तथा उनके स्वरूप मे परिवर्तन का सवाल सभी सामाजिक आर्थिक सरचनाओ के भौतिक तथा तकनीकी आधार को स्पष्ट करने और एक प्राकृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप मे उनके विकास का अवबोध करने के लिये निर्णायक महत्व रखता है।

उत्पादक शक्तिया को उत्पादन सबध किस प्रकार प्रभावित करते ह ?

किसी समय तक उत्पादक शक्तिया का विकास प्रचलित उत्पादन सबधो के सारतत्व को प्रभावित किये बिना ही होता है। अत उन सबधो का हटाकर कोई नया रूप उनकी जगह उस समय तक नही लेता जब तक कि उत्पादक शक्तियो के लिये विकास की गुजाइश बाकी रहती है, ठीक उसी तरह जसे बच्चा अपने कपडे उस समय तक पहनता रहता है, जब तक कि वे उसके लिये बिल्कुल छोटे न हो जाये।

लेकिन विकास के दौरान मे आगे चलकर उत्पादन सबध पुराने पड जाते ह, विकासमान उत्पादक शक्तियों से उनका अतविरोध होने लगता है और वे उनके रास्ते म बाधा बन जाते हैं। इस स्थिति पर पहुचकर उन्हे नये उत्पादन सबधो के लिये स्थान खाली करना पडता है, जो उत्पादक शक्तिया के विकास के रूप का काम देते ह।

मार्क्स ने पा० वा० आन्नेनकोव के नाम २८ दिसम्बर, १८४६ के अपने प्रसिद्ध पत्र म लिखा था "मनुष्य जो उपार्जित करत ह उसे फिर कभी छोडत नही। पर इसका यह अर्थ नही कि वे उस सामाजिक रूप का कभी परित्याग नही करते, जिसमे उन्होने किन्ही उत्पादक शक्तिया को प्राप्त किया है। इसके विपरीत, प्राप्त परिणाम से वचित न होने और सभ्यता के फला को न गवाने के लिये मनुष्य उस क्षण से ही अपने सारे परम्परागत सामाजिक रूपा को बदलने को बाध्य होते ह, जब से उनके वाणिज्य की प्रणाली का उत्पादक शक्तियो के साथ सामजस्य नही रह जाता।"*

उत्पादन सबध, जिनके दायरे के अन्दर उत्पादक शक्तियो का विकास होता है, इनको एक विशेष ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करते ह। इतिहास पर आधारित प्रत्येक उत्पादन प्रणाली के अपने विशेष आर्थिक नियम होते ह जिनके आधार पर उस युग मे उत्पादक शक्तियो का विकास होता है।

चूकि उत्पादन सबधो का प्रत्येक रूप उत्पादन को एक निश्चित ध्येय के अधीन कर देता है, इसलिये मनुष्या मे, उनके विशाल समूहा मे, और वर्गीय समाज के अन्दर वर्गां मे, कायकलाप की निश्चित

---

*का० मार्क्स, अन्नेनकोव के नाम एक पत्र, २८ दिसबर १८४६

सामाजिक समाजवादी स्वामित्व के उत्पन्न होने के लिये भौतिक तथा प्राविधिक शर्तें पूरी कर दी ह।

फलस्वरूप दस्तकारी के औजारो से मशीन उत्पादन तक परिवतन के कारण उत्पादक शक्तिया के स्वरूप मे जो गुणात्मक परिवतन आया वह उत्पादन साधनो मे निजी स्वामित्व सबध से सामाजिक स्वामित्व तक सक्रमण का परम कारण तथा आधार है।

इस समय हम उत्पादन के विकास म एक नयी छलाग का दष्टिपात कर रहे ह। इससे आगे चलकर एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी, जिसमें मनुष्य अपने और प्रकृति के वीच केवल एक मशीन या मशोनो की व्यवस्था को नही बल्कि स्वचालित स्वनियत्रित उत्पादन प्रत्रिया को ले आयेगा। मशीनरी के विकास मे स्वचलीकरण से एक नये युग का प्रादुर्भाव हो रहा है।

सवतोमुखी मशीनीकरण तथा स्वचलीकरण द्वारा केवल अलग अलग कारखाने अथवा उद्योग ही नही बल्कि पूरे के पूरे आर्थिक क्षेत्र, जो एक सम्पूण इकाई के रूप मे काम करते हैं, एक सूत्र मे बध जाते ह, आगे चलकर अलग अलग देशा तथा देश समूहो के सारे के सारे आर्थिक क्षेत्र इसी तरह एकत्रित होगे और दीघ काल म पूरे ससार की अथव्यवस्था एक सुसबद्ध उत्पादन व्यवस्था बन जायेगी। यह प्रवत्ति अभी से विशाल क्षेत्रो म, जसे सोवियत सघ के यूरोपीय भाग म, महान विद्युत व्यवस्थाओ की स्थापना के रूप मे प्रकट होने लगी है। उत्पादन के और अधिक समाजीकरण से उसम गुणात्मक परिवतन हो रहे हैं। इस भौतिक आधार से वस्तुगत सम्भावना और आवश्यकता पदा होती है कि उत्पादन की प्रक्रिया को पूरे समाज के हितो तथा सचेत नियत्रण के अधीन ले आया जाये, राष्ट्रो और देशो के अलगाव को दूर किया जाये और दीघ काल मे पूरे विश्व के पमाने पर स्वतत्र श्रमजीवी लोगो का समाकलन ही समाज के रूप म किया जाये।

उत्पादन औजारो के विकास के परिमाणात्मक तथा गुणात्मक पहलुओ का तथा उनके स्वरूप मे परिवतन का सवाल सभी सामाजिक आर्थिक सरचनाओ के भौतिक तथा तक्नीकी आधार को स्पष्ट करने और एक प्राकृतिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप म उनके विकास का अवबोध करने के लिये निर्णायक महत्व रखता है।

उत्पादक शक्तिया को उत्पादन सवध किस प्रकार प्रभावित करते है ?

किसी समय तक उत्पादक शक्तिया का विकास प्रचलित उत्पादन सबधा के सारतत्व को प्रभावित किये बिना ही होता है। अत उन सबधो को हटाकर कोई नया रूप उनकी जगह उस समय तक नही लेता, जब तक कि उत्पादक शक्तिया के लिये विकास की गुजाइश बाकी रहती है, ठीक उसी तरह जैसे बच्चा अपने कपडे उस समय तक पहनता रहता है, जब तक कि वे उसके लिये बिल्कुल छोटे न हो जाये।

लेकिन विकास के दौरान म आगे चलकर उत्पादन सबध पुराने पड जाते ह, विकासमान उत्पादक शक्तिया से उनका अतविरोध होने लगता है और वे उनके रास्ते मे बाधा बन जाते हैं। इस स्थिति पर पहुचकर उन्ह नये उत्पादन सबधो के लिये स्थान खाली करना पडता है, जो उत्पादक शक्तियो के विकास के रूप का काम देते ह।

मार्क्स ने पा० वा० आन्नेनकोव के नाम २८ दिसम्बर, १८४६ के अपने प्रसिद्ध पत्र मे लिखा था "मनुष्य जो उपाजित करते हैं उसे फिर कभी छोडते नही। पर इसका यह अथ नही कि वे उस सामाजिक रूप का कभी परित्याग नही करते, जिसमे उन्होने किन्ही उत्पादक शक्तिया को प्राप्त किया है। इसके विपरीत, प्राप्त परिणाम से वचित न होने और सभ्यता के फलो को न गवाने के लिये मनुष्य उस क्षण से ही अपने सारे परम्परागत सामाजिक रूपो को बदलने को बाध्य होते ह, जब से उनके वाणिज्य की प्रणाली का उत्पादक शक्तियो के साथ सामजस्य नही रह जाता।" *

उत्पादन सबध, जिनके दायरे के अन्दर उत्पादक शक्तिया का विकास होता है, इनको एक विशेष ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करते ह। इतिहास पर आधारित प्रत्येक उत्पादन प्रणाली के अपने विशेष आर्थिक नियम होते ह जिनके आधार पर उस युग मे उत्पादक शक्तिया का विकास होता है।

चूकि उत्पादन सबधो का प्रत्येक रूप उत्पादन को एक निश्चित ध्येय के अधीन कर दता है, इसलिये मनुष्यो मे, उनके विशाल समूहा म, और वर्गीय समाज के अन्दर वर्गों म, कायकलाप की निश्चित

---

* का० मार्क्स, अन्नेकोव के नाम एक पत्र २८ दिसवर, १८४६

अनुप्रेरणा का जन्म देता है, जो पूजीवादी समाज तथा समाजवादी समाज मे एक नही होती। उत्पादन सबधो के सक्रिय स्वरूप की यह मुख्य अभिव्यक्ति है।

उत्पादन के अतर्विरोधी सबधो का यह मतलब है कि उत्पादको और उत्पादन साधनो मे सम्पूर्ण या आशिक अलगाव हो गया है और यह कि स्वय उत्पादको को भी महज उत्पादन साधन बना दिया गया है। दास स्वामी सामती भूस्वामी तथा पूजीपति – अपनी अपनी सरचनाओ मे शासक वर्ग और उत्पादन साधनो के स्वामी – उत्पादन के विकास को अपने हित और आवश्यकता के अधीन कर देते है। मिसाल के लिये पूजीपति, जो उत्पादन के पूजीवादी सबधो के सवाहक है इस स्थिति मे होते है कि उत्पादन को अपने आत्मपरायण स्वार्थ – नफाखोरी के अधीन कर दे।

किसी शासक वर्ग के अस्तित्व का ऐतिहासिक औचित्य तभी तक होता है जब तक वह उत्पादन शक्तियो के विकास मे सहायक होता है, अथवा, दूसरे शब्दो मे, जब तक उत्पादन के प्रचलित सबध, जो उक्त वर्ग के प्रभुत्व की शर्त है, उत्पादन शक्तियो के अनुकूल रहते है। जब पूजीवादी उत्पादन सबधो ने उत्पादन के सामती सबधो को हटाकर उनका स्थान लिया तो उस समय वे उत्पादन शक्तियो की शक्तिशाली इजिन थे और उनके द्वारा वाणिज्यिक तथा औद्योगिक कार्यकलाप, निजी व्यापार, मुनाफे की होड तथा पूजीवादी आर्थिक प्रगति के लिये इस प्रकार की अन्य प्रेरणाओ का द्वार खुल गया। ऐतिहासिक दृष्टि से उत्पादन के पूजीवादी सबध आवश्यक तथा प्रगतिशील थे। लेकिन इसका अर्थ यह नही है कि शासक वर्गो के प्रयोजन और कार्यकलाप ही यह तय करने का एकमात्र आधार बन सकते है कि निजी स्वामित्व पर आधारित उत्पादन सबधो का कोई रूप प्रगतिशील है या नही। निर्णायक महत्व इस बात का है कि उत्पादन सबधो की उस व्यवस्था मे प्रत्यक्ष उत्पादक की स्थिति क्या है। उत्पादन के अतर्विरोधी सबधो का कोई रूप उस हद तक प्रगतिशील है, जिस हद तक वह जनता को उसकी पूर्वावस्था की तुलना मे कुछ अधिक सुविधाए प्रदान करता है, जिस हद तक उससे उनका शोषण कुछ हलका होता है और काम के लिये कुछ नयी प्रेरणाए मिलती है। इस सवाल पर हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक विचार करेगे।

उत्पादन शक्तिया के ऐतिहासिक विकास का चरित्राकन करते हुए हम रहते ह कि केवल उत्पादन के औजार ही नही बल्कि एक उत्पादक शक्ति की हसियत म मनुष्यो म भी परिवतन होता है। उत्पादन सबधो की क्रियाशीलता का विश्लेषण करते हुए प्रत्यक्ष उत्पादन के क्षेत्र म हम कायकलाप का एक भिन्न पहलू से देखना चाहिये। सच तो यह है कि उत्पादन शक्तिया पर सामाजिक स्थितियो के सदभ के बाहर विचार करना यानी उक्त उत्पादन सबधो की व्यवस्था के भीतर प्रत्यक्ष उत्पादक की अवस्था की व्याख्या किये बिना विचार करना सही नही है। यह इसलिये सही नही है कि श्रमजीवी जनता की हालत तथा उसके कारण श्रम की उत्पादकता बढाने के लिये जो प्रेरणायें उत्पन्न होती ह, व यह निश्चित करने के लिये बहुत महत्वपूण ह कि किसी एक मजिल पर उत्पादन सबध किस हद तक उत्पादन शक्तियो के अभिप्रेरक का काम कर सकते हैं। प्रश्न होता है कि जब हम कहते ह कि उत्पादन के पुराने सबध उत्पादन शक्तियो के विकास म पैरो की जजीर बन गये ह तो इसका मतलब क्या होता है? क्या इसका मतलब यह है कि आम तौर पर उत्पादन का विकास बिल्कुल रुक जाता है?

इस मार्क्सवादी प्रस्थापना का कि उत्पादन के पुराने सबध परो की जजीर बन जाते ह शाब्दिक अर्थों म नही लेना चाहिये, उस माने म नही जिसम रेलगाडी का ब्रेक उसे एकदम रोक देता है। उत्पादन रुकने के बजाय उत्पादन के पुराने सबधो के अतगत भी विकसित होता रहता है। जसे मिसाल के लिये पूजीवादी देशो म उत्पादन के जिन सबधो का प्रभुत्व है वे अब पुराने पड गये ह और उत्पादक शक्तियो से उनका अतविरोध गहरा है, मगर उत्पादन तो दूर, उत्पादन का **विकास** भी उन देशो मे जारी है।

फिर उत्पादन के पुराने सबधो के परो की जजीर बन जाने का क्या मतलब है? इसका मतलब एक तो यह होता है कि उत्पादन के इन पुराने सबधो के अतगत प्राप्त उत्पादन स्तर की तमाम सम्भावनाए काम म नही आती ह। 'उत्पादन की पूजीवादी प्रणाली के सामने उत्पादन के विस्तार की एक निश्चित अवस्था म बाधाए आती ह, जो अन्य स्थितियो म, उल्टे, बिल्कुल अपर्याप्त होगी। वह रुकता उस बिन्दु पर है जो उत्पादन तथा मुनाफे की प्राप्ति द्वारा निश्चित होता है, आवश्यकताओ की

पूति द्वारा नही।"* मार्क्स ने कहा कि इससे पूजीवादी उत्पादन का सीमित स्वरूप ज़ाहिर होता है।

ब्रिटिश वैज्ञानिक जे० डी० बनल ने अपनी पुस्तक 'विज्ञान और समाज' मे लिखा है कि अगर सयुक्त राज्य अमरीका और अन्य पूजीवादी देशो के साधनो का उपयोग समाज के हित मे किया जाय तो एक अरब पीडित तथा फाकाकश लोगो को समृद्ध तथा स्वस्थ जीवन के स्तर तक पहुचाने मे दस वर्ष से अधिक का समय नही लगेगा। लेकिन जब तक सयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूजीवादी देशो मे पूजीपतियो का राज है, उत्पादन जनगण के हितो से नही बल्कि अधिकतम मुनाफे की इजारादाराना होड से जुडा रहेगा। अत उत्पादन सबधो तथा उत्पादक शक्तियो के वर्तमान स्वरूप का विरोध कोई अमूर्त सैद्धातिक प्रस्थापना नही, बल्कि एक बहुत ठोस तथ्य है।

इसके अलावा, उत्पादन के पूजीवादी सबधो का बाधक प्रभाव जिन बातो मे प्रकट होता है, वे हैं कारखानो का सदा ही क्षमता से कम काम करना, उद्योग का एकागी तथा भोडा विकास, जब विनाशक सामग्रियो का उत्पादन बेहिसाब बढा दिया जाता है, सकडो करोड डालर शस्त्रास्त्र पर खर्च किया जाता और उत्पादक शक्तियो को विनाशकारी शक्ति मे बदल दिया जाता है।

अत मे, उत्पादन के पूजीवादी सबधो का बाधक प्रभाव इस बात मे प्रकट होता है कि जहा एक ओर श्रम की प्रक्रिया को बेहद तीव्र बना दिया जाता और मजदूरो को एडी-चोटी का पसीना एक करने पर मजबूर किया जाता है, वहा दूसरी ओर ऐसे लोगो की सख्या बहुत ज्यादा बढ जाती है, जिनके पास केवल आशिक समय के लिये काम है या कोई काम नही है, जिसके कारण स्वय मनुष्य, जो समाज की सबसे मूल्यवान उत्पादक शक्ति है, बर्बाद होता रहता है।

परिणामस्वरूप, जब हम कहते है कि उत्पादन के सबध उत्पादक शक्तियो के परो की जजीर बन गये है तो इसका मतलब यह नही होता कि इन शक्तियो का विकास रुक गया है। इसका मतलब केवल इतना है कि पूजीवाद के अतगत उत्पादन बहुत असमान और एकागी है और उत्पादन

---

*का० मार्क्स, 'पूजी', खण्ड ३

शक्तिया का विकास सकटो और तबाहियो से गुजरकर होता है। वज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धिया युद्ध की सेवा मे अर्पित कर दी जाती है, उनका उपयोग लोगो का तबाह-बर्बाद करने तथा प्रगति की शक्तिया के विरुद्ध लडने के लिये किया जाता है।

इस तरह, अनुकूलता के नियम के लिए उत्पादन सबधो की क्रियाशीलता भी चारित्रिक है। इस क्रियाशीलता की सम्भावना इस बात से पैदा होती है कि उत्पादन की प्रगति मे बढ़ावा या बाधा स्वय स्वामित्व के रूप द्वारा नही होता, बल्कि मनुष्य ही है, जो या तो उत्पादन को विकसित करते हैं या इसको विकसित करने मे कोई दिलचस्पी नही लेते। वे स्वय अपनी उत्पादन प्रणाली को विकसित करते अथवा उसमे परिवर्तन करते हैं, या कोई दूसरी प्रणाली अपनाते है, जो उनके इतिहास का आधार बनती है। मार्क्सवाद की शक्ति इस बात मे निहित है कि उसने इस सवाल का वज्ञानिक, भौतिकवादी उत्तर दिया कि आदमियो के, उनके विशाल समूहो और वर्गों के कायकलाप को हर युग मे कौन सी चीज निश्चित करती है। यह कायकलाप निश्चित होता है उत्पादन मे उनके स्थान, उत्पादन साधनो और इसी कारण उत्पादन की पदावार के साथ उनके सबध द्वारा, दूसरे शब्दो मे वह उनके उत्पादन सबधो द्वारा निश्चित होता है, जो मनुष्यो की इच्छा और उनकी चेतना के कारण नही, बल्कि उत्पादक शक्तियो के स्वरूप, अवस्था और विकास स्तर के कारण अपना रूप धारण करते है। इस प्रकार उत्पादन सबधो की क्रियाशीलता मनुष्यो के कायकलाप द्वारा प्रकट होती है, और इसलिये यह प्रश्न कि उत्पादन शक्तियो का, सवप्रथम उत्पादन के औजारो का विकास क्यो होता है, दरअसल यह प्रश्न है कि इन औजारो को विकसित करनेवाले मनुष्यो के कायकलाप को क्या चीज निश्चित करती है।

इस प्रश्न का उत्तर उत्पादन सबधो के विश्लेषण से मिलता है, जिनके द्वारा प्रत्येक दौर मे मानव कायकलाप की स्थितिया और हेतु निर्धारित होते है।

उत्पादन के पूजीवादी सबध प्रत्यक्ष उत्पादक को एक ऐसी स्थिति मे पहुचा देते है, जिसमे उसके श्रम की उत्पादकता शोषण द्वारा, खून चूसनेवाले तरीके द्वारा बढायी जाती है। समाजवाद के अतगत सवथा भिन्न स्थिति पदा की जाती है, जहा उत्पादन मे नये आविष्कार करनेवाले, वज्ञानिक, इजीनियर तथा टेक्नीशियन लोग प्रविधि और मशीनरी को

विकसित करते है, अपने ' अनुभव, कायकौशल, श्रम सगठन तथा समाजवादी समाज की उत्पादन शक्तिया को सुधारत ह केवल इसलिय नही कि उन्ह अपने काम की उचित उजरत मिलती है, बल्कि इसलिय भी कि वे अपने लिये, अपन जनगण के लिये तथा अपन राज्य के लिय काम करते ह। फलस्वरूप, **मनुष्यो तथा औजारो – उत्पादन के विकास की चालक शक्ति के रूप मे उत्पादन शक्तियो के तत्वो – की परस्पर क्रिया सदा उत्पादन के निश्चित सबधो के रूप मे प्रकट होती है, जिनके द्वारा उन ठोस हेतुओ की अभिव्यक्ति होती है, जो मनुष्य को कायकलाप पर आमादा करते ह।** अनुकूलता के नियम द्वारा किसी उत्पादन प्रणाली का विकास ही नही निर्धारित होता है बल्कि यह आवश्यकता भी कि जब विकासमान उत्पादक शक्तिया उत्पादन के पुराने सबधा स टकराने लगे तो एक उत्पादन प्रणाली की जगह दूसरी स्थापित हो। एक उत्पादन प्रणाली से दूसरी म परिवतन के दौरान म अनुकूलता का नियम किस प्रकार क्रियाशील होता है?

नयी उत्पादक शक्तिया तथा उनके अनुकूल उत्पादन सबध पुरानी व्यवस्था के भीतर जन्म लेते है। सामान्य रूप से, कोई नया तत्व पुराने तत्वा से स्वतत्र पुराने के मिट जाने पर उत्पन्न नही हो सकता, बल्कि केवल उसके विकास की आवश्यक पैदावार के रूप म उत्पन्न हो सकता है। उत्पादन का विकास भी कोई अपवाद नही है। जीवित रहने और जीवन निर्वाह की आवश्यक सामग्री का उत्पादन करने के लिय मनुष्यो का अपने से पूवनिर्मित सभी चीजो का अपने कायकलाप के आधार के रूप म स्वीकार करना पडता है। परन्तु प्रचलित उत्पादन सबधो द्वारा लाई हुई प्रेरणाओ के प्रभाव से हर पीढी श्रम के साधनो म तब्दीली करती तथा अपनी उत्पादन प्रणाली और कौशल को बेहतर बनाती है। इस प्रकार वह उत्पादक शक्तिया का विकसित करती है। धीरे धीरे इस तरह नयी उत्पादक शक्तिया जन्म लेती ह, जो अगली पीढी को विरासत म मिलती ह। उत्पादक शक्तिया के विकास की एक खास मजिल पर नये उत्पादन सबध, जिनसे एक विशेष आर्थिक क्षेत्र की रचना होती है, पुराने समाज के भीतर उत्पन्न होते ह। इससे नयी उत्पादन प्रणाली के तत्व पैदा होते ह। दास-प्रथा की उत्पादन प्रणाली का जन्म आदिम सामुदायिक व्यवस्था के अतगत तथा उसके विकास के परिणामस्वरूप होता है। यही बात सामतवादी उत्पादन प्रणाली पर लागू होती है, जिसका जन्म दास प्रथा के अतगत हुआ, और

पूजीवादी उत्पादन प्रणाली पर भी लागू होती हे, जो सामती व्यवस्था के भीतर उत्पन्न होने लगता है।

इस प्रकार नयी ग्राथिक प्रणाली का विकास पुरानी उत्पादन प्रणाली क भीतर होने लगता है। उभरती हुई नयी उत्पादक शक्तिया उत्पादन के पुरान सवधा से, जो समाज पर हावी रहते हैं, टकराती ह। इस टकराव का समाधान, यानी नये उत्पादन सबधो के प्रभुत्व की स्थापना, उन पुराने सवधा को मिटाये विना ग्रसम्भव है, जिनके ग्रस्तित्व को शासक वर्गों तथा उनके वनाय ऊपरी ढाचे के द्वारा कायम रखा जाता है।

यही कारण है कि पुराने उत्पादन सबधो से नये तक पहुचने मे गुणात्मक छलाग की जरूरत होती है, पुराने ग्रार वेकार-बेलोच ग्राथिक, सामाजिक तथा राजनीतिक रूपा को ग्रातिकारी ढग से मिटाने की जरूरत होती है, ताकि नयी उत्पादन प्रणाली की स्थापना के लिये जमीन तयार की जा सके।

समाजवादी उत्पादन प्रणाली के उत्पन्न होने की विशेषता यह है कि पुरानी व्यवस्था यानी पूजीवाद के भीतर केवल इसकी जरूरी शर्तें उत्पन्न होती ह उत्पादक शक्तिया, जिनका स्वरूप सामाजिक होता है, सवहारा वग, समाजवादी विचारधारा, सवहारा पार्टी, ग्रादि।

परन्तु, बहुत बढी हुई उत्पादक शक्तिया के ग्रनुकूल समाजवादी उत्पादन सवध पूजीवादी स्थितियो म जन्म नही लेते।

इस मार्क्सवादी प्रस्थापना को मानने से ग्रवसरवादिया ने हमेशा इनकार किया है। उनका कहना है कि समाजवाद के तत्व, इसके उत्पादन सवधा समेत, पूजीवादी स्थितियो म उत्पन्न हो जाते ह, कि समाजवाद के लिये "सघप" यह है कि इन तत्वो को धीरे धीरे वढाया जाये, कि पूजीवाद से समाजवाद मे परिवतन, खासकर पूजीवादी जनवाद के ग्रतगत, शुद्ध वैकासिक ढग से, ग्रातिकारी उथल-पुथल के विना किया जा सके। ग्रत यह सवाल कि समाजवादी सवध पूजीवाद के भीतर उत्पन्न हात ह या नही केवल सैद्धातिक नही, बल्कि वडे व्यावहारिक राजनीतिक महत्व का सवाल है, ग्रौर इसको लेकर घोर विचारधारात्मक सघप चलता रहता है। क्या कारण है कि पूजीवाद के ग्रतगत समाजवादी सवध जन्म नही ले सकते?

इतिहास मे एक के बाद एक आनेवाली प्रतिरोधी वर्गीय सरचनाओ ने उत्पादन सबधो मे कोई गहरी तब्दीली नही की, बल्कि केवल एक प्रकार के निजी स्वामित्व के स्थान पर अन्य प्रकार के निजी स्वामित्व स्थापित किया, शोषण के एक रूप को बदलकर दूसरा, जसे सामती शोषण का जगह पूजीवादी शोषण जारी किया। यही कारण है कि पूजीपतियो ने, जो निजी सम्पत्ति के मालिक होते ह सामतवाद के अतगत, जो निजी स्वामित्व की ही सरचना है, ज म लिया और कुछ समय बाद आर्थिक प्रभुता का स्थान प्राप्त कर लिया। अपनी आर्थिक प्रभुता का एक बार सुस्थिर कर लेने के बाद उन्होने आगे बढकर क्राति के जरिये सामती भूस्वामियो की राजनीतिक प्रभुता का तख्ता उलट दिया। यही वह बिदु है, जहा पहुचकर प्रत्येक पूजीवादी क्राति की सार सम्भावनाए पूरी हो जाती ह।

लेकिन पूजीवाद से समाजवाद म सक्रमण का मामला और है। हम यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि जब कभी पूजीवादी स्वामित्व का मिटाने का कोई प्रयत्न किया जाता ह तो पूजीवादी वग ऊपरी ढाचे की सारी ताकत से काम लेकर उस स्वामित्व की रक्षा करता है। यही कारण है कि पूजीवादी स्वामित्व का समाजवादी स्वामित्व म परिवर्तित करने का काम उस समय तक शुरु ही नही किया जा सकता, जब तक कि पूजीपति वग की राजनीतिक प्रभुता का अत नही कर दिया जाता। यह एक आवश्यक शत है मेहनतकश जनता मे नयी जान डालने की ताकि वह नये समाज का निर्माण करने के लिये चेतन और क्रमबद्ध प्रयास कर सक।

समाजवाद के अतगत, जसा कि पूव की प्रत्येक सरचना म होता आया है, उत्पादक शक्तियो के विकास से उनम और उत्पादन सबधो मे अतविरोध पैदा होते ह, मगर य अतविरोध मौलिक रूप से भिन्न प्रकार के ह। वे विकास के भिन्न रूप अपनाते ह तथा उनके समाधान के लिये भिन्न उपाय करने पडते है।

समाजवाद के अतगत अनुकूलता के नियम की मौलिक विशेषता यह है कि समाज ऐसी स्थिति म होता है कि उत्पादन सबधो को तजी स विकसित होनेवाली उत्पादन शक्तियो के अनुरूप बनाने के लिय ठीक समय पर क़दम उठाय, अर्थात, उनके बीच उत्पन्न होनेवाले अतविरोधो का समाधान चेतन रूप स करे।

उत्पादन के समाजवादी सबधा से उत्पादक शक्तिया के तेजी से विकसित होने की सम्भावना पैदा होती है। ये उनके विकास का शक्तिशाली स्रोत होते है, तकनीकी प्रगति को प्रोत्साहित करते, काम के प्रति कम्युनिस्ट रुख को बढावा देते और श्रम की उत्पादकता को तेजी से बढाते है। लेकिन ये सम्भावनाए अपने आप पूरी नही होती और यही कारण है कि लोगो की–मजदूरो, सामूहिक किसानो तथा बुद्धिजीवियो की–श्रम कार्यशीलता का प्रोत्साहन समाजवाद के अतर्गत उत्पादन को विकसित करने तथा वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को बेहद तेज करने की एक अत्यत महत्वपूर्ण शर्त है। तकनीकी प्रगति, उत्पादन का बेहतर सगठन, विज्ञान की प्रगति तथा इसकी उपलब्धियो का व्यावहारिक उपयोग, श्रम उत्पादकता मे वृद्धि, सामान के उपयोग की किफायत इत्यादि, जनता के सामने एक अत्यत महत्वपूर्ण काम समझा जाता है।

अनुकूलता का नियम सामाजिक परिणाम

समाज के विकास का मतलब है सामाजिक आर्थिक सरचनाओ का विकास और एक के स्थान पर दूसरे के आते रहने का सिलसिला। वह उत्पादन के विकास से निर्धारित होता है। उत्पादन ही वह चीज है, जिससे प्रत्येक सरचना का ढाचा और विकास, एक से दूसरी सरचना मे सक्रमण, वह रेखाए, जिनसे इतिहास चलता है, निश्चित होती है, और जो उसे एक सम्पूर्ण इकाई का रूप देती है। यही वह निर्णायक भूमिका है जो सभी समाज के विकास मे उत्पादन अदा करता है।

इतिहास मे, जो एक नियमबद्ध प्रक्रिया है, शुरू से कोई मौलिक उद्देश्य काम नही करता है। केवल मानव कार्यकलाप के उद्देश्य होते हैं और ये उद्देश्य, उनकी पूर्ति की सम्भावना समेत, हर युग की भौतिक परिस्थितियो द्वारा निर्धारित होते है।

यह समझना भी गलत होगा कि नियमबद्ध विकास और सामाजिक सरचनाओ का सिलसिला कोई दार्शनिक ऐतिहासिक साचा है, जिसमे हर राष्ट्र और पूरे इतिहास को ढाल लिया जाता है। ठोस इतिहास अवश्य ही बहुत विविधपूर्ण है। परन्तु जिस तरह सभी नदिया, चाहे उनका रास्ता कितने ही टेढे मेढे रास्ते से होता हो, एक ही दिशा मे बहती है, उसी तरह सभी

राष्ट्र, चाहे उनका ऐतिहासिक विकास कितना ही अजीव लगे, ऐतिहासिक **प्रक्रिया की सपूण वस्तुगत युक्ति के अधीन होती ह**, जा अनुकूलता के नियम द्वारा निर्धारित हाती है। आदिम सरचना, सभी अतविराधा सरचनाए तथा कम्युनिस्ट सामाजिक आर्थिक सरचना समाज के नियमवद्ध विकास की विभिन्न मजिले ह।

समाज का इतिहास प्रकृति के इतिहास का सिलसिला है। प्राणि जगत के विकास ने मनुष्य की उत्पत्ति की जविकी शर्तें पूरी की। मानव समाज का विकास तव आरम्भ हुआ जव मनुष्य के पाशविक पुरखो न जीवन निर्वाह क साधन जुटाने के अपने कायक्लाप म श्रम के औज़ार वनाना और इस्तमाल करना शुरू किया। परिवर्ती प्रकृति के साथ परस्पर क्रिया का इतरजैविकीय प्रणाली के रूप म श्रम के विकास से मानव हाथ और दिमाग की उत्पत्ति हुई। श्रम द्वारा व्यक्तियो के वीच सम्पर्कों की गुणात्मक दृष्टि स एक नयी व्यवस्था, सामाजिक सबधा, इतरप्राकृतिक, सामाजिक नियमितताओं की व्यवस्था भी कायम हुई। मानव सवेदना, मन, भाषा और विचार क्रम की रचना और विकास श्रम के तथा मनुष्या के आपस म एक दूसरे से सचार के दौरान मे और उसके आधार पर हुआ। इस तरह व सभी चीज़े, जा मनुष्य को पशु जगत से ऊपर उठाती ह, उसे अतत श्रम के कारण मिली ह।

समाज की उत्पत्ति के साथ **इतरजविकीय क्रियाविधि** का भी गठन होने लगता है, जिसके द्वारा सामाजिक अनुभव आनवाली पीढिया का सापा जाता है। मानव आचरण का अनुभव, व्यावहारिक कायक्लाप के तरीके, विचार प्रणाली, आदि जैविकी के क्षेत्र की मौरूसी चीज़े नही ह, वल्कि भाषा, भौतिक तथा वौद्धिक सस्कृति के रूप म समाज म स्थिर हाती ह। उनसे मनुष्या की हर नयी पीढी का सम्पक स्थापित होता है। इस प्रक्रिया का **व्यक्ति का समाजीकरण** कहते ह तथा वह एक मानव की हैसियत से हर व्यक्ति के कायक्लाप के लिय आवश्यक शत है। यही कारण है कि मनुष्य का अस्तित्व और विकास केवल समाज म और समाज की महायता मे ही सम्भव है। आदमी शुरू से ही सामाजिक प्राणी है।

इसी के साथ मनुष्य तथा समाज की उत्पत्ति से आन्मि, पुरातन मामाजिक सरचना आदिम सामुदायिक व्यवस्था की स्थापना हुई।

आदिम सामुदायिक सरचना सारे ससार म फैली हुई थी और उससे, उसकी पुरातन सादगी से, इस बात की बडी स्पष्ट तस्वीर मिलती है कि समस्त जीवन पद्धति और सबधो की सारी व्यवस्था किस प्रकार उत्पादन के स्तर पर निभर करती है। उस समय मनुष्य श्रम के बहुत ही भाडे तरह के औजार इस्तमाल करता था, जिस कारण उत्पादन का काम अकेले करना उसके लिये असम्भव था। प्रकृति के सामने व्यक्ति असल बेबस था इसलिये मिल-जुलकर काम करना आवश्यक हो गया। जिन्दा रहने के लिये आदमियो का समुदायो जसे **गणो और कबीलो** मे मिलकर रहना पडा। ये नस्ली इकाइया भी थी, जिन मे सबध का आधार सगोत्रता पर था उत्पादन इकाइया भी थी, क्योकि मनुष्य जीवन निर्वाह के साधन मिल-जुलकर हासिल करते थे, सामाजिक सगठन का रूप तथा एक भाषा भाषी समुदाय— एक साथ सभी कुछ थी। उत्पादन की आदिम अवस्था से ही यह बात भी निर्धारित हुई कि खून के रिश्ते-नाते, जो मानवजाति के पुनजनन पर असर डालते हैं, पूरी जीवन पद्धति पर भारी प्रभाव डालते थे। लेकिन जानवरो का युड सहजवत्ति के प्रभाव से बनता है और केवल एक जविकी प्रेरणा का नतीजा होता है। इसके विपरीत मानव समुदाय की सरचना का प्रधान कारण श्रम के लिये मिल जुलकर काम करने की जरूरत थी। उस जीवन पद्धति के **अनुकूल एक सामाजिक चेतना** भी पैदा हुई।

नतिकता, धम और कला चेतना के वे रूप थे, जिनकी उत्पत्ति आदिम समाज मे हुई। परन्तु उस समय ये चीजे एक दूसरे से अलग नही हुई थी। वे एक सम्पूण इकाई थी और सब मिलकर गण तथा कबीले की परम्पराओ, रीति रिवाजो और धारणाओ की एक व्यवस्था बनती थी। देखने मे ऐसा लगता था कि ये सब प्रकृति की देन है। कबीले का हर व्यक्ति अपने काम और सोच विचार मे उनके अधीन था। मनुष्य के सारे सबध गणो और कबीलो द्वारा सीमाबद्ध थे क्षेत्रीय रूप से—इसलिये कि उसे चलने-फिरने की आजादी केवल अपने इलाके मे थी, आर्थिक तौर पर— इसलिये कि उसका सारा अस्तित्व समुदाय पर निभर करता था, और बौद्धिक तौर पर इसलिये कि उसे अपने आपका इहसास एक व्यक्ति के रूप मे नही, बल्कि उक्त कबीले के एक सदस्य के रूप मे था। **कबीले की चेतना ही उसके प्रत्येक सदस्य की व्यक्तिगत चेतना भी थी** और जो भी चीज गणो तथा कबीलो की परिधि के बाहर थी, वह उसके लिये अजनबी थी।

यद्यपि मनुष्य समूह म रहता था, जीवन के तकाजे उसके लिय बहुत कडे थे। य तकाजे बहुत सीधे-साद भी थे और पेचीदा भी। एक ग्रार पुरान औजारो को बनाने या काम म लाने के लिय कोई बहुत ज्ञान या कौशल नही चाहिये था और दूसरी ओर, मनुष्य के कायकलाप का कौशल उसके शारीरिक गुणा (शक्ति, फुरती, सहनशक्ति, ग्रादि) पर तथा बौद्धिक गुणो (इच्छा शक्ति, अध्यवसाय, सयम, त्वरित विचार) तथा परिवर्ती प्रकृति के बारे मे उसकी जानकारी ग्रादि पर निभर करता था। उत्पादक शक्तिया के बहुत ही ग्रादिम स्तर पर होन के कारण मनुष्य का हर दिन और हर घटे अपन केवल अस्तित्व के लिये एक अजनबी और बैरी प्रकृति से लडना पडता था। माचिस जलाना ग्रासान है, मगर पत्थर की सहायता से ग्राग पैदा करना उतना ग्रासान नही है। और दो लकडिया को रगडकर ग्राग जलाना तो बहुत कठिन है जसा कि ग्रादि मानव किया करता था। पत्थर की नोक के भाले तथा तीर कमान से शिकार करने के लिये बहुत अभ्यास की जरूरत थी।

ग्रत मानवजाति के इतिहास के इस युग की जो हजारो साल जारी रहा, विशेपता थी नर नारी और उम्र के ग्राधार पर श्रम का विभाजन, समान वितरण, ग्राचरण पर कडा नियत्रण कबीले के कानून-कायदो क ग्रागे व्यक्ति का विना चू चपड किये सर झुका देना तथा अस्तित्व के लिये हर दिन के कडे सघप के वास्ते युवको को प्रशिक्षण देन की तफसीली व्यवस्था।

ग्रादिम सरचना के चौखटे के ग्र दर भी उत्पादक शक्तियो का विकास, कितना ही धीरे धीरे क्या न हो, मगर निरन्तर जारी रहा। पुरातत्व विदो तथा इतिहासकारो ने इस प्रक्रिया का काफी अच्छी तरह अध्ययन किया है। ग्राम दिशा थी पत्थर के औजारो से धातु (ताबे और लाहे) के औजारो की ओर सक्रमण, दूर मार हथियारा (पहले भाला फिर गोफन, तीर-धनुप और ग्रास्ट्रेलिया म बुमेरग) का विकास और चुनने तथा जुटाने, मछली पकडने या शिकार करन से उत्पादक अथव्यवस्था यानी कृपि तथा पशुपालन की ओर सक्रमण।

व्यक्तिगत श्रम की उत्पादकता मे ज्या ज्यो वद्धि हुई, त्या-त्यो अलग अलग परिवारा का उत्पादन बढा और इससे समान वितरण का ग्राधार कमजोर होने लगा। कृपि तथा पशुपालन म और दस्तकारी तथा कृपि म

श्रम विभाजन की प्रगति ने मनुष्य के श्रम का अधिक उत्पादक बना दिया और इसके सामाजिक परिणाम बहुत व्यापक हुए। कबीलों के बीच लेन-देन शुरू हुआ। यह एक नये प्रकार का आर्थिक संबंध था। अतिरिक्त पैदावार होने लगी, यानी इतनी पैदावार, जो मुख्य आवश्यकताएं पूरी होने के बाद बच रहती थी। इसके फलस्वरूप यह सम्भावना उत्पन्न हुई कि पैदावार का संचय किया जाय, उसका पुनर्वितरण किया जाये और समाज के कुछ सदस्य अपने हाथों में धन बटोरने लगें। और चूंकि मानव शक्ति का शोषण आर्थिक दृष्टि से अधिकाधिक लाभदायक बनता गया इसलिये स्वयं मनुष्य भी इस धन का एक भाग बन सकता था और बन गया। कृषि के लिये कहीं बसना आवश्यक था और बड़ी मात्रा में पैदावार की संचिति से यह सम्भव हो गया कि मनुष्य गणों और कबीलों से भी बड़े समुदाय बनाकर रहें।

इन सभी बातों का मिलकर नतीजा यह हुआ कि आदिम समुदाय का विघटन होने लगा और *आदिम समानता पर आधारित संबंध टूटने लगे।* नयी उत्पादक शक्तियों का पुराने उत्पादन संबंधों से अन्तर्विरोध शुरू हुआ और इन्होंने **वर्गीय समाज** के लिये स्थान खाली करना पड़ा, **जो अपने साथ निजी स्वामित्व तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रथा ले आया।**

वर्गीय समाज सभी जगह नहीं कायम हुआ। इसकी उत्पत्ति सबसे पहले यांत्से, ह्वाग-हो, नील, गंगा, दजला और फुरात नदियों के सींचे मैदानी इलाकों में हुई। इन इलाकों की उपजाऊ ज़मीन पर खेती करना आसान था और बहुत आदिम औजारों की सहायता से भी फसल अपेक्षाकृत अच्छी हो जाती थी। यही वह जगह था जहां आदिम समुदाय पहले पहल टूटने लगे और जहां **दास प्रथा** का जन्म हुआ। यह मानव शोषण का सबसे पहला, सबसे भोंडा तथा अत्यंत निर्मम रूप था, जिसमें दास स्वामी अतिरिक्त पैदावार प्राप्त करने के लिये प्रत्यक्ष उत्पादक के उपभोग को घटाकर निम्नतम स्तर पर पहुंचा दिया करता था।

उस समय भी दास प्रथा हर जगह मुख्य आर्थिक क्षेत्र नहीं बनी थी। इतिहास में **दास प्रथा कई प्रकार की** पायी जाती है। विघटित हो रहे आदिम समुदाय में पितृसत्तात्मक दास प्रथा, पूंजीवादी संबंधों के विकास के साथ संयुक्त राज्य अमरीका में नीग्रो लोगों की बगान दासता, आदि। किसी न किसी रूप में अफ्रीका और एशिया के विभिन्न देशों में यह अभी कुछ दिनों पहले तक प्रचलित थी।

पुराने ज़माने में आदिम समुदाय के विघटन से कुछ देशो में बहुसख्यक गुलामो का शोषण सामाजिक उत्पादन का आधार बन गया, और इससे दास प्रथा के समाज का जन्म हुआ, जिसका अस्तित्व क्लासिक रूप में भूमध्य सागर के देशा (यूनान और उसके उपनिवेशा, कारथेज, रोम तथा रोमन साम्राज्य) मे था। वहा दास स्वामियो के धन-सम्पत्ति का मुख्य स्रोत दास-श्रम था। सारा सामाजिक सगठन और सस्कृति दास-श्रम के आधार पर विकसित हुई थी। बात यह है कि उत्पादन की अपेक्षाकृत अविकसित स्थिति मे उत्पादक शक्तियो मे वृद्धि, विनिमय का विस्तार, सार्वजनिक कार्यों का प्रबध, विज्ञान, कला आदि का विकास एक ऐसे बडे पैमाने के श्रम विभाजन पर आधारित था, जिसमे एक ओर अधिकाश लोग शारीरिक श्रम के सीधे-सादे काम करते थे, और दूसरी ओर मुट्ठी भर लोग उत्पादक श्रम से मुक्त होकर अन्य सामाजिक क्रियाए अदा करते थे। इसी के अनुसार समाज वर्गों में, शोषको और शोषितो में बट गया। वर्गों की उत्पत्ति के साथ दास स्वामियो के विरुद्ध दासो का वर्ग सघर्ष भी शुरू हुआ और बढा।

उत्पादन के दास स्वामी सबधो के आधार पर और उनके अनुकूल एक ऊपरी ढाचा भी उठ खडा हुआ जिसने दास-स्वामी शोषण के सबधो को दृढ बना दिया। दास स्वामी सबध को कायम रखने और समाज पर शासन करने के लिये शासक वर्ग को नये उपायो और नये उपकरणो की ज़रूरत थी। यह उद्देश्य राज्य द्वारा पूरा हुआ जो उन दिनो पहली बार स्थापित हुआ। इस काम के लिये इसके पास उपकरण के रूप में सेना, पुलिस और इसके पदाधिकारी तथा राज्य की शक्ति द्वारा समर्थित और सुरक्षित अधिनियमो की एक व्यवस्था यानी कानून, आदि थे। दास स्वामी अपनी प्रभुता कायम रखने के लिये शक्ति का उपयोग करते और अपने अमानवीय शोषण के कारण उत्पन्न होने वाले दास विद्रोहो को कडाई से कुचल दिया करते थे।

लेकिन साथ ही उन स्थितियो मे भी, मानसिक और शारीरिक श्रम के अलगाव के कारण सैद्धातिक ज्ञान की सचिति और विकास सम्भव हो गया। हम देखते है कि विज्ञान और दर्शनशास्त्र का श्रीगणेश हुआ तथा धर्म के क्षेत्र में काफी परिवर्तन हुए। परिणामस्वरूप वर्गों मे समाज के विभाजन के कारण ऊपरी ढाचे मे तथा पूरे समाज के बौद्धिक जीवन में मौलिक परिवर्तन हुए।

यद्यपि दास प्रथा मानवसमाज के प्रगति माग पर आदिम समाज की तुलना मे आगे का कदम था, लेकिन इससे उत्पादक शक्तिया का अपने विकास के लिये बहुत सीमित परिधि मिली। दास प्रथा के अतगत समाज की मुख्य उत्पादक शक्ति, मनुष्य का उपयाग लूट-खसोट करके किया गया।

अपनी निम्न उत्पादकता के कारण दास-श्रम लाभदायक तभी हो सकता था, जब स्वामी को दास का खच बहुत कम देना पडे। दासो को आदमी नही समझा जाता था। उनकी हैसियत औजारा की थी और वे सभी मानव अधिकारो से वचित थे, जिसकी वजह सबसे बडी यह थी कि दासा को परिवार, बच्चे आदि रखने की सुविधा देना दास-स्वामी के लिये बिल्कुल लाभदायक नही था। इसी लिय उस समय प्रजनन के जरिये दासा की सख्या बढाने का व्यापक रिवाज नही था। इससे अधिक लाभदायक यह था कि युद्ध म पराजिता को पकड लिया जाये, आजाद आदमिया को गुलाम बना लिया जाय और इसी प्रकार के अ य हिसात्मक तरीके अपनाये जाये। बहुत से दास स्वामी राज्या के लिये (यूनान, रोम, आदि) दास हासिल करने का मुख्य स्रोत युद्ध था। यही कारण है कि ये राज्य लगातार युद्ध करते रहते, अपने पडोसिया को लूटत, पूरे के पूरे क्षेत्र को तहस-नहस करते और हारनेवाला को दास बना लेते थे।

उत्पादक शक्तियो के विकास से दास-श्रम की अकुशलता अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थी। दासा की अवस्था इतनी असहनीय थी कि श्रम के लिये उ ह काई प्रोत्साहन नही होता था, बल्कि सच्ची बात यह है कि वे इसक नाम से ही घृणा करते थ। इससे एक बडा अतविराध पैदा हुआ, जिसके कारण दास-स्वामिया का समाज अन्दर से टूटने लगा और शिथिल हो गया। श्रम, जो किसी भी समाज के अस्तित्व की बुनियादी शत है, मनुष्य के योग्य नही रह गया था और एक अभिशाप मात्र था, जा दासा के भाग्य म लिखा गया था। मनुष्य काम किये बिना नही रह सकत परन्तु वे काम केवल दास बनकर ही कर सक्ते थे। इस अतविरोध से निकलने का एक ही रास्ता था और वह यह कि उत्पादन के दास-स्वामी सबधा को तथा इनसे लगे वर्गा का मिटा दिया जाये तथा उत्पादन के नये सबध स्थापित किय जाये, जिनम प्रत्यक्ष उत्पादका के लिय काम का कुछ प्रोत्साहन हो।

प्राचीन यूनान और रोम का ही दास प्रथा के समाज का नमूना कहा जाता है, जिससे समस्त पुराकाल का मूल्यांकन किया जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह बिल्कुल सही नही है, क्योंकि प्राचीन मिस्र, भारत तथा चीन मे घटनाक्रम का विकास भिन्न रूप म हुआ। इन देशा म दास प्रथा इतने व्यापक रूप मे प्रचलित नही थी जैसे यूनान और रोम म थी। अपेक्षाकृत बद ग्रामीन समुदाया की व्यवस्था, जिसम आदिम सामूहिक सबधा के स्पष्ट अवशेष मौजूद थे केद्रीकृत निरकुश राज्यो का अस्तित्व, जो अपने राजनीतिक कार्यो के साथ साथ सिचाई की सुविधाओ के, जिसपर कृषि की अवस्था निभर करती थी, निमाण तथा देख रेख का काम भी करते थे, और वर्णावस्था के तीखे विभाजन के चलते एक अनोखे प्रकार का समाज पैदा हुआ जिसे माक्स ने **उत्पादन की एशियाई प्रणाली** की सज्ञा दी है। यह उत्पादन प्रणाली एक विशेष सामाजिक सरचना भी है या नही, यह सवाल अभी तक विवादास्पद है। लेकिन इतनी बात स्पष्ट है कि यह एक अनोखे प्रकार का सामाजिक सगठन है, जो बहुत कुठित है और जिसम परिवतन और विकास बहुत कम होता है। और यही कारण है कि वह भूमध्यसागर के जगत से जो उस समय की दृष्टि से काफी गतिवान था, इतना भिन्न था।

धीरे धीरे, टेढे मेढे रास्तो तथा अतविरोधी रूपा से होकर दास प्रथा का समाज विकसित होकर **सामती** समाज बना। इस समाज का तकनीकी आधार पूर्वोक्त स मौलिक रूप मे भिन्न नही था। श्रम के वही औज़ार ह, जिनका व्यक्तिगत रूप म प्रयाग किया जाता है वही दस्तकारी, कृषि और पशुपालन है, मगर उनके विकास का स्तर थोडा सा ऊचा है। सामतवाद व्यापकतर क्षेत्रा मे फला हुआ था। मध्य तथा पूर्वी यूरोप के जमन तथा स्लाव कबीले अपनी कबायली आदिम सामुदायिक व्यवस्था से दास प्रथा वाली सरचना को छोडकर सीधे सामतवाद की व्यवस्था म पहुच गये थे।

सामती सरचना दास प्रथावाली सरचना की तुलना म अधिक विकसित सामाजिक सगठन थी। इसकी विशपता उत्पादन के वे सबध है, जिनका आधार मुख्य उत्पादन साधन के रूप मे भूमि पर सामती स्वामित्व तथा उस आधार पर विकसित किसानो की भू स्वामियो यानी सामतो पर विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत निभरता है। सामती स्वामी की भूमि का एक भाग अलग अलग किसानो को खेती के लिय दिया जाता था। दासा के विपरीत सामती

समाज मे किसान भूमि के छोटे टुक्डे पर काम किया करता था और वह अपनी पैदावार का एक छोटा भाग, जो उसकी श्रम शक्ति के पुनरोत्पादन के लिये आवश्यक था, अपने उपभाग के लिये अपने पास रख सकता था। भूदास प्रथा की जजीरो मे वधे किसाना का भी अधिकाशत स्वय अपना परिवार हो सक्ता था। इसी लिये सामती समाज म श्रम शक्ति का पुनरुत्पादन अनिवायत युद्ध से सम्वद्ध नही था और उसका रूप उस प्रकार लूट-मार का तथा विनाशकारी नही था, जैसा दास प्रथा मे था। दास एक औजार के वरावर था, मगर सामती भूदास की गिनती आदमियो मे थी, चाहे उसे कितने ही निम्न स्तर का समझा जाता रहा हो। लेक्नि सामतवाद के अतगत भी शोपण और उत्पीडन के रूप वहुत ही पाशविक और अमानवीय थे। सामती शोपण की विशेपता ऐसी मजवूरी थी, जो आर्थिक नही थी, क्याकि किसान से, जिसे सामत ने जमीन का छोटा सा टुकडा दिया था, अतिरिक्त पदावार ले लेने का इसके सिवा और कोई उपाय नही था। किसान का हाल वहुत बुरा था। गरीवी, भूखमरी और बीमारी उसके दिन रात के साथी थे। उसे कोई राजनीतिक अधिकार नही था और उसका जीवन मरण सामती भूस्वामी की इच्छा पर निभर करता था।

परन्तु, प्रत्यक्ष उत्पादक को श्रम के लिये कुछ भौतिक प्रात्साहन देकर और मनुष्य की श्रम शक्ति के पुनरुत्पादन के लिये दास प्रथा की तुलना म वेहतर स्थिति मुहैया करके सामतवाद ने पूव सरचना की वनिस्वत उत्पादक शक्तिया के विकास की अधिक सम्भावनाए प्रदान की।

सामती समाज का वर्गीय ढाचा काफी पेचीदा था। इसके वर्गीय भेदा पर विशेप सामती श्रेणियो मे विभाजन का परदा पडा होता था। जन्म से ही प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित आस्थान से सवधित होता था। वह या तो रइस था या किसान, व्यापारी या दस्तकार, आदि आदि। एक श्रेणी से तरक्की करके दूसरी मे पहुचना वहुत कठिन था। अधिकारप्राप्त आस्थान—अभिजात वग तथा पुरोहित वग—प्रभुत्व जमाते थे।

ऊपरी ढाचे के क्षेत्र मे सामती वग के आर्थिक प्रभुत्व पर निश्चित राजनीतिक तथा विचारधारात्मक परदा पडा रहता था। सामती राज्य की विशेपता सीमित अथवा निरकुश वादशाही थी, तथा उसकी विचारधारा की विशेपता धम का अखड प्रभुत्व था। राज्य तथा धम उस समाज के दो

शक्तिशाली सस्थान थे, जो शामक वग की सम्पत्ति और विशेपाधिकारा के रक्षक थे। किमाना की ओर से कठोर आर्थिक उत्पीडन और सम्पूण अधिकारहीनता का विरोध लगातार होता रहता था। सामतवाद का इतिहास सामती वधन स मुक्ति पाने के लिये किसाना के निरन्तर सघष का इतिहास है। यह सघष तरह तरह के रूप धारण करता। किसान कभी व्यक्तिगत रूप से जान छुडाकर भाग जाते और कभी व्यापक क्षेत्रा म विद्रोह की आग फैल जाती। परन्तु आम तौर पर किसाना को अपने सघष मे हार खानी पडती क्योकि किसान बिखरे हुए तथा असगठित थे और उनके राजनीतिक उद्देश्य स्पष्ट नही थे।

मध्य युगा मे जन आदोलना की एक विशेषता यह थी कि वे धम के झडे तले लडे जाते थे। एगेल्स का कहना है कि उस दौर म जनता की भावनाए धम के पराश्रय मे पली और बढी थी और किसी विचार का जनता के मन म घर करने के लिये धार्मिक वेशभूषा म आना जरूरी था। यही कारण है कि इस युग मे बहुत से धार्मिक युद्ध धमद्रोह, धार्मिक आदोलन आदि हुए।

सामतवाद का विकास धीरे धीरे क्रमश हुआ। सामती व्यवस्था को दास प्रथा पर अपनी श्रेष्ठता साबित करने मे शताब्दिया लग गयी। सामतवाद के विकास से शहरो म जान पड गयी केवल राजनीतिक तथा धार्मिक केद्रा के रूप मे ही नही, बल्कि दस्तकारी और व्यापार केद्रो के रूप मे भी। दस्तकारी का विकास और सुधार हुआ और कृषि की प्रविधि ने भी उन्नति की। श्रम का सामाजिक विभाजन फला और विशाल नये क्षेत्रा पर खेती होने लगी।

इस तरह धीरे धीरे परन्तु लगातार इस बात की आवश्यक भौतिक शर्तें और परिस्थितिया तयार हो रही थी कि जीवन के नये सामाजिक रूपो की राह की अडचनो को पार किया जा सके। सामतवाद के इतिहास का विश्लेपण करने स इस प्रक्रिया के मुख्य स्रोत स्पष्ट हो जात ह। वे थ श्रम विभाजन तथा व्यापार माल तथा मुद्रा सबधो का विस्तार, नयी मडियो का खुलना आबादी की बढती हुई जरूरतें, शस्त्रास्त्रा का निर्माण आदि।

लेकिन दस्तकारी उत्पादन जो सामतवाद की यौवनावस्था म काफ़ी उन्नति कर चुका था बढती हुई आवश्यकताओ को पूरा करने म असमथ

था, क्योंकि इसके अंतर्गत उत्पादन के विस्तार की सम्भावनाएं बहुत ही सीमित थी।

मंडी की जरूरता ने एक नयी उत्पादन शक्ति को जन्म दिया। वह थी सहकारिता तथा **मनुफेक्चर।**

सहज सहकारिता, यानी आदमियों के सहज मिल-जुलकर काम करने से श्रम की उत्पादकता में पहले ही वृद्धि हो चुकी थी, लेकिन मनुफेक्चर की उत्पत्ति इस लिहाज से बहुत महत्वपूर्ण थी। दस्तकारी के विपरीत मनुफेक्चर के अंतर्गत किसी वस्तु को बनाने में तफसीली श्रम विभाजन से काम लिया जाता है। यद्यपि मनुफेक्चर का तक्नीकी आधार वही दस्तकारी के औज़ार थे, लेकिन उत्पादन की प्रक्रिया का प्रारम्भिक क्रियाओं में बांट देने से श्रम की उत्पादकता बहुत बढ़ गयी और इसके अलावा वह आवश्यक स्थिति पैदा हो गयी, जिसमें मशीन की क्रियाएं मनुष्य के कार्य का स्थान ले सकती थीं। इस प्रकार मैनुफेक्चर के विकास ने मशीनोत्पादन की उत्पत्ति की स्थितियां तैयार की।

परंतु संपूर्ण रूप से सामंतवाद ने उद्यम, मुक्त व्यापार के विकास तथा मालों की बिक्री के लिये राष्ट्रीय मंडी की रचना की रफ्तार को धीमा कर दिया। किसानों के व्यक्तिगत बंधन के कारण एक अबाध श्रम मंडी के निर्माण में, जिसकी आवश्यकता उद्योग के लिये थी, बाधा पड़ी। स्वामित्व के सामंती रूप का तथा इसके साथ आस्थान संबंधी विशेषाधिकारों की व्यवस्था, *निरंकुश बादशाही*, आदि का, *उत्पादक शक्तियों के भावी विकास* के तकाजों से अंतर्विरोध पैदा हुआ। यही अंतर्विरोध बुनियादी कारण था, जिससे सामंतवाद को नयी सामाजिक संरचना, **पूंजीवाद** के लिये अपना स्थान खाली करना पड़ा।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की उत्पत्ति, जो **आदिम पूंजीवादी संचिति** की प्रक्रिया के रूप में हुई, का क्लासीकी वर्णन मार्क्स की कृति 'पूंजी' में मौजूद है। इसका *सारतत्व यह है कि प्रत्यक्ष उत्पादक किसान और दस्तकार* अपने उत्पादन साधनों से बेदखल कर दिये गये। मार्क्सवाद ने इस भ्रम का पर्दाफाश कर दिया कि पूंजीपतियों की प्रारम्भिक सम्पदा का आधार उनका अपना श्रम था। सच्ची बात यह है कि मेहनतकशों को उनके उत्पादन साधनों से "अलग" करने के लिये सभी प्रकार के उपाय किये गये, जिसमें छोटे माल उत्पादकों को तबाह करके अधीन बनाना, किसानों

को उनकी जमीन से जबरदस्ती निकालना, आर्थिक मजबूरी तथा हिंसा– सभी शामिल थे। मार्क्स ने लिखा कि पूंजीवाद का जन्म इतिहास में अग्नि और तलवार के शब्दों में अंकित है। आदिम पूंजीवादी सचिति का फल यह निकला कि उत्पादन साधनों का सकेन्द्रण हुआ, एक छोर पर पूंजीपतियों के हाथो में सारा धन था और दूसरे छोर पर मुक्त श्रम की मंडी थी, यानी ऐसे लोगों की मंडी, जिनसे उत्पादन साधन तथा जीवन निर्वाह साधन छीन लिये गये थे। उत्पादन के साधनो पर पूंजीवादी स्वामित्व तथा उत्पादकों पर स्वामित्व से वंचित होना ही उत्पादन के पूंजीवादी संबंधों का आधार है।

पश्चिमी यूरोप में पूंजीवाद में संक्रमण अपने आप यानी किसी बाहरी दबाव के बिना हुआ। वहां पूंजीवाद के निर्माण के मार्गचिन्ह थे इटली के व्यापारिक नगरों का विकास, पुर्तगाली तथा स्पेनी समुद्र यात्रियों की महान भौगोलिक खोजें, अमरीका तथा दक्षिण पूर्वी एशिया का औपनिवेशीकरण, ब्रिटेन में पूंजीवादी क्रांति तथा औद्योगिक क्रांति तथा १८ वीं सदी में फ्रांस में पूंजीवादी क्रांति। उन्नीसवीं सदी में उत्तरी अमरीका रूस और जापान पूंजीवादी विकास के मार्ग पर अग्रसर हुए।

जैसे ही उत्पादन के सामंती संबंधो ने पूंजीवादी उत्पादन संबंधों के लिये स्थान छोड़ा ऊपरी ढांचे में भी परिवर्तन हुआ, जिससे वे नयी बुनियाद के अनुकूल हो गये, और समाज का रूपांतरण हो गया।

पूंजीवादी क्रांतियों की आग में सामंती श्रेणियों में विभाजन जलकर भस्म हो गया। निरंकुश बादशाही के बदले वैधानिक बादशाही या संसदीय गणराज्य की स्थापना हुई।

पूंजीवादी जनवाद ने व्यक्तिवाद के सिद्धांत की घोषणा की, इसे व्यक्ति की सच्ची आजादी बताया, और एलान किया कि कानून की नजर में सब बराबर हैं। लेकिन यह बराबरी नाम के लिये थी, क्योंकि उत्पादन साधनों में मनुष्य की असमानता पहले ही की तरह समाज का आधार बनी रही। पूंजीवादी विचारधारा पूंजीवादी संबंधों के बारे में भ्रम फैलाती है।

फलस्वरूप, पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली की स्थापना के साथ सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्र इसके अनुकूल, इसकी जरूरतों के अनुकूल बना लिये जाते हैं।

मार्क्सवाद के संस्थापकों ने पूंजीवादी सामाजिक संरचना तथा इसके विकास के नियमों और प्रवृत्तियों का गहरा विश्लेषण किया है।

मशीनी उत्पादन से सम्बद्ध नयी उत्पादक शक्तियो का विकास पूजीवादी विकास का आधार तथा स्रोत था। मशीनी उत्पादन की स्थापना, उत्पादक शक्तियो का गुणात्मक दृष्टि से एक नये उच्च स्तर पर पहुचाना – इसी मे पूजीवाद की ऐतिहासिक भूमिका थी।

स्वामित्व के पूजीवादी रूप से यह बात निर्धारित होती है कि **अतिरिक्त मूल्य के लिये**, जिसे वे मुनाफे के रूप मे हथिया लेते है, **पूजीपतियो की दौड उत्पादन की मुख्य प्रेरक शक्ति बन जाती है।** लेकिन इन परिस्थितियो मे मुनाफे की दौड से अनिवार्यत **पूजीपतियो मे प्रतियोगिता** उत्पन्न होती है। तक्नीकी विकास तथा प्रतियोगिता का परिणाम **पूजी का सकेद्रण तथा केद्रीकरण** होता है, जो **शक्तिशाली पूजीवादी सघो, इजारो** को जन्म देते है।

पूजीवाद अपना बाहरी विस्तार भी करता रहता है। प्रमुख पूजीवादी देशो ने नये नये इलाको पर कब्जा किया, औपनिवेशिक साम्राज्य कायम किये और पूजीवादी विकास की लपट मे सारी दुनिया को ले लिया। उपनिवेशो मे पूजीवाद ने साधारणतया जीवन तथा आर्थिक व्यवस्थाओ के पिछडे रूपो को कायम रखा और इस प्रकार उन देशो को साम्राज्यवादी देशो का पिछलगुआ बना लिया, जो उनको कच्चा माल सप्लाई करते और उनके औद्योगिक सामान की निकासी के लिये मडी का काम देते थे। पूजीवाद ने सबसे पहले एक समाकलित विश्व आर्थिक व्यवस्था, एक विश्व मडी की स्थापना की। यहा पहुच कर इतिहास सही माने मे विश्व इतिहास बन गया, क्योकि विभिन्न क्षेत्रो और जातियो का पुराना अलगाव दूर हो गया।

पूजीवाद के अतर्गत आर्थिक और सामाजिक विकास की रफ्तार बहुत तेज हो जाती है। अपेक्षाकृत एक छोटे से ऐतिहासिक युग मे पूजीवादी सरचना आदिम पूजीवादी सचिति और मुक्त उद्यम की व्यवस्था से हो कर इजारेदार पूजीवाद तक कई मजिलो से गुजरती है। लेकिन पूजीवाद की प्रवृत्ति है कि ज्यो ज्यो उसका विकास होता है, वह स्वय अपने निषेध के अधिकाधिक तत्व बटोरता जाता है। **पूजीवाद चिरस्थायी नही है और इसके विनाश का मूल स्रोत ठीक उस अतर्विरोध मे है, जिसे उसी ने जन्म दिया है, यानी उत्पादन के सामाजिक चरित्र तथा हस्तगतकरण के निजी पूजीवादी रूप के बीच मे अतर्विरोध।**

पूजीवाद उत्पादन को सामाजिक बनाता है, क्योकि पूजीवादी कारखाने से जो पैदावार निकलती है वह सामूहिक श्रम की पैदावार है। वहा कोई

भी यह नही कह सकता कि अकेले उसी ने वह चीज बनायी है। केवल फैक्टरिया और कारखाना के अन्दर ही नही बल्कि उत्पादन की विभिन्न शाखाओ के बीच भी व्यापक श्रम विभाजन की बदौलत ऐसे उत्पादन सबध कायम होते है जो राष्ट्रीय आर्थिक जीवन को एक ही व्यवस्था म एकीकृत कर देते है जिसम विभिन्न प्रकार के उत्पादन साघटिक रूप म एक दूसरे पर निभर करते है। उत्पादक शक्तिया की इस अवस्था के अनुरूप अब उत्पादन साधना पर निजी स्वामित्व नही बल्कि वे सामाजिक सम्पत्ति हैं। अत **निजी स्वामित्व उत्पादक शक्तिया के विकास का रूप नहीं रहता, बल्कि इसमे बाधा बनने लगता है।** निजी पूजीवादी स्वामित्व का अस्तित्व जारी रहने से उत्पादक शक्तिया और पूरे समाज का विकास धीमा हो जाता है और पूजीपति वग के विरुद्ध सवहारा का वग सघर्ष, जो **पूजीवाद के मुख्य अतविरोध** का इजहार है, तीव्र हो जाता है।

पूजीवाद के अतविरोध इसके विकास की उच्चतम मजिल—साम्राज्यवाद—पर, जिसमे पूजीवाद ने २०वी शताब्दी के मोड पर प्रवश किया था तेज होकर चरम सीमा पर पहुच जाते हैं। साम्राज्यवाद का गहन विश्लेषण लेनिन द्वारा किया गया था, जिन्होने मार्क्स द्वारा शुरू किये गये पूजीवाद के विश्लेषण को जारी रखा। लेनिन ने साबित किया कि मुक्त प्रतियोगिता के बदले इजारा की स्थापना, पूव इजारा पूजीवाद का इजारदार पूजीवाद मे सक्रमण तथा वित्तीय अल्पतत्र के प्रभुत्व की स्थापना का मतलब है निश्चलता और पतन की प्रवत्ति का उभरना, जो पूजीवाद के ह्रास का इजहार है। साम्राज्यवाद पूजीवाद की चरम अवस्था है, जो पूजीवादी सामाजिक सरचना के अस्तित्व को अत तक पहुचा देती है। पूजीवादी प्रचारक जब 'पाश्चात्य सभ्यता" का गुणगान कर रहे थे मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने दिखा दिया कि पूजीवादी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का विघटन शुरू हो गया था। उसने इसके अतविरोधो का सवथा वैज्ञानिक विश्लेषण करके यह बताया कि इस प्रक्रिया को पलटा नही जा सकता।

विश्व इतिहास की बाद की घटनाओ न इस गहन निष्कष की दष्टिग्राह्य और निविरोध रूप स पुष्टि कर दी है। इस प्रसग म यह उल्लेख कर देना चाहिय कि पिछले कुछ दशको म पूजीपति वग को अपनी डुलमुल स्थिति को ठोक-पीटकर मजबूत बनाने क लिय कई कदम उठाने पडे है।

पूजीवादी व्यवस्था की चारदीवारी के भीतर ही उत्पादक शक्तियो के सामाजिक स्वरूप का अधिक ध्यान म लेन के उद्देश्य स उत्पादन और उपभोग की प्रक्रिया का नियत्रण करन के लिय वह राज्य का अधिक उपयोग कर रहा है और इस प्रकार उन आर्थिक तूफानो को जो बराबर इसके ऊपर मडला रहे ह, रोकन का प्रयत्न कर रहा है। लेकिन इसस श्रम और पूजी के बीच, मुट्ठी भर इजारेदारो और श्रमजीवियो की विशाल जनता के बीच और आर्थिक दृष्टि स उन्नत तथा पिछडे पूजीवादी देशो क बीच पूजीवाद के मूल अतर्विरोधो का समाधान नही हो सकता। उत्पादन को नियत्रित करन के लिय पूजीपति वग न जो कारवाइया की ह उनका नतीजा केवल यही निकला कि पूजीवादी समाज म उत्पादक शक्तियो का सामाजिक चरित्र और निखर गया तथा आधुनिक उत्पादक शक्तियो के अनुरूप आर्थिक सबधो की व्यवस्था, अर्थात समाजवादी उत्पादन सबध कायम करन की वस्तुनिष्ठ आवश्यकता बहुत बढ गयी। पूजीवाद की प्रवत्ति ऐसी नयी सामाजिक शक्तियो को जन्म देने की है जो, सवहारा की तरह, विश्व इतिहास की इस मूल समस्या का समाधान चाहती ह।

आधुनिक पूजीवाद के विकास म इन प्रवत्तियो का गहन विश्लेषण ले० इ० ब्रेज्नेव द्वारा सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४वी काग्रेस म केन्द्रीय समिति की रिपोट म दिया गया है। उन्होन कहा "समकालीन पूजीवाद की विशेषताए इस बात से निर्धारित होती ह कि वह अपने आपको विश्व की नयी स्थिति के अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर रहा है। समाजवाद स मुकाबले की स्थिति म पूजीवादी देशो के शासक क्षेत्र पहले की तुलना म कहा अधिक डरन लगे ह कि वग सघष विकसित होकर कही जन क्रातिकारी आन्दोलन का रूप न धारण कर ले। यही कारण है कि पूजीपति वग श्रमजीवी जनता के शोषण और उत्पीडन के ऐसे रूपो का जिनपर परदा डाल दिया गया हो, अधिकाधिक प्रयोग करने का प्रयत्न कर रहा है, और जब तब वह आशिक सुधारो पर राजी हो जाता है ताकि यथासम्भव जनता को अपने सैद्धातिक और राजनीतिक नियत्रण म रखे। इजारे व्यापक पमाने पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियो को इस्तेमाल कर रहे ह ताकि अपनी स्थिति को मजबूत बनाये, उत्पादन की कुशलता को बढाये और उसकी गति को तेज कर और श्रमजीवी जनता के शोषण और उत्पीडन को तीव्र करे।

"लेकिन नयी स्थिति के अनुकूल बनने का मतलब यह नहीं कि पूजीवाद म एक व्यवस्था क रूप म स्थिरता आ गयी है। पूजीवाद क आम सकट का गहरा हाना जारी है।"

अत , पूजीवाद के साथ मानव इतिहास का एक लबा दौर, अतर्विरोधी समाज का दौर समाप्त होता है। इस प्रक्रिया क हमार सक्षिप्त विश्लेषण स जाहिर हाता है कि समाज क विकास की आम रचा निश्चित उत्पादन सबधा की परिधि म उत्पादक शक्तिया की प्रगति स निर्धारित हाती है, और यह कि एक सामाजिक सरचना स दूसरी म सक्रमण भी इसी प्रकार एक ऐतिहासिक आवश्यकता क अनुसार होता है। लकिन यह आवश्यकता केवल मानव कायकलाप द्वारा ही स्वारय हाती है, यानी सभी मुख्य सामाजिक समस्याए सामाजिक वर्गों के बीच तीव्र सघष क दौरान म, जिसस सभी अतर्विरोधी सामाजिक सरचनाए भरी पडी ह, हल हाती ह। वर्गों का आविर्भाव हाता है और फिर वे मिट जात हैं, अतविराध का स्वरूप बदलता है, परन्तु, ऐतिहासिक विकास उसी प्रकार का रहता है क्याकि उसम सामाजिक समूहा के आर्थिक और राजनीतिक स्वाथ टकरात हैं, वग सघष हाता है। इतिहास शुरू हुआ दास प्रथा के अतगत मनुष्य की गुलामी के सबसे पाशविक रूप से और उसकी गति ऐसी दिशा म रही है, जिसमे शोषण क रूप क्रमश नरम होत जा रह थे, जार-जबरदस्ती के गर आर्थिक रूपा के बदले आर्थिक रूप काम म लाये जा रहे थे, उत्पादन साधना के स्वामियो क लिये ही नही, वरन प्रत्यक्ष उत्पादनकर्त्ताओं क लिये भी उत्पादन कायकलाप के परिणामो म भौतिक उत्प्रेरणाओ को बढावा दिया गया।

मानव इतिहास के इस युग की महान उपलब्धिया म प्रविधि, विज्ञान और सस्कृति का शक्तिशाली विकास है, जिन्होने मनुष्य को प्रगति के अभूतपूर्व शिखर पर पहुचा दिया है और जिनके द्वारा वे आवश्यक स्थितिया पैदा हुई, जिनमे सामाजिक अतर्विरोधा को दूर किया जा सकता है और मनुष्य को सामाजिक अस्तित्व के मूलत एक नये स्तर पर लाया जा सकता है एक ऐसे समाज के स्तर पर जिसकी रूपरखा सामाजिक स्वामित्व से निर्धारित होगी और इस बात से कि समाज के सभी सदस्य सामूहिक भलाई के लिय मिल जुलकर काम करने के लिये एकताबद्ध हागे। अभी इस समय मानवजाति विश्व पैमान पर पजीवाद से कम्युनिज्म म सक्रमण की अवस्था

म है। प्रतिरोधी समाज का दीघकाल समाप्त हो रहा है और एक नयी सरचना का विकास शुरू हो रहा है।

कम्युनिस्ट सरचना के निर्माण और विकास की स्वाभाविक ऐतिहासिक प्रक्रिया की तीन मजिले ह, जो एक के बाद एक आती है **सक्रमण काल**, जिसका श्रीगणेश समाजवादी क्राति से होता है, **समाजवाद**, यानी कम्युनिस्ट सरचना की निम्न अवस्था, और **कम्युनिज्म**।

समाजवादी क्राति सवहारा द्वारा राजनीतिक सत्ता सभालने के साथ शुरू होती है। उसका मुख्य काय एक नयी समाजवादी अथव्यवस्था का निर्माण करना है।

पूजीवाद से समाजवाद का सक्रमणकाल हर उस देश के लिये जरूरी है, जो समाजवादी विकास के माग पर अग्रसर हो रहा है। हर देश मे इसकी अपनी विशेपताए हागी, जो इसके विकास की ऐतिहासिक स्थितिया, राष्ट्रीय विशेपताओ, समाजवादी क्राति के समय आथिक विकास स्तर, आदि पर निभर करेगी। लेकिन **पूजीवाद से समाजवाद के सक्रमण को नियनित करनेवाली कुछ सामान्य नियमितताए** भी ह। वे ये ह सवहारा क्राति को पूरा करने और किसी न किसी रूप म सवहारा अधिनायकत्व स्थापित करने मे मजदूर वग तथा उसकी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पाटिया द्वारा श्रमजीवी जनता का नतृत्व, अधिकाश किसानो तथा श्रमजीवी जनता के अन्य हिस्सो से मजदूर वग का एका, उत्पादन के मौलिक साधनो पर पूजीवादी स्वामित्व का उन्मूलन तथा सामाजिक स्वामित्व की स्थापना, समाजवादी आधार पर कृषि का क्रमश रूपातरण, राष्ट्रीय अथव्यवस्था का नियोजित विकास, जिसका उद्देश्य समाजवाद और कम्युनिज्म का निर्माण तथा श्रमजीवी जनता के जीवन स्तर को ऊपर उठाना हो, सास्कृतिक क्राति का अमल मे लाना, जिसमे पुराने बुद्धिजीवियो का पुन शिक्षण तथा एक नयी, जनता की बुद्धिजीवी श्रेणी का निर्माण दोनो शामिल ह, तथा सभी जनगण के सास्कृतिक स्तर को ऊपर उठाना, राष्ट्रीय उत्पीडन का उन्मूलन तथा जातियो के बीच वास्तविक समानता और भाईचारे और मत्री के सबध स्थापित करना, बाहर और अन्दर के दुश्मनो से समाजवाद की उपलब्धियो की रक्षा, सवहारा अतर्राष्ट्रीयतावाद के सिद्धाता के आधार पर उक्त देश के मजदूर वग का सभी देशा के मजदूर वग से एकता स्थापित करना।

समाजवाद की विशेषता है उत्पादन साधनो पर सामाजिक स्वामित्व तथा शोषण से मुक्त लोगो के बिरादराना सहयोग के संबध, जो उत्पादन मे तथा सामाजिक कार्यकलाप के अन्य क्षेत्रो मे होते ह। समाजवाद के अतर्गत समाज उपभोग की वस्तुओ के रूप मे केवल उसी व्यक्तिगत सम्पत्ति का कायम और सुरक्षित रखता है, जिसे शोषण के साधन के रूप म इस्तमाल नही किया जा सके। समाज इस सिद्धात पर अमल करता है "जो काम नही करेगा उस खाना भी नही मिलेगा," और वितरण का सिद्धात यह है कि समाज का दिये जानेवाले श्रम के परिमाण और गुण के अनुसार पारिश्रमिक मिले। ये सबध आज की उत्पादक शक्तियो के स्वरूप और विकास स्तर के अनुकूल है। ये उत्पादन साधनो पर निजी स्वामित्व के अनुकूल नही है, मगर अभी इतन विकसित भी नही है कि मालो और सवाओ की इतनी अधिक बहुतायत हा जाये कि श्रमजीवी जनता की तमाम जरूरत पूरी की जा सके।

उत्पादन के विकास का पूर समाज के हितो के अधीन करके तथा उत्पादन साधना के प्रसग मे हर एक को समानता प्रदान करके, सामाजिक स्वामित्व राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की सभी शाखाओ के नियोजित तथा आनुपातिक विकास के लिये, अर्थव्यवस्था म विषमता को मिटाने और आर्थिक विकास के नियम के स्वत स्फूर्त अमलदरामद का अत करने के लिय भौतिक आधार मुहैया करती है, श्रमजीवी जनता को उत्पादन के विकास मे भौतिक प्रोत्साहन और काम के लिये नय नतिक प्रोत्साहन देता है, और आधुनिक उत्पादक शक्तिया के विकास का एक शक्तिशाली साधन है।

समाजवादी बुनियाद के ऊपरी ढाचे का प्रधान तत्व समाजवादी राज्य, समाजवादी जनवाद तथा मार्क्सवादी लेनिनवादी समाजवादी विचारधारा है। समाजवादी राज्य के प्रशासन म जनता का अधिकाधिक भाग लेना, सामाजिक मामलो म उनकी अधिक पहलकदमी और सक्रिय भाग आजादी और समानता प्रतिरोधी अतविरोधा से रहित समाज की सामाजिक, राजनीतिक और सद्धातिक एकता, समाज के राजनीतिक नताओ, कम्युनिस्ट तथा मजदूर पाटियो के झडे तले जनता का एकत्रित होना, जनवादी कद्रीयतावाद--य सभी समाजवादी जनवाद की लाक्षणिक विशेषताए ह। वनानिक मार्क्सवादी-लनिनवादी विचारधारा न केवल श्रमजीवी जनता के मूल हिता को व्यक्त करती है, वल्कि उनकी सहायता करती है कि वे

इतिहास क नियमो के अनुसार सामाजिक विकास की सम्भावनाओ का स्पष्ट अनुमान कर सके।

आर्थिक क्षेत्र म समाजवादी सबधो की स्थापना का गहरा लगाव उन मौलिक परिवतनो से ह, जो जनता के मन म उनकी मनोवत्ति मे हो रह ह, तथा उन नय नियमो की स्थापना स है, जिनके द्वारा मानवो के बीच सबधो का नियत्रण होता ह।

परन्तु, समाजवाद, यानी वह समाज जो सीधे पूजीवाद से उत्पन्न होता है, अपन अ दर अथव्यवस्था मे, रोजमर्रा के जीवन मे तथा मानवो के चितन मे पुरानी बातो के बहुत से अवशेष लिय रहता है। आदमियो की मदद करना कि वे अपनी निजी सम्पत्ति वाली मनोवत्ति और नतिकता, अपन राष्ट्रवादी पूर्वाग्रहो आदि, के अवशेषो से छुटकारा पा जाये समाज को अपराधियो बदमाशो चोरो वगरह से मुक्ति दिलाना जटिल काम है। यह काम एक दिन म नही पूरा हो सकता। इसका समाधान समाजवाद के विकास के साथ हो सकता है। समाजवाद क्रमश वे सभी आवश्यक स्थितिया और शर्तें पूरी करता है, जिनमे कम्युनिस्ट समाज के नये मानव की परवरिश होती है। इस नये मानव की बौद्धिक बनावट सवप्रथम समाज की भलाई के श्रम के दौरान होती है।

इस समय कम्युनिस्ट सामाजिक सरचना, जिसका श्रीगणेश रूस म महान अक्तूबर समाजवादी क्राति ने किया, अपन विकास की पहली मजिल पर है। जब आगे चलकर समाजवाद एक देश की चारदीवारी के बाहर फला तो विश्व समाजवादी व्यवस्था उत्पन्न हुई। मानवजाति ने ऐतिहासिक विकास के एक नये स्तर पर कदम रखा है, जो गुणात्मक दष्टि से नया है। नय जगत का ज म निमम सघष म हो रहा है, कठिनाइयो और अतविरोधो के बीच हो रहा है, अपने शत्रुओ के विरोध का मुकाबला करते हुए, गद्दारो और भगोडो से पीछा छुडाते हुए और जो ढुलमुल है उनका मन जीतने का प्रयास करते हुए हो रहा है। ज्यो-ज्यो वह आगे कदम बढाता है उससे गलतिया भी होती ह और वह उनका सुधार भी करता है, अपने विकास के अनुभव से नतीजा निकालता और अतीत से सबक सीखता है। यह प्रगति कोई सहज विजय अभियान नही बल्कि एक टेढी मेढी, कठिन चढाई है, जिसमे हार और जीत, कामयाबी और नाकामी दोनो हैं। कम्युनिज्म का निर्माण एक महान काय है क्योकि यह वज्ञानिक तथा

बुद्धि संगत सिद्धांतों के आधार पर एक नये समाज के निर्माण के काय को, मानव योग्य स्थितियों के निर्माण काय को व्यावहारिक रूप में पूरा करने का प्रयत्न है।

समाजवादी समाज – कम्युनिस्ट सामाजिक सरचना का पहला मजिल – का विकास क्रमश, नियमानुसार सम्पूर्ण कम्युनिज्म में होता है, जो उसकी उच्चतर मजिल है। इस सक्रमण में समाज के जीवन में भारी तब्दीलियां होती हैं क्योंकि समाजवाद और कम्युनिज्म समाज की आर्थिक तथा बौद्धिक परिपक्वता की गुणात्मक दृष्टि से भिन्न मजिलें हैं। समाजवाद की उत्पत्ति पूंजीवाद से होती है और उस पर पुराने समाज के "जन्म चिन्ह" होते हैं, मगर कम्युनिज्म तो कम्युनिस्ट सरचना की उच्चतर मजिल है, जो स्वयं अपने आधार पर विकसित होती है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम में कहा गया है "कम्युनिज्म – वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें उत्पादन साधनों का एक ही प्रकार का सार्वजनिक स्वामित्व होगा और समाज के सभी सदस्यों में पूरी सामाजिक बराबरी होगी, उसमें जनता के सर्वांगीण विकास के साथ विज्ञान और प्रविधि में निरतर प्रगति के आधार पर उत्पादक शक्तियों की बढ़ती होती रहेगी, सार्वजनिक सपत्ति के सभी स्रोत प्रचुरता से उमड़ते रहेंगे और 'प्रत्येक से उसके सामर्थ्यानुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार' वाला महान सिद्धांत क्रियान्वित होगा। कम्युनिज्म है स्वतत्र, चेतनाशील मेहनतकश लोगों का सुसगठित समाज, जिसमें सार्वजनिक स्वशासन स्थापित किया जायेगा, ऐसा समाज, जिसमें समाज के भले के लिये मेहनत करना हरेक की पहली बुनियादी जरूरत बन जायेगा, ऐसी जरूरत जिसे एक एक व्यक्ति समझेगा-मानेगा, और प्रत्येक व्यक्ति का सामर्थ्य जनता के अधिक से अधिक भले के लिये काम में लाया जायेगा।"*

समाजवाद से कम्युनिज्म में सक्रमण का आधार उद्योग तथा कृषि में उत्पादक शक्तियों का शक्तिशाली विकास है, जिससे मनुष्य की बुनियादी जरूरत तथा समाज की आवश्यकताएं पूरी करने के लिये भौतिक पदार्थों की प्रचुरता मुहैया की जाती है। इस प्रसग में सोवियत सघ की कम्युनिस्ट

---

*सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, पृ० ७२

पार्टी के कायक्रम म बताया गया है कि सोवियत सघ का प्रधान आर्थिक काय कम्युनिज्म की भौतिक तथा तकनीकी आधार का निर्माण है जिससे तीन मुख्य कार्यों को पूरा करने की ओर बढने मे सहायता मिलेगी पहले, उपभोग मालो की प्रचुरता का निर्माण जो आवश्यकतानुसार वितरण के कम्युनिस्ट सिद्धात को अमली रूप म लाने के लिये जरूरी है, दूसरे, काम के घटो को इस तरह कम करना कि सभी नागरिको को सामाजिक मामलो म भाग लेने के लिये पर्याप्त समय मिल सके और तीसरे श्रम को हलका करना और इसके स्वरूप को बदलना ताकि वह सतोष का स्रोत तथा प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति की परम आवश्यकता बन जाये।

इन कार्यों की पूति मे एक महत्वपूण कदम सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४ वी काग्रेस ने उठाया। ले० इ० ब्रेज्नेव तथा अ० नि० कोसीगिन द्वारा प्रस्तुत रिपाट और १९७१–१९७५ के लिये सोवियत सघ के आर्थिक विकास की नयी पचवर्षीय योजना-सबधी निदेशा म सोवियत जनगण के कायकलाप के लिये एक महान कायक्रम स्पष्टत निरूपित किया गया है, जिससे कम्युनिज्म की ओर उनकी लगातार प्रगति निश्चित हो जाती है। भविष्य मे सोवियत अथव्यवस्था के विकास की नीव रखते हुए, उत्पादन को तक्नीकी तौर पर पुन सुसज्जित करते हुए तथा विज्ञान और शिक्षा मे *विशाल साधन लगाते हुए, सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी* ने यह कायभार भी प्रस्तुत किया है कि समस्त सोवियत जनगण की समृद्धि को बढाने के लिये अधिकाधिक प्रयास और साधन जुटाये जायें। सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४वी काग्रेस की रिपोट म ले० इ० ब्रेज्नेव ने कहा "नवी पचवर्षीय योजना अवश्य ही कम्युनिज्म की ओर सोवियत समाज की और अधिक प्रगति म, उसके भौतिक और तकनीकी बुनियाद के निर्माण मे, देश की आर्थिक तथा प्रतिरक्षा की शक्ति को आवर्धित करने म एक महत्वपूण मजिल होगी। **पचवर्षीय योजना का मुख्य कायभार समाजवादी उत्पादन मे वृद्धि के ऊचे दर, उसकी कायसाधकता मे वृद्धि, वज्ञानिक और तकनीकी प्रगति तथा श्रम की उत्पादकता मे त्वरित वद्धि के आधार पर जनगण के जीवन स्तर तथा सास्कृतिक स्तर को काफी ऊपर उठाना है।"**

समाजवादी उत्पादन के विकास से समाज के आर्थिक तथा सामाजिक सबधा को सुधारने और जनगण के भौतिक और सास्कृतिक स्तर को निरन्तर ऊचा उठाने का आधार पैदा होता है। जनता के सास्कृतिक स्तर का ऊचा

उठना और सर्वांगीण विकसित व्यक्तित्व का निर्माण दाना उत्पादन के विकास का नतीजा भी हैं और उसकी शत भी।

कम्युनिज्म म सक्रमण का मतलब है शहर और देहात के सामाजिक आर्थिक सास्कृतिक तथा रोजमर्रा के जीवन के भेदा को दूर करना, मानसिक तथा शारीरिक श्रम के मूल भेदा को दूर करना और इनके साथ समाज म वर्गों और सामाजिक समूहा के भेदो को मिटाना। जब ये मुख्य सामाजिक काय पूरे हो जायेंगे तो एक वगहीन कम्युनिस्ट समाज स्थापित हो जायेगा जिसम मानवो म सचमुच बराबरी होगी। यह कम्युनिज्म की सबसे बडी उपलब्धि होगी।

कम्युनिज्म म सक्रमण के लिये यह भी जरूरी है कि राज्य मिट जाय, समाज की बौद्धिक सम्पदा का और अधिक विकास हो, विज्ञान और सस्कृति फल फूले, जनता के सास्कृतिक और तकनीकी स्तर बहुत ऊचे हो, उनकी पहलकदमी विकसित हो और मानवो के परस्पर सबधो म सामूहिक और मानवीय सिद्धात तथा कम्युनिस्ट नैतिकता के नियम लागू किये जायें। सामाजिक असमानता और पुराने सामाजिक श्रम विभाजन के अवशेषो का निर्मूलन भौतिक समद्धि और सस्कृति के ऊचे स्तर की प्राप्ति, काम का छोटा दिन, आदि -- ये सब चीजे व्यक्तित्व की समद्धि मे सहायक होगी और उसकी कुशलता तथा क्षमताओ को उजागर करेगी।

कम्युनिज्म की ओर समाजवादी समाज की प्रगति निर्णायक रूप म निभर करती है उन पुरुषो और स्त्रिया पर, जो इसका निर्माण कर रहे ह, उनकी एकजुटता और एकता पर, उनकी बुद्धि विवेक तथा कौशल पर, उनकी क्रियाशीलता और पहलकदमी पर, उनके साहस और लगन पर, उनके अनुशासन और उत्तरदायित्व, उनके ज्ञान और अनुभव तथा उनकी नतिक परिपक्वता और सस्कृति पर।

नय समाज के निर्माण की इस विविध रूपी प्रक्रिया म अगुआ और निदेशक शक्ति कम्युनिस्ट पार्टी है।

* * *

पूजीवादी विचारक कम्युनिस्ट आदश की प्राप्ति की सम्भावना के बारे म सन्देह फलाने का प्रयास करते ह, कहते ह कि यह यूतोपिया है हवाई किला है आदि। मगर क्या यही बात है? एक बुद्धिसगत और न्यायसगत समाज

की धारणा बहुत पुरानी है और सदियो तक इसकी हैसियत एक सुदर सपने एक यूतापिया स अधिक नही थी क्योकि उस समय तक इसकी स्थापना की भौतिक और बौद्धिक आवश्यक शर्तें सामाजिक विकास के दौरान म परिपक्व नही हो पायी थी। मार्क्सवाद ने बताया कि कम्युनिस्ट समाज का निर्माण सम्भव है। उसने इसकी मुख्य रूपरेखा बतायी और इसकी ओर जानेवाला रास्ता इगित किया। इस प्रकार उसने यूतापियाई विचार के बजाय समाजवाद और कम्युनिज्म का वैज्ञानिक विचार पेश किया। आज इस बात पर जिद्द करना *कि कम्युनिज्म यूतापिया है, इस बात को देखने से इनकार करना* है कि एक उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की सम्भावनाए पैदा हो गयी है, और मानवजाति विकास के जिस स्तर पर पहुच गयी है उससे कम्युनिज्म तक जाने की नयी राह खुल रही है। यह पूछना बिल्कुल स्वाभाविक है कि क्या मानवजाति, जिसने आज की सी विशाल उत्पादक शक्तियो को जन्म दिया है, जो विज्ञान और संस्कृति की इतनी बुलदियो पर पहुच गयी है, एक बुद्धिसगत सामाजिक सगठन स्थापित करने अपने आपको भूखमरी, दरिद्रता, युद्ध तथा सामाजिक प्रतिरोधो से मुक्त करने और सबके लिये समानता, समृद्धि, बौद्धिक विकास की सम्भावना को निश्चित करने आदि की क्षमता नही रखती? इसमे यूतापियाई हवाई क्या बात है? इस सच्चे मानवीय आदर्श पर आपत्ति का सम्भवत क्या कारण हो सकता है? क्या इसका कारण यह है कि कुछ नस्ले उच्चतर है और कुछ निम्नतर? परन्तु नस्लवाद की इस प्राणिवैज्ञानिक विचारधारा का भडा कब का फूट चुका। क्या इसका कारण यह है कि असमानता कोई वरदान है, जिसके बिना मानवजाति का पतन होने लगेगा? परन्तु मार्क्सवाद ने कभी यह नही कहा कि व्यक्तिगत समानता सम्भव या आवश्यक है, बल्कि सदा सामाजिक असमानता का विरोध किया है और सदा केवल इस बात पर जोर दिया है कि सबो को विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिये।

क्या ऐसी बात है कि मनुष्य की बनावट म ही बीज रूप म आदिम पाप निहित है? लेकिन मनुष्य जन्म से न अच्छा होता है न बुरा, बल्कि समाज म अच्छा-बुरा बनता है। अवश्य ही मनुष्य देवता नही है और न कभी हो सकता है। उसकी सदा इच्छा होगी कि उसकी भौतिक जरूरत पूरी हो। मगर इसमे बुराई क्या है? आखिर मानव के सुख-चैन का आधार वैराग्य द्वारा नही बल्कि भौतिक आवश्यकताओ की सतुष्टि से पडता है, यद्यपि केवल भौतिक सतुष्टि ही मनुष्य का सारा सुख-चैन नही है।

उठना और सवागीण विकसित व्यक्तित्व का निर्माण दोनो उत्पादन के विकास का नतीजा भी है और उसकी शत भी।

कम्युनिज्म म सक्रमण का मतलब है शहर और देहात क सामाजिक आथिक, सास्कृतिक तथा रोज़मर्रा क जीवन के भेदा को दूर करना, मानसिक तथा शारीरिक श्रम के मूल भेदा को दूर करना और इनके साथ समाज मे वर्गो और सामाजिक समूहा के भेदा को मिटाना। जब ये मुख्य सामाजिक काय पूरे हो जायेंगे तो एक वगहीन कम्युनिस्ट समाज स्थापित हो जायेगा, जिसमे मानवो मे सचमुच बराबरी होगी। यह कम्युनिज्म की सबस बडी उपलब्धि होगी।

कम्युनिज्म म सक्रमण के लिये यह भी जरूरी है कि राज्य मिट जाये, समाज की बौद्धिक सम्पदा का और अधिक विकास हो, विज्ञान और सस्कृति फले फूले, जनता के सास्कृतिक और तकनीकी स्तर बहुत ऊचे हा, उनकी पहलकदमी विकसित हा और मानवा के परस्पर सबधो मे सामूहिक और मानवीय सिद्धात तथा कम्युनिस्ट नतिकता के नियम लागू किये जायें। सामाजिक असमानता और पुराने सामाजिक श्रम विभाजन के अवशेषो का निमूलन, भौतिक समद्धि और सस्कृति के ऊचे स्तर की प्राप्ति, काम का छोटा दिन, आदि—य सब चीज़े व्यक्तित्व की समद्धि मे सहायक हागी और उसकी कुशलता तथा क्षमताओ को उजागर करगी।

कम्युनिज्म की ओर समाजवादी समाज की प्रगति निर्णायक रूप म निभर करती है उन पुरुषो और स्त्रिया पर, जो इसका निर्माण कर रहे ह, उनकी एकजुटता और एकता पर, उनकी बुद्धि विवेक तथा कौशल पर, उनकी क्रियाशीलता और पहलकदमी पर, उनके साहस और लगन पर, उनके अनुशासन और उत्तरदायित्व, उनके ज्ञान और अनुभव तथा उनका नतिक परिपक्वता और सस्कृति पर।

नये समाज के निर्माण की इस विविध रूपी प्रक्रिया म अगुआ और निदेशक शक्ति कम्युनिस्ट पार्टी है।

* * *

पूजीवादी विचारक कम्युनिस्ट आदश की प्राप्ति की सम्भावना के बारे म सन्देह फैलाने का प्रयास करत ह कहत ह कि यह यूतोपिया है हवाई किला है, आदि। मगर क्या यही बात है? एक बुद्धिसगत और न्यायसगत समाज

की धारणा बहुत पुरानी है और सदिया तक इसकी हैसियत एक सुदर सपने, एक यूतापिया से अधिक नही थी क्याकि उस समय तक इसकी स्थापना की भौतिक और बौद्धिक आवश्यक शर्ते सामाजिक विकास के दारान मे परिपक्व नही हो पायी थी। माक्सवाद ने बताया कि कम्युनिस्ट समाज का निर्माण सम्भव ह। उसने इसकी मुख्य रूपरेखा बतायी और इसकी ओर जानेवाला रास्ता इगित किया। इस प्रकार उसने यूतोपियाई विचार के बजाय समाजवाद और कम्युनिज्म का वज्ञानिक विचार पश किया। आज इस बात पर जिद्द करना कि कम्युनिज्म यूतापिया है, इस बात वो दखने स इनकार करना है कि एक उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की सम्भावनाए पैदा हो गयी ह, और मानवजाति विकास के जिस स्तर पर पहुच गयी है, उससे कम्युनिज्म तक जाने की नयी राह खुल रही हैं। यह पूछना बिल्कुल स्वाभाविक है कि क्या मानवजाति, जिसने आज की सी विशाल उत्पादक शक्तियो को जन्म दिया है, जा विज्ञान और सस्कृति की इतनी बुलदियो पर पहुच गयी है, एक बुद्धिसगत सामाजिक सगठन स्थापित करने, अपने आपको भूखमरी, दरिद्रता, युद्ध तथा सामाजिक प्रतिरोधा स मुक्त करने और सबके लिये समानता, समद्धि, बौद्धिक विकास की सम्भावना का निश्चित करने, आदि की क्षमता नही रखती? इसम यूतोपियाई, हवाई क्या बात है? इस सच्चे मानवीय आदश पर आपत्ति का सम्भवत क्या कारण हो सकता है? क्या इसका कारण यह है कि कुछ नस्ल उच्चतर ह और कुछ निम्नतर? परन्तु नस्लवाद की इस प्राणिवज्ञानिक विचारधारा का भडा कब का फूट चुका। क्या इसका कारण यह है कि असमानता काई वरदान है, जिसके बिना मानवजाति का पतन होने लगेगा? परन्तु माक्सवाद न कभी यह नही कहा कि व्यक्तिगत समानता सम्भव या आवश्यक है, बल्कि सदा सामाजिक असमानता का विरोध किया ह और सदा केवल इस बात पर जोर दिया है कि सबा का विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिये।

क्या ऐसी बात है कि मनुष्य की बनावट म ही बीज रूप म आदिम पाप निहित है? लकिन मनुष्य जन्म से न अच्छा होता ह न बुरा, बल्कि समाज म अच्छा-बुरा बनता है। अवश्य ही मनुष्य देवता नही ह और न कभी हो सकता है। उसकी सदा इच्छा होगी कि उसकी भौतिक जरूरत पूरी हा। मगर इसमे बुराई क्या है? आखिर मानव के सुख-चन का आधार वैराग्य द्वारा नही बल्कि भौतिक आवश्यकताओ की सतुष्टि से पडता ह, यद्यपि केवल भौतिक सतुष्टि ही मनुष्य का सारा सुख-चन नही है।

दोष मानव स्वभाव का नहीं, समाज का है क्योंकि वही मनुष्य की नीच प्रवृत्तियों और भावनाओं को उत्तेजित करता है और उसके अनुकूल किसी साँचे में ढालता है। इतिहास के द्वंद्वात्मक विकास का जो चीज इतनी पेचीदा बनाती है वह यह है कि नये समाज का निर्माण उन मानवों को ही करना है, जिनका पालन-पोषण पुराने समाज में हुआ है। मार्क्सवाद ने साबित किया कि इसका समाधान मनुष्य के स्वभाव में नहीं बल्कि उसके कार्यकलाप में है, क्योंकि आदमी जब अपने आसपास की वस्तुओं का रूपांतरण करता है तो वह अपने आपको भी बदलता है। इसी लिये मनुष्य का स्वभाव नये समाज के निर्माण में बाधक नहीं है।

इसके अलावा और क्या आपत्तियाँ हो सकती हैं? क्या यह खतरा है कि थर्मोन्युक्लियर युद्ध में सभ्यता नष्ट हो जायगी? यह खतरा तो है, मगर समाजवाद के कारण नहीं बल्कि साम्राज्यवाद के कारण है, क्योंकि वह अपना जीवनकाल पूरा कर चुका है और अब नित्य नये युद्ध की आग भड़काया करता है। इसी लिये साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध तथा शांति और समाजवाद के लिये संघर्ष विनाशकारी थर्मोन्युक्लियर युद्ध को रोकने का संघर्ष भी है जैसा कि कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के १९६९ के अंतर्राष्ट्रीय मास्को सम्मेलन ने घोषणा की थी।

कम्युनिज्म की राह में मानवजाति के सामने मुख्य रुकावट शोषण और उत्पीड़न की व्यवस्था और इस व्यवस्था को कायम रखनेवाले वर्ग, सामाजिक श्रेणियाँ और गिरोह यानी शासक वर्ग तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था की सभी प्रतिक्रियावादी, इजारेदार शक्तियाँ हैं। इसी लिये नये समाज की उत्पत्ति केवल वर्गों के संघर्ष द्वारा ही हो सकती है। मानवजाति का सितारों तक पहुँचने का रास्ता अवश्य ही काँटों से भरा हुआ है। इस संघर्ष में कम्युनिस्ट विचार उज्ज्वल और महान आदर्श है, वह ध्रुवतारा, जो भविष्य का दिग्दर्शन करता है और उसकी सम्भावनाओं के द्वार खोलता है। कोई चीज इस आदर्श को बिगाड़ नहीं सकती। हाइने ने अपनी "जर्मनी" नाम की कविता में लिखा था

> हम अपनी इसी सुंदर धरती पर
> स्वर्ग का निर्माण करेंगे

परन्तु कम्युनिज्म ईसाइयों का स्वर्ग नहीं, जिसमें दैवी गुणों से आविभूत भगविहीन स्त्री-पुरुष रहा करते हों। वह मानवजाति का सामाजिक संगठन है, जिसका काम स्वयं मानव की सेवा करना है।

हमने देखा कि मानवजाति अपने विकास के दौरान में एक लम्बे और पेचीदा रास्ते से होकर गुजरी है। ऐतिहासिक प्रक्रिया की पहली मंजिल—आदिम सामुदायिक संरचना—का परिणाम था मनुष्य का पाशविक जगत से निकलना और अपने सामाजिक विकास की आवश्यक स्थितियां तैयार करना। आदिम समाज में मनुष्य ने अपनी प्राकृतिक अवस्था से मुक्ति पायी और पहले पहल सीधा खड़ा हुआ।

अंतर्विरोधी संरचनाओं का परिणाम यह है कि विज्ञान और भौतिक उत्पादन उस स्तर पर पहुंच गये हैं, जहां मनुष्य के लिये यह सम्भव होता है कि प्रकृति की शक्तियों को अपनी सेवा में लगा सके।

इतिहास की तीसरी मंजिल—कम्युनिस्ट संरचना—का कार्यभार यह है कि मानव अपने सामाजिक संबंधों को स्वयं अपने अधिकार में लाये और भौतिक तथा बौद्धिक उत्पादन के उच्चतर विकास तथा बिरादराना सहयोग के सामूहिक संबंधों के विकास के आधार पर स्वयं अपना सर्वतोमुखी विकास करे।

मानवजाति का असल इतिहास कम्युनिस्ट संरचना की उत्पत्ति के साथ आरम्भ होता है क्योंकि तब वह प्रकृति का और स्वयं अपने सामाजिक संबंधों का गुलाम नहीं रहता।

इतिहास का वैज्ञानिक दृष्टिकोण बतलाता है कि **इतिहास प्रगति है, निम्न रूपों से उच्चतर रूपों तक एक लगातार संक्रमण,** और यह कि तत्काल मानवजाति एक ऐसी मंजिल पर पहुंच गयी है, जहां इसके सामने कम्युनिस्ट संरचना की परिस्थितियों में सर्वतोमुखी विकास तथा समृद्धि की महान सम्भावनाएं उत्पन्न हो गयी हैं। यह है विश्व इतिहास की वस्तुगत युक्ति।

हमने विश्व इतिहास के विकास की आम रेखा पर उस हद तक विचार किया, जिस हद तक वह भौतिक उत्पादन के विकास की नियमितताओं से निर्धारित होती है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हमने ऐतिहासिक प्रक्रिया के हर बिन्दु पर सामाजिक विकास की व्याख्या कर दी है। ठोस इतिहास कहीं ज्यादा विविध है, इसके भीतर बहुत से तत्व काम कर रहे

है, जो ऐतिहासिक प्रक्रिया को विविध बनाते हैं, और इसी लिये यह नही समझना चाहिये कि यह किसी सीधी रेखा के समान है। ऐतिहासिक विकास अनेक अंगभूत तत्वों की क्रिया का फल है और ठोस इतिहास को समझने के लिये जरूरी है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया में परस्पर प्रभावित करने वाले तमाम मौलिक तत्वों और शक्तियो पर विचार किया जाय। **ऐतिहासिक भौतिकवाद इतिहास के अध्ययन की एक विधि प्रदान करता है, इसलिए यह न केवल विश्व इतिहास के सबद्धता तथा इसके विकास की आम दिशा को प्रकट करता है, बल्कि इसकी विविधता का ज्ञान प्राप्त करने का भी उपाय बताता है।** मार्क्सवाद के संस्थापकों ने बार बार यह चेतावनी दी कि ऐतिहासिक भौतिकवाद को विकृत न किया जाय और इसकी प्रस्थापनाओं को सूत्रों का रूप न दिया जाय, जिन्हे इतिहास पर थोपा जाता और जिन्हे तथ्यों के अध्ययन का स्थान दे दिया जाता है। हम याद करें कि एगेल्स ने इस सबध में क्या कहा था "इतिहास की भौतिकवादी धारणा के अनुसार इतिहास का निर्णायक तत्व अततोगत्वा वास्तविक जीवन का उत्पादन और पुनरुत्पादन है। इससे अधिक न मार्क्स ने और न मैंने ही कहा है। अत यदि कोई इसे तोड-मरोड कर यों कहे कि आर्थिक तत्व ही एकमात्र निर्णायक तत्व है, तो वह हमारी प्रस्थापना को निरर्थक, अमूर्त और छूछी शब्दावली मात्र बना देता है।' * एगेल्स ने आगे चलकर बताया कि विकासक्रम पर ऊपरी ढाचे के विभिन्न पहलुओं जैसे विचारधारा आदि का प्रभाव पडता है और उनके द्वारा मुख्यतया उसका रूप निर्धारित होता है। यदि यह जरूरी नही होता कि इस ऐतिहासिक परस्पर क्रिया पर, आकस्मिक घटनाओं के अनन्त समूह पर विचार किया जाये जिसके मध्य से आर्थिक अनिवार्यता अपना रास्ता बनाती है तो 'इतिहास के किसी युग पर इस सिद्धात को लागू करना गणित के सरलतम समीकरण का हल करने से भी अधिक आसान होता। **

अलग अलग देशों के इतिहास के मार्ग तथा उसकी विशिष्टताओं को वर्गीय शक्तियो के वास्तविक सबध, आत्मनिष्ठ तत्व के प्रभाव और सब

---

* का० मार्क्स और फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए, चार भागो मे, प्रगति प्रकाशन मास्को, भाग ४, पृ० ५५१

** वही।

प्रथम राजनीति और विचारधारा का अध्ययन किये बिना नही समझा जा सकता। इसके लिये जरूरी यह कोशिश करना है कि इतिहास की गति की अत्यत पचीदगी को देखा जाये और यह समझना ह कि ऐतिहासिक भौतिकवाद की विधि का तकाजा है कि तथ्या का उपयोग सामाजिक वास्तविकता का विश्लेपण करने के लिये किया जाय, न कि उन्हे तोड मरोड कर आम प्रस्थापनाओ पर लागू किया जाये।

फिर वह क्या चीज है, जो विश्व इतिहास के सामान्य माग को इतना विविध बना देती है? स्थानाभाव के कारण हम इस सवाल पर केवल आम तौर से विचार कर सक्त ह। आइये हम एक बार पुन भौगालिक वातावरण के प्रभाव पर विचार कर। इतिहास की व्याख्या करते हुए भौगोलिक वातावरण को नजरअन्दाज़ करना सही नही बल्कि यह पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिये कि वास्तव म उसका प्रभाव किस तरह पडता है। भौगोलिक वातावरण अवश्य ही उन तत्वो म से एक है, जिनके कारण विश्व इतिहास की गति इतनी असमान रही जिससे कुछ राष्ट्र उन्नत हो गये और कुछ का विकास धीमा पड गया। लेकिन इस प्रभाव को परम रूप देना गलत होगा क्याकि सामाजिक स्थितिया इसमे हेरफेर करती रहती ह। प्रत्यक राष्ट्र चाहे उसकी भौगोलिक स्थिति कुछ भी हो एक निश्चित ऐतिहासिक वातावरण म जीवन व्यतीत करता और उससे प्रभावित होता है। ऐतिहासिक वातावरण युद्ध आर आक्रमण स लेकर विभिन्न प्रकार के सम्पर्कों तक अत्यत विविध प्रभावा का स्रोत हो सकता है। इसका प्रभाव अर्थव्यवस्था स लेकर विचारधारा तक सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र म पड सकता है। फिर साथ ही इस पर भी विचार कीजिये कि बेहद भाति भाति की जातिया चाहे व ऐतिहासिक विकास के एक ही स्तर पर हा या भिन्न स्तरो पर, एक दूसरे को प्रभावित करती है। अपन इस युग म ही हम देखते हैं कि विभिन्न जातिया, जो कबायली व्यवस्था स लेकर समाजवाद तक सामाजिक विकास के विभिन्न स्तरो पर पहुची हुई ह, सहअस्तित्व और परस्पर प्रभावित करती ह। यह भी एक कारण है जिमस आज की सामाजिक समस्याओ की अत्यत विविधता पदा हाती है।

विभिन्न जातिया के इतिहास की अपनी खास विशेपताए उनकी सस्कृति की खास विशेपताआ म प्रतिबिम्बित आर अकित हा जाती ह। एतिहासिक भौतिकवाद के दष्टिकाण से द्वारबद तथा सवथा स्वतत्र सस्कृतिया के

अस्तित्व के सबध म ग्रास्वाल्ड स्पेंग्लर का विचार, जो विश्व इतिहास को सुसम्बद्ध मानने से इनकार करता है, अवास्तविक है। परन्तु केवल राष्ट्रीय संस्कृतियो की ही नही बल्कि पूरे के पूरे क्षेत्रो की संस्कृतियो की विशिष्टता से इनकार करना भी गलत होगा। चुनाचे जहा यूरोप और एशिया की जातियो की संस्कृतियो म समान बात पायी जाती ह, उनकी अपनी स्पष्ट विशेषताए भी है, जिन्ह इन देशो तथा महादेशो की जातियो के इतिहास का अध्ययन करने म ध्यान म रखना होगा।

अलग अलग देशो या देश समूहो के इतिहास की विशेषताओ को समझने के लिये विचारधारा सबधी प्रभावो का भी बडा महत्व होता है। मसलन यूरोप और अमरीका के पुराने इतिहास म ईसाई धम का प्रचार एक महत्वपूण ऐतिहासिक तत्व रहा है। आगे चलकर क्रातिकारी मजदूर वर्गीय आन्दोलन के विकास से मार्क्सवादी विचारधारा के व्यापक प्रचार का रास्ता साफ हुआ, जो वतमान इतिहास क समस्त माग को विशाल रूप स प्रभावित कर रहा है।

ये कुछ ऐसी परिस्थितिया ह, जिनसे विश्व इतिहास की गति म अनेक पहलू पदा होते ह। **यह देखना जरूरी है कि ऐतिहासिक प्रक्रिया मे एकता और विविधता दोनो है, विकास की प्रमुख प्रवृत्तियां भी ह और विभिन्न जातियो द्वारा अपनाये गये माग की विविधता भी, विकास के सामान्य नियम भी और अलग अलग देशो की खास विशेषताए भी। इन सभी पहलुओ को उनके द्वद्वात्मक सबध मे लेना चाहिये, न किसी के महत्व को बढ़ाना चाहिये और न किसी के महत्व को घटाना।**

विश्व पमाने पर पूजीवाद से कम्युनिज्म म सक्रमण ही आधुनिक युग की मुख्य प्रवृत्ति तथा मुख्य सार है। इस प्रवत्ति के विकास का प्रधान नतीजा यह है कि इस पृथ्वी पर समाजवाद की दढ स्थापना हो चुकी है। ससार मे ऐसी कोई शक्ति नही, जो इतिहास की धारा को मोड सके। समाजवाद का भविष्य कम्युनिज्म है, जो मानवजाति के भावी विकास का आधार है। बात यह है कि उत्पादन साधनो पर कम्युनिस्ट स्वामित्व की स्थापना से मानवजाति के लिये व्यवहार रूप मे सम्पत्ति समस्या का अत हो जाता है, क्योकि उत्पादन साधनो का सावजनिक स्वामित्व ही सावजनिक उत्पादन शक्तियो के लिये एकमात्र पर्याप्त रूप है और इसी से उनके विकास के लिय असीम सम्भावनाए पैदा हो जाती हैं। इसलिये यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि

समाज और सस्कृति

सस्कृति क्या है?

पिछले अध्यायो मे हमने समाज को एक सुसम्बद्ध परन्तु अपने अन्दर एक विभाजित सामाजिक सघटन मान कर विचार किया था। हमारे सामने वह सामाजिक परिघटनाओ – सबधो, सस्थाओ, सगठनो, सामाजिक समूहो तथा भौतिक और बोद्धिक तत्वो की एक विशेष व्यवस्था के रूप म उपस्थित हुआ। हमने इस व्यवस्था के ढाचे पर, इसके तत्वो के परस्पर सबधो और इसके विकास की मुख्य नियमितताओ पर विचार किया।

अब हमे **समाज और सस्कृति** पर विचार करना है। दोनो म सबध क्या है? क्या सस्कृति कोई ऐसी वस्तु है, जो समाज से बाह्य है? बजाहिर नही है। सस्कृति का अस्तित्व समाज म होता है। समाज के बाहर याने मनुष्य के पूव और उसके बिना सस्कृति का कोई अस्तित्व नही रहा है। साथ ही सस्कृति एक व्यापक अवधारणा है और अपनी व्यापकता म समाज की अवधारणा के समान है क्योकि हम सामाजिक जीवन और कायकलाप के जिस क्षेत्र पर भी विचार करे हम सदा सस्कृति के कुछ मूलतत्व अवश्य मिलेगे। यही कारण है कि सामान्य सैद्धातिक दृष्टि से सस्कृति का विश्लेषण करने और सामाजिक मानव के कायकलाप मे उसकी भूमिका का समझने के लिय, सस्कृति की तुलना समाज से करने की आवश्यकता होती है।

तो फिर सस्कृति है क्या और सस्कृति और समाज म सबध क्या है? माक्सवादियो और गैर-माक्सवादियो दोनो ने इस अत्यत महत्वपूण विषय पर बहुत कुछ लिखा है। सस्कृति की अनेक परिभाषाए है, कुछ लोगो के

अनुसार कम से कम १६० है।* इसका कारण बज़ाहिर केवल यही नहीं है कि संस्कृति एक बहुत जटिल और किसी हद तक अनिश्चित वस्तु है, बल्कि यह भी है कि रोजमर्रे के जीवन में तथा विभिन्न विज्ञानों— मानवविज्ञान, नस्लविज्ञान, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान, इतिहास तथा समाजशास्त्र—में संस्कृति के विभिन्न रुख या तत्व भी सामने आते हैं और इसी लिये विभिन्न परिभाषाएं दरअसल विभिन्न वस्तुओं पर विचार करती हैं। अतः महत्वपूर्ण बात यह तय करना है कि संस्कृति है क्या और इसकी परिभाषा के सिद्धांत निश्चित करने हैं।

कुछ लोग संस्कृति की एक सामान्य अवधारणा निरूपित करने की ज़रूरत से ही इनकार करेंगे। वे कहेंगे कि इसकी हैसियत एक घरेलू शब्द से ज्यादा नहीं है, या यह अवधारणा विज्ञान की केवल कुछ विशेष शाखाओं में इस्तेमाल की जाती है। लेकिन हम देखते हैं कि संस्कृति की समस्याएं निरन्तर किसी न किसी रूप में सामाजिक व्यवहार में महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के तौर पर उठती रहती हैं और वे तीव्र सैद्धान्तिक संघर्ष का विषय बन जाती हैं। मसलन समाजवादी निर्माण का मार्ग अपनानेवाले देशों में सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता और इससे उत्पन्न होनेवाली समस्याओं को ही लीजिये, एशिया, अफ्रीका और लटिन अमरीका के राष्ट्रों का ज़ोरदार ऐतिहासिक कारवाई में शामिल होना, जिनमें से हर एक की अपनी विशेष संस्कृति है, उन्नत पूंजीवादी देशों में "जन समाज" तथा "जन संस्कृति" की जटिल और विरोधी समस्याएं, आदि। इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्सवादी समाजविज्ञान को संस्कृति जैसी परिघटना का विशेष रूप से अध्ययन करने की जरूरत है।

संस्कृति की अवधारणा को समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की व्यवस्था के भीतर शामिल करना जरूरी है क्योंकि यह उन प्रवर्गों में से है, जिनसे विज्ञान को मानव कार्यकलाप का और परिणामस्वरूप, विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं की क्रिया और विकास का अध्ययन करने में सहायता मिलती है।

"संस्कृति" की अवधारणा की उत्पत्ति इस बात से संबंधित है कि शुद्ध प्रकृति के विपरीत मानव कार्यकलाप की एक उपज को अलग कर

---

*देखिये A Kroeber and C Luckhon *Culture A Critical Review of Concepts and Definitions* Cambridge (Mass) 1952

लिया गया। मानव के सजनात्मक कायकलाप के कारण वहुत से पौध परिवर्तित हा चुके ह, खती की जमीन को मनुष्य ने हल चलाकर तयार किया ह, इसी प्रकार सभ्य व्यक्ति भी एक प्राकृतिक प्राणी है, जिसे शिक्षा द्वारा परिवर्तित कर दिया गया है। इससे सभी चीजे दो श्रेणिया म बट जाती ह प्राकृतिक वस्तुए और सस्कृत वस्तुए। यही वह आधार निहित है, जिससे हम सस्कृति की धारणा को समाज की धारणा का पर्याय मानने और यह समझने लगते है कि सस्कृति मानव अस्तित्व की प्रणाली की सबसे स्पष्ट विशेषता है। क्रेबेर और पारसन्स का कहना है कि मानवविज्ञान तथा समाजशास्त्र के रचनाकाल म "सस्कृति तथा समाज शब्दा का प्रयाग अधिकाश प्रभावशाली कृतियो म अपेक्षाकृत बिना किसी भेद क किया जाता था।"* चूंकि परिघटनाओ की इन दो श्रेणियो का भेद दरअसल प्राकृतिक यानी स्वत स्फूत प्रक्रियाओ और उन प्रक्रियाओ का भेद है, जो चेतन, सजनात्मक उद्देश्यपूर्ण मानस कायकलाप का नतीजा ह इसलिय समाज को उसकी सभी अभिव्यक्तियो और परिणामा समेत सस्कृति के इतिहास का अर्थात मानव के बौद्धिक कायकलाप के इतिहास का परिशिष्ट मात्र समझ लिया गया। भौतिक सस्कृति तथा उसकी उपलब्धिया की ओर ध्यान अधिक दिया जाय चाहे कम यह दृष्टिकोण, जा तथाकथित सास्कृतिक ऐतिहासिक ' मत, "सास्कृतिक मानववैज्ञानिक" मत तथा इसके विभिन्न सशोधित रूपो की विशिष्टता है, इतिहास के भाववादी दृष्टिकोण का ही एक रूप है। इसी के आधार पर रिक्ट ने तमाम विज्ञानो को प्रकृति के विज्ञानो और सस्कृति के विज्ञानो म विभाजित किया, और यही आधार है उस विचार का भी, जो मानव इतिहास को अलग अलग स्थानीय सस्कृतिया और सभ्यताओ का इतिहास मानता है।

हमारा विश्वास है कि 'सस्कृति' के शब्द का प्रयोग प्राकृतिक परिघटनाओ के विपरीत सजनात्मक मानव कायकलाप के समुच्चित परिणामा का उल्लेख करने के लिये बिल्कुल उचित है, मगर शर्त यह है कि इसका प्रयाग प्रकृति और समाज की विषमता दिखाने के लिय न किया जाय,

---

*A L Kroeber and Talcott Parsons 'The Concepts of Culture and of Social System' *American Sociological Review*, Vol 23 No 5 New York October 1958 p 582

जिसम पहले का भौतिक दृष्टि स और दूसर का भाववादी दष्टि स दिखाया गया हो।

परन्तु सस्कृति की यह धारणा बहुत ग्राम और ग्रमूत ह और स्पष्टत समाजशास्त्र के लिय पर्याप्त नही है, जिसम विभिन्न समाजा की क्रिया और विकास का अध्ययन किया जाता है। समाजशास्त्र के लिये यह जरूरी हो जाता है कि सस्कृति पर समाज से उसकी सवध पद्धति क प्रसग म विचार किया जाय, अर्थात सस्कृति को प्रकृति से ही नही, बल्कि समाज स भी पथक करके देखा जाय ताकि सस्कृति की अवधारणा मे समाज क कायक्लाप के लिय जो चीज बुनियादी है उसे उभार कर सामने लाया जाये। इसी लिय हमारा विचार ह कि **सस्कृति की व्यापक और सीमित धारणा मे फक** किया जाये। इस दूसर का तात्पय होगा सजनात्मक कायकलाप – विनान, कला, आदि – और इनके परिणाम तथा जनता म उनका प्रसार। सस्कृति की यह परिभाषा उसकी उपयुक्त व्यापक परिभाषा स भिन्न है, जिसके अनुसार मानव कायक्लाप के सभी परिणाम – भौतिक और बौद्धिक दानो – सस्कृति म शामिल कर लिय जात ह। बौद्धिक और भौतिक सस्कृति के विभाजन का भी पर्याप्त आधार मौजूद है और यह विचार कि सस्कृति म जो समस्याए सवधित होती ह वे असल म बौद्धिक सस्कृति क विकास की पदावार ह (सस्कृति का सीमित दष्टिकाण) व्यापक पमाने पर स्वीकार किया गया है। परन्तु चूकि यह विचार सस्कृति का बहुरूपी परिघटना के केवल चन्द पहलुओ की अभिव्यक्ति करता है, इसलिय सस्कृति की व्यापक धारणा की तुलना म त्रुटिपूण है। सच ता यह है कि कई लिहाज से भौतिक तथा बौद्धिक सस्कृति का भेद केवल अपक्षाकृत है। आखिर, हर भौतिक वस्तु, जिसे मनुष्य अपने हाथा से गढता है पहले उसके मन म एक विचार के रूप म जन्म लेती हे। वह मानव के बौद्धिक कायकलाप की पैदावार ह। बौद्धिक सृजनात्मकता मानव कायकलाप का एक अभिन्न अग है। मार्क्स ने कहा है कि प्रकृति इजन, कृपि की मशीने या रलवे नही बनाती। य सव आदमी बनाता है, उसके हाथा की महनत उसकी मानसिक क्रिया का नताजा है और इनम मनुष्य के नान, अनुभव और उसकी सजनात्मक शक्ति न मूत रूप धारण किया है। सामाजिक दष्टि स महत्वपूण बनन क लिय हर विचार को भौतिक रूप धारण करना पडता है चाह क्रिया म, भाषा मे, पुस्तक म, चित्र म या मशीन आदि म। इसी स यह प्रकट होता

है कि सस्कृति के सार को वौद्धिक सस्कृति तक ही सीमित रखना गलत है। और सच पूछिये ता क्या यह कहना सही है कि कलाकार जब चित्र बनाता है ता सस्कृति की सजना करता है, मगर एक डिजाइन इजीनियर मशीन बनाता है तो वह सजना नही करता ?

इसके अतिरिक्त यदि सस्कृति का अर्थ वौद्धिक कायकलाप और उसके परिणामो ('वौद्धिक सस्कृति") के सिवा और कुछ न हो तो वह "समाज के वौद्धिक जीवन" की धारणा से भिन्न नही होगा। उस हालत म इसका उपयोग अथपूण ढग से केवल वौद्धिक सजनात्मकता के रूपा और अभिव्यक्तिया की सम्पूण विविधता, उसके परिणामा आदि के प्रसार का उल्लेख करन के लिये किया जा सकता है। चूकि एक समग्र वस्तु अपने भागा के याग से अधिक कुछ हाती है, अत इस तरह की सयोगिक धारणा कारआमद है, खासकर इसलिये कि इससे एक समग्र वस्तु के रूप म समाज की धारणा मे तथा उस समग्र वस्तु के एक भाग के रूप म सस्कृति की धारणा म, जिससे किसी युग की सामाजिक चेतना का विकास लक्षित हाता है, फक करने मे सहायता मिलती है।

हम अगर यह कहते हैं कि सस्कृति की धारणा का वौद्धिक सस्कृति तक सीमित करना सही नही है, और इस बात पर जार देते ह कि भौतिक तथा वौद्धिक सस्कृति की पदावार म, मानव कायकलाप का परिणाम हान के कारण, कुछ समान पहलू हाते हैं, तो हम कदापि यह नही मानते कि भौतिक और वौद्धिक उत्पादन म कोई भेद करना बेकार की बात है। अत उत्पादन के साधन भौतिक सस्कृति की पदावार हैं, जो उसकी नियमितताओ के अधीन ह लेकिन वे उत्पादक शक्तिया की मूल सामाजिक क्रिया भी पूरे करते ह, जो सारे सामाजिक ढाचे का आधार है। उत्पादन साधनो तथा भौतिक सस्कृति के अन्य तत्वो (श्रम के साधनो, इमारतो, कपडा, आदि) के उपयोग, यानी उनके "उपभोग" का नतीजा यह होता है कि वे घिसते और फटते है, या उनम, जसे मिसाल के लिये भोजन मे, भौतिक, रासायनिक या ऊर्जा-सबधी परिवतन होते हैं। यही कारण है कि अगर समाज के अस्तित्व को कायम रखना है तो इनका पुन उत्पादन करना जरूरी है। इसी लिये सामाजिक मानव के लिये भौतिक उत्पादक कायकलाप की निरतर आवश्यकता होती है।

बौद्धिक उत्पादन की पदावार की हालत भिन्न है। प्रकृति के किसी नियम का जब पता लगा लिया जाता है तो वह सभ्यता का भाग बन जाता है और उसे बार बार इस्तेमाल किया जा सकता है। उपभोग द्वारा उसके समाप्त या नष्ट हो जाने का कोई खतरा नही होता। कोई पुस्तक एक बार सस्कृति का भाग बन जाये तो कितनी ही बार उसका "उपभोग" किया जा सकता है (केवल एक भौतिक वस्तु के रूप मे पुस्तक फट सकती है) और यह उस समय तक होता रहेगा, जब तक उसका पढनेवाले होगे यानी जब तक वह पुस्तक समय का साथ देती रहेगी और सास्कृतिक आवश्यकताए पूरी करती रहेगी।

इस प्रकार, समाज मे भौतिक तथा बौद्धिक कायकलाप के वस्तुआ के सजन, विस्तार (वितरण) तथा उपभोग की प्रक्रियाए होती ह। लेकिन भौतिक उत्पादन की पैदावारा का उपभोग करने के लिये जरूरी है कि उनका पुर्नोत्पादन निरन्तर जारी रहे। आधुनिक समाज मे उनका वितरण मालो के रूप म दुकाना आदि के द्वारा होता है, जिनका जाल सा बिछा हुआ है और या तो वे घिस और फट जाते या उपभोग के जरिये खतम हो जाते ह।

बौद्धिक उत्पादन की वस्तुआ का हाल जुदा है (उनकी सख्या का सवाल अलग है) उनका वितरण शिक्षा की व्यवस्था द्वारा होता है, जब मानव सस्कृति के विभिन्न पहलुओ की जानकारी प्राप्त करता है और उपभोग के कारण वे समाप्त नही होते। यह सही है कि पूजीपति वग ने बौद्धिक उत्पादन को भी पूजीवाद के नियमो के अधीन बनाने का प्रयास किया है, लेकिन इसमे सफलता उसे केवल आशिक रूप मे ही मिली है, क्याकि स्वय बौद्धिक उत्पादन तथा सस्कृति के स्वरूप के कारण इसकी कोशिशो का प्रतिरोध हुआ है। बौद्धिक उत्पादन की वस्तुओ की खास विशेषता यह है कि उनके बाह्य भौतिक रूप का महत्व केवल उसके बौद्धिक सार की अभिव्यजना के कारण है, जिसे मानव देख तथा आत्मसात कर सकता है।

वर्गीय समाज के भौतिक उत्पादन मे वर्गों के प्रतिरोध का भी प्रतिबिब होता है, जिससे सस्कृति के सैद्धातिक सार या वर्गीय चरित्र निर्धारित होता है। सस्कृति का क्षेत्र ऐसा है, जिसम सामाजिक अनुभव, ज्ञान, आदि एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तातरित होते जाते ह, अर्थात, यह वह क्षेत्र है, जिसमे "सामाजिक जानकारी" सचित की जाती है, जिससे

यह सम्भव होता है कि संस्कृति का विकास हो तथा नये सांस्कृतिक मूल्य उत्पन्न हो। हस्तांतरण की विधि ऐतिहासिक स्थितियों पर, सामाजिक विकास के स्तर तथा विभिन्न वर्गों के हितों पर निर्भर करती है, परन्तु उसका संबंध हमेशा संस्कृति के मूल्यों से मनुष्य के समागम से रहा है।

इन परिभाषाओं से संस्कृति का वस्तुनिष्ठ पहलू निखर आता है, यह बात निश्चित हो जाती है कि संस्कृति का अस्तित्व समाज में भौतिक तथा बौद्धिक मूल्यों के एक निश्चित योग के रूप में होता है, जिनसे वह भौतिक तथा बौद्धिक वातावरण तैयार होता है, जिसमें मनुष्य जीवन बिताते और काम करते हैं।

लेकिन संस्कृति का सार पूरी तरह न तो इस परिभाषा से अदा होता है कि संस्कृति मानव कार्यकलाप (भौतिक और बौद्धिक दोनों) की उन पैदावारों का योगफल है, जिन्हें सामाजिक समुदाय अपनाते और आनेवाली पीढ़ियों तथा अन्य समाजों को हस्तांतरित करते जाते हैं और न ही इस परिभाषा से अदा होता है कि वह ऐतिहासिक रूप में संकलित तथा दूसरी पीढ़ियों को हस्तांतरित विचारों तथा संबंधित मूल्यों का योगफल है। इसमें सन्देह नहीं कि इनमें से प्रत्येक परिभाषा संस्कृति के वास्तविक पहलुओं को प्रतिबिंबित करती है।

प्राकृतिक परिघटनाओं के विपरीत संस्कृति का अस्तित्व संस्कृति की ही हैसियत से केवल मनुष्य और उसके भौतिक कार्यकलाप के संबंध में ही हो सकता है न कि एक अलग वस्तुनिष्ठ तत्व के रूप में। यही कारण है कि संस्कृति का हमेशा एक आत्मनिष्ठ पहलू भी होता है। मनुष्य बौद्धिक और भौतिक वस्तुओं का सृजन करता है और इस तरह अपने विकास के परिणामों को मूर्त रूप में ढालता है फिर उनके 'मानवीय' सार को अपने लिये सुलभ करके वह उन्हें आत्मसात करता है। समाज में सृजन की ही नहीं, बल्कि **संस्कृति के अंतर्राष्ट्रीयकरण** की निरन्तर प्रक्रिया भी जारी है। अंतर्राष्ट्रीयकरण मनुष्य और संस्कृति की परस्पर क्रिया का एक जरूरी पहलू है और समाज के अस्तित्व और विकास की एक आवश्यक शर्त है।

पाशविक जगत से मनुष्य का अलगाव और पशुओं के झुंड के बदले सामाजिक समुदाय के कायम होने का संबंध जीवन-कार्यकलाप की विशिष्ट मानव प्रणालियों की उत्पत्ति और विकास से है, जिनके बिना स्वयं इस समुदाय का अस्तित्व और विकास ही अकल्पनीय है।

यह चीज श्रम म, जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुओ के उत्पादन म देखी जा सकता है। जसा कि हमन कहा है श्रम की प्रक्रिया क लिए जरूरी ह कुछ निश्चित भौतिक चीजें, जस उत्पादन की विषयवस्तुए, उत्पादन क साधन तथा औजार और आदमी भी, जिनक पास पर्याप्त अनुभव ज्ञान और श्रम कौशल हो, जिसस व इन औजारो को इस्तमाल कर सक, उन्ह काम म ला सक और उत्पादन कायकलाप कर सक। कवल श्रम क औजार हो नही, बल्कि उनस काम लन की विधिया भी इतिहासक्रम क दौर म समाज म आविर्भूत होती है और आनवाली पीढिया को विरासत म मिलती ह। हो सकता है कि विभिन्न देश समान औजार तथा उत्पादन के अय तत्वो के बावजूद उत्पादन कौशल के विभिन्न स्तर पर हो यद्यपि वे भौतिक तकनीकी तथा सामाजिक आर्थिक विकास क एक ही स्तर पर हो।

मानव सबधो की विविधता – आर्थिक और राजनीतिक, अत वर्गीय और अतरवर्गीय, राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय, पारिवारिक तथा रोजमर्रे के, खेल-कूद और शिक्षा-सबधी, आदि – के कारण हर व्यक्ति के लिये आवश्यक हो जाता है कि अपने आचार और कायविधि को उन विभिन्न सामूहिक सस्थाओ की जरूरता के अनुकूल बनाय, जिनके दायर म उस काम करना है, और उन तकाजो के अनुसार, जो परम्परा कायदे, प्रतिमान, मूल्यो आदि म प्रकट होत ह और उसके कायकलाप की नियत्रण-सबधी क्रियाविधि का काम दत हैं। इन नियत्रण सबधी क्रियाविधिया पर और वे किस हद तक अमल मे लाय जात ह इस पर ऐतिहासिक रूप से निश्चित समुदायो की परिधि के भीतर व्यक्ति की आचारविधि यानी समाज की सस्कृति निर्भर करती है। इसी के साथ हम यह भी उल्लेख करत चले कि जब हम किसी समाज की सस्कृति की बात करते ह तो हमार मन मे उस समाज के जीते जागत पुरुष और महिलाए होती है और वह सस्कृति होती है, जो उस समाज के व्यक्तियो के लिय समान और चारित्रिक होती है और जिसकी अभिव्यक्ति सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रो म उनके सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण आचरण और कायकलाप म होती है।

मानव कायविधि और मानव आचरण का स्वरूप **सस्कृति द्वारा आचार के बने बनाये प्रतिमानो के रूप मे पेश** किये जा सकते ह, **जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थापित और हस्तातरित** किये जाते ह। यो तो हर समाज म मा अपने बच्चे को लोरी देकर सुलाती है, लोग खाना पकाते और

खाते ह एक दूसरे से मिलत, काम और आराम करत, पव-त्याहार मनात ह, मगर य सारे काम वे भिन्न रूप से करते हैं, जा सस्कृति उन्ह मिली है उसके स्वरूप के अनुसार करते हैं।

ऐसा भी हो सक्ता है कि किसी खास परिस्थिति म खास प्रतिक्रियाए, नियाविधिया आदि सस्कृति द्वारा एक ही रूप म पेश नही की जायें, बल्कि विभिन्न और वदलती स्थितिया पर निभर कर, ऐसी सूरत म सस्कृति आचरण के वने-वनाय नमूने नही मुहैया करती, वल्कि कायक्लाप के उमूल बताती है और यह सम्भावना खुली छाड देती है कि मानवजाति क पूवकालीन समूचे सामाजिक-सास्कृतिक विकास म से कोई भी काय प्रणाली चुन ली जाये। सस्कृति का विकास एक ऐसी स्थिति से, जिसम सास्कृतिक व्यवस्था आचरण के बने-वनाये नमूने सामन रखा करती थी, ऐसी स्थिति मे हुआ है जिसमे आचरण को ध्येया साधना तथा विधिया म विभाजित कर दिया गया है, जो आगे चलकर मान, मूल्य मापदड आदि का रूप ले लेते ह जबकि आचरण के बने-वनाये नमून कुछ स्थितिया म अव भी अथपूण रहत हैं।

बौद्धिक कायक्लाप के क्षेत्र मे भी हम देखते हैं कि सस्कृति की धारणा का एक विशेप महत्व है, जिसमे सजनात्मक कायक्लाप का स्वरूप तथा इसके परिणामा के अभिबोध का स्वरूप दोना शामिल हैं। किसी कलाकृति का मूल्याकन करते समय हमारा ध्यान केवल कलाकार की दक्षता और सजनशक्ति की ही ओर नही जाता, बल्कि उसकी सामान्य तथा पशेवराना सस्कृति की ओर भी जाता है।

कलाकृतियो के अभिबाध की भी एक सस्कृति होती है, यानी इस तरह का गुणग्रहण जिसके दौरान म दशक सृजनात्मक क्रिया मे जसे भाग लेता ह, उसके अन्दर का कलाकार जाग उठता है और उसमे वही भावनाए उत्पन्न होती हैं, जो कलाकृति म प्रतिविबित घटनाओ के सजनकर्ता म उत्पन्न हुई थी। इससे यह बात निर्धारित होती है कि कलाकृतिया केवल अतीत की सस्कृति के स्मारक ही नही होती बल्कि वतमान सस्कृति के तत्वो के रूप म भी सामने आती हैं, जो नई पीढी के विचारो भावा तथा अनुभूतिया को रूप दते हैं।

अत श्रम की सस्कृति, सामाजिक आचरण की सस्कृति तथा अभिबाध की सस्कृति होती है, रोजमर्रे के जीवन उत्पादन कार्यालय और सावजनिक

एक सश्लिष्ट धारणा ह, जिसकी उत्पत्ति इसलिए हुई है कि मानव कायकलाप की समस्त उपलब्धिया का, यानी भौतिक, उनक द्वारा निश्चित सामाजिक तथा बौद्धिक उपलब्धिया का वणित किया जा सक, जिनका इस दष्टि स देखा जाता है कि उनकी अभिव्यक्ति मनुष्य म, उसकी जावन पद्धति म उसक चिन्तन तथा उसकी काय प्रणाली म कस हुई है और किस हद तक उनस मनुष्य का अपनी पाशविक उत्पत्ति के असर को दूर करन म सहायता मिलती ह। इसी लिय सस्कृति मानवा का और उनक मानवीकरण के स्तर का चिह ह। इसकी अभिव्यक्ति चिन्तन, सामाजिक आचरण तथा क्रिया की विशिष्ट मानवीय पद्धतिया म हाती है।

सामाजिक विकास तथा सस्कृतियो की विविधता

सस्कृति का स्वरूप चूकि सामाजिक आवश्यक्ताओं द्वारा निर्धारित हाता है इसलिय इसे सामाजिक परिस्थितिया द्वारा निर्धारित कह सक्त ह।

सस्कृति का निर्माण और क्रिया मनुष्य के मिल-जुलकर काम करन की जरूरी शत है चाह वह छोटे समूहा के पमान पर हा या पूर समाज क। इसी लिय सस्कृति सामाजिक व्यवस्था के पूर तानवान म बुनी हुइ है, और सामाजिक व्यवस्था के भीतर के विभाजन अनिवाय रूप से सस्कृति म प्रतिबिंबित हात ह। समाज की स्थान-सबधी विविधता, जो एक ही समय म विभिन्न सामाजिक समुदाया के होने के कारण पदा हुई है इसका विकास इसका भीतरी विभेदीकरण, जा श्रम विभाजन, विभिन्न कायक्षेत्रा के अस्तित्व विरोधी वगहिता, सामाजिक समूहो के सघष आदि से सबद्ध है- इन सभी की अभिव्यक्ति सस्कृति म हाती है।

मानवजाति के इतिहास म प्रथमत हर जगह विभिन्न आदिम सस्कृतिया का निरूपण हुआ, जिनके द्वारा छाटे छोटे मानव समुदाया (कबीला, गण) के लिय आचरण और कायकलाप के बने-बनाय नमूने तयार हो गय। य सस्कृतिया अत्यत स्थायी और माना अपरिवतनीय हाती थी। उनके ज़रिये समूहा मे मनुष्यो के जीवन को सख्ती के साथ नियत्रित करन मे सहायता मिली। य सस्कृतिया जीवन की स्थितिया के बहुत अनुरूप हुआ करती थी और इससे मानवा को अपना अस्तित्व कायम रखने म बडी मदद मिली। एक सस्कृति क दायर म पला और बडा हुआ व्यक्ति उसक अदर सुस्थिर

अनुभव करता था, उसे "अपना" समझता था क्योंकि उसने चिन्तन और आचरण के ऐसे बेलोच साचे बना लिये थे, जिनमे वह ढल चुका था। ऐसे आदमी के लिये किसी दूसरी सास्कृतिक प्रणाली को स्वीकार करने का मतलब होता अपनी आदतो और आचरण पद्धति मे गहरा परिवर्तन करना और उनको नये साचो मे ढालना। नये साचे मे अपने आपको ढालना और सर्वथा भिन्न सास्कृतिक वातावरण के अनुकूल बनाना हर आदमी के बस मे नही है। शायद यही कारण है कि बजारे आज तक खानाबदोशी का जीवन बिताया करते है।

मनुष्य जिस सास्कृतिक व्यवस्था मे पला-बढा है उसके साथ उसका असाधारण "अनुकूलन" देखकर कुछ मानवजाति वैज्ञानिक (औरो के अलावा ब० मालिनोव्स्की), जिन्होने आदिम सस्कृतियो का अध्ययन अपेक्षाकृत अलगाव की स्थिति मे किया है इस निष्कर्ष पर जा पहुचे कि सस्कृतियो का ऊच नीच मे विभाजित करना गलत है कि प्रत्येक सस्कृति अपने आपमे न्यारी है, और मनुष्य एक बार इसके साचे मे ढलने के बाद आसानी से अन्य सास्कृतिक व्यवस्था मे रूपातरित नही हो सकता। इसका आशय यह प्रतीत होता है कि मानो विकास की धारणा सस्कृति पर लागू नही होती और यह कि सस्कृति के अध्ययन मे सही दृष्टिकोण ऐतिहासिक नही बल्कि सरचनात्मक-कार्यात्मक है। इस दृष्टिकोण के अनुसार हर सास्कृतिक व्यवस्था एक सुसम्बद्ध समुच्चता है, एक ऐसी व्यवस्था, जिसके भिन्न तत्वो का समूचे ढाचे की क्रिया मे निश्चित स्थान है। समूचे ढाचे की क्रिया का अध्ययन करके ही अलग अलग हर सस्कृति का अर्थ और महत्व समझा जा सकता है जिसको तुलना के उद्देश्य से एक के ऊपर एक विकास के जीने पर सजा कर नही किया जा सकता।

प्रत्यक्ष ही यह दृष्टिकोण एकागी है। आदिम तथा कुछ अलग अलग सस्कृतियो के विश्लेषण के निष्कर्षों को बिना किसी परिवर्तन के मानव-जाति के पूरे इतिहास पर लागू करना, जिसमे समाज के सास्कृतिक विकास के स्पष्ट लक्षण मौजूद है, जाहिर है कि सही नही हो सकता। लेकिन कुछ पहलुओ से ये विचार ध्यानपूर्वक विश्लेषण के योग्य है।

प्रथमत वे इस तथ्य को प्रतिबिंबित करते है कि प्रत्येक सस्कृति अपनी विचार प्रणाली, नियमावली, आचरण के मानक, परम्परा आदि के लिहाज से न्यारी होती है। इस न्यारेपन को बहुत बढ़ा चढाकर नही पेश करना

चाहिए मगर वह होता जरूर है। हर संस्कृति एक व्यवस्था, एक सुसम्बद्ध समुच्चता के रूप में निश्चित सामाजिक (और प्राकृतिक भी) स्थितियों से बुनियादी तौर पर सम्बद्ध होती है और सामाजिक संगठन के युक्त रूप को कायम रखने की भूमिका अदा करती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि सामाजिक रूप के बदल जाने पर एक संस्कृति से दूसरी में ऐतिहासिक संक्रमण नहीं हो सकता। संस्कृति का उलटा, अनैतिहासिक दृष्टिकोण इतिहास के तथ्यों से मेल नहीं खाता।

दूसरे, इन विचारों में एक प्रगतिशील, मानववादी तत्व भी है, जिसका रुख नस्लवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध है। यह विचार कि अंतर्विरोधी समाजों में संस्कृतियों में समानता है, संस्कृति के संवाहक, जनगण के स्वतंत्र अस्तित्व के अधिकार की पुष्टि करता है। यह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि औपनिवेशिक लूट-खसोट की पूंजीवादी व्यवस्था के कारण पीड़ित राष्ट्रों की संस्कृतियां पामाल हुई थीं और कहीं कहीं तो पूरी जातियां और उनकी संस्कृतियां नष्ट कर दी गयी थीं। परन्तु समाजवाद ने अन्य तथा सच्चे मानों में मानववादी सम्भावनाओं के द्वार खोल दिये हैं और वह यह नहीं कि आदिम संस्कृतियां ज्यों की त्यों कायम रहें, बल्कि यह कि पिछड़ी जातियां प्रगति करें, उनकी अर्थव्यवस्था और संस्कृति का विकास हो, तथा आधुनिक प्रगतिशील संस्कृति से उनका समागम हो, और साथ ही समाजवाद इस सामाजिक समस्या को हल करने के अनुकूल तरीके भी निकाल रहा है।

तीसरे इन विचारों द्वारा ध्यान संस्कृति के क्रियात्मक दृष्टिकोण के महत्व तथा लाभजनकता की ओर आकृष्ट होता है तथा इस बात की ओर कि इसे एक निश्चित व्यवस्था का अंगभूत मानकर चलना जरूरी है। ऐतिहासिक विधि के साथ मिलकर यह दृष्टिकोण उन साधनों में वृद्धि करता है, जिनका प्रयोग सामाजिक विश्लेषण में किया जा सकता है।

परन्तु सम्पूर्ण रूप से उक्त विचार प्रणाली भ्रांतिपूर्ण थी क्योंकि उसमें यह रुझान था कि संस्कृतियों के न्यारेपन को परम मान लिया जाये, उनके विकास से इनकार किया गया और ऐतिहासिक सापेक्षवाद को सही माना गया था।

लेकिन न्यारापन आदिम समाजों की ही विशेषता नहीं, बल्कि अधिक उन्नत संस्कृतियों की भी विशेषता है। परन्तु उन्नत जातियों, आधुनिक राष्ट्रों तथा पूरे के पूरे क्षेत्रों की वास्तविक संस्कृतियां किसी भी अर्थ में बन्द या

है। इन दोना म कई बुनियादी बाता म भेद है, मगर इस विचार पर दाना सहमत ह कि मानवजाति का इतिहास विशिष्ट, बन्द और अनाखी 'स्थानीय सस्कृतिया" से मिलकर बनता ह, जिनका स्वय अपना अस्तित्व हाता हे विकास का एक निश्चित क्रम हाता है और जो एक दूसर क समानान्तर मौजूद हाती ह (टाएनबी इ ह "सभ्यताए" कहत ह)। स्पेगनर न आठ ऐसी सस्कृतिया गिनाई ह और टाएनबी न छब्बीस। नताजा यह है कि दोना ही सस्कृति की धारणा का प्रयाग विश्व इतिहास की वास्तविक एकता के विचार स इनकार करन क लिय करते ह। परन्तु विश्व इतिहास विविधता की एकता है एकता क बिना विविधता नही है। यह सही हे कि टाएनबी इस बात से बिल्कुल इनकार नहा करत कि इतिहास का स्रोत एक ही ह, परन्तु उनके नजदीक इसका स्रात एक विश्व धम की रचना और विकास म ह स्वय ऐतिहासिक यथाथ म नही है। सामाजिक राजनीतिक स्तर पर इन दाना धारणाआ का रख मार्क्सवाद तथा कम्युनिज्म के विरुद्ध हैं।

अत इतिहास म हम सस्कृतिया की विविधता मिलती है, जिनका निरूपण विभिन्न जातीय तथा स्थान-सबधी मानव समुदाया म हुआ है और जिनपर किसी कौम के इतिहास की तथा एक निश्चित भौगोलिक तथा सामाजिक वातावरण म उसके जीवन की छाप होती है। प्रगतिशील विश्व सस्कृति अपने अन्दर सस्कृतिया की इस विविधता का समेट लेती है, परन्तु वह केवल उनका यागफल नही है क्योकि अपन विकास के दौरान म वह चुनती चलती हे और बचाकर उन्ही चीजा को रखती है, जो आम मानवाय महत्व की है और जो सवमान्य हो सकती हा, चाहे उनकी उत्पत्ति कही भी किसी भी ठास सस्कृति मे हुई हो और उन पर छाप किसी भी विशष स्थिति की पडी हा। भविष्य म कम्युनिज्म के आधार पर स्पष्टत ही मानवजाति का एक अविभाजित समुदाय बन जायेगा, जिसकी सस्कृति एक हागी। उसम मानवजाति क सामाजिक सास्कृतिक विकास के दीघकालीन तथा विविधतापूण इतिहास की श्रेष्ठतम उपलब्धिया बटोर ली जायेगी। और जब तक यह नही हाता तब तक सस्कृतिया की विविधता एक वास्तविकता है, जिसको सामाजिक सिद्धात तथा वास्तविक जीवन दाना म ध्यान म रखना होगा।

सस्कृति का एक निश्चित ऐतिहासिक इकाई (कबीले जाति राष्ट या समान सस्कृति की जातियो के समूह भी) के साथ सबध सस्कृति को एक विशेष **रूप** देता है, उसका एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था स वर्गीय हिता से सबध सस्कृति को एक निश्चित विचारधारात्मक अतय प्रदान करता है। प्रत्यक सामाजिक सरचना मापदड और मूल्या की एक प्रणाली का जन्म दती है, जिनका पालन करन के पीछे निश्चित दड प्रणाली सामाजिक नियत्रण, शिक्षा पद्धति आदि हात ह। अतविरोधी समाज पर मापदड की एक ऐसी प्रणाली हावी है, जो उस समाज के प्रभुताशाली वग के हिता का पूरा करती है। इसके वरखिलाफ पीडित वग स्वय अपन आदर्शो, मापदडो, मूल्या तथा आचरण के उसूलो को जन्म देता है। इसी प्रसग म लेनिन न कहा था कि **एक शोषक समाज की प्रत्येक राष्ट्रीय सस्कृति के भीतर दो सस्कृतिया होती ह शासक वग की पूजीवादी सस्कृति तथा एक जनवादी और समाजवादी सस्कृति के तत्व जो पीडित वग के हितो से सम्बद्ध होते ह।*** यह लेनिनवादी प्रस्थापना सस्कृति के विचारधारात्मक रुख को बहुत ठीक ठीक प्रतिबिबित करती है, मगर सुधारवादियो और दक्षिणपथी सशोधनवादियो ने इस पर बडी लेदे मचाई है। वे पूजीवादी सस्कृति का बिना किसी आलोचना के स्वीकार करन की बात कहत ह क्योकि उन्होन सास्कृतिक परिघटनाओ का मूल्याकन करने म वर्गीय दृष्टिकोण को त्याग दिया है, जिसके बिना सस्कृति का वैज्ञानिक विश्लेषण नही किया जा सकता। उनका दृष्टिकोण अतीत की सस्कृति का, जिसमे पूजीवादी सस्कृति भी शामिल है, आलोचनात्मक ढग स आत्मसात करन की समस्या को नजरअदाज कर जाता है। मजदूर वग को उस सस्कृति को अस्वीकार करना है, जो प्रतिक्रियावादी ह और जिसका बुनियादी सबध उन सामाजिक उपकरणो से है, जिन्ह पूजीवादी वग का शासन कायम रखन के लिय इस्तेमाल किया जाता है। परन्तु सभी सच्ची सास्कृतिक उपलब्धिया विश्वव्यापी मानव सास्कृतिक विरासत का अग ह, और नय समाजवादी समाज की सस्कृति का निमाण करने म इनका पूरा उपयोग करना चाहिय। इसी लिय युवको को सम्बोधित करत हुए लेनिन न कहा था कि "आप तभी

---

*ब्ला० इ० लेनिन, राष्ट्रीय नीति तथा सवहारा अतर्राष्ट्रीयतावाद क प्रश्न, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० १८–१६

कम्युनिस्ट बन सकेंगे, जब आप अपने मन को मानवजाति द्वारा निर्मित सभी बहुमूल्य वस्तुओं के ज्ञान से सम्पन्न बना लेंगे।"*

समाजवादी समाज की सस्कृति उसके विचारधारात्मक रुख की दृष्टि से पूजीवादी समाज की प्रभुताशाली सस्कृति के प्रतिकूल है, परन्तु अपने निरूपण और विकास के दौरान मे वह अतीत की महान सास्कृतिक विरासत के सभी बहुमूल्य तत्वो को आत्मसात करती चलती है। लेनिन ने कहा था कि कुछ नकली क्रातिकारी कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा अतीत की सास्कृतिक विरासत को नज़रअन्दाज़ करके एक "सर्वहारा सस्कृति" के निर्माण का जो प्रयत्न कर रहे थे वह उनकी अज्ञानता ज़ाहिर करता था और बिल्कुल बेकार बात थी। लेनिन ने रूस मे अक्तूबर क्राति के बाद सास्कृतिक क्राति करने का कार्यभार सामने रखा, जिसमे यह बात भी शामिल थी कि जनता को अभी तक जो सास्कृतिक विकास हो चुका है, उसके स्तर पर पहुचाया जाये, आलोचनात्मक दृष्टि से उसे आत्मसात किया जाये और उस आधार पर एक ऐसी सस्कृति का निर्माण किया जाये, जो समाजवादी समाज के अनुरूप हो। इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर देना इसलिये ज़रूरी है कि माओ त्से-तुग द्वारा घोषित और क्रियान्वित "महान सर्वहारा सास्कृतिक क्राति' मे अतीत की सास्कृतिक विरासत के प्रति लेनिनवादी रुख को बिल्कुल त्याग दिया गया है। यह क्राति 'सास्कृतिक" केवल नाम के लिये थी, और इसका असल उद्देश्य दरअसल कुछ और था। इसके दौरान मे चीन मे समस्त सस्कृति के प्रति, जो "महान कर्णधार के विचारो" के दायरे के बाहर थी, एक सर्वथा नाशवादी रुख अपनाया गया और इससे चीन की युवा पीढ़ी, और फलस्वरूप पूरे देश के सास्कृतिक विकास को बहुत हानि हुई। सस्कृति का विकास होने के बजाय उसकी बर्बादी हुई, जनता का उच्चतर सास्कृतिक स्तर तक उठान के बजाय उन्हे माओवादी गीता के पाठ रटवाए गए, नए बुद्धिजीवी वर्ग का निर्माण करने के बजाय लाखो-करोड़ो लड़का-लड़कियो की पढ़ाई साल साल भर के लिये छूट गयी, पेशेवर कुशलता का स्तर बहुत गिर गया, बौद्धिक दृष्टि से जिस किसी ने भी कुछ नाम किया उसको गालिया दी गई और बुद्धिजीवियो का जीना दूभर कर दिया गया। माओ

---

*ब्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए, चार भागो मे, प्रगति प्रकाशन मास्को, १९६६ भाग ४ पृ० १६६

की "सास्कृतिक क्राति" के यही दुखद परिणाम थे, जिनका असर चीन की युवा पीढी के सास्कृतिक विकास पर बहुत दिनो तक महसूस किया जाता रहेगा।

इस अनुभव से यही प्रकट होता है कि सस्कृति के प्रति वर्गीय भावना, विचारधारात्मक रुख, पार्टी दृष्टिकोण की धारणाए ठोस रूप मे, यह ध्यान रखते हुए लागू करनी चाहिये कि विभिन्न सास्कृतिक परिघटनाओ की विशेषताए क्या है, उनके भीतर वर्गीय तथा आम मानवीय तत्वो का सबध क्या है। अतीत की पूरी सस्कृति को (प्रगतिशील सस्कृति समेत) आख बन्द करके इस वजह से ठुकरा देना कि वह "वैरी वर्ग" की चीज है पार्टी सिद्धात को बदनाम करना है, हुगवाईपिगो के दीवानापन को जन्म देना है, जो मानवीय मूल्यो से इनकार करते, अपने प्रोफेसरो की दाढिया मूडते, सास्कृतिक स्मारको को तोडते, किताबो आदि को जलाते फिरते थे।

सस्कृति और व्यक्ति

सस्कृति कोई ऐसी विशेष सामाजिक वस्तु नही है, जिसे सामाजिक व्यवस्था की अन्य वस्तुओ से अलग किया जा सकता हो। यह समझना सही नही होगा कि सामाजिक जीवन के भौतिक-तकनीकी, सामाजिक आर्थिक तथा बौद्धिक क्षेत्रो से भिन्न सस्कृति का अपना अलग कोई क्षेत्र है, या यह कि सस्कृति के बिना भी सामाजिक जीवन का कोई क्षेत्र है। इसी लिये हमने समाज की सस्कृति तथा विभिन्न सामाजिक समूहो की सस्कृति का उल्लेख किया है। लेकिन सस्कृति और समाज के सबध का कोई भी विश्लेषण व्यक्ति की सस्कृति, व्यक्तित्व के सवाल पर विचार किये बिना मुकम्मल नही हो सकता। इस प्रश्न के दो पहलू है। एक का सबध प्रत्येक व्यक्ति के मानवीय (पाशविक से भिन्न) अस्तित्व और विकास की स्थितियो और सम्भावनाओ से है, और दूसरे का इस बात से है कि व्यक्ति का कहा तक जीवन की सामाजिक परिस्थितियो से सामजस्य है और इन स्थितियो के अनुकूल उसमे विचार करने, जीवन व्यतीत करने और काम करने की कितनी क्षमता है। सस्कृति व्यक्ति के समाजीकरण का सश्लिष्ट विशेषण है, मनुष्य के व्यक्तिगत विकास के उस स्तर का मापदड है, जो उसके चिन्तन और क्रियाविधि से तथा विभिन्न स्थितियो मे आचरण और प्रतिक्रिया के

व्यक्तिगत ढग से प्रकट होता है। इसी लिये जब हम वस्तुगत रूप म विकसित व्यवस्था की हेसियत से समाज के अध्ययन से गुजर कर उसी समाज का अध्ययन इस रूप म करते हैं कि वह लाखो करोडो इनसानो क कायकलाप के फलस्वरूप कायम रहता और विकसित होता है, तो हमार लिय जरूरी हो जाता है कि 'सस्कृति' की धारणा को पश कर।

लकिन सस्कृति एक सश्लिष्ट धारणा के रूप म एक और प्रसग म सामने आती है, यानी वह मनुष्यो के कायकलाप मे सस्कृति की विभिन अभिव्यक्तिया पर छाई रहती है। हम दख चुके हैं कि समान परिस्थितियो म मनुष्य विभिन्न काय पद्धतिया अपना सकते हैं, जिसस उनके विकास स्तर का पता चलता है और यह प्रकट होता है कि उन्होने कायकलाप की मौजूदा स्थितियो पर कहा तक काबू पा लिया है। दूसरे शब्दो म, व्यक्तिगत काय स श्रम की विभिन्न कुशलता आचरण का सभ्य होना तथा भाषा और विचार का सुसस्कृत होना जाहिर होता है।

सस्कृति क तत्वो का कुल योग, जिसका निरूपण एक निश्चित प्रकार क कायकलाप के आधार पर होता है और जो इसम सहायक होता है, एक **सास्कृतिक प्रणाली** कहा जा सकता है। मिसाल के तौर पर किसी समाज क लिये विशिष्ट कृषि उत्पादन के साधनो, विशेषकर श्रम के औजारो क आधार पर, कृषि का एक विशिष्ट पूरी सास्कृतिक प्रणाली कायम हो जाती है। परिणामस्वरूप, आर्थिक क्षेत्र तथा उससे सम्बद्ध कायकलाप के प्रकार को सामने लाकर हम यह बता सकते ह कि कृषि की विशेष सास्कृतिक प्रणाली, दस्तकारी की सास्कृतिक प्रणाली, औद्योगिक उत्पादन, आदि की विशेष सास्कृतिक प्रणाली क्या है। सामाजिक राजनीतिक सबधो के क्षेत्र की विशेषता विभिन्न सामाजिक सस्थानो की परिधि क भीतर आचरण और कायकलाप की एक विशिष्ट सस्कृति है। रोजमर्रे के जीवन और सवाओ का क्षेत्र एक रोजमर्रे की सस्कृति और सेवा सस्कृति को जन्म देता है। अत म, बौद्धिक कायकलाप का क्षेत्र सस्कृति की स्वय अपनी अभिव्यजनाओ स सम्बद्ध है, जिनम भाषा, मौखिक बातचीत और लिखना, भावनाओ का निखार-सवार तथा चिन्तन की क्षमता का विकास शामिल है। बात ध्यान म रखन की यह है कि चिन्तन की सस्कृति केवल तार्किक नियमो का योग मात्र नहीं है जिन्ह साथ लेना भर काफी होता है, यद्यपि इनके बिना भी उसकी कल्पना नहीं की जा सकती। चिन्तन की सस्कृति ज्ञान, कौशल तथा

अनुभव का समन्वय है और इसकी अभिव्यक्ति चिन्तन पद्धति में तब होती है, जब वह स्वाधीन आलोचनात्मक सुसम्बद्ध सुदृढ निश्चित आदि होती है। क्रिया ही द्वारा यह सम्भव होता है कि चिन्तन की संस्कृति और सच पूछिये तो किसी भी प्रकार की संस्कृति का मूल्यांकन किया जा सकता है। यही कारण है कि जब कभी हम मध्ययुगीन मताधता जनसमूह का सहज विश्वास या अंध बाध दिखाई देता है तो हमारा यह समझना बिल्कुल उचित है कि ये बातें चिन्तन तथा आचरण की संस्कृति के निम्न स्तर का लक्षण है।

हरेक समय में किसी देश विशेष में संस्कृति के विभिन्न पहलू (श्रम आचरण, भाषण आदि की संस्कृति) मिलकर एक निश्चित संस्कृति-प्रणाली बनाते हैं। इस प्रणाली के तत्वों को जोड़नेवाली चीज उनका समान क्रियात्मक कार्य है और फिर यह तथ्य कि उनकी अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति, किसी समुदाय या समाज में होती है। सांस्कृतिक प्रणाली को जो चीज एकजुट करती और उसका आधार निश्चित करती है वह श्रम के उपकरणों के विकास के युक्त स्तर द्वारा व्यक्ति से किये जानेवाले तकाजे है। चुनांचे "मशीनी सभ्यता" का तकाजा होता है कि नया तकनीकी ज्ञान और अनुभव ही नहीं होना चाहिये बल्कि मनुष्यों के बीच एक नये प्रकार के संबंध, नयी चिन्तन पद्धति और नये विचार होने चाहिये, और यह भी उत्पादन में उत्पन्न होनेवाले तात्कालिक कार्यों के बारे में ही नहीं, बल्कि समस्याओं के एक पूरे सिलसिले के बारे में जिनका संबंध मानव जीवन तथा कार्यकलाप के सामान्य पहलुओं से विश्व में मानव के स्थान तथा उस विश्व पर उसके असर के स्वरूप से है।

परन्तु व्यक्ति की संस्कृति, उसकी पाशविक स्थिति से मुक्ति के पैमाने, उसके 'मानवीकरण" के पैमाने के रूप में सामाजिक संबंधों पर भी और उस विश्वदृष्टिकोण पर निर्भर करती है जो समाज पर हावी होता और उक्त समाज में लोगों के चिन्तन और आचरण की पद्धति को निर्धारित करता है। चुनांचे, नाज़ी जर्मनी में जर्मन लोगों से ज्ञान और तकनीकी कुशलता के जिस स्तर का तकाजा हुआ वह किसी भी अर्थ में अतीत के स्तर से कम नहीं था, परन्तु फासिज्म की प्रभुता, नस्ली पृथकता के सिद्धांत फलन का नतीजा यह हुआ कि संस्कृति का भयंकर पतन हुआ, पाशविक

शक्तिपूजा का ज़ोर बढा, मानवता विरोधी नैतिकता तथा मानवद्वेष के सिद्धात और काय का प्रचलन हुआ।

माओवादी चीन मे मानवतावाद को एक "पूजीवादा विचारधारा" घोषित कर दिया गया है, और स्कूल के बच्चो और कालिज के विद्यार्थियो को सिखाया जाता है कि वे मानवतावादी मूल्या और आदर्शो से घणा कर और समाजवादी मानवतावाद के अस्तित्व से ही इनकार करे।

किसी समाज की सस्कृति का स्तर अपने आप अपने व्यक्तिया की सस्कृति का ज़ाहिर नही करता। व्यक्तियो की सस्कृति साधारण स्तर से ऊची भी हो सकती है और नीची भी। शेक्सपीयर ने अपने नाटक उस समय लिखे, जब अग्रेज़ राजा और सामत भी बहुत सी बातो म असभ्य व्यवहार करत थे। उन्नीसवी शती के पूर्वार्द्ध म पुश्किन के काव्य और ग्लीका के सगीत से रूस म एक बहुत ही सीमित क्षेत्र के लोग परिचित थ। लोमोनोसोव के शानदार अन्वेषणा से उस समय पूरी आबादी की शिक्षा, नान और सस्कृति का पता नही चलता। सक्षेप म यह कहन का आधार मौजूद है कि एक अतविरोधी समाज के भीतर सास्कृतिक विकास के स्तरा म भेद हुआ करता है और किसी समाज या व्यक्ति की अवस्था बताने क लिये 'बबरतापूण' "असभ्य" और "निम्न" या "उच्च" सस्कृति का उल्लख बिल्कुल सही है।

यह सास्कृतिक भेद सस्कृति का यह विभाजन श्रमजीवी जनता की पीडित अवस्था के कारण उत्पन्न होता ह, इस कारण कि सस्कृति की उपलब्धिया शासक वर्गो का इजारा है और उनके प्रभुत्व को कायम रखने क लिये इस्तमाल की जाती है। इसमे सन्देह नही कि ज्या ज्यो समाज का विकास होता गया और वह आगे बढता गया, जैसे सामतवाद से पूजीवाद म त्या त्या जनता का औसत सास्कृतिक स्तर भी ऊपर उठता गया, क्याकि स्कूल जानवाले लोगा का प्रतिशत बढता चला गया और मनुष्य कायकलाप की विभिन्न पद्धतिया म दक्षता प्राप्त करत थे। परन्तु सामान्य भेद कायम रहता था।

पूजीपति वग के विचारक इस भेद का सद्धातिक औचित्य पश करन और उसको आवश्यक साबित करन का प्रयत्न करते ह। व कहत ह कि उच्च सस्कृति जब जनता म फलती है ता सच्ची सस्कृति का पतन और विनाश

हो जाता है। इसी लिये, वे कहते हैं सस्कृति को जनता से खतरा है, अत सस्कृति कभी भी जनता की चीज नही हा सकती।

इस गैर जनवादी विचार के विपरीत, माक्सवाद का सैद्धातिक दष्टिकोण सवथा भिन्न है। अतविरोधी समाज के मिटते ही जनता के सास्कृतिक उत्थान की राह से सारी बाधाए दूर हो जायेगी। सस्कृति समस्त मानवजाति की चीज है और प्रत्येक व्यक्ति इस योग्य है कि तरक्की करके अपने युग के सास्कृतिक स्तर तक पहुच सके। यह उद्देश्य सामाजिक आर्थिक कार्यों को हल करके पूरा किया जा सकता है, जसे मानसिक और शारीरिक श्रम के फक का, शहर और देहात के फक को दूर करके उत्पादन के मशीनीकरण और स्वचलन के जरिये, वर्गीय भेद को मिटाकर तथा कम्युनिज्म की सस्कृति का निर्माण और विकास करके। **कम्युनिज्म की सस्कृति** आधारशिला और उपकरण है व्यक्ति के सवतोमुखी विकास का, सजनात्मक व्यक्तित्व की रचना का, जो विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों मे स्वतन्त्र रूप से क्रियाशील हो सकेगा। सस्कृति मनुष्य को पाशविक जगत के स्तर से ऊपर उठाती है, और हर मनुष्य के लिये जरूरी होता है कि उसे ऊपर उठाकर समाज द्वारा अजित सस्कृति के उच्चतम स्तर तक पहुचा किया जाये। यह एक मानवीय ध्येय है, जिसके द्वारा स्वय सस्कृति मे एक नया अथ पैदा होता है, क्योकि उसका काम हो जाता है विशाल पैमाने पर ऐसे व्यक्तियो को साचे म ढालना, जो पहलकदमी से काम ले सके और सजनात्मक कायकलाप मे लग सके।

यह है भविष्य की सम्भावना। परन्तु समाजवाद ने अभी ही आम जनता के सास्कृतिक स्तर को ऊपर उठाने मे जो सफलताए प्राप्त की ह, वे कम शानदार नही ह। क्रातिपूव रूस मे दो तिहाई से अधिक लाग अनपढ थे, और साक्षरता केवल सास्कृतिक स्तर के ही ऊचा होन का लक्षण नही, बल्कि किसी भी आधुनिक समाज मे सास्कृतिक विकास का एक आवश्यक माध्यम है। आज सोवियत सघ मे साविक अनिवाय माध्यमिक शिक्षा लागू हो चुकी है। देश म पुस्तकालयो और अध्ययनशालाओ, थियेटरो और सिनेमा घरो, रेडियो और टेलीविजन सेटा, पुस्तका, पत्र-पत्रिकाओ, शौकिया कला मडलियो तथा तकनीकी क्लबो की सख्या बहुत बढ गयी है। मनुष्यो के बीच सबधो को एक नये प्रकार की नैतिकता पर आधारित किया जा रहा है, जिसकी रग रग मे मानववादी आदश और मूल्य भरे

हुए है तथा जनवादी सस्थाओ का निरतर विकास हो रहा है, इत्यादि। सोवियत सघ म **सही माने मे सास्कृतिक क्राति** की गयी है। इसका कदापि यह अथ नही कि अब उसके सामन कोई समस्याए नही रह गई ह। मगर जरा इस आश्चयजनक बात पर विचार कीजिये अन्य सभी भौतिकवादिया की तरह कम्युनिस्टा के बारे म भी पूजीवादी विचारका और दाशनिका का यही कहना है कि ये लाग मानव के बौद्धिक जीवन को गौण मानत ह, लेकिन इन कम्युनिस्टा न समाज और आम जनता के सास्कृतिक विकास क लिय जो कुछ किया ह उतना सकडा वरसा म सभी शोपक वर्गो न नही किया है।

अवश्य ही कुछ लाग कहगे कि आधुनिक सचार साधना के विकास के कारण पूजीवाद के अतगत भी श्रमजीवी जनता की पहुच सस्कृति तक हो गयी है। यह सच है मगर केवल आशिक रूप मे। प्रगतिशील गर माक्सवादी समाजविद भी जा पूजीवादी ' जन समाज " और उसकी "जन सस्कृति" का अध्ययन कर रह ह, हम बतात ह कि अदभुत आधुनिक जन सचार साधन, अखबार आदि जनता के विकास के लिय बिल्कुल ही इस्तेमाल नही किये जात। "जन सस्कृति" अधिकाशत सच्ची सस्कृति का सस्ता बदल है, जो (कलात्मक सस्कृति के प्रसग म) घटिया, असभ्य सौदय-सबधी आवश्यकताए पूरा करन का प्रबध करता है। "जन सस्कृति" की एक निश्चित सामाजिक भूमिका है, और वह मनुष्य का एक सजनात्मक व्यक्ति के रूप म विकसित करना नही है, बल्कि शासक वग के हित म मनुष्या की विशाल जनता को हाथ म रखना और उनसे काम लेना है। ' जन सस्कृति द्वारा सावजनिक विचारा का निरूपण होता है, उपभाक्ताओ की पसद-नापसद तय करायी जाती है लोगो के मूल्य मानक निर्धारित किय जात ह उनका ध्यान आदोलित करनेवाली सामाजिक समस्याओ स हटाया जाता, उनके अवकाश के समय को उसस भरा जाता और उन्हे सस्कृति क निश्चेष्ट उपभोकता राइट मिल्स के शब्दा म "हसता-खेलता रोवट" बना दिया जाता है। इसी लिय "जन सस्कृति ' मूलत कोई नई चीज नही है बल्कि सस्कृति के मूल्या से आम जनता को विमुख करन का एक नया और परददार उपाय है मानव का एक सजनात्मक व्यक्ति क रूप म विकसित करन का साधन ता बिल्कुल नहा है। इसस इसी बात का और अधिक पुष्टि हाती है कि सस्कृति का उपयाग वर्गीय उद्देश्या के

लिये किया जा रहा है क्याकि पूजीवाद को जनता के विकास से कोई दिलचस्पी नही हे। इससे जाहिर होता है कि किस प्रकार वाणिज्य जनता के अवकाश के समय मे प्रवश करके केवल व्यावसायिक उपाया से उसका शोषण करने लगता है। साधारण आदमी अपना फुसत का ममय बितान के लिये निश्चित साधन मुहैया किये जात ह, जिनमे वे सतुष्ट हा जाते है। व्यवसाय उपभोग की ऐसी चीजे तैयार करता है, जिनकी माग ह और यह माग निर्धारित होती है उम पसन्द नापसन्द से, जिसकी उत्पत्ति अप्रत्यक्ष तौर पर पूजीवादी वातावरण बौद्धिक परिस्थिति और प्रचलित मनोवत्ति द्वारा होती ह। इसी लिये पूजीवाद की "जन सस्कृति" जनता के सास्कृतिक स्तर को ऊचा करने का उद्देश्य पूरा नही कर सकती, जिसका समाधान केवल समाजवाद ही कर सकता ह।

इसमे सन्देह नही कि पूजीवाद के अतगत एक प्रगतिशील जनवादी सस्कृति भी विकसित होती हे, परन्तु वह किसी न किसी रूप मे पूजीवाद तथा उसकी सस्थाओ के प्रति एक नकारात्मक आलोचनात्मक दृष्टिकाण व्यक्त करती है। इस सस्कृति का भविष्य महान है क्योकि वह उन कायकलापा का प्रोत्साहित करती हे, जिनका उद्देश्य उन अधी गलियो और अतविराधा से निकलने का रास्ता ढूढना है जिनम पजीवाद ने मानवजाति को धकेल कर पहुचा दिया हे।

कम्युनिस्ट आन्दोलन की ताकत और उसके प्रभाव का रहस्य यह है कि वह उन सामाजिक समस्याआ को, जो परिपक्व हो चुके ह हल करन का रास्ता बतलाता है। इसकी ताकत और असर अनिवाय रूप स वढता जायेगा जसे जैसे यह स्पष्ट होता जायगा कि कम्युनिज्म अतीत की श्रेष्ठतम सास्कृतिक उपलब्धिया का उत्तराधिकारी है, तथा आज और भविष्य म सस्कृति की ओर आगे की प्रगति का पथ प्रदशक है।

ऐतिहासिक कार्यकलाप के पात्र
(जनता, वर्ग, पार्टियां, प्रमुख व्यक्ति)

मानवजाति के सम्पूण ऐतिहासिक विकास का पता लगाते हुए तथा विश्व इतिहास की वस्तुनिष्ठ युक्ति को दिखाते हुए हम कभी भी यह दावा नही करते कि इतिहास मे हर घटना आदमियो की इच्छा के बिना अपने आप हो जाया करती है। यह केवल एक तरीका है सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया के एक पहलू को देखने का, जिसम सामाजिक व्यवस्था पर एक वस्तुगत सामाजिक समुदाय की हैसियत स उसके विकास, परिवतन और एक अय व्यवस्था मे, जो ऐतिहासिक प्रक्रिया मे उससे ऊची मजिल पर होती है, सक्रमण की दप्टि से विचार किया जाता है। इस दप्टिकोण के अनुसार सामाजिक व्यवस्था मे उसके एक आवश्यक अग के रूप मे मनुष्य, उसका कायक्लाप तथा उसकी चेतना शामिल है, और केवल इस कायक्लाप मे ही व्यवस्था का अस्तित्व होता है और वह काम करती और बदलती है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण की इस पद्धति से यह देखने मे कि इतिहास एक वस्तुनिष्ठ स्वाभाविक प्रक्रिया है, और उसके नियमो को खोज निकालने म सहायता मिलती है। यही पद्धति माक्स न 'पूजी' मे अधिकाशत अपनाई है, जव उन्होने पूजीवादी उत्पादन के विकास और ऐतिहासिक प्रवृत्तियो का विश्लेपण किया है। लेकिन विश्लेपण का यह पहलू चूकि सामन लाया जा चुका है, इसलिये जरूरत होती है कि समस्याओ के एक नये सिलसिले पर विचार किया जाये, जो ऐतिहासिक कायकलाप के पात्र के विश्लेपण से तथा उस कायक्लाप के विश्लेपण से सबधित है। हम जब ऐतिहासिक विकास क नियमो का ज्ञान हो चुका है तो फिर इन समस्याओ म हमारी दिलचस्पी का क्या कारण है? इसके कई कारण ह। पहले, इस

तरह का विश्लेषण ऐतिहासिक सज्ञान की प्रक्रिया के एक आवश्यक तत्व का काम देता है। सामान्य नियमो से यकायक गुजरकर किसी ठोस ऐतिहासिक घटना की व्याख्या करना, कार्यकलाप के पात्र को छोडकर, असम्भव है क्योकि तब इतिहास का कोई चेहरा नही दिखाई देगा, या मनुष्य कठपुतले नजर आयेंगे, जिन्हे ऐतिहासिक आवश्यकता की डोरिया इधर से उधर नचा रही हैं। वस्तुस्थिति यह है कि पात्र आवश्यकता का कोई अकमण्य वाहक या सचालक नही है। वस्तुनिष्ठ सामाजिक नियमितताए ऐतिहासिक प्रवत्तिया के रूप म मनुष्या के कायकलाप, सघर्षों तथा टकरावा क माध्यम स अपना रास्ता बनाती हैं परन्तु वे किसी भी अथ म इतिहास का ठोस माग निधारित नही करती ह। इसी लिये सामाजिक जीवन के सज्ञान का एक आवश्यक तत्व एतिहासिक क्रिया के पात्र का मनुष्या के हिता, प्रेरणाओ, कायकलाप के उद्देश्या तथा सगठन के रूपा आदि का अध्ययन सामाजिक जीवन की भौतिक स्थितिया और वस्तुगत नियमितताओ के प्रसग मे करना है।

यह पता लगाने के लिये कि ऐतिहासिक प्रक्रिया का पात्र कौन है सामाजिक जीवन मे **आत्मनिष्ठ** (*subjective*) **और वस्तुनिष्ठ** (*objective*) के भेद को देखना जरूरी है। ये दोना धारणाए एक दूसरे से सबद्ध ह। पात्र (subject), चेतन तत्व के वाहक के रूप म जिसकी अभिव्यक्ति कायकलाप म होती है, विपयवस्तु (object) स, जो इस कायकलाप का निशाना है, और उन स्थितिया से, जिनमे यह कायकलाप होता है, भिन्न है।

प्राकृतिक वातावरण के प्रसग मे चेतन तत्व का इसी तरह का एक वाहक पूरा समाज है, लेकिन जब कोई सामाजिक वस्तु कायकलाप की विपयवस्तु हो तो पात्र का यह व्यापक दृष्टिकोण काफी नही होता। इसलिये या तो व्यक्ति या कोई सामाजिक समूह ही सामाजिक कायकलाप के पात्र के रूप मे सामने आ सकता है। व्यक्ति को, क्रिया के एक पात्र के रूप म किसी भी हालत मे नजरअन्दाज नही किया जा सकता, चाहे हम समाज का सम्पूण रूप म ले या इसके किसी समूह को। लेकिन व्यक्ति का यदि सामाजिक क्रिया के पात्र के रूप मे लेना है, तो उसे शेप समाज के आम जनता के मुकाबले मे रखना होगा। इससे अनिवायत यह सवाल पदा हाता है किन स्थितिया मे व्यक्ति के काय सामाजिक हैसियत से महत्वपूण हागे और इस याग्य हागे कि सामाजिक जीवन पर ठोस प्रभाव डाल सके? ऐतिहासिक

अनुभव से जाहिर होता है कि व्यक्तिगत कार्यों या योगफल यानी उनसे विशाल जनता या सामाजिक समूहों के कार्यों का रूप धारण करना सामाजिक हैसियत से महत्वपूर्ण असर डालता है। उसके अतिरिक्त, जिन लोगों में यह क्षमता रही है कि समाज और संस्कृति पर ठोस असर डाल सकें हमेशा वही लोग थे जिन्होंने अपने हाथों में महान शक्ति और भौतिक ताकत बटोर ली थी या ऐसे व्यक्ति थे, जो ज्ञान, कला आदि के क्षेत्रों में नई ऊंचाइयों पर पहुंच गये थे। कुछ लोगों ने इस तथ्य को परम मान लिया और ऐसा सिद्धांत बना डाला जिसके अनुसार महान व्यक्ति ही साधारण आदमियों के ऊपर छाये रहते हैं और इतिहास में आत्मनिष्ठ सजनात्मक कार्यकलाप का एकमात्र स्रोत होते हैं। प्लूतार्क के समय से आज तक यह विचार अनेक रूपों में सामाजिक चेतना में बैठाया जाता रहा है और इसे संसार के शासकों का समर्थन भी प्राप्त रहा है क्योंकि इसके जरिये वे अपने शासन के अधिकार को उचित साबित कर सकते थे। इस विचार को उसकी तार्किक सीमा तक कारलाइल ने पहुंचाया जिन्होंने उसे बतुका बना दिया। उनके अनुसार विश्व इतिहास महान व्यक्तियों की जीवनकथा के सिवा कुछ नहीं है।

इतिहास में व्यक्तियों की भूमिका के संबंध में अतिशयोक्ति का नतीजा यह हुआ कि जनता की भूमिका को बहुत घटा दिया गया। इस धारणा की कमजोरियों का मार्क्सवाद ने बेनकाब किया, जिसका सबसे महत्वपूर्ण काम जनता की क्रांतिकारी स्वचेतना को विकसित करना था। तरुण हेगेलवादियों से, जो कहते थे कि इतिहास का पात्र "प्रेरणाहीन जनता" के बजाय "आलोचनात्मक दृष्टियुक्त व्यक्ति" होते हैं अपने वादविवाद में मार्क्स ने व्यक्ति के महत्व से इनकार किये बिना यह साबित किया कि **वास्तविक इतिहास की रचना व्यक्ति नहीं बल्कि मनुष्यों का जन समूह किया करता है।** यह बात कि जनता ऐतिहासिक कार्य का विषयवस्तु ही नहीं पात्र भी है इतिहास के क्रांतिकारी युगों में विशेष तौर पर स्पष्ट होकर सामने आती है। एक मात्र चीज जो कुछ समय के लिये जनता को इतिहास का विषयवस्तु बना देती है यह है कि शोषण के कारण वह निष्क्रिय पददलित और अपमानित रहती है। परन्तु जब वह अपने हितों के लिये संघर्ष करने पीठ सीधी करके उठ खड़ी होती है, तो वह अपने कार्यकलाप की छाप इतिहास के पूरे भाग पर छोड़ देती है। इसी लिये

एतिहासिक वाय के पात्र को एकागी दष्टि से नही देखना चाहिये जसा कि व्यक्ति-पूजा के सिद्धात को माननवाले करत है। ऐतिहासिक सजनात्मकता का पात्र सबसे बढकर जन समूह है और व्यक्तियो के कार्यकलाप को जन कार्यकलाप के प्रसग म ही सही तौर पर समझा जा सकता है।

जन समूह कोई अस्पष्ट और अनाकार वस्तु नही है। उसम विभिन्न सामाजिक समूह, समुदाय और वग होत है। इसी लिये इतिहास के पात्र क रूप म मनुष्यो – जन समूहो – क कायकलाप की छानबीन करन के लिये जरूरत इस बात की है कि सामाजिक भेदभाव के सारतत्व उसके कारणो तथा उसक परिणामो का पता लगाया जाय।

सामाजिक भेदभाव की मार्क्सवादी धारणा **वर्गों के सिद्धात** पर आधारित है, जो प्रत्यक समाज म आदमियो के बीच बुनियादी सामाजिक भेदभाव को ढूढ निकालन और विश्लेषण करन का तरीका बताता ह। यह सिद्धात आदिम कम्यून के विघटन क बाद से पूरे इतिहास पर लागू होता है।

जब तक हम उन कारणो को निश्चित नही कर लेत जिनके चलत वर्गों म सामाजिक भेदभाव पदा हुआ और यह कि इन भेदभावो का स्वरूप क्या है, तब तक हम आदमियो के बडे समूहो के हितो, उनके सबधो विचारो और सघर्षों को नही समझ सकते। इसी लिये लेनिन न लिखा था "'सामाजिक व्यवस्था' या सामाजिक सरचना की धारणाए वग और वर्गीय समाज के बिना काफी ठोस नही है।" *

ऐतिहासिक कायकलाप के पात्र को समझने के लिये वर्गों का सिद्धात विशेष महत्व रखता है। सच तो यह है कि यदि इतिहास मानवो का इतिहास है और यदि करोडो करोड मनुष्य इतिहास म क्रियाशील होत है, जिसम उनकी आकाक्षाए और क्रियाए टकराती और एक दूसरे को काटती चलती है, तो अनिवायत हमारे सामने यह सवाल उठता है कि हम इन व्यक्तिगत क्रियाओ के जजाल को सुलझाये कसे हम व्यक्तिगत क्रियाओ को उन श्रेणियो म कसे बाटे, जिनसे कोई सामाजिक अथ निकाला जा सके, जिनका सामाजिक अवलोकन और व्याख्या की जा सके? वर्गों के सिद्धात का महत्व ठीक इस बात म है कि इससे व्यक्तियो की क्रियाओ को उन

---

* लेनिन के सकलित ग्रथ।

विशाल सामाजिक समूहा (वर्गां) की क्रियाम्रा की श्रेणी म शामिल कर म ग्रासानी हाती है, जिनकी परस्पर क्रिया और सघप सामाजिक विकास के इजन का काम दते हैं।*

सामाजिक भेदभाव का सार और कारण। समाज का वर्गीय विभाजन

समाज मे मनुष्यो के बीच अनेक भेदभाव हाते ह जिसका आधार यह होता है कि कौन किस जाति मे पदा हुआ, सामाजिक हैसियत क्या है पुरुष है या महिला, अवस्था, पेशा क्या है, शिक्षा कितनी पाई है, आमदनी कितनी है, किस सरकारी पद पर है, आदि। इन सब बाता को लेकर मनुष्यो की श्रेणिया बनती हैं और विभिन्न समुदाय तथा सामाजिक समूह कायम हाते हैं। लेकिन इनमे सबसे अधिक महत्व सामाजिक भेदभावा का है क्याकि वे मनुष्या के सामाजिक वर्गों मे विभाजन के कारण उत्पन्न होते ह।

किसी अतविरोधी समाज मे सामाजिक वर्गीकरण का अस्तित्व उसके सदस्या के लिये हमेशा एक प्रत्यक्ष सी बात रही है। दास प्रथावाले समाज मे स्वतत्र आदमिया और गुलामा तथा विभिन्न जाति-पाति के लोगा के बीच की खाई बहुत स्पष्ट थी। सामती समाज मे व्यक्ति की हैसियत सवथा इस बात पर निभर करती थी कि वह किस श्रेणी का सदस्य है। परन्तु मनुष्य भी इन भेदभावो को प्राकृतिक तथा भगवान द्वारा निधारित मानते थे। पूजीवादी समाज का जन्म सामतवाद की कोख से हुआ, और यद्यपि इसने कानून की नजरो म सभी मनुष्यो की नाम के लिए समानता घोषित कर दी, परन्तु उसन न तो सामाजिक भेदभाव का अत किया और न वर्गो म समाज के विभाजन का या वर्गों के बीच अतविरोध का, बल्कि सिफ इतना किया कि पुराने की जगह नये वग बिठला दिये तथा उत्पीडन और सघप के नये रूप स्थापित किये।

वर्गों के अस्तित्व का पता पूजीवादी विद्वाना ने मार्क्स स पहले ही चला लिया था। चुनाचे एडम स्मिथ और डेविड रिकार्डो ने, जो अंग्रेजी

---

*सामाजिक सन्तान के लिये उलटी बात भी जरूरी है, यानी सामाजिक से व्यक्तिगत म सक्रमण (देखिये अध्याय ९)।

ग्रथशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान हू, समाज म तीन वर्गों की चर्चा की है पूजीपति, जमीदार ग्रौर मजदूर। व मानत थ कि इनम भेद का ग्राधार उनकी ग्रामदनी का स्रात है। पजीपति का मुनाफा मिलता है जमीदार का लगान ग्रौर मजदूरा का उनकी मजदूरी।

स्मिथ ग्रौर रिकार्डो न समाज की ग्रथव्यवस्था के प्रसग म वर्गों की स्थिति का जो विश्लपण किया वह निस्सन्देह सामाजिक चिन्तन की एक वडी उपलब्धि थी, परन्तु उनका ख्याल था कि मानवा का वर्गा म विभाजन ग्रौर इसक फलस्वरूप सामाजिक ग्रसमानता उचित ग्रौर ग्रावश्यक है। उन्ह वर्गों क बीच काई प्रतिराधी द्वद्व नही दिखाई दिया ग्रौर परिणामस्वरूप व य दिखान म भी ग्रसमथ थ कि इसका ग्राधार क्या है। इसके ग्रलावा उन दोना ग्रथशास्त्रिया का विश्वास था कि वर्गों म मनुष्या क विभाजन के कारण वितरण क क्षेत्र स सवध रखत ह ग्रौर उन्हान "वितरण सिद्धात" की स्थापना की, जिसे पूजीवादी जगत म ग्राज भी व्यापक पमाने पर माना जाता है।

जहा स्मिथ ग्रौर रिकार्डो न **वर्गों के ग्रस्तित्व** की ग्रोर ध्यान दिलाया परावतन काल क फासीसी इतिहासकारा —त्येरी, गिजो ग्रौर मिन्ये—ने इतिहास का, खासकर फासीसी क्राति के इतिहास को, **वर्गों के सघष** की रौशनी म देखा। उनका विश्वास था कि फासीसी क्राति का माग भूमि के स्वामित्व क लिये वर्गों के सघष द्वारा निर्धारित हुग्रा है। उन्हाने वर्गों के सघष का एक ऐतिहासिक वणन पेश किया, परन्तु साथ ही यह घाषणा भी कर दी कि यह सघष केवल ग्रतीत तक सीमित हे ग्रौर यह कि समकालीन पूजीपतिया के विरुद्ध मजदूरा का सघष ग्रनावश्यक ग्रौर नाजायज है।

इस प्रकार हम दखते ह कि वर्गों ग्रौर वग सघष के ग्रस्तित्व का पता मार्क्स से पहले ही चल गया था। मार्क्सवाद के सस्थापका ने समाज के वर्गीय ढाच ग्रौर वर्गों के सघष का ग्रध्ययन करने म समाजविज्ञान की उपलब्धियो से लाभ उठाया, लेकिन वही पर रुक नहा गये। वेडेमेयर के नाम मार्क्स ने ग्रपने ५ माच, १८५२ के प्रसिद्ध पत्र म **वर्गों तथा वर्गीय सघष के सवध मे मार्क्सवादी सिद्धात के सारतत्व ग्रौर उसकी विशेषताग्रो की** व्याख्या इन शब्दा म की है "मने जो नयी चीज की, वह यह सिद्ध करना था कि १) **वर्गों का ग्रस्तित्व उत्पादन के विकास के खास ऐतिहासिक दौरो** के साथ ही बधा हुग्रा है, २) वग सघष लाजिमी तार से **सवहारा के**

अधिनायकत्व की दिशा म ले जाता है, ३) यह अधिनायकत्व स्वय सभी वर्गों के उन्मूलन तथा वगहीन समाज की ओर सक्रमण मात्र है "

मार्क्स ने ही पहल पहल वर्गों की भौतिकवादी व्याख्या करत हुए यह दिखाया कि वर्गों की उत्पत्ति और अस्तित्व का आधार विकासमान उत्पादन की आवश्यकताए है। उन्होने दिखाया कि वग चिरन्तन नही ह, बल्कि उनकी उत्पत्ति आवश्यकतानुसार होती है और उनका मिट जाना अनिवाय है। यह वर्गो के सवाल के प्रति ऐतिहासिक यानं द्वद्वात्मक दृष्टिकोण था।

वर्गों के सिद्धात पर विचार करन म सबसे महत्वपूण बात यह है कि वर्गो म समाज के विभाजन का वैज्ञानिक आधार निर्धारित किया जाये और फिर उसके अनुसार यह तय किया जाय कि वर्गों के बुनियादी लक्षण क्या ह। इनकी व्याख्या और निरूपण लनिन न अपनी कृति 'शानदार शुरुआत' म की है जहा उन्होने कहा "वग लोगो के ऐसे बडे बडे समूहो का कहत ह जो सामाजिक उत्पादन की इतिहास द्वारा निधारित किसी पद्धति म अपन अपन स्थान की दृष्टि स, उत्पादन के साधनो के साथ अपने सबध की दृष्टि से (जो अधिकाशत कानून द्वारा निश्चित तथा प्रतिपादित कर दिया जाता है) श्रम के सामाजिक सगठन म अपनी भूमिका की दृष्टि स और फलस्वरूप सामाजिक सम्पदा के जितने हिस्से के मालिक व होते ह, उसके परिणाम तथा उसे प्राप्त करने की विधि की दृष्टि से एक दूसरे स भिन्न होत ह। सामाजिक अथव्यवस्था की एक निश्चित पद्धति म अलग अलग स्थान ग्रहण करने के कारण वग लोगो के ऐसे समूह होते ह, जिनम से एक दूसरे के श्रम का शोषण कर सकता ह।"* इस व्याख्या पर हम जरा तफ्सील से विचार करे।

समाज या तो वर्गो म बटा हुआ है या नही है। वर्गों मे विभाजित समाज आदमियो के अनेक बडे समूहो म बटा हुआ है, जो विशेप–वर्गीय–हिता से वधे होते ह।

वर्गो म फक सामाजिक उत्पादन की व्यवस्था मे उनके स्थान के अनुसार होता है कुछ प्रभुताशाली होते ह और कुछ उत्पीडित। वर्गों की यह स्थिति उत्पादन के साधनो के प्रति उनकी भिन्न हैसियत से पदा होती है,

---

*व्ला० इ० लेनिन सकलित रचनाए चार भागो म, प्रगति प्रकाशन, मास्को १९६६, भाग ३, पृ० २२८

जो एक अत्यत महत्वपूण विशेपता ह जिसके द्वारा वर्गीय भेदभाव प्रत्येक वग के हित और कायकलाप तथा उक्त समाज म अय वर्गो के साथ उमकी सवध प्रणाली निर्धारित हाती है। **उत्पादन साधनो पर निजी स्वामित्व ही वह आर्थिक आधार है, जिसपर समाज वर्गों मे बट जाता है, वह आधार, जिसपर उत्पादन साधनो के स्वामी मेहनतकश वर्गों का शोषण करते ह, वह आधार, जिसपर वर्गों के बीच सामाजिक विरोध उत्पन्न होता है।** जिम ममाज म उत्पादन साधना के प्रति हर एक की हैमियत समान हागा वहा न वग हागे और न मानव द्वारा मानव का शोपण हागा।

इस प्रकार वर्गों के मावसवादी लेनिनवादी सिद्धात स सामाजिक उत्पादन की ऐतिहासिक तौर पर ठोस व्यवस्था के अदर उनकी **वस्तुनिष्ठ** हैसियत क विश्लेषण के आधार पर बडे सामाजिक ममूहा के हिता और कायकलाप का मूल्याकन करने म सहायता मिलती है।

उत्पादन साधना के प्रति हमियत स श्रम के **सामाजिक सगठन मे हर वग की भूमिका** भी निर्धारित होती है। पूजीवाद के अतगत पूजीपति वग ही उत्पादन का सगठनकता है और मजदूरो का श्रम के पूजीवादी सगठन के अधीन होना पडता है। मार्क्स ने कहा ह कि पूजीपति इसलिये पूजीपति नही ह कि वे उत्पादन का सगठन करत ह बल्कि इसके विपरीत, वे उत्पादन का नियत्रण ठीक इसी लिये कर पाते हैं कि वे पूजीपति यानी उत्पादन के मुख्य साधना के मालिक ह।*

ज्या ज्या इजारेदार पूजीवाद का विकास हाता है, अधिकाधिक विशेपना को उत्पादन का सगठन करने के लिए भरती किया जाता है। व कम्पनिया के अध्यक्ष, डायरेक्टर, मनजर आदि नियुक्त किये जाते ह, और इन सभी पदा पर उन्हें भारी तनखाहे मिलती ह। निजी पूजीपति मालिक के स्थान पर जब शक्तिशाली इजारा की सस्थाए आ जाती ह तो पूजी व्यक्तित्वविहीन हो जाती है।

पूजीवादी लेखक इस तथ्य को इस रूप म पश करते है कि एक तो पूजीवाद का रूपातरण 'मनजरा के समाज' म हो गया जिसम महत्वपूण स्थान अब मालिका के हाथ म नही बल्कि तकनीकी विशेपना के हाथ मे ह। दूसरे, कहा जाता है कि यह शापण के मिट जाने का सबूत

---

*कार्ल मार्क्स, 'पूजी', प्रगति प्रकाशन मास्को खण्ड १, पृ० ३७७

है। मसलन इगलड की लेबर पार्टी के ग्रौर पालमट के सदस्य ग्रासलड का कहना है कि उत्पादन साधनो के " सक्रिय स्वामित्व " का स्थान " शयरा का ग्रकमण्य स्वामित्व " ने ल लिया है, ग्रार ग्रव यह कहना सही नही होगा कि सम्पत्ति के प्रति हैसियते ग्राथिक प्रभता का ग्राधार है।

निस्सदेह ग्राधुनिक पूजीवाद १६वी शती के पजीवाद से भिन्न है। परन्तु न तो व्यक्ति की जगह "सामूहिक पूजीपति" को बैठा देने से, ग्रौर न सम्पत्ति के स्वामिया के उत्पादन के रोजमर्रे के प्रबध से ग्रलग हो जान से, न ही उत्पादन साधनो क एक भाग को राज्य के हाथा मे सौप देने से पूजीवाद का स्वरूप बदल जाता ह क्याकि उत्पादन साधन पूजी का रूप धारण किय रहते हैं, दूसरा के श्रम का हथिया लिया जाता है ग्रौर उत्पादन पूजीवादी मुनाफे के हिता से वधा रहता हे। ग्राखिर "मनजर" लोग तो केवल कम्पनिया क मालिको—पूजीपतियो की इच्छा का पालन करते ह, जवकि शोषण न केवल जारी रहता है, वल्कि उसे ग्रौर तीव्र कर दिया जाता है। प्रवध काय को "मनेजरो" के हाथो मे सौप दने स कवल यही जाहिर होता है कि पूजीपतिया का वग ग्रधिकाधिक परजीवी हाता जा रहा है ग्रौर सामाजिक उत्पादन का सगठन उसके विना ही किया जा सकता है।

इसक ग्रतिरिक्त, उत्पादन सवधा के प्रति हैसियत से इस या दूसर वग की ग्रामदनी का रूप ग्रौर उसकी मात्रा भी निर्धारित होती है। इस प्रकार पूजीपति ग्रौर सवहारा वग म यह ग्रतर है कि एक की ग्रामदनी मुनाफे के रूप मे होती है ग्रौर दूसरे की उजरत के रूप म।

पूजीवादी विचारक ग्राधुनिक पूजीवाद को वडे सुदर रूप म चित्रित करत ह। उनका दावा है कि उन्नत पूजीवादी देशा म ग्रामदनिया ग्रौर जीवन स्तर म समानता पदा हो रही है, धनी लोगा की ग्रामदनी कम हा रही ग्रौर गरीवा की वढ रही है, जिससे एक "मध्यम श्रेणी" उभर रही है, जो ऊपर ग्रौर नीचे की परता को ग्रपने ग्राप म समटती जा रही है। इस ग्राधार पर वडे गहरे नतीज निकाल जात ह कि पूजावादी समाज म वर्गीय भेदभाव ग्रौर वग सघप मिटता जा रहा है, ग्रौर स्वभावत इसस यह निष्कप भी निकाला जाता है कि ग्राधुनिक पूजावाद पर मार्क्सवाद लागू नहा हाता।

परन्तु यह तसवीर वस्तुस्थिति को तोड मरोडकर पेश करती है। मसलन सयुक्त राज्य ग्रमरीका ही को लीजिय, जो सबसे धनी पूजीवादी देश है, जहा मजदूर वग निस्सन्देह पूजीपतियो के खिलाफ सघर्ष करके इतनी ऊची मजदूरी प्राप्त करन म सफल हुआ है, जितनी ग्रन्य पूजीवादी देशो के मजदूर नही कर सके हैं। लेकिन क्या सयुक्त राज्य ग्रमरीका म ग्रामदनिया समतल हो गई ह? ग्रगर हो गई हैं तो फिर सयुक्त राज्य ग्रमरीका की काग्रेस को ग्रभी भी "गरीबी मिटाग्रो कायक्रम" पर क्या विचार करना पडता है, जबकि पाच प्रतिशत सबसे धनी परिवारो के पास इतनी दौलत है कि ग्ररबो ग्रौर खरबो डालरो म गिनी जा सकती है? गरीबो को कपिटल पहाडी के नजदीक पडाव क्या डालना पडता है? सयुक्त राज्य ग्रमरीका म ग्राज भी लाखो लाख ग्रादमी गन्दी चालो म क्या रहते ह, जबकि राष्ट्रीय धन के बडे भाग के मालिक पूजीपति बने बैठे ह? सच तो यह है कि उस देश म ग्रामदनियो की समानता का कोई भी चिह्न नही दिखाई देता है। पूरे पूजीवादी जगत म दौलत ग्रौर गरीबी की खाई बढती जा रही है। **पूजीवादी जगत मे दूसरो के श्रम को हथियाना ही शोषक वर्गों के धन का मुख्य स्रोत है।**

ये ह वर्गों की मुख्य विशेषताए। मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात कि समाज वर्गों म बटा हुआ है, वग विभाजन की इन विशेषताग्रो का एक ग्रन्योन्यसबद्ध, ग्रागिक समुच्चता मानता है क्योकि इनमे से किसी एक को ग्रलग करके वर्गीय भेदभाव की एकमात्र कसौटी करार देना ग्रवैज्ञानिक होगा।

वर्गीय भेदभाव की जडे ग्रथव्यवस्था म हैं ग्रौर सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र म फली हुई हैं। हर वग के राजनीतिक हित, उसकी मानसिक विशेषताए ग्रौर विचारधारा उस वग की ग्राथिक स्थिति ग्रौर भौतिक हितो के ग्राधार पर ग्रपना रूप धारण करती है। इसी के साथ, हर वग का नाक नकशा उसके ग्रस्तित्व की ठोस ऐतिहासिक स्थितियो, ग्रन्य वर्गों से उसके सबधो इत्यादि से भी निर्धारित होता है।

वर्गों की उत्पत्ति क्या होती है?

वर्गों की उत्पत्ति की **सम्भावना** की जडे, जसा कि हमने पिछले ग्रध्याय म देखा था, श्रम उत्पादकता की ऐसी वृद्धि म मौजूद होती ह, जिससे फाजिल पैदावार मिलती है ग्रौर ग्रादमियो का शोषण ग्राथिक दृष्टि से लाभकर होता है।

उनकी उत्पत्ति की **आवश्यकता** की जड उत्पादन के विकास क एस स्तर मे मौजूद हाती ह, जिसके अतगत इसकी और अधिक प्रगति श्रम विभाजन को और तीव्र किये बिना असम्भव हाती है। उत्पादक शक्तिया, श्रम उत्पादकता और पूर समाज का काई विकास श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण क बिना सम्भव नही, और इसी लिय उत्पादन और पूरे समाज के विकास म श्रम विभाजन एक अत्यत महत्वपूण तत्व साबित होता है।

श्रम विभाजन के परिणामा के सही विश्लेपण के लिय जरूरी है कि इसक **तकनीकी और सामाजिक पहलुग्रा** म फक किया जाय।

तकनीकी दृष्टि स श्रम विभाजन का नतीजा कायकलाप क विशिष्टीकरण म, विभिन्न पशा की उत्पत्ति म, उत्पादन की विभिन शाखाग्रा के बीच विविध सम्पर्कों की स्थापना म तथा विभिन प्रकार के कायकलाप के विनिमय मे प्रकट होता है। सामाजिक दृष्टि स इसक चलत निजी स्वामित्व, सम्पदा मे असमानता और वर्गों म समाज का विभाजन हाता है। इस सवाल पर मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सस्थापको ने विभिन कृतियो म खासकर एगेल्स ने अपनी 'ड्यूहरिग मत-खडन' म काफी रोशनी डाली है, जिसम उन्हान इस बात पर जार दिया ह कि "जब तक सचमुच काम करनवाली आबादी अपन आवश्यक श्रम म इतना अधिक व्यस्त था कि उसे समाज के सामान्य कार्यों की ओर—श्रम के निर्देशन, राजकाज, न्याय-सम्बधी मामला कला, विज्ञान आदि, की ओर—ध्यान देन क लिये काई समय ही नही मिलता था, तब तक यह आवश्यक था कि इन तमाम कामो का प्रबध करन के लिय एक ऐसा विशेष वग हमेशा मौजूद रहे, जिसे वास्तविक श्रम स मुक्ति मिली हुई हो। और यह वग स्वय अपने स्वाथ की खातिर मेहनत करनेवाली जनता पर श्रम का अधिकाधिक बडा बोझा लादने म कभी नही चूकता था।"* परिणामस्वरूप **वर्गों की उत्पत्ति श्रम विभाजन से होती है।**

प्रारम्भ मे, वर्गों की उत्पत्ति दो तरह से हुई आदिम कम्यून मे भीतरी वर्गीकरण के जरिये, और अन्य कम्यूना और कबीला स आदमिया को गुलाम बना कर।

---

*फ्रेडरिक एगेल्स 'ड्यूहरिग मत-खण्डन', विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को पृ० ३०३

पहली सूरत मे यह हुआ कि उन परिवारा मे से जो सावजनिक पद ग्रहण करते और इससे लाभ उठाकर अधिक धन अपने हाथो म बटोर लेते थे, एक शासक वग की उत्पत्ति हुई। श्रम विभाजन और निजी स्वामित्व के अतगत जो लोग निश्चित सावजनिक कार्या को पूरा करने के लिये चुने जाते थे, उन्होने अपनी सावजनिक हैसियत से नाजायज फायदा उठाना शुरू किया, पहले तो अपने पद को आजीवन और फिर मौरूसी बना दिया। इस प्रकार जन सेवक जन स्वामी बन बठे।

दूसरी सूरत मे वर्गीय निरूपण की प्रक्रिया के अन्य पहलू पर जोर दिया गया है। ज्यो-ज्या हर शाखा मे—पशुपालन, खेती और दस्तकारी म—उत्पादन बढता गया, त्या-त्या मनुष्य की श्रम शक्ति मे स्वय अपने जीवन निर्वाह की जरूरत से अधिक मात्रा म सामान पैदा करने की क्षमता पदा होती गयी। इसी के साथ यह भी हुआ कि गण, समुदाय या अलग परिवार के हर सदस्य को जितनी मेहनत करनी पडती थी उसका हिस्सा बढ गया और इससे यह आवश्यक हो गया कि अधिक जनशक्ति भरती की जाये और लगाई जाये। यह आवश्यकता युद्ध-बन्दिया से पूरी हुइ, जिन्हे दास बना लिया गया।

फलस्वरूप, श्रम के सामाजिक विभाजन से जहा उत्पादकता और भौतिक धन म वृद्धि हुई, उत्पादक कायकलाप का क्षेत्र बढा, वहा इसी के साथ, उन ऐतिहासिक स्थितिया म, समुचित दष्टि से देखन पर, वर्गों और वर्गीय समाज की उत्पत्ति भी हुई।

अनक पूजीवादी विचारका का कहना है कि समाज के वर्गीय विभाजन का मूल कारण हिसा था। इसमे काई सन्देह नही कि वर्गों की बनावट म युद्ध, पराजितो को पकडकर दास बना लेना तथा सम्पत्ति की लूट, आदि का बडा हिस्सा था, मगर इन बाता स ही वर्गो की उत्पत्ति नही हुई। जब तक मनुष्य पत्थर की कुल्हाडी इस्तमाल करता था तब तक *कितनी ही हिसा क्या न की जाये अतिरिक्त पदावार नही हो सकती थी*, जिससे शोषण के सबध स्थापित किये जाते। हिसा कारण नही, बल्कि परिणाम है। **वर्गो की उत्पत्ति के लिये जमीन तयार की आर्थिक तत्वो ने, और उन्हीं से उनकी उत्पत्ति निर्धारित हुई।**

समाज का विभाजन सबसे पहले जिन दो वर्गों म हुआ वे थे दास तथा दास-स्वामी। परन्तु दास प्रथा से सामती समाज म और फिर सामती समाज

से पूजीवादी समाज म सक्रमण का मतलब यह नही था कि पहले के वर्गो का सीधा सादा परिवर्तन नयी सरचना के वर्गों म हो गया, अर्थात, दास भूदास बन गये दास-स्वामी सामती जमीदार बन गये। सामाजिक सरचनाओ के एक के बाद दूसरी के आने का सिलसिला एक अत्यत अनूठी और पेचीदा प्रक्रिया है, जिसके दौरान मे नई सरचना के वर्गों की स्थापना होती है। हर नयी सरचना म नये वर्गों की उत्पत्ति होती है।

इस समय उत्पादन और उत्पादक शक्तियो का विकास ऐसे स्तर पर पहुच गया है, जहा सभी वर्गों को मिटाने का कार्यभार बहुत सामयिक हो गया है। समाजवादी देशो म यह काय व्यवहार म पूरा किया जा रहा है।

वर्गीय विश्लेषण की विधि। समाज की वर्गीय बनावट

समाज का वर्गों म बटवारा सामाजिक सबधो की पूरी व्यवस्था म व्यक्त और स्थिर हो जाता है और इसका परिणाम वर्गीय अतविरोधो के रूप म प्रकट होता है जो सभी सामाजिक परिघटनाओ मे कम या अधिक मात्रा मे व्याप्त होते हैं। **वर्गीय विश्लेषण की विधि** इनमे से किसी भी परिघटना और वर्गों म समाज के विभाजन और विभिन्न वर्गों के हितो के सबध को स्पष्ट करती है। लेकिन इस विधि को लागू करने म दो पराकाष्ठाओ से बचना चाहिये एक ओर **पूजीवादी वस्तुनिष्ठवाद** है, जो इस बुनियादी तथ्य को नजरअन्दाज करना चाहता है कि समाज वर्गों मे बटा हुआ है। इस दृष्टिकोण ने कई ऐसे सिद्धातो को जन्म दिया है, जो पूजीवादी इजारेदारियो, पूजीवादी राज्य, राजनीतिक पार्टियो आदि के वर्गीय स्वरूप को मानने से इनकार करते है या उसपर परदा डालते है। दूसरी ओर **वर्गीय विश्लेषण की विधि को भोडे, बाजारी ढग से, आख बन्द करके सूत्र रूप मे लागू किया जाता है।** इसमे विभिन्न सामाजिक परिघटनाओ की विशेषता को ध्यान म नही लिया जाता, और प्रशासन से हजामत बनाने, विचारधारा से फैशन तक—सभी म वर्गीय अतविरोध का समान प्रभाव देखने का प्रयास किया जाता है। पहली सूरत म मार्क्सवाद वर्गीय दृष्टिकोण पर जोर देता है ताकि गैर-वर्गीय दृष्टिकोण का प्रतिकार किया जाये, और

दूसरा सूत्र [illegible] के विरुद्ध करता है जो वर्गीय विश्लेषण की [illegible] को स्पष्ट करता है।

वर्गीय विश्लेषण की [illegible] का महत्व है प्रत्येक सामाजिक परिघटना की [illegible] पर ध्यान देना। सभी सामाजिक परिघटनाओं को [illegible] के लिए [illegible] की तरह मोटे तौर पर मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है जिनमें वर्गीय [illegible] भिन्न रूप में प्रकट होता है। एक सामाजिक परिघटना की वह श्रेणी है जिनका स्वरूप बुनियादी तौर पर वर्गीय है [illegible] जिनका अस्तित्व तभी तक रहता है जब तक वर्ग रहते हैं। इन श्रेणी में प्रथम स्थान राज्य और राजनैतिक संस्थाओं की पूरी व्यवस्था का है। इसीलिए राज्य के प्रश्न और उसके विकास के स्वरूप को समझने के लिए उसका वर्गीय मूल्यांकन करना जरूरी है।
दूसरे, परिघटनाओं की वह श्रेणी है जो किसी भी संरचना के ढांचे के तत्व के रूप में प्रकट होते हैं परन्तु जो अलग-अलग वर्गों में विभाजित समाज में वर्गीय रूप ग्रहण करते हैं। ये उत्पादन के संबंध, नैतिकता, विचारधारा कला आदि हैं। वर्गीय विश्लेषण की विधि को परिघटनाओं की इस श्रेणी पर लागू करने में दोनों बातों पर ध्यान देना जरूरी है: एक तो उनके वर्गीय स्वरूप पर, और इस बात पर भी कि वर्गों का उदय समाज के ढांचे के इन तत्वों को नष्ट नहीं करता बल्कि केवल उनकी अभिव्यक्ति के ऐतिहासिक रूप को बदल देता है। उदाहरण के लिए कोई भी समाज उत्पादन के संबंधों या नैतिकता के बिना नहीं रह सकता। इसी लिये पूंजीवादी संरचना की जगह कम्युनिस्ट संरचना की स्थापना का यह मतलब नहीं कि उत्पादन संबंध मिट जायेंगे या सिरे से नैतिकता नहीं रहेगी, बल्कि केवल यह है कि एक प्रकार के संबंधों का स्थान दूसरे प्रकार के संबंध, एक तरह की नैतिकता का स्थान दूसरी तरह की नैतिकता लेगी।

सामाजिक परिघटनाओं की तीसरी श्रेणी में समाज के ढांचे के वे तत्व हैं जिनका स्वरूप वर्गीय नहीं है, यानी जिनका स्वरूप अगर वर्गीय हो जाये तो वे अपनी भूमिका नहीं अदा कर सकेंगे, जैसे भाषा, प्रविधि, प्राकृतिक विज्ञान आदि। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ये भी समाज के वर्गीय विभाजन से प्रभावित होते हैं, और वर्गों का प्रयास होता है कि इन्हें अपने हित में इस्तेमाल करें। इस प्रकार पूंजीपति वर्ग की कोशिश होती है कि विज्ञान और प्रविधि को श्रमजीवी जनता का

शोषण करने के उपकरण के रूप म इस्तेमाल करे। इस प्रकार के इस्तेमाल से इन परिघटनाओं पर और उनके विकास के स्वरूप पर एक निश्चित प्रभाव पडता है परन्तु इससे उनकी असलियत नही बदलती और न बदल सकती है।

जब तक सामाजिक परिघटनाओं के इन और इनसे भी बारीक फर्कों को ध्यान मे नही रखा जायेगा, वर्गीय विश्लेषण की मार्क्सवादी विधि म विकृति और भाडापन पदा होने का खतरा रहेगा, जिससे, मिसाल के तौर पर, संस्कृति के प्रति वर्गीय दष्टिकोण सम्पूण संस्कृति को, जो पूरे मानव इतिहास की कमाई है, बदनाम कर देगा।

इसके अतिरिक्त, वर्गीय दष्टिकोण के बिना वर्गीय समाज म मनुष्यो के कायकलाप को, और इसी तरह उन विविध प्रयोजनो और आकाक्षाओ को जिनसे मनुष्य अपने कायकलाप म निदेशन पाते ह, समझना असम्भव होगा। वर्गों और वग सघष के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात से हम इस बात मे सहायता मिलती है कि इन प्रयोजनो और आकाक्षाओ की जडो तक पहुच सके और उन्ह वर्गों के निश्चित भौतिक हितो के रूप मे देख सके। **वर्गीय विश्लेषण की विधि मूलत इस बात मे निहित है कि मनुष्यो के विभिन्न विचारो, प्रयोजनो, उनकी कथनी और करनी से आगे बढकर प्रतिरोधी वर्गों के वास्तविक हितो पर नजर डाली जाये।** यह दष्टिकोण उन व्यक्तिगत भेदभावो की विविधता म नही पडता, जिनसे मनुष्य अपने कायकलाप म प्रेरित होते हैं, बल्कि उनके कायकलाप के मौलिक, सामाजिक तौर पर महत्वपूण पहलुओ को उभारकर सामने लाता है। मसलन, एक पूजीपति हो सकता है अपने परिवार के लिये बहुत अच्छा आदमी हो, अपने बच्चो से उसे प्यार हो, गरीबो-दुखियारो को बराबर दान दिया करता हो, और दूसरा बुरा आदमी है, अपने परिवार के लोगो से बुरा व्यवहार करता है, इत्यादि। परन्तु दोनो मे पूजीपति होने के नाते जो बात समान रूप म पाई जाती है, वह यह है कि दोनो सम्पत्ति के मालिक हैं, दोनो व्यवसाय करते हैं दोनो मुनाफा कमाते ह और इस प्रकार अपने वग की सामाजिक भूमिका अदा करते हैं। इसी लिये जब हम पूजीपतियो की विशेषता, उनके वर्ग के प्रतिनिधि की हैसियत से, बताते हैं तो महत्वपूण इस बात का वणन नही होता कि उनके व्यक्तिगत गुण या अवगुण क्या ह, बल्कि इस बात का स्पष्टिकरण होता है कि वे पूजीवादी सबधो के साकार प्रतिनिधि ह। इन वर्गीय सबधो और हितो का असर पूजीपति वग के सदस्यो के व्यक्तिगत

गुणा पर भी पडता है। पूजीवादी हिता के बुरे प्रभाव तथा सच्चे मानवीय सवधा से उनकी प्रतिकूलता के बारे म बहुत कुछ लिखा जा चुका है लेकिन यह बात हमेशा ध्यान म रखनी चाहिये कि किसी भी मनुष्य का व्यक्तित्व उतना सीमित नही हाता, जितनी वे विशेपताए जो इस बात पर आधारित हाती ह कि समाज की किस श्रेणी म उसका जन्म हुआ या वह किस वग का सदस्य है।

अत वर्गों के हिता को व्याख्या करने मे जो इतिहासत निश्चित उत्पादन व्यवस्था म वर्गा की हैसियत द्वारा निर्धारित होते ह, यह सम्भव है कि जो व्यक्तिगत है उसे सामाजिक के समतल कर दिया जाये, यह पता लगाया जाये कि हर वग अपनी जीवन स्थितियो के अनुसार क्या हासिल करना चाहता है और वर्गों के कायकलाप मे वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ पहलुग्रा के सवध को स्पष्ट किया जाय।

वर्गीय विश्लेषण की विधि म **प्रत्येक इतिहासत निश्चित समाज के वर्गीय ढांचे की जाच-परताल** भी शामिल है। किसी समाज किसी देश के वर्गीय ढाचे का विश्लेषण करने और हर वग के हितो को निर्धारित करने स हम समाज मे शक्तिया के सवध की एक वस्तुनिष्ठ तसवीर मिलती है तथा उसके अतरद्वद्व, प्रतिरोध और टकराव स्पष्ट रूप मे सामने आते ह। समाज क वर्गीय ढाचे के विश्लेषण की विधि, जो वर्गों के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात की देन है, इतिहास के अध्ययन की एक आवश्यक प्रदर्शिका तथा वग सघप की पेचीदगियो मे अपनी राह ढूढने का एक विश्वस्त साधन है। इस विधि का प्रयाग मार्क्स, एगेल्स और लेनिन ने शानदार ढग से किया था और इससे ससार की कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के लिये सघप की अत्यत विविधतापूण स्थितिया म अपनी नीति निर्धारित करने का रास्ता रौशन होता है।

प्रत्येक समाज का वर्गीय ढाचा एक काफी पचीदा वस्तु होता है। इसके विश्लेषण का पहला काम है समाज मे मुख्य वर्गा को बताना, जिनके सवधा द्वारा उसके विकास की मुख्य रेखा जाहिर होती है। इस तथ्य को भी ध्यान म रखना आवश्यक है कि समाज मे आम तौर से माध्यमिक वग भी होते हैं, जिनका अस्तित्व विभिन्न क्षेत्रो से सबद्ध हाता है। वर्गों के भीतर भी अलग अलग सामाजिक स्तर हो सकते है। यह वर्गीय ढाचा पूरे सामाजिक ढाचे का आधार है।

निम्नपजीपति वग मे शहरी निम्नपूजीपति और किसान दोनो शामिल है और किसानो मे मध्यम किसान भी है और गरीब भी, और इसी प्रकार।

मजदूर वग मे औद्योगिक और ग्रामीण दाना तरह के मजदूर ह, कायकुशल भी और अकुशल भी।

बुद्धिजीवियो मे भी कई हिस्से है, जसे पूजीवादी, निम्नपूजीवादी तथा क्रातिकारी समाजवादी हिस्से।

इस समय उन लोगा की सख्या और अनुपात मे वद्धि हो रही है, जो सेवा के क्षेत्र मे काम करते है, और साथ ही पूजीवादी उद्यमा के दफ्तरी कमचारिया, इजीनियरा और टेकनीशियनो की भी सख्या म, जबकि भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे काम करनेवालो की सख्या मे अपेक्षाकृत कमी हो रही है। पूजीवादी देशा मे औद्योगिक तथा दफ्तरी कमचारियो के एक हिस्से का भेदभाव मिट रहा है क्याकि दफ्तरी कमचारी सवहारा बन रहे है और मजदूर वग के निकट आ रहे है। इन बातो को देखते हुए श्रमजीवी जनता के इस प्रवर्ग को भी मजदूर वग का एक दस्ता समझना शायद सही है। वास्तव मे वे भी मजदूर है जो नीला पोश नही सफेद पोश ह और वे ऐसे काम करते है, जिनका सबध आधुनिक प्रविधि की सेवाओ का प्रबध करने से है, जिससे वे स्वय उत्पादन का एक अभिन्न अग बन जाते ह, जबकि उद्योग म इजीनियर और टेकनीशियन भी उत्पादक श्रम मे लगे है। परन्तु कुछ लाग इस बात पर उचित ही आपत्ति करते है। वे इस बात पर जोर देते है कि औद्योगिक मजदूरो और दफ्तरी कमचारियो मे सामाजिक भेदभाव अभी बाकी है। मजदूर वग अतिरिक्त मूल्य पदा करता है, जबकि दफ्तरी कमचारियो के काम का सबध इस उत्पादित मूल्य के **हिसाब किताब** से, इसके **विनिमय** और **वितरण** आदि से है। जहा तक इजीनियरा और टेक्नीशियना का सबध है, जो भौतिक उत्पादन के क्षेत्र मे काम करते ह, उनका काम **निगरानी** करना है, यद्यपि कई लिहाज से वे मजदूरो से बहुत मिलत-जुलते है। लेकिन इस सवाल का उत्तर जा भी हा, इतनी बात स्पष्ट है कि मजदूर वर्ग की बनावट म विस्तार हो रहा है, क्योकि अब उसम केवल औद्योगिक सवहारा और खेत मजदूर ही नही, बल्कि श्रमजीवी जनता के अनेक और हिस्से शामिल है।

वर्गों और सामाजिक समूहा की विभाजन-रेखा सापेक्ष और अस्थिर होती है, और एक से दूसरे म सक्रमण इतना धीरे धीरे हाता है कि

मानते थे कि इनमे से हर आयाम म सामाजिक स्तरीकरण का अलग करके देखा जा सकता है। इसका मतलब यह था कि "स्तरीकरण" कई प्रकार के ह आर्थिक आयाम म मनुष्या को वर्गों मे बाटा जा सकता है सामाजिक आयाम म "हैसियता" की व्यवस्था है और राजनीतिक आयाम म पाटिया का विभाजन है। इस सिद्धात की गलती यह है कि इसने अर्थव्यवस्था पर सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रा की निभरता को मानने से इनकार किया तथा सामाजिक जीवन के एकत्ववादी दष्टिकोण के बजाय सवसग्राहक दष्टिकोण पेश किया। यह आधुनिक पूजीवादी समाजशास्त्रिया के दष्टिकोण का एक प्रतिनिधि उदाहरण है। इसलिये कोई आश्चय नही कि "बहु आयामात्मक स्तरीकरण" के सिद्धात को सामाजिक विज्ञान की एक उपलब्धि बताया जाता है। इसके आधार पर कितने ही नये सिद्धात गढे गये, जो वेबेर के सिद्धात तथा एक दूसरे से भिन्न केवल इस मामले म है कि उनमे आयामा की सख्या घटती-बढती रहती है और स्तरीकरण के आधारभूत मापदड का स्वरूप भिन्न होता है।

यह पूछा जा सकता है कि क्या वर्गीय विश्लेषण की मार्क्सवादी विधि और वर्गों का मार्क्सवादी सिद्धात पुराना नही पड गया है? और क्या इस दावे का कोई आधार नही है कि स्तरीकरण सामाजिक ढाचे के अध्ययन म आगे का कदम है? इसका उत्तर यह है कि प्रथमत वर्गो के मार्क्सवादी सिद्धात से यह नतीजा नही निकाला जा सकता कि वह केवल वर्गीय भेदभाव को मानता है और अन्य कोई भेदभाव नही मानता। जसा कि हमने कहा है मनुष्या मे विविध प्रकार के भेदभाव होते है और इनके आधार पर वर्गो के अस्तित्व के साथ साथ विभिन्न समूहो का अस्तित्व साबित किया जा सकता है। इसी लिये स्तरीकरण के उसूल को, यानी विभिन्न विशेषताओ के आधार पर विभिन्न हिस्सो के अभिनिर्धारण को, अस्वीकार करने के बजाय मार्क्सवाद भी काम म लाता है। परन्तु अपनी ग़ैर-मार्क्सवादी व्याख्या मे स्तरीकरण का उद्देश्य सामाजिक-वर्गीय भेदभाव के स्थान पर बहुसख्यक "स्तरो" को पेश करना है, जिनका आधार केवल आकस्मिक विशेषताए होती है, और नतीजा यह होता है कि स्तरो का यह बाहुल्य प्रमुख वर्गों—मजदूर वग और पूजीपति वग—मे समाज के विभाजन पर तथा उनके अतविरोध पर परदा डालने का काम करता है और इस तरह वर्गो म मनुष्या के विभाजन को व्युत्पन्न तथा अक्सर गौण विभाजनो से गडबड

कर देता है, जिसके फलस्वरूप सामाजिक जीवन का आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण पैदा होता है। इसी लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण से स्तरीकरण की धारणा आलोचना की कसौटी पर पूरी नही उतरती तथा विचारधारात्मक दृष्टिकोण से सामाजिक ढाचे के सबध मे पूजीवादी विचारो के वाहक मात्र का काम करती है। और स्वभावतया इस लिहाज से उसे सामाजिक ढाचे के सचमच वैज्ञानिक विश्लेषण के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। यह विश्लेषण केवल वर्गीय विश्लेषण की मार्क्सवादी विधि के, वर्गों के मार्क्सवादी सिद्धात के ही आधार पर किया जा सकता है।

वर्ग सघर्ष तथा इतिहास मे इसकी भूमिका। सर्वहारा के वर्ग सघर्ष की विशेषताए

प्रत्येक वर्ग उत्पादन सबधो की व्यवस्था के भीतर अपनी हैसियत और इससे उत्पन्न होनेवाले हितो के अनुसार क्रियाशील होता है। पीडित वर्ग तथा उत्पीडक वर्ग अनिवार्यत सघर्ष मे एक दूसरे से जूझने पर बाध्य होते है क्योकि उनके हित विरोधी होते हैं। यही कारण है कि समाज जब वर्गो मे विभाजित होता है तो वर्ग सघर्ष शुरू हो जाता है। वर्ग सघर्ष, जिसकी उत्पत्ति निजी स्वामित्व के सबधो से होती है, शोषक वर्गों के हाथ मे अपने प्रभुत्व को दृढ बनाने के उपकरण का काम देता है तथा उत्पीडित, शोषित वर्गों के लिये मुक्ति का एकमात्र साधन होता है। वर्ग सघर्ष मे हमेशा दो छोर होते हैं, एक रूढिवादी, प्रतिक्रियावादी और दूसरा क्रातिकारी। उत्पीडित वर्गों के विरुद्ध सघर्ष मे शासक वर्ग अपनी प्रभुताशाली हैसियत को उस समय तक कायम रखने मे सफल होते है, जब तक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की भौतिक स्थितिया परिपक्व नही हो जाती।

क्रातिकारी शक्तिया विजयी तभी होती है, जब उनकी विजय के लिये तदनुरूपी भौतिक शर्तें पूरी हो जाती है, जब नई उत्पादक शक्तिया और पुराने उत्पादन सबध समाज की परिधि के भीतर जोर से टकरा जाते है। ऐसी स्थितिया मे विरोध के समाधान तथा उत्पादक शक्तियो के और आगे के विकास का रास्ता केवल इसी तरह खुल सकता है कि वे सामाजिक

शक्तिया, जिनका हित पुराने ग्रार्थिक रूपा को नष्ट करने मे है, उन वर्गों के विरुद्ध, जो इन सबधा के वाहक ह, त्रातिकारी वग सघप करे। **क्रांतिकारी वग सघप** एकमात्र उपाय है, जिसके द्वारा ग्रतविरोधी सरचनाग्रा मे सामाजिक विकास के ऐतिहासिक तौर पर परिपक्व काय पूरे किये जा सकते तथा पुरान पर नये की विजय सुनिश्चित की जा सकती है। इसी लिये वह **ग्रतविरोधी सामाजिक सरचनाग्रो के विकास की चालक शक्ति, समाज मे सामाजिक ग्रतद्वद्वा के विकास ग्रौर समाधान का प्रधान रूप तथा इसके विकास को मुख्य नियमितता है।** इन ग्रतद्वद्वा का समाधान त्राति द्वारा होता हे जा, पुरानी व्यवस्था को नष्ट करती तथा नई उत्पादन पद्धति के विकास का रास्ता साफ करती है। स्वय त्राति वग सघप के विकास की चरम सीमा है। परिणामस्वरूप **क्रातिकारी वर्गां का सघप सामाजिक व्यवहार का ऐतिहासिक दृष्टि से वह ग्रावश्यक रूप है, जो सडी गली सामाजिक ग्रार्थिक सरचना की चारदीवारी के बाहर क़दम बढ़ाता है,** इस प्रकार समाज को ग्रागे ले जाता, उसे एक नई ग्रौर ऊची मजिल पर पहुचाता है, जिसकी भौतिक परिस्थितिया उत्पादन के विकास द्वारा तयार हा चुकी थी।

पूजीपति वग के नेतत्व मे क्सिाना ग्रौर शहरवालो के सघप ने सामतवाद को मिटाया ग्रौर पूजीवादी विकास का रास्ता साफ क्र दिया। पूजीवाद के ग्रतगत पूजीपति वग के विरुद्ध सवहारा का सघप जारी है ग्रौर तेज होता जा रहा है। हमे यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिये कि वग सघप का प्रभाव सामाजिक विकास पर केवल एक सरचना से दूसरी म सक्रमण के प्रसग मे ही नही होता, बल्कि हर समाज म उत्पादन के विकास तथा सामाजिक ग्रौर सास्कृतिक प्रगति पर भी होता है।

सवहारा के वग सघप, उसके कारणा तथा उसके विकास की स्थितिया ग्रौर सम्भावनाग्रो का वज्ञानिक विश्लेपण मार्क्सवाद-लेनिनवाद की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। इस सवाल पर ऐतिहासिक भौतिकवाद ऐतिहासिक विकास की वस्तुनिष्ठ नियमितता का इस निविवाद तथ्य का मान कर चलता है कि **सवहारा ग्रौर पूजीपति वग के ग्रतविरोध ग्रनिवाय रूप मे पूजीवादी उत्पादन सबधो से, पूजी द्वारा उजरती श्रम के शोषण से पदा होते ह,** ग्रौर यह कि पूजीवाद के विकास के साथ साथ य ग्रतविराध, क्म होने के बजाय, ग्रौर तीव्र हाते जात ह।

इसी के साथ पूजीवाद उन भौतिक स्थितिया को जन्म देता है, जो सवहारा के वग सघष का माग और उसके परिणामा को निर्धारित करते ह। उत्पादन को एक सामाजिक प्रक्रिया बनाकर, पूजीवाद उन भौतिक शर्तों को पूरा करता है, जा शोषण का अत करने तथा निजी स्वामित्व की जगह सामाजिक स्वामित्व स्थापित करने के लिये, जो उत्पादक शक्तियो के स्वरूप के अनुकूल है, जरूरी हैं। वर्गों का अस्तित्व, जो सामाजिक उत्पादन क विकास की निश्चित मजिला पर आवश्यक था, ऐतिहासिक विकास की जजीर बन जाता है। इन परिस्थितिया म, **सवहारा अपने आपको मुक्त केवल इसी तरह कर सकता है कि उत्पादन के पूजीवादी सबधो को नष्ट कर दे, पूरे समाज को निजी स्वामित्व और शोषण से मुक्ति दिलाये तथा एक समाजवादी और फिर एक कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करे।** इस सामाजिक कायभार को पूरा करना विश्व इतिहास म सवहारा की महान भूमिका है क्योकि इतिहास मे वही सबसे अधिक क्रातिकारी वग है।

मार्क्सवादिया पर यह आराप लगाया जाता है कि वे सवहारा क सिर बहुत स चमत्कारी गुण मढते हैं और उसे एक असाधारण तथा "चुना हुआ" वग बताते हैं। परन्तु हर वग की अपनी खास विशेषताए हाती ह और यह बात सवहारा वग पर भी लागू हाती है। इसके पास काई निजी सम्पत्ति नहा है और न इसकी रक्षा करन से उस काई मतलब है। यही चाज उसका किसी तरह के निजी स्वामित्व क विरुद्ध सुदृढ योद्धा बनाती है। इसक अतिरिक्त **सवहारा का सबध** बडे पमाने के उद्योग से है, जा **उत्पादन का सबसे उन्नत रूप** है, और इसलिय पूजीवाद के साथ उसका विकास हाता है। फक्टरिया और कारखाना म, शहरा तथा औद्योगिक केन्द्रा म बहुत बडी सख्या म सवहारा वग के लाग इकट्ठे हा जात ह। उन्ह सामूहिक रूप म काम करना हाता है, जिसस वे सगठित तथा अनुशासित हाना सीखत ह। पूजीवादी समाज म सवहारा की स्थिति उस इस याग्य बनाता है कि वह समाज के समाजवादी पुनर्निर्माण क लिय सुसगत रूप म और दृढतापूर्वक सघष कर सक। वह उसे समाजवादा आदश का सवाहक बनाती ह। इस तरह किसी प्रकार का वर्गीय पृथकता का उपदश नहा दिया जाता बल्कि कवल वस्तुगत स्थिति का मूल्याकन किया जाता है। परन्तु पूजावादी ग्रामकर पूजावादी इजार, किसाना का, शहर क

निम्नपूजीपतिया, दिमागी काम करनेवालो तथा उपनिवेशा और परतत्र देशो के सभी जनगण का भी शोषण करते है। इसी लिये **सवहारा के हित वही है, जो सभी श्रमजीवी जनता के बुनियादी हित है, जो समाज के अधिकाश लोगो के हित है, और सवहारा की स्थिति वस्तुगत रूप मे उसे जनवाद तथा समाजवाद की लडाई मे श्रमजीवी और शोषित जनता का नेता बना देती है।**

आधुनिक पूजीवादी समाज तीव्र वर्गीय सघप का क्षेत्र है, जिसकी अलग अलग देशा म अपनी खास विशेषताए है। परिस्थिति क अनुसार यह सघप कही तीव्र हो जाता है या कही धीमा पड जाता है, परन्तु हर जगह इसका कारण होता है श्रमजीवी जनता के जीवन स्तर पर पूजी का हमला, उसकी सामाजिक सुविधाओ के छीन लिये या कम किये जाने का खतरा, जनवादी अधिकारो और आजादियो पर इजारो की चोट, प्रमुख पूजीवादी देशो की खतरनाक आक्रमणकारी नीतिया जिनका उद्देश्य शस्त्रास्त्र की होड, एक और युद्ध छेडना आदि होता है।

इजारेदारियो के प्रभुत्व के खिलाफ लडाइ का स्वरूप सामान्य जनवादी है। इसस जनता म राजनीतिक जागृति तेज करने और ज्यो-ज्यो वह समाजवादी क्राति की आवश्यकता महसूस करन लगती हे, उसे सवहारा के झडे तले एकजुट करन म सहायता मिलती है। **जनवाद के लिये सघप समाजवाद के लिये सघप का एक अभिन्न अग है।**

सवहारा के वग सघप का काम पूजीवाद से समाजवाद म सक्रमण करना है और इसके लिए सबसे पहले इस बात की जरूरत है कि वह सत्ता अपने हाथ म ले। **वग सघप मे मुख्य सवाल सत्ता का प्रश्न है।** लेकिन सवहारा और पूजीपतियो के हितो मे चूकि कोई मेल नही हो सकता, चूकि नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के प्रति पूजीपतियो का विरोध अनिवाय है, और अतिम बात यह कि, चूकि पूजीवादी समाज मे सवहारा सबसे अधिक सगठित और सुसगत रूप से क्रातिकारी वग होता है, इसलिये समाजवाद का **एकमात्र** रास्ता यह है कि सवहारा श्रमजीवी जनता से मिलकर अधिकार अपने हाथो म ले ले। इसी लिए मार्क्सवाद का मत है कि पूजीवादी समाज म सवहारा के वग सघप का आवश्यक परिणाम **सवहारा का अधिनायकत्व** है। 'मार्क्सवादी केवल वही है, जो वग सघप को मानने

से आगे बढकर सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को मानता है।"* वर्ग संघर्ष के बारे में मार्क्सवादी दृष्टिकोण यही है।

अपने वर्गीय हितों के अनुसार पूंजीपति वर्ग क्रांतिकारी आन्दोलन को दबाना चाहता है और ऐसा करने के लिये, रिश्वत और हिंसा के अलावा, वह सैद्धांतिक प्रभाव डालने के विभिन्न उपायों से काम लेता है ताकि सर्वहारा को उसकी वर्ग चेतना से वंचित किया जाये और उसपर एक ऐसी विचारधारा थोप दी जाय जो पूंजीपति वर्ग के फायदे की हो। सर्वहारा को तरह तरह से यह विश्वास दिलाया जाता है कि वर्गीय अंतर्विरोधों का समाधान पूंजीवादी व्यवस्था की परिधि के भीतर भी सम्भव है, और अगर कभी संघर्ष होता भी है तो इसका नतीजा यह नहीं होना चाहिये कि पूंजीवाद का अंत कर दिया जाये, बल्कि दोनों वर्गों में मेलमिलाप हो जाना चाहिये। वर्ग संघर्ष के बरखिलाफ पूंजीवादी राजनीतिज्ञ और विचारक "वर्गीय शांति", "वर्ग सहयोग" "श्रम और पूंजी की साझेदारी" आदि का उपदेश दिया करते हैं। ये सारी "शांतिमयी' शब्दावली इस बात पर परदा डालने का उपाय मात्र है कि सर्वहारा अपनी उत्पीड़ित स्थिति पर संतोष कर ले, अपने उद्देश्यों से हाथ धो ले, पूंजीवादी विचारधारा को स्वीकार कर ले तथा पूंजीवादी नीतियों को अमल में लाने का लचकदार औज़ार बन जाये। दक्षिणपंथी समाजवादी और सुधारवादी अपने कार्यक्रम में वर्ग संघर्ष का उल्लेख नहीं करते और राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए वर्गीय दृष्टिकोण को अस्वीकार करते हैं।

पूंजीवादी समाजशास्त्रियों का कहना है कि प्रगति का मुख्य स्रोत 'सामाजिक गतिशीलता" है, अर्थात, मनुष्यों का निम्न अवस्था से तरक्की करके उच्चतर सामाजिक अवस्था में पहुंचना, और इसलिये जिस समाज में इस प्रकार की गतिशीलता के जितने अधिक अवसर होंगे, उतना ही "खुला" और प्रगतिशील वह समाज होगा। "सामाजिक गतिशीलता" के इस सिद्धांत के अनुरूप ही संयुक्त राज्य अमरीका में पूंजीवादी प्रचार में यह कहा जाता है कि संयुक्त राज्य में कोई जूते पर पालिश लगानेवाला लड़का भी करोड़पति बन सकता है।

---

*व्ला० इ० लेनिन, संकलित रचनाएं, चार भागों में, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६९, भाग २, पृ० २०५–२०६

लेकिन "सामाजिक गतिशीलता" से व्यक्तियो या समहा की हालत बदल सकती है मगर इससे वर्गा की समस्या का समाधान नही हा सकता। और न ही, परिणामस्वरूप इससे पूजीवाद की सामाजिक समस्याए हल हो सकती हैं क्योकि वह वर्गीय प्रतिराध और वर्गीय भेदभाव को मिटाने मे असमथ रहता है। और यह कहना एक हास्यास्पद बात है कि सभी मजदूर "सामाजिक गतिशीलता" द्वारा पूजीपति बन सकत ह।

इस प्रकार, वग सघप के प्रति अपन दष्टिकाण के अनुकूल **दो विरोधी विचारधाराए एक दूसरे से टकराती ह मार्क्सवादी विचारधारा, जो समाज को शोषण से मुक्त करने का रास्ता दिखाती हे, और पूजीवादी विचारधारा, जिसका उद्देश्य श्रमजीवी जनता को पूजीपतियो के हितो के अधीन रखना है।**

वर्गो का अतविरोध सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र म प्रकट होता हे, मगर हर एक अपन अलग ढग से। **वग सघप के प्रधान रूप आर्थिक, राजनीतिक और सद्धातिक ह।** सघप के परम उद्देश्य की प्राप्ति तभी सम्भव होती ह जब उन्हे सयाजित कर लिया जाता है। अब हम सवहारा के वग सघप के प्रसग मे उनकी खास विशेपताओ और परस्पर सबधा पर विचार करे।

आर्थिक सघप मजदूरो के रोजमर्रे की जरूरतो के लिये, काम की बेहतर स्थितिया, अधिक मजदूरी आदि के लिय सघप है। यह बहुत महत्व पूण है, क्योकि वह दरिद्र बनाने की प्रवत्ति की रोकथाम करता है वर्गीय एकता पदा करता हे, आदि। मगर यह सघप अवश्य ही सीमित होता हैं, क्योकि यह सघप अलग अलग और आशिक उद्देश्या के लिये होता है और पूजीवाद को मिटाने के आम कायभार का नही उठाता है। अथवादिया के विरुद्ध अपन सघप के दौरान म लेनिन न दिखाया था कि सवहारा के सघप को आर्थिक परिधि म सीमित रखने का मतलब है मजदूरा को स्थायी गुलामी पर मजबूर किय रखना। इसी लिए आर्थिक सघप का एकमात्र सम्भव या मुख्य सघप नही समझना चाहिय।

राजनीतिक सघप सवहारा के वग सघप का प्रधान और निर्णायक रूप है। मार्क्स न यह प्रसिद्ध प्रस्थापना प्रस्तुत की थी कि हर वग सघप एक राजनीतिक सघप ह। इसका अथ यह है कि पूजीपतिया के विरुद्ध मजदूरा का सघप वग क खिलाफ वग का सघप उसी हद तक बनता है जिस हद तक वह राजनीतिक हाता है, यानी, जब वह राजनीति क क्षेत्र म प्रवश

करता है। राजनीतिक सघप ही मजदूरो के किसी एक या अन्य समूह या पशेवर समूहो के हिता को नही वल्कि सवहारा के सामान्य वर्गीय हिता को सामने लाता है।

राजनीतिक सघप के दौरान मे विभिन्न मागे पेश की जाती ह, जसे सामाजिक कानूनो म सुधार, जनवादी आजादियो का विस्तार और उनकी जमानत, पूजीवादी सरकारा द्वारा उठाये गये विभिन प्रतिक्रियावादी कदमा के प्रति विरोध प्रकट करना, आदि। राजनीतिक सघप के दौरान म ही सत्ता का सवाल उठता है, और यह स्वाभाविक है, क्याकि राजनीतिक सघप के दौरान म ही, राजनीतिक साधना से ही मजदूर वग पूजीपतिया से सत्ता ले सकता है। क्रातिकारी स्थिति म यह समय का व्यावहारिक कायभार हो जाता है।

सद्धातिक सघप भी, जो वग सघर्ष का तीसरा प्रधान रूप है, राजनीतिक सघप के अधीन है। इस सघर्ष का उद्देश्य जनता पर असर क़ायम करना है, यह आम जनता के मन मे समाजवादी चेतना पदा करने का प्रयत्न है और इसी लिये यह व्यावहारिक राजनीतिक सघप और उसकी आवश्यक्ताओ स अभिन्न है। सद्धातिक सघप का काम पूजीवादी विचारधारा तथा मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात की सशोधनवादी और जडसूत्रवादी विकृतिया की आलोचना करना है।

सवहारा के वग सघप मे नेतृत्व और निर्देशन की भूमिका उसकी क्रातिकारी राजनीतिक पार्टी की होती है। एक ऐसी पार्टी के बिना, जो वज्ञानिक सिद्धात की रोशनी म चलती हो और जनता से जिसका घनिष्ठ सबध हो, सवहारा अपने वर्गीय शत्रुओ के विरुद्ध सफलतापूवक लडाई नही लड सकता। यह बात भूलनी नही चाहिये कि जब पूजीवाद साम्राज्यवाद के रूप म विकसित हुआ और इसकी वजह से पूजीवाद के अतर्विरोध और तेज हो गये तो पुरानी सोशल डिमाक्रेटिक पार्टिया सवहारा के वर्गीय सघप म नेतृत्व करन म असमथ साबित हुइ। उनपर अवसरवादी छा गये और उन पार्टिया का पतन हो गया, वे सामाजिक सुधार की पार्टिया बन गई हैं, जो मजदूर वर्ग पर पूजीवादी प्रभाव के साधन का काम कर रहा ह। इसी लिये इतिहास ने क्रातिकारी सवहारा के सामने यह व्यावहारिक और तात्कालिक कायभार रखा कि वह एक नये प्रकार की पार्टी का, सामाजिक क्राति की पार्टी का निमाण करे, जिसम मजदूर वग के क्रातिकारी सघर्ष

का नेतृत्व करने की क्षमता हो। इस प्रकार की पार्टी—बोल्शेविक पार्टी—लेनिन ने रूस मे कायम की। इसी नमूने पर आगे चलकर अन्य कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो का निर्माण हुआ, जो आज पूजीवादी देशो मे सर्वहारा के वर्ग संघर्ष को, और समाजवादी देशो में नये समाज के निर्माण को संगठित करनेवाली एक विशाल शक्ति हैं।

मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के सिद्धांत और उसके **संगठनात्मक उसूल** लेनिन ने निरूपित किये। कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग का एक भाग, उसका अगुआ चेतन तथा संगठित हिरावल है। लेनिन ने कहा है कि सर्वहारा की क्रांतिकारी पार्टी **वर्गीय संगठन का उच्चतम रूप** है, जो सर्वहारा के सामान्य वर्गीय हितो को प्रकट करता है और जिसे उसके अन्य सभी संगठनो का निदेशन करना है।

पार्टी की शक्ति उसकी **अखंड एकता और एकजुटता** मे है, जिसका आधार मजदूर वर्ग के बुनियादी हितो की वैज्ञानिक अभिव्यक्ति पर है और जिसे अनुशासन द्वारा दृढ बनाया जाता है, जिसका पालन करना सभी पार्टी सदस्यो के लिये समान रूप से जरूरी है।

सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टिया **स्वतंत्र और समान** हैं, और अपनी नीतिया अपने अपने देशो की ठोस स्थितियो के अनुसार मार्क्सवाद-लेनिनवाद की रोशनी में तय करती हैं। इसी के साथ, जैसा कि १६६६ में कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के अंतर्राष्ट्रीय मास्को सम्मेलन ने घोषणा की, मजदूर वर्ग के हेतु, शांति, जनवाद और समाजवाद के लिये मजदूर वर्ग के संघर्ष के हितो का अब तकाजा यह है कि कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टिया—सारी दुनिया के कम्युनिस्टो की महान सेना—में पहले से कही अधिक एकजुटता हो, उनकी इच्छा और व्यवहार की एकता हो। अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की एकता को दृढ बनाने और उसे उच्चतर स्तर तक ऊपर ले जाने का निरंतर प्रयत्न प्रत्येक मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी का परम अंतर्राष्ट्रीय कर्तव्य है। उक्त सम्मेलन की मुख्य दस्तावेज़ में कहा गया था "**कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो की एकजुटता** सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो को एकताबद्ध करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन है।"

पार्टी की शक्ति और अजेयता जनता के साथ उसके संबंधो में है। वह जिस जनता का नेतृत्व करती है उसके विश्वास और समर्थन पर निर्भर

करती हमेशा उसके विचारा को ध्यान म रखती और उसके अनुभव का सामान्यीकरण करती है।

मार्क्सवादी लेनिनवादी क्रातिकारी पाटिया वज्ञानिक विचारधारा को जनता म ले जाती, कम्युनिस्ट और मजदूर वर्गीय आदालन का रणनीति और कार्यनीति निधारित करती तथा सघप के विभिन्न रूपा को मिलाकर तथा उपयुक्त साधना को चुनकर उनसे काम लेती ह। वे मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धात की शुद्धता की रक्षा करती और सशोधनवाद तथा जडसूत्रवाद के विरुद्ध लडाई मे उसे सजनात्मक रूप से, नये अनुभव तथा ऐतिहासिक परिस्थितिया के अनुसार विकसित करती हैं, मजदूर वग के अन्तिम उद्देश्या के लिये सघष को उसकी रोजमर्रे की जरूरता के सघष से जोडती ह।

इतिहास ने कम्युनिस्ट और मजदूर पाटियो पर यह महान दायित्व रखा है कि वे कम्युनिज्म के लिये सामाजिक विकास की मूल समस्याओ का हल करन क लिय मानवजाति का उत्पीडन और शोपण, भूखमरी और गरीबी सैन्यवाद और युद्ध से छुटकारा दिलाने के लिय और समस्त ससार म जनवाद शाति, राष्ट्रा म मत्री और मानव के सुयोग्य जीवन की स्थापना के लिये सघष करे।

इन कार्यो को पूरा करन के लिये कम्युनिस्ट समाज की समस्त प्रगतिशील शक्तियो का एकजुट करन के लिय काम करते ह और सोशलिस्टा, सोशल डिमोक्रेटा तथा अन्य जनवादी पाटिया और सगठना स आग्रह करत ह कि यदि वे विश्व के नवीकरण के काम म भाग लेने के इच्छुक और तयार ह तो सहयोग करें।

वतमान युग म वग सघप का दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ म ससार के विभाजन के प्रसग स अलग करके समझना असम्भव है। यद्यपि इन दो व्यवस्थाओ म वर्गीय अतविरोध ह, मगर अलग देशो म वर्गीय सबधो के विश्लेपण म जो धारणाए निरूपित की गई ह उनको उनपर लागू करना सही नही होगा। इस बात के बावजूद कि उनमे बुनियादी सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक भेद ह और उनका स्वरूप अतविरोधी है दोनो व्यवस्थाओ म सहअस्तित्व हो सकता है और होना चाहिये, एक दूसरे के घरेलू मामलो म हस्तक्षप नही करना, परस्पर लाभदायक व्यापार आदि के सबध कायम करने चाहिये। शातिपूण सहअस्तित्व सामाजिक विकास की एक वस्तुनिष्ठ आवश्यकता है। यह सही है कि सक्रमण आक्रमणकारी

साम्राज्यवादी क्षेत्र समानता और एक दूसरे के मामलो म अहस्तक्षेप के आधार पर समाजवादी देशो स सम्बध स्थापित करने म इनकार करते ह और एक दूसरी नीति पर चलते रह ह जिसका उद्देश्य समाजवादी देशो म किसी न किसी उपाय स पूजीवादी व्यवस्था को पुन स्थापित करना है। साम्राज्यवादी एक अत्यत भयकर अपराध—एक विश्व थर्मोन्युक्लियर युद्ध—की तयारी कर रह ह जिसस पूरे के पूरे राष्ट्रो का अस्तित्व ही खतरे म पड जायगा। लेकिन इस समय शाति की शक्तिया इतनी मजबूत हो गई ह कि अब उनम यह क्षमता मौजूद है कि वे आक्रमण की नीति को विफल बना सक और प्रतिक्राति के निर्यात को रोक सक तथा शातिपूर्ण सहअस्तित्व पर आमादा कर सक। स्वय पूजीवादी देशो की अन्दरूनी प्रक्रियाए अनिवार्यत क्रातिकारी विस्फोटो म परिणत होगी और पूजीवाद की जगह समाजवाद की स्थापना करगी। युद्ध इन उद्देश्यो के लिये बिल्कुल अनावश्यक है। इसके लिये जरूरत शाति की है जिसके लिये सघर्ष साहस और दृढता के साथ करना चाहिये। मास्को सम्मेलन की मुख्य दस्तावेज म जोर दिया गया है कि वतमान स्थिति म "**शाति की रक्षा साम्राज्यवादियो को विभिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यो के शातिपूर्ण सहअस्तित्व को स्वीकार करने पर बाध्य करने के सघर्ष से अभिन्न रूप से जुडी हुई है**, जिसका तकाजा है कि हर राज्य की चाहे वह छोटा हो या बडा, प्रभुसत्ता समानता क्षत्रीय अलघनीयता अन्य देशो के अदरूनी मामलो म अहस्तक्षेप के सिद्धात का पालन किया जाय तथा प्रत्येक जाति के अपने सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को आज़ादी के साथ तय करने के अधिकार का सम्मान किया जाय

"शातिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति किसी उत्पीडित जाति के इस अधिकार का विरोध नहीं करती कि वह अपनी आज़ादी के लिये कोई भी रास्ता अपनाये—सशस्त्र या शातिपूर्ण। इस नीति का मतलब किसी तरह भी प्रतिक्रियावादी सरकारो का समर्थन करना नहीं है।

यह सोचना बेतुकी सी बात होगी कि क्राति का निर्यात करके पूजीवाद की जगह समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। किसी भी राष्ट्र का यह अधिकार नही है कि अपनी इच्छा या सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था किसी अन्य राष्ट्र पर लादे। हर राष्ट्र का यह अधिकार है कि जिस व्यवस्था को श्रेष्ठ समझे स्वीकार करे।

एक ग्रौर वात ध्यान म रखनी चाहिये कि विभिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यो के बीच शातिपूर्ण सहग्रस्तित्व पूजीवाद ग्रौर समाजवाद के बीच वग सघप का एक रूप है। यह सघप सामाजिक जावन के हर प्रमुख क्षेत्र – ग्राथिक, राजनीतिक तथा सद्धातिक क्षत्र – म होता रहता है। दोना व्यवस्थाग्रो क बीच ग्राथिक सघप ग्राथिक प्रतियोगिता का रूप लेता है। राजनीतिक सघप शाति के सघप का, शाति के दुश्मनो क विरुद्ध जोरदार कारवाई का, तथा ग्रपनी राष्ट्रीय ग्राजादी ग्रौर सामाजिक मक्ति के लिए साम्राज्यवाद के खिलाफ लडनवाली जातिया की सहायता का रूप धारण करता है। सद्धातिक क्षेत्र म, विचारधाराग्रो के बीच निमम सघप चल रहा है।

कुछ लोगो ने कहा है कि शातिपूर्ण सहग्रस्तित्व साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय ग्राजादी का सघप करनवाली जातिया के हितो के खिलाफ है। यह वात गलत है। हर उत्पीडित जाति को ग्रपनी ग्राजादी के लिए लडने का ग्रधिकार है। जहा तक विभिन्न सामाजिक व्यवस्थावाले राज्यो के शातिपूर्ण सहग्रस्तित्व का सबध है उससे विश्व परमाणु युद्ध को रोकने में मदद मिलती है ग्रौर, जैसा कि हम कह चुके ह उसका मतलब एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का उत्पीडन नही है, बल्कि राज्यो की प्रभुसत्ता ग्रौर समानता तथा परस्पर ग्रहस्तक्षेप है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाग्रो वाले राज्यो के बीच शातिपूर्ण सहग्रस्तित्व की लेनिनवादी नीति पर दृढतापूर्वक ग्रमल करती है क्योकि **राज्यो के बीच सद्धातिक ग्रौर राजनीतिक झगडो को युद्ध के जरिये तय नहीं करना चाहिये।**

वर्गो ग्रौर वग सघप क मार्क्सवादी सिद्धात को, जिसके बुनियादी ग्रसूलो का उल्लेख हम यहा कर रहे ह, लागू करते हुए समय ग्रौर स्थान की विशेष स्थितियो पर, इस या उस देश के विकास के स्तर तथा ऐतिहासिक विशेषताग्रो पर निगाह रखनी चाहिए। इन स्थितियो मे दुनिया म चारो ग्रोर वडी विविधता पाई जाती है। इसी लिये सिद्धात की ग्रोर इस दृष्टि से देखना सही नही है कि ग्रलग हर जगह के लिये उसमे तयार हल मिल जायेगा। ठोस स्थितियो पर सिद्धात को लागू करना एक सजनात्मक क्रिया है ग्रौर क्रातिकारी वग तथा श्रमजीवी जनता का नेतृत्व करनेवाली

पार्टियों का सैद्धांतिक तथा राजनीतिक स्तर जितना ऊंचा होगा, उतनी ही अधिक सफलता इस क्रिया में मिलेगी।

मजदूर वर्ग के लिए, ऐतिहासिक सृजनात्मक क्रिया के पात्र की हैसियत से जो चीज सबसे महत्वपूर्ण है, वह है **ठोस कार्यों तथा संघर्ष के तरीकों को उन वस्तुगत स्थितियों के अनुसार निर्धारित करना,** जिनमें देश का विकास स्तर, अन्य वर्गों का स्वरूप तथा कार्यकलाप, देश के भीतर तथा अंतर्राष्ट्रीय पैमाने पर वर्गीय शक्तियों का वास्तविक संतुलन, आदि शामिल हैं। संघर्ष की सफलता के लिये यह निर्धारित करना भी अहम है कि **स्वयं मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी चेतना का स्तर तथा संगठन की अवस्था** क्या है और किस हद तक वह सैद्धांतिक रूप से स्वतंत्र है, या इसके विपरीत, कहां तक पूंजीपति वर्ग के प्रभाव में है, यह तय करना है **अन्य वर्गों, हिस्सों, सामाजिक और नस्ली समूहों में,** जो सम्भवतः संघर्ष में इसके साथी बन सकते हैं, **इसकी प्रतिष्ठा और उनपर इसका प्रभाव कितना है।**

नेतृत्व की कला का एक पहलू इन सभी बातों को पूरी तरह और सर्वतोमुखी रूप में ध्यान में लेना है, अपनी और अपने शत्रु की भी कमजोरियों और ताकतों दोनों पर नजर रखना है और इस आधार पर संघर्ष के ठोस उद्देश्य निश्चित करना, क्रांतिकारी पहलकदमी से काम लेना तथा आम आन्दोलन के स्तर को ऊंचा करना है।

समाजवादी समाज का सामाजिक ढांचा और उसकी गतिशीलता

मजदूर वर्ग के नेतृत्व में श्रमजीवी जनता की सत्ता की स्थापना, ऐसी सत्ता की, जो समाजवादी क्रांति के दौरान में हासिल की गई है, पूंजीवाद से समाजवाद में **संक्रमण के दौर के** द्वार खोल देती है। इसे संक्रमण काल इसलिये कहा जाता है कि, एक ओर, यह पूंजीवाद नहीं रह गया, लेकिन, दूसरी ओर, अभी यह समाजवाद भी नहीं है। कुछ दिनों के लिये पूरे देश में विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों का सहअस्तित्व कायम रहता है और वे एक दूसरे का मुकाबला करते हैं। इन क्षेत्रों की संख्या और इनका स्वरूप देश

के विकास के स्तर पर निर्भर करता है। जब क्रांति अपेक्षाकृत किसी उन्नत देश में होती तो अवश्य ही वहां तीन क्षेत्र साथ साथ होंगे और एक दूसरे का मुकाबला करेंगे पूंजीवादी, निम्नपूंजीवादी तथा समाजवादी क्षेत्र, जो बड़े पूंजीपतियों तथा जमींदारों की सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण द्वारा स्थापित होता है। इसी के अनुकूल पूंजीपति, निम्नपूंजीपति तथा मजदूर वर्ग-संक्रमण काल में यही तीन वर्ग होते हैं।

समाजवादी क्रांति समाज के वर्गीय ढांचे में एक बुनियादी परिवर्तन शुरू कर देती है। पूंजीपति वर्ग समाज का प्रधान वर्ग नहीं रहता, क्योंकि वह अपने राजनीतिक प्रभुत्व से वंचित कर दिया जाता है और उसकी आर्थिक शक्ति बहुत कम हो जाती है। मजदूर वर्ग का अब भी किसी हद तक शोषण होता है (क्योंकि मजदूर अब भी पूंजीपतियों के कारखानों में काम करते रहते हैं) परन्तु मजदूरों का एक हिस्सा अभी ही से अर्थव्यवस्था के समाजवादी क्षेत्र में काम करने लगता है। इसके अलावा राजनीतिक सत्ता मजदूर वर्ग के हाथों में होती है तथा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रभावशाली स्थानों पर उनका कब्जा होता है। किसानों को जमीन मिल चुकी होती है। निम्नपूंजीवादी उत्पादन का क्षेत्र और उससे संबद्ध निम्नपूंजीपति वर्ग आम तौर से काफी बड़ा होता है। नये समाजवादी बुद्धिजीवियों का उद्भव होने लगता है।

आर्थिक स्तर पर संक्रमण काल का कार्यभार बहुक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था का अंत करके सभी मुख्य उत्पादन साधनों के सामाजिक स्वामित्व की स्थापना करना है। इस कार्य की पूर्ति के कारण समाज के सामाजिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन होते हैं। शोषक और शोषित वर्गों का हमेशा के लिये अंत हो जाता है। इन वर्गों का अंत होने का अवश्य ही यह मतलब नहीं कि उनके सदस्यों को मार डाला जाता है। नहीं, इसका मतलब यह है कि निजी स्वामित्व मिटा दिया जाता है, ठोस परिस्थिति के अनुसार निजी सम्पत्ति या तो जब्त कर ली जाती है या खरीद ली जाती है। जहां तक छोटे पैमाने की निजी सम्पत्ति का सवाल है जिसे व्यक्तियों ने अपने निजी श्रम द्वारा अर्जित किया है उसका समाजीकरण धीरे धीरे सहकारीकरण के जरिये करना है। लेनिन ने कहा कि इस प्रकार का समाजीकरण बिल्कुल स्वेच्छा से होना चाहिये। इसके लिये प्रेरणा निम्न उत्पादकों के सांस्कृतिक स्तर के ऊंचे होने से, छोटे पैमाने की खेती की तुलना में बड़े पैमाने की

सामूहिक खेती के फायदा से, जिसका सबूत ठोस उदाहरण से सामने आता रहेगा, तथा उत्पादन में वैज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों का उपयोग करने की बड़े सामूहिक फार्मों की क्षमता से मिलेगी। सहकारी समितियों द्वारा आबादी के निम्नपूंजीवादी हिस्सा को समाजवादी भावना के नये साँचे में ढालने में मदद मिलती है। यह बहुत महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन है। किसान, निम्नपूंजीपति—श्रमजीवी है और इसलिये वह शोषण के विरुद्ध और समाजवाद के लिये लड़ाई में मजदूर का साथी है। परन्तु वह सम्पत्ति का मालिक भी है और इसलिये वह सर्वहारा तथा पूंजीपतियों के बीच इधर से उधर होता रह सकता है। सक्रमण काल का एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक राजनीतिक कार्य निम्नपूंजीवादी मालिकों के इस दोहरे सामाजिक स्वभाव पर ध्यान रखना है तथा मजदूर वर्ग और मेहनतकशों के गैर-सर्वहारा हिस्सा में मजबूत एकता कायम करना है, क्योंकि यही एकता मुख्य सामाजिक शक्ति है, जिससे समाजवाद की विजय सुनिश्चित होगी।

बुद्धिजीवियों के संबंध में एक काम यह भी है कि उनकी मुस्तैदी, ज्ञान और कौशल को समाजवाद के निर्माण में लगाया जाय। इसी लिये पुराने बुद्धिजीवियों को सैद्धांतिक दृष्टि से पुनःशिक्षित किया जाता है ताकि वे अपनी पुरानी जमी हुई पूंजीवादी धारणाओं को छोड़ दें, और इसी के साथ श्रमजीवियों में से नये समाजवादी बुद्धिजीवियों को तैयार किया जाता है। इस प्रकार पूंजीवादियों को ज्ञान के अपने एकाधिपत्य से, जिससे उन्होंने अपना प्रभुत्व कायम रखने का काम लिया था, वंचित कर दिया जाता है।

सक्रमण काल की इन जटिल सामाजिक समस्याओं का समाधान पुराने जगत की शक्तियों के विरुद्ध वर्ग संघर्ष के बिना नहीं किया जा सकता इसी लिये इस दौर में भी वर्ग संघर्ष जारी रहता है, परिवर्तन केवल उसके कार्यभारों परिस्थितियों, रूपों और साधनों में होता है। **संघर्ष की तीव्रता ठोस हालतों पर, पराजित वर्गों के प्रतिरोध की ताकत पर निर्भर करती है।** इसका दायरा बहुत व्यापक है—गृह युद्ध से लेकर रोजमर्रे के शैक्षणिक काम तक।

समाजवादी निर्माण की कल्पना श्रम, सामाजिक तथा राजनीतिक मामलों में जनता के व्यापक कार्यकलाप व सर्वतोमुखी विकास के बिना नहीं की जा सकती, क्योंकि मेहनतकश जनता ही नये सामाजिक संबंधों के

सवाहक तथा ऐतिहासिक सृजनात्मक कायकलाप के वास्तविक पात्र की भूमिका अदा करती है। यह समाजविज्ञान-सबधी निष्कर्ष लेनिन ने निकाला था, जिन्होंने कहा कि ज्यो-ज्यो समाजवाद का विकास होता रहेगा, अधिक से अधिक सख्या मे जनगण इतिहास के चेतन निर्माण मे भाग लेगे। मार्क्सवाद जनता मे वैज्ञानिक चेतना ले जाता है तो समाजवाद जीवन के हर क्षेत्र मे उसके व्यापक सामाजिक कायकलाप के लिये व्यावहारिक स्थिति तैयार करता है। इससे सामाजिक पहलकदमी का क्षेत्र बढता है तथा त्वरित सामाजिक विकास की दृष्टि से नई सम्भावनाए उत्पन्न होती हैं।

सक्रमण काल के काय जब पूरे हो जाते हैं तो समाज **समाजवाद के दौर** मे प्रवेश करता है। पहले की सरचनाओ की तुलना मे इसका सामाजिक ढाचा गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होता है क्योकि इसमे **शोषक वग नहीं होते।** समाजवादी समाज मे **काम करना हर एक का दायित्व है और किसी को यह अधिकार नहीं है कि बिना मेहनत की आमदनी कमाये।** इस दृष्टिकोण से कहा जा सकता है कि समाजवाद एक वगहीन समाज है। लेकिन यह समय से पहले की बात होगी, क्योकि वग समाजवाद के सामाजिक ढाचे का एक महत्वपूण तत्व बने रहते हैं, यद्यपि वे बिलकुल भिन्न प्रकार के वग होते हैं क्योकि उनका सबध **उत्पादन साधनो के सामाजिक स्वामित्व के भिन्न रूपो** से होता है सावजनिक (राजकीय) और सहकारी (सामूहिक) स्वामित्व। स्वामित्व के रूपो का यही भेद दो श्रमजीवी समाजवादी वर्गों—मजदूर वग तथा सामूहिक फार्मों के किसानो—के अस्तित्व का आधार है।

ऐतिहासिक अनुभव बतलाता है कि उत्पादन साधनो पर निजी स्वामित्व के अत तथा उसके साथ शोषक वर्गों के अत का परिणाम अभी यह नहीं होता कि जहा समाजवादी स्वामित्व विभिन्न तरीको से उत्पन्न होता है और जहा शहरो की तुलना मे देहात तकनीकी तथा सास्कृतिक दृष्टि से पिछडे होते हैं, वहा श्रमजीवी वर्गों मे भेद मिट जाये। समाजवाद के अतगत अभी भी औद्योगिक तथा कृषि सबधी श्रम मे शारीरिक तथा मानसिक श्रम मे श्रम विभाजन कायम रहता है विभिन्न प्रकार के श्रम के तकनीकी उपकरणो मे तथा आबादी के विभिन्न हिस्सो के शैक्षणिक, सास्कृतिक और कुशलता के स्तरो मे फक बाकी रहता है। मजदूरो और किसानो के

साथ साथ बुद्धिजीवियो तथा दफ्तरी कर्मचारियो का एक हिस्सा भी रहता है।

समाजवादी समाज के सामाजिक ढाचे को प्रत्येक तफसील म देखा जाये तो एक खासी पचीदा तसवीर सामने आती है। अतरवर्गीय भेदभाव के साथ साथ अत वर्गीय भेदभाव भी (कुशलता के स्तर, श्रम के गुण आदि के कारण) उत्पन्न होते ह, जिसका अवश्य ही श्रमजीवी जनता के विभिन्न हिस्सा के भौतिक स्तरा और बौद्धिक विकास पर प्रभाव पडता है। बुद्धिजीवी भी जिनम विभिन्न वज्ञानिक, तकनीकी तथा कला के क्षेत्रा मे काम करनेवाले तथा जन पेशा के बुद्धिजीवी जैसे इजीनियर, शिक्षक और डाक्टर सेवाओ और प्रबधकाय के दक्ष श्रमिक आदि शामिल है एक बहुत ही असमान चित्र प्रस्तुत करते ह। समाजवाद उत्पादन साधना के सबध मे समानता स्थापित करता है, परन्तु, वितरण के क्षेत्र मे असमानता कायम रखता है, जो इस सिद्धात पर आधारित है कि काम का पारिश्रमिक परिमाण और गुण के अनुसार होगा। **सामाजिक बनावट के असमतल होने** का मतलब यह है कि समाजवाद के अतगत अभी तक सामाजिक भेदभाव और सामाजिक असमानता बनी रहती है।

फिर समाजवादी समाज मे वर्गो और सामाजिक समूहो के सबधा को निश्चित करन का आधार क्या है? निजी स्वामित्व और शोषक वर्गो के मिट जाने पर समाज म **वर्गीय सघर्ष का आधार मिट जाता है** और हजारा बरसो मे पहली बार **समाज के सभी सदस्यो के मौलिक हितो मे केवल सामयिक नहीं, बल्कि स्थायी एकता** उत्पन्न होती है। मजदूर वग, सामूहिक फार्मो के किसान और बुद्धिजीवी—सभी का हित इसमे है कि उत्पादक शक्तिया का विकास हो, समाजवादी व्यवस्था सुदृढ बने और कम्युनिज्म का निर्माण हो। यही वह आधार है, जिस पर **मजदूरो, किसानो और बुद्धिजीवियो मे मत्रिपूण सहयोग कायम होता है**। मजदूर वग जो समाज की प्रधान उत्पादक शक्ति तथा समाजवादी आदश का सबसे सुदढ सवाहक है, **समाज की चालक शक्ति रहता है**।

समाजवाद की एक बुनियादी विशेषता यह है कि सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र मे मानवा के कायकलाप को प्रेरणा मिलती है पूरे समाज के हितो से, इसको शक्तिशाली बनाने और विकसित करने के कार्यो मे, यद्यपि इसके चलते विभिन्न सामाजिक समूहा के विशेष हिता का अत नहा होता।

धीरे धीरे पूरा समाज ऐतिहासिक क्रिया का पात्र बन जाता है। क्र
क्लाप म मनुष्य वस्तुनिष्ठ नियमा के ज्ञान तथा स्वय अपने
वज्ञानिक जानकारी द्वारा निर्देशित होते ह।

इसके अतिरिक्त समाजवाद के अतगत कम्युनिस्टा की मा
लेनिनवादी पार्टी सम्पूण समाज का चेतन हिरावल बन जाती है। सम
समाज म एक पार्टी की निदेशक भूमिका समस्त सामाजिक हिस्सा अ
के हिता की समानता का स्वाभाविक इज़हार है। पूजीवादी प्रचारव
आरोप लगाया जाता है कि सोवियत सघ म केवल एक पार्टी का हो
बात का सबूत है कि सावियत पद्धति "सवसत्तावादी" है, कि
और आज़ादी को कुचल दिया गया है। लेकिन बात यह है कि सम
को पूजीवाद के मापदड से नापा नही जा सकता। अवश्य ही, पूजीव
अतगत जहा विरोधी वग होत ह, मजदूर वग की पार्टी क वध
कायक्लाप पर प्रतिबध लगाने का मतलब आज़ादी और जनवा
कुचलना है। लकिन इससे यह नही सिद्ध होता कि बहुदलीय व्यवस्थ
हालत म जनवादी व्यवस्था का समानाथक शब्द है। इतिहास म बहुत
इस बात का साक्षी है कि समाजवादी जनवाद एक पार्टी के नेतत्व म वि
व्यावहारिक चीज है, समाजवादी समाज के श्रमजीवी जनगण के स
हितो तथा इच्छा और व्यवहार की एक्ता को व्यक्त करता है। ले
इसका यह मतलब भी नही कि अनेक पार्टिया का अस्तित्व नही हो सक
जिसे हम कई समाजवादी देशा (बुलगारिया, जमन जनवादी जनत
पोलड चेकोस्लोवाकिया, आदि) म पाते हैं। ये सब पार्टिया समाजवा
निर्माण के समान ध्येय को पूरा करने क लिय मिलकर काम करती ह
उनका अस्तित्व उन देशा म क्राति के विशेष विकास का नतीजा है
समाजवादी क्राति की किसी सामान्य नियमितता का नहीं। पार्टी की निदश
भूमिका समाज के भविष्य के लिय समाजवाद क भविष्य के लिय उसप
विशाल कतव्य और ज़बरदस्त दायित्व का भार रखती है। परिणामस्वरूप,
समाजवाद क अतगत सामाजिक सबधो की विशेषता सामाजिक राजनीतिक
और सद्धातिक एक्ता है जिसकी बदौलत समाजवादी समाज एकशिला और
एकताबद्ध हाता है, छाटे ऐतिहासिक समय म अभूतपूव पमान क कायभार
पूर हा सकत ह, और जा समाजवादी समाज क विकास म एक नये और
शक्तिशाली स्रोत की भूमिका अदा करती है।

लेकिन इस एकता का यह मतलब नही है कि समाजवाद के अतगत अतविरोध होते ही नही। समाजवादी समाज मे भी अतविरोध होत ह, परन्तु वे प्रतिराधी नही हात क्याकि उनका स्रोत मामाजिक वग नही जा पुरानी व्यवस्था का कायम रखना चाहते हा। इस कारण समाजवादी समाज म यह क्षमता होती है कि वह इन अतविरोधो को हल और दूर कर सक, एक तो समय रहत, जसे ही वे परिपक्व हो, और दूसर, समूचे ममाज के हित म।

समाजवादी समाज के अतविरोध विशिष्ट होते ह क्याकि वे समाजवाद की उत्पत्ति और विकास की विशिष्ट रूपरखा से निर्धारित हाते ह। यह बात ध्यान म रखनी चाहिये कि समाजवाद पर अथव्यवस्था मे, रोजमर्रे के जीवन म, मानवा के चितन आदि मे पुराने ममाज के 'जन्म चिह्न" हात ह। मिसाल के लिय, समाजवाद के अतगत अतविराध नये और पुरान, यानी जो चीज़ मिट रही है और विकास के रास्त म बाधा बनने लगी है, उसके बीच होत हैं विकासमान उत्पादन शक्तिया और उत्पादन सबधा क विभिन्न पुराने तत्वा क बीच, विकास के नये स्तर तथा सगठन और प्रबधकाय क पुरान रूपा क बीच, नई हालता और काम की पुरानी बेकार पद्धति, आदि के बीच। कभी कभी ये अतविरोध आकस्मिक हात ह क्याकि वे, या समन्विय नतत्व तथा याजना की गलतिया का, अथवा वस्तुनिष्ठ नियमा की ओर पर्याप्त ध्यान नही देने आदि, का नतीजा होते ह।

समाजवादी समाज क अदर के अतविराधो का सामन लाने और उनको हल करने की समस्या पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। इस प्रसग म सिद्धातयुक्त आलाचना और आत्मालोचना का तथा त्रुटिया को दूर करने म कुशल सगठन का बडा महत्व है।

समाजवादी समाज म वर्गों और सामाजिक समूहो के बीच वग सघप तो नही होता मगर इससे यह नतीजा निकालना गलत हागा कि वह वग सघप के प्रसग क सवथा बाहर हाता है। सावियत सघ तथा अय समाजवादी देशा के लिय वग सघप की धार का रुख बाहर की ओर पूजीवाद की ओर है। इसी लिय समाजवादी देशा क लागा का यह अधिकार नही है कि अपनी क्रातिकारी चौकसी म किसी प्रकार ढिलाई आन द। उनका कतव्य ह कि अपने राज्या की प्रतिरक्षा क्षमता का निरन्तर शक्तिशाली बनाते रह, जो समाजवादी समाज की सुरक्षा का मुख्य साधन ह।

जैसा कि हमने कहा समाजवादी सामाजिक ढाचा गतिशील और लचकदार है। उसके परिवर्तन की प्रवृत्तिया क्या है?

समाजवाद के अतर्गत जो सामाजिक भेदभाव रह जाते हैं, वे अवश्य ही, समाज के बुनियादी कार्यकलाप के दौरान में किसी हद तक पुनरुत्पादित होते हैं। मगर समाजवाद की यह एक खास विशेषता है कि ये भेदभाव फैलते और बढ़ते नही, बल्कि इसके विपरीत धीरे धीरे मिटते जाते हैं और उनकी जगह यह होता है कि वर्ग तथा सामाजिक समूह एक दूसरे के निकटतर आते जाते हैं। समाजवाद के अतर्गत इस दिशा में कई तत्व क्रियाशील होते हैं, जिनमें से एक और शायद सबसे महत्वपूर्ण उत्पादन साधनों के प्रति समान अवस्था की स्थापना है। मजदूरों और किसानों के बीच शेष वर्गीय भेदभाव को धीरे धीरे मिटाने का यही आर्थिक आधार है। इस समस्या का अंतिम समाधान तदनुरूपी भौतिक स्थितियों की तैयारी से सबद्ध है कृषि उत्पादन के तकनीकी स्तर को ऊंचा करना तथा कृषि श्रम को औद्योगिक श्रम का ही एक भिन्न रूप बना देना, देहातों में सास्कृतिक तथा रोजमर्रे के स्तरों को ऊचा उठाकर शहरी सतह तक ले आना, आदि।

श्रमजीवियों की व्यापक जनता के भौतिक और सास्कृतिक स्तरों का विकास विभिन्न सामाजिक हिस्सों को, सबसे बढ़कर शारीरिक और मानसिक श्रम करनेवालों को निकटतर लाने के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समाजवाद के अतर्गत शिक्षा को केवल इसी दृष्टि से नहीं देखना चाहिये कि वह "सामाजिक गतिशीलता" का एक तत्व है, बल्कि वह मानसिक तथा शारीरिक श्रम के भेदभाव को दूर करने के अत्यत जटिल सामाजिक कार्यभार को पूरा करने का भी एक साधन है।

अत समाजवादी समाज के बदलते हुए सामाजिक ढाचे की प्रमुख तथा प्रबल प्रवृत्ति वर्गहीन, सामाजिक दृष्टि से समरूप समाज की दिशा में अग्रगति है। इस उद्देश्य की पूर्ति का मतलब होगा एक पूरे पैमाने के कम्युनिस्ट समाज का, सामाजिक समानता के समाज का निर्माण।

समाज का राजनीतिक संगठन।
ढांचा और गतिकी

राजनीति का क्षेत्र। राज्य और कानून

निजी स्वामित्व और वर्गों की उत्पत्ति के भारी सामाजिक परिणाम हुए। एक तो यह कि सामाजिक जीवन के जिन क्षेत्रों का निरूपण हो चुका था–उत्पादन का स्वरूप, सामाजिक प्रणाली तथा सामाजिक चेतना का ढाचा और तत्व–उनमें बुनियादी परिवर्तन हुए। दूसरे, सामाजिक जीवन में नई परिघटनाओं की उत्पत्ति होती है, जिनमें सामाजिक राजनीतिक संबंधों, संस्थाओं और संगठनों का विशेष महत्व है।

निजी स्वामित्व पर आधारित उत्पादन की उत्पत्ति का नतीजा यह हुआ कि कबायली समुदायों के सामाजिक उत्पादन का स्थान उन व्यक्तियों की छोटी या बड़ी आर्थिक इकाइयों ने ले लिया, जो उत्पादन साधनों के मालिक थे। निजी स्वामित्व मानवों को विभाजित करता और एक दूसरे के विरुद्ध ला खड़ा करता है। लेकिन क्या इसका यह मतलब है कि निजी स्वामित्व सिरे से आर्थिक संबद्धता का अंत कर देता है? नहीं, ऐसा नहीं है। आखिर, उत्पादन तो हमेशा ही सामाजिक रहता है क्योंकि उसका संचालन निश्चित सामाजिक उत्पादन संबंधों के रूप में होता है, और इससे यह नतीजा निकलता है कि विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का उनके आर्थिक संबंधों द्वारा उत्पादन में साथ लाया जाता है, जिससे एक वर्ग के अस्तित्व का मतलब ही दूसरे वर्ग का अस्तित्व है।

जिस तरह निजी स्वामित्व मानवों के आर्थिक संबंधों का अंत नहीं करता, बल्कि उनको केवल बदल देता है, ठीक उसी तरह वर्गों में समाज का विभाजन एक सम्पूर्ण वस्तु के रूप में समाज का अंत नहीं करता, बल्कि उसकी एकता का एक सर्वथा भिन्न स्वरूप प्रदान करता है। इस समय के

वाद से इस एकता का आधार एक ही उत्पादक समुदाय के सदस्यो के बीच सहयोग तथा परस्पर सहायता के सबध नही होते, बल्कि प्रभुता और अधीनता के सबध विरोधी और वैरी वर्गो के सबध होते है। जाहिर है कि ऐसी स्थिति मे समाज का एकजुट केवल एक वर्ग द्वारा दूसरे को बलपूर्वक अधीन बनाकर तथा पूरे समाज को एक वर्ग की इच्छा के मातहत करके ही रखा जा सकता है। इसका मतलब यह है कि वर्गों की उत्पत्ति **के साथ सामाजिक जीवन का एक विशेष क्षेत्र, सामाजिक राजनीतिक सबधो का क्षेत्र उत्पन्न होता है,** यानी, समाज पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के लिये वर्गों के सघर्ष का क्षेत्र। राजनीतिक सबध व्यक्तियो के बीच के सबध नही है, बल्कि मानवो के बडे समूहो जैसे वर्गों के बीच के सबध है। सामाजिक जीवन के इस नये क्षेत्र के सदर्भ मे अर्थव्यवस्था की निर्णायक भूमिका इस बात मे प्रकट होती है कि जिस वर्ग का प्रभुत्व अर्थव्यवस्था पर होता है, उसके पास यह भौतिक सम्भावना होती है कि पूरे समाज पर अपनी इच्छा थोप सके तथा उसे अपने प्रशासन और हुकूमत के सगठन के अधीन कर सके।

भौतिक, आर्थिक सबधो के बरखिलाफ, जिनका निरूपण मनुष्यो के मन से पहले गुज़रे बिना होता है, राजनीतिक सबध राजनीतिक चेतना, राजनीतिक विचारधारा के अनुसार रूप धारण करते है जिनकी रूपरेखा वर्ग सघर्ष के दौरान मे तथा उसके आधार पर निर्धारित होती है। राजनीतिक सबध विचारधारात्मक सबध होते है जो भौतिक, आर्थिक सबधो पर ऊपरी ढाचा होते है। राजनीति और अर्थतत्र की परस्पर क्रिया की खास विशेषता यह है कि 'राजनीति अर्थतत्र की अत्यत घनीभूत अभिव्यक्ति है' और यह कि 'राजनीति अर्थनीति की अपेक्षा प्राथमिकता प्राप्त किये बिना रह ही नही सकती।'*

प्रथम प्रस्थापना मे राजनीति की उत्पत्ति का तथा दूसरे मे समाज के जीवन मे उसकी भूमिका का उल्लेख किया गया है।

राजनीति का क्षेत्र उत्पन्न ठीक इसी लिये होता है कि वर्गों मे समाज का विभाजन होने के साथ ही आर्थिक तौर पर प्रभुताशाली वर्ग शासित

---

*ब्ला० इ० लेनिन सकलित रचनाए, तीन खण्डो मे प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६७ खण्ड ३, भाग २ पृ० १३८

जनता को अपनी इच्छा के आगे घुटना टेकने पर मजबूर केवल दमन के सहारे कर सकता है। इसका मुख्य आर्थिक हित यह है कि श्रमजीवी जनता को दबाये रखे और देश तथा विदेश में अपनी निजी स्वामित्ववाली आकांक्षाओं को पूरा करे। इसी लिये राजनीति उस वर्ग की **आर्थिक आकांक्षाओं की घनीभूत अभिव्यक्ति तथा पूर्ति** के सिवा और कुछ नहीं है, जो दमन के उपकरण का नियंत्रण करता तथा उसकी सहायता से अपने आर्थिक हितों की पूर्ति करता है। परन्तु इससे यह नतीजा निकलता है कि उत्पीडित वर्ग भी राजनीतिक संघर्ष के बिना शासकों के राजनीतिक प्रभुत्व को नष्ट किये बिना अपनी आर्थिक स्थिति में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं कर सकता। अतः चूंकि राजनीति आर्थिक समस्याओं के समाधान का एक आवश्यक उपकरण है इसलिये **इसे अर्थनीति पर प्राथमिकता प्राप्त है।** राजनीतिक सत्ता हासिल करके ही कोई प्रगतिशील वर्ग सड़े-गले आर्थिक संबंधों को मिटा सकता तथा नये संबंध स्थापित कर सकता है।

अतः आर्थिक संबंध स्पष्ट रूप से और तुरंत राजनीति के क्षेत्र में प्रतिबिंबित होते हैं। हर आर्थिक बुनियाद, जिसमें वर्गीय प्रतिरोध व्याप्त होता है, समाज के एक बिल्कुल निश्चित राजनीतिक संगठन को जन्म देती है जो उसके अनुरूप होता है। **राजनीति पर वही वर्ग हावी होता है, जो अर्थतंत्र पर होता है,** यानी, वह पूरे समाज की नेतृत्वकारी शक्ति की हैसियत पर पहुंच जाता है। यही बात आधुनिक पूंजीवादी देशों पर लागू होती है। इनमें वर्गों के बीच राजनीतिक संबंध मौलिक, स्थायी वर्गीय हितों द्वारा निर्धारित होते हैं।

लेकिन, निजी सम्पत्ति के मालिकों का वर्ग सम्पूर्ण समाज पर अपना प्रभुत्व तभी कायम रख सकता है, जब वह स्वयं पूरे वर्ग की हैसियत से काम करे, यानी जब वह संगठित हो। वह सम्पूर्ण रूप में संगठित और समान वर्गीय हितों की चेतना द्वारा एकजुट तभी रहता है, जब दूसरे, अधीन वर्ग के विरुद्ध संघर्ष में संलग्न होता है। यही संघर्ष ऐसे संगठन को जन्म देता है जिसके जरिए अर्थतंत्र पर हावी वर्ग से सम्बद्ध व्यक्ति मिलकर एक समुच्च शरीर का रूप धारण करते हैं और उत्पीडित वर्ग तथा पूरे समाज पर अपनी इच्छा लादते हैं। इसी राजनीतिक संगठन को **राज्य** कहा जाता है।

वर्गों और वर्ग [संघर्ष के] सिद्धांत को राज्य के सिद्धांत से जोड़कर मार्क्सवाद ने राज्य के सवाल को झाड़-पोंछ कर साफ कर दिया, जिसपर विभिन्न दार्शनिक और समाजशास्त्रीय सिद्धांतों की धूल जम गई थी और उसके वास्तविक स्वरूप को छिपा रही थी। परन्तु राज्य के प्रश्न के एक वैज्ञानिक निरूपण के बिना वर्गों और वर्ग संघर्ष का सिद्धांत अधूरा रह जाता है। **अंतर्विरोधी समाज में राज्य एक समिति है, जो अर्थव्यवस्था पर हावी वर्ग के मामलों का संचालन करती है, एक ऐसा संगठन है, जो उसके प्रभुत्व को कायम रखने और सुदृढ़ करने में तथा पूरे समाज का शासन करने में उसकी सहायता करता है।** राज्य घोर वर्गीय अंतर्विरोधों का नतीजा और उसकी अभिव्यक्ति है। इसका जन्म इस आवश्यकता के चलते हुआ कि विरोधी वर्गों पर लगाम कसी रखी जाये। वर्गों के बिना किसी राज्य का जन्म नहीं हुआ।

पुराने, कबायली संगठन के बरखिलाफ, जो खून के नाते रिश्ते की एकता पर आधारित था, राज्य मानवों को क्षेत्रीय सिद्धांत के आधार पर एकजुट करता है।

राज्य की उत्पत्ति का मतलब यह भी है कि समाज में मनुष्यों का एक ऐसा समूह बन गया है, जिसका एकमात्र पेशा राज्य का कार्यकलाप है, नीति निर्धारित करना और उसका संचालन करना, राजनीतिक विचारधारा का निरूपण करना इत्यादि है, यह राजनीतिज्ञों, विचारकों, सरकारी कर्मचारियों का समूह है।

राज्य का सारतत्व इसकी भूमिका और कार्यकलाप में व्यक्त होता है। **राज्य का मुख्य, अंदरूनी कार्य** एक वर्ग पर दूसरे का प्रभुत्व कायम रखने के लिए उत्पीडित वर्गों के प्रतिरोध को दबाने के लिए राज्य प्रयोग है। इसके अतिरिक्त अंतर्राजकीय संबंधों के क्षेत्र और उसके अनुरूप, राज्य के **बाह्य कार्य** का निरूपण होता है जिसमें यह काम शामिल है कि बाहरी हस्तक्षेप से अपने इलाके को बचाया जाये तथा देशों में निश्चित संबंध स्थापित किये जायें। ये दोनों कार्य किसी भी शोषक राज्य की नीति के बुनियादी अंग हैं।

अपने कार्यों की पूर्ति के लिए जरूरी है कि राज्य के पास सत्ता के अपने उपकरण हों, दमन के उपकरण जैसे सेना, पुलिस, अदालत तथा कारागार आदि के रूप में उनके साज-सामान। **राज्य की उत्पत्ति का मतलब है जनता से अलग दमन के उपकरण की स्थापना।**

वग पूव समाज म कबीले के सदस्य मिल-जुलकर अपने समान हितो की रक्षा कर लिया करते थ और उनसे अलग किसी सशस्त्र शक्ति की जरूरत नही थी, जबकि वर्गीय समाज म ऐसी एक शक्ति जरूरी होती है और कोई राज्य इसके बिना नही रह सकता।

दमन के उपकरण का कायम रखने, युद्ध करन, आदि, के लिये धन की आवश्यकता होती है, और यह टक्स तथा अन्य करो के रूप मे लोगो स वसूला जाता है। कोई भी राज्य खजान और नौकरशाही के बिना नही रह सकता। शोषक वग केवल आम जनता का दमन ही नही करत, बल्कि उन्हा को मजबूर करते हैं कि वे दमन के इस उपकरण को कायम रखे। टक्सा का बाझ श्रमजीवी जनता के कधा पर हमशा भारी पडता है, और उसका बाझ उतना ही अधिक भारी होता है, जितना अधिक बडा दमन का उपकरण होता है, जितना अधिक सेना का खच होता है, शस्त्रास्त्र आदि की लागत होती है, आदि। आधुनिक साम्राज्यवादी राज्य इस नियम का अपवाद होना तो दूर रहा, दरअसल इसकी पुष्टि करते है।

अपने मुख्य कार्यों के अलावा, जो देश के भीतर तथा अतर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे शासक वग के हितो की रक्षा के कारण उत्पन्न होते हैं, राज्य और भी कई काम करता है, जसे सावजनिक कानून और सुरक्षा बनाये रखता है, निश्चित प्रशासकीय काय आदि, करता है। यह सही है कि शोषक वर्गों की उत्पत्ति के पूव मनुष्य राज्य के बिना सुव्यवस्था बनाये रखते थे और अपराधियो को दड दिया करते थे। इसलिये सुव्यवस्था बनाये रखने की जरूरत स्वय राज्य की उत्पत्ति का कारण नही हो सकती थी।

राज्य कुछ आर्थिक काय भी करता है। वह एक निश्चित आर्थिक नीति पर अमल करता है (जसे सरक्षणवाद अथवा उन्मुक्त व्यापार) उत्पादन और सचार के कुछ प्रधान साधन उसके कब्जे मे तथा उसके द्वारा नियत्रित होते हैं। वह सिचाई की बडी सुविधाओ तथा रेलवे के निर्माण का प्रबध करता, दुलभ सामाना का बटवारा करता, उद्योग तथा व्यवसाय के लिये नियम और कानून बनाता, सामाजिक विधिनिर्माण करता ह, इत्यादि। इन कार्यों का अतय और परिमाण ठोस हालता पर निभर करते ह तथा प्रगतिशील या प्रतिक्रियावादी हो सकते ह।

आज पूजीवादी राज्य को अथतत्र के नियत्रण म अधिकाधिक भूमिका अदा करनी होती हे। इसके करण दो हैं, एक तो बडे पमान क औद्योगिक

उत्पादन के, खासकर चालू वैज्ञानिक और तकनीकी क्राति के अ
विकास की वस्तुगत प्रवत्तिया, और दूसरे, अथतत्र को प्रभावित क
सरकारी उपकरणा को इस्तेमाल करके समाजवाद के मुकाबले म पू
को सुस्थिर करने की इजारेदार पूजी की आकाक्षाए।

इस तरह, अपने सारतत्व मे, शोषक राज्य शासक वग का एक
राजनीतिक सगठन है और उसके वर्गो के ऊपर और उनसे परे हो
सारी वात या तो भ्रम का नतीजा है या धोखे का। पूजीवादी वज्ञ
इस भ्रम को (कुछ जान-बूझकर और कुछ अनजाने म) राज्य का सा
बताते है। पूजीवादी विचारको द्वारा व्यक्त किये गये विचारो की स
विविधता के बावजूद, वे सभी राज्य के उपरिवर्गीय स्वरूप के विचार
आधारित ह। इस विचार को सभी अवसरवादी स्वीकार करते ह।

कानून उन उत्पादन सबधो को, जिन्ह शासक वग चाहता है, व्य
तथा नियमवद्ध करता है। वह सविधिया तथा विनियमो द्वारा, जो उत्पा
हाते हैं, मनुष्यो क परस्पर सबधो को नियत्रित करता है। कानून का अस्ति
सन्ा नही था। इतिहास की प्रारम्भिक अवस्थाओ म, आदिम सामुदायि
व्यवस्था के अतगत कोई कानून नही था और मनुष्या का आचरण त
उनके आपस के सबधा का नियत्रण लोकाचार तथा रिवाज द्वारा हुआ करत
था, जो समुदाय के सभी सदस्या के हिता का व्यक्त करते थे। उनक
पालन करना परम्परा, शिक्षा तथा पूरे समुदाय और कबीले के मुखिया क
प्रभाव द्वारा पवित्र कार्यों की हैसियत प्राप्त कर चुका था। एगेल्स ने लिखा
सामुदायिक व्यवस्था के अतगत 'आतरिक क्षेत्र म अभी अधिकारा और
कत्तव्या म विभेद न हुआ था किसी अमरीकी इडियन के सामने यह सवाल
कभी नही उठता था कि सावजनिक मामला म भाग लेना, रक्त प्रतिशोध
लना या क्षतिपूर्ति करना उसका अधिकार है अथवा कत्तव्य। यह सवाल
उसका उतना ही बेमानी लगता, जितना यह कि खाना, सोना या शिकार
करना उसका कत्तव्य है अथवा अधिकार।' *

जहा वगपूव समाज म कबील के सरदारा और बुजुर्गों की सत्ता परम्परा
पर तथा समुदाय और सरदार क अधिकार पर निभर करती थी, वहा

---

* का० माक्स, फ्रे० एगल्स, सकलित रचनाए चार भागा म, प्रगति
प्रकाशन, मास्को, भाग ३, पृ० ३३१

राज्य के अंतगत सत्ता दमन पर निभर करती है। अधिकार की सत्ता का स्थान सत्ता के अधिकार ने ले लिया है।

जब कबीले के सगठन का स्थान राज्य दमन के एक उपकरण के रूप मे ले लेता ह तो लोकाचार और रिवाज की जगह कानून एक नियमावली क रूप मे ले लेता ह, जिसे राज्य निधारित करता और जिसको राज्य शक्ति सुरक्षित और सचालित करती है। कानून का काम निजी स्वामित्व के सबधा को सुदढ करना तथा इनपर हमला को राज्य के कानूनो के उल्लघन के रूप म प्रस्तुत करना है। परिणामस्वरूप कानून की उत्पत्ति तभी हाती है, जब समाज मे सम्पत्ति की असमानता पैदा होती है और ऐसी हालत उत्पन्न होती हैं, जिनम शोषक अल्पसख्यक लाग अपना आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व पूरे समाज पर अपनी इच्छा को लादे बिना कायम नही रख सकते। **कानून**, मार्क्स और एगेल्स ने लिखा है **शासक वग की इच्छा के सिवा कुछ नहीं जिसे कानून की प्रतिष्ठा प्रदान कर दी गई है।**

कानून निजी सम्पत्ति के मालिका के, शासक वग के, व्यक्तिगत नही, बल्कि आम हितो की अभिव्यक्ति ह। शोषक समाज म कानून मनुष्या के परस्पर सवधो म सबसे बढकर निजी स्वामित्व के हिता की रक्षा करता है। अगर विवाह, गोद लेना, उत्तराधिकार आदि का निजी स्वामित्व स न जोडा गया होता तो वे कानून द्वारा नियन्त्रित उसी तरह नही हाते, जिस तरह प्रेम, मत्री आदि नही हाते ह।

कानून ऐसे नियमा का रूप लेता है, जिनका पालन करना मनुष्यो के लिय अनिवाय है क्योकि वह राज्य की इच्छा व्यक्त करता है। तो राज्य की इच्छा किस चीज से निर्धारित होती है? एगेल्स ने लिखा है 'समाज की सभी आवश्यकताओ को कानूना के रूप मे आम वधता प्राप्त करने के लिये राज्य की इच्छा से होकर गुजरना जरूरी है परन्तु प्रश्न यह उठता है कि—व्यक्ति अथवा राज्य की—इस केवल औपचारिक इच्छा की अन्तवस्तु क्या है, और इस अन्तवस्तु का स्रात क्या है? क्या कारण है कि यही इच्छा की गयी, अन्य कुछ नही? इसकी जाच कर तो पता चलता है कि आधुनिक इतिहास मे राज्य की इच्छा आम तौर पर समाज की वदलती हुई आवश्यकताओ से, इस या उस वग क प्रभुत्व स, अन्तत

उत्पादक शक्तियो और विनिमय-सबधो के विकास से निर्धारित होती है।"*

यह है कानून का सारतत्व। लेकिन पूजीवादी विचारधारा इसको तोड मरोडकर पेश करती है।

ऊपरी दृष्टि से देखने पर लगेगा कि कानून कोई ऐसी चीज है, जो वर्गों के ऊपर और उनसे परे है, पूरे समाज की इच्छा को व्यक्त करता है जिसके लिये एक निश्चित व्यवस्था और सगठन की जरूरत है। और पूजीवादी विचारक यह विचार फलाते है कि समाज का निर्माण तथा इसकी एकबद्धता कानून द्वारा स्थापित होती है। परन्तु यह एक कानूनी भ्रम है।

राजकीय विधि-व्यवस्था प्रत्येक सामाजिक सरचना म हावी ही नही, बल्कि एकमात्र कानूनी व्यवस्था के रूप म होनी है। किसी भी समाज म दो कानूनी व्यवस्थाए नही हो सकती, क्योकि कानून कारगर तभी होता है जब वह राज्य द्वारा स्थापित होता और बलपूवक अमल म लाया जाता है। जिस तरह किसी समाज मे दो राज्य नही हो सकते, उसी तरह उसम दो विधि-निर्माता, दो विधि-व्यवस्थाए नही हो सकती।

राज्य के **सारतत्व** की धारणा उस पूरे काल के लिये, जिसम वर्गीय समाज का अस्तित्व रहता है, उसके सामान्य स्वरूप को व्यक्त करती है। मगर राज्य का, उसके विकास की स्थिति मे, विश्लेषण करने के लिये राज्य के **प्रकारो और रूपो** की धारणाओ को प्रस्तुत करना आवश्यक है। राज्य किस प्रकार का है, यह इस बात पर निभर करता है कि राजनीतिक प्रभुत्व किस वग के हाथा मे है। ऊपर **तीन मुख्य अतविरोधी सरचनाओ पर** विचार किया गया है। उनके अनुरूप **शोषक राज्य तीन बुनियादी प्रकार के होते ह दास-स्वामियो का राज्य, सामतवादी राज्य तथा पूजीवादी राज्य।** जहा तक समाजवादी राज्य की बात है, यह एक बिल्कुल नये प्रकार का राज्य है, जिसका बुनियादी उद्देश्य बहुसख्यक लोगो की सत्ता का अल्पसख्यको पर, शोषको पर स्थापित करना है समस्त शोपण को जड स उखाड फेंकना है वर्गों और राज्य को मिटाना है और एक वगहीन कम्युनिस्ट समाज का निर्माण करना है।

---

* फ्रे० एगेल्स 'लुडविग फायरबाख और क्लासिकल जमन दशन का अत', प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० ५४

इनके अलावा, इतिहास में कुछ समय के लिये सक्रमणकालीन प्रकार के राज्य भी हो सकते हैं। इनकी उत्पत्ति उस समय होती है, जब क्राति का नेतत्व ऐसे वग प्राप्त कर लेते हैं, जो क्राति के स्वरूप द्वारा सम्भावित सामाजिक परिवतनो से ज्यादा बुनियादी सामाजिक परिवतन करना चाहते ह। सक्रामी राज्यो मे वे शक्तिया मिल जाती ह, जो क्राति को और आगे बढाने के लिय अनुकूल स्थिति पैदा करना चाहती ह।

सक्रामी प्रकार का एक राज्य है सवहारा तथा किसानो का जनवादी-क्रातिकारी अधिनायकत्व। उसकी स्थापना पूजीवादी क्राति के दौरान मे होती है जब नतत्व सवहारा वग के हाथ म होता है, जो किसानो के साथ मिलकर सघष करता तथा क्राति को आगे ले जाने का प्रयास करता है।

औपनिवेशिक अधीनता से मुक्त होनेवाले कुछ देशो मे सामत विरोधी तथा साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय स्वाधीनता सघष के दौरान म विभिन्न प्रकार के सक्रामी राज्यो की, जिनका नेतत्व जनवादी शक्तिया के मोर्चे के हाथ मे होता है और जिनका उद्देश्य राजनीतिक तथा आर्थिक आजादी को सुनिश्चित करना है, रचना की आवश्यक स्थितिया अकसर उत्पन्न होती रहती हैं। इस प्रकार का राज्य प्रतिक्रियावादी शक्तियो का विलगाव करने म, जिनम साम्राज्यवाद स मिल जाने की प्रवत्ति होती है, उन शक्तियो के विरुद्ध लडने म, जो आतकवादी निरकुश सरकारे कायम करना चाहती ह, और राष्ट्र की जनवादी शक्तियो को एकताबद्ध करने मे तथा उन्ह जनता के सच्चे हितो के लिये सघष मे एकजुट करने मे सहायक होता है।

मगर एक ही प्रकार का राज्य भिन्न रूप धारण कर सकता है। राज्य का रूप निभर करता है प्रशासन की प्रणाली (गणराज्य, निरकुश अथवा वधानिक बादशाही) पर, राज्य के ढाचे (एकात्मक या सघात्मक) और राजनीतिक पद्धति के स्वरूप पर, जो इस बात से निर्धारित होती है कि राजनीतिक प्रभुता को सुनिश्चित करने के लिये क्या साधन अपनाये गय ह। एक या दूसरे प्रकार के राज्य का रूप निभर करता है ठोस ऐतिहासिक स्थितियो, वर्गीय शक्तियो के सतुलन तथा युक्त देश म विकास की ऐतिहासिक विशेषताओ पर। उदाहरणार्थ पूजीवादी राज्य जनवादी, ससदीय गणराज्य हो सकता है अथवा वधानिक बादशाही, आदि हो सकता है। राज्य का प्रकार और रूप प्रचलित कानून द्वारा स्थिर कर दिया जाता है।

इतिहास मे निम्नलिखित ठोस प्रकार के कानून रहे ह दास प्रथा का, सामतवादी, पूजीवादी और समाजवादी। दास प्रथावाले समाज म दास कानून के पात्र नही है और उनकी रक्षा केवल दास-स्वामियो की सम्पत्ति क रूप म की जाती है ठीक उसी तरह जसे उनकी अन्य सम्पत्ति की रक्षा की जाती है। सामतवादी कानून भूमि पर सामती ज़मीदार के स्वामित्व को तथा वास्तविक उत्पादका की अधीनता के विभिन्न रूपा को सुरक्षित रखता है। इस अधीनता का सबसे कठिन रूप भूदास प्रणाली है। सामतवादी विधि विभिन्न श्रेणियो की असमानता को कानूनी रूप देती है, प्रभुताशाली श्रेणिया-अभिजात वग और पुरोहिता को विशेपाधिकारप्राप्त स्थान प्रदान करती है। पूजीवादी समाज मे, जो निजी स्वामित्ववाले मालिका का सबसे उन्नत समाज है, कानून की नज़र मे सभी नागरिका की औपचारिक समानता की घोषणा कर दी गई है। परतु इसकी हसियत अपने जाहिरी रूप से अधिक कुछ नही है क्याकि पजीवादी समाज की भाति और कोई समाज नही हुआ, जिसम विधि के रूप और अतय मे इतना स्पष्ट रहा हो। पूजीवादी समाज मे विधि, रूप के लिहाज़ से, शासक वग की इच्छा नही मालूम पडती, बल्कि कानूनी नियमो की प्रणाली मालूम होती है, जो मनुष्या के परस्पर सबधा को नियन्त्रित करती, उनके अधिकार तथा एक दूसरे के प्रति उनके क्तव्य निर्धारित करती तथा समाज के हित और व्यक्ति और स्थानीय सगठना, आदि के हित, जिनकी आज्ञा कानून द्वारा मिली हो, सुनिश्चित करती है। परन्तु पूजीवादी समाज मे कानून की नज़र म नाम मात्र की समानता सामाजिक असमानता के लिये, श्रमजीवी जनता के भयकर शोपण के लिये, पूजीपति यानी उत्पादन साधना के मालिक पर उजरती मज़दूर की आर्थिक अधीनता के लिये एक परदा है। यह कानून श्रमजीवी जनता पर दमन के ज़रिये राज्य के उपकरणा—सेना, पुलिस, अदालत और कारागार—द्वारा, तथा शिक्षा प्रणाली और जन सचार के माध्यमा द्वारा लादा जाता है।

सभी शोषक वर्गों के कानून के बरखिलाफ, समाजवादी कानून का निर्माण मज़दूर वग तथा समस्त श्रमजीवी जनगण की विधि चेतना के अनुसार, जो चाहते ह कि उत्पादन साधना पर सामाजिक स्वामित्व की रक्षा की जाय और समाजवादी समाज क सदस्या म परस्पर सहयोग और सहायता क सबधा के अनुसार किया जाता है। यहा कानून, इतिहास म

पहली वार, समस्त जनगण की इच्छा की अभिव्यक्ति, केवल रूप म ही नही वल्कि कारगर ढग से असलियत मे भी, वन जाती है।

राज्य और विधि के प्रकार और रूप म भेद रेखा खीचना वुनियादी तौर पर महत्वपूण है। राज्य और विधि किस प्रकार के ह, इससे उनका वर्गीय स्वरूप प्रकट होता है और उनके रूप से यह जाहिर होता है कि वर्गीय प्रभुता का सचालन करने म सगठन के कौनसे तरीके तथा राजनीतिक उपकरण इस्तेमाल किये जाते ह। फासिस्ट प्रणालिया के अतगत पूजीपति वग के अधिनायकत्व की अभिव्यक्ति खुले आतकवादी रूपा म होती है। पूजीवादी-जनवादी राज्या म शासक वग विभिन्न प्रतिनिधि जनवादी सस्थाओ द्वारा शासन करता है, जिनसे वर्गों के ऊपर और उनसे पर होने का भ्रम पैदा होता है। एक वहुत महत्वपूण वात समझने की यह है कि जनवाद रूप का विशेषण है, पूजीवादी राज्य के सारतत्व का नही, और इसी लिये अधिनायकत्व और जनवाद को विरोधाभासी समझना सही नही है। **अतविरोधी समाजो मे जनवाद सदा किसी वग का अधिनायकत्व हुआ करता है।** पूजीवादी राज्य के वर्गीय चरित्र पर परदा डालने के उद्देश्य से पूजीवादी विचारक तथा अवसरवादी जान-बुझकर जनवाद की धारणा को राज्य के सारतत्व से सवधित करते है। वे कहत ह कि जनवाद वर्गों के ऊपर और उनसे परे है, "शुद्ध' जनवाद है, और उसको तथा अधिनायकत्व को एक दूसर का विरोधी मानत ह। व कहते हैं कि जहा जनवाद है वहा अधिनायकत्व नही हो सकता और जहा अधिनायकत्व है वहा जनवाद नही हो सकता। परतु इस तरह के, वर्गों से ऊपर और पर जनवाद का कहीं कोई अस्तित्व नही रहा। जनवाद की हैसियत एक उपकरण से अधिक नही है, जो या तो पूजीवादी निजी स्वामित्व की रक्षा के लिये इस्तेमाल किया जायेगा और ऐसी हालत म वह पूजीवादी जनवाद होगा, या निजी स्वामित्व के विरुद्ध और समाजवादी निर्माण के पक्ष मे इस्तेमाल किया जायेगा और तव वह समाजवादी जनवाद होगा।

परिणामस्वरूप, जनवाद राज्य के रूप को व्यक्त करता है और उसका वर्गीय चरित्र होता है।

पूजीवाद के अतगत जनवाद अल्पसख्यका का जनवाद है। पूजीवादी-जनवादी राज्या म विभिन्न अधिकारो और आजादिया की, समान अवसरा" आदि की घोषणा की जाती है, परन्तु सवाल यह है कि क्या गरीव और

अमीर म, निधन और धनवान म समानता सम्भव भी है? नाम मात्र की समानता की छत्रछाया मे जो अवसर प्रदान किये जाते ह, उनसे लाभान्वित वही होते है, जिनके पास ऐसा करने के आवश्यक साधन होते ह। दक्षिणपथी सोशलिस्टा का कहना है कि आधुनिक पूजीवादी राज्य एक "सामाजिक जनकल्याण राज्य" है, जो केवल पूजीपतियो के ही नही, बल्कि मजदूर वग के हिता का भी प्रतिनिधित्व करता है। इसलिये समाजवाद की दिशा मे आगे कदम उठाना उस राज्य के दायरे म ही सम्भव है और उसे शुद्ध "जनवादी" होना चाहिये, उसमे कोई "अधिनायकत्व" न हो। य दावे वास्तविक परिस्थिति के प्रतिकूल ह। पूजीपति वग अपने अधिनायकत्व को अमल मे लाने के लिये सभी तरीके अपनाता है, जिनम प्रशासन अधिकारियो को रिश्वत देना, सरकार और सट्टाबाजार की मिलीभगत, उच्च सरकारी अधिकारियो और इजारेदारा का मेलजाल, चुनावा के दौरान मे तरह तरह की चालबाजी, धोखा और फरेब तथा लफ्फाजी सम्मिलित ह। और जब इनसे काम नही चलता तो पूजीपति वग हिंसा की नगी तलवार से काम लेने और जोर-जबरदस्ती करने की धमकी देने लगता है। इसके अतिरिक्त पूजीवादी जनवाद म शायद ही कभी सबा के लिये "समान अवसर" नाम मात्र के लिये भी होते हो। व्यापक मताधिकार पर तरह तरह के प्रतिबध और शर्तें लगा दी जाती है, जिसके चलते श्रमजीवी जनता का एक बडा हिस्सा वोट नही दे सकता। अनेक पूजीवादी राज्यो म चुनाव प्रणाली म धोखेबाजी से काम लिया जाता है, जिसके कारण ऐसी बाधाए उपस्थित हो जाती है, जो वामपक्षी जनवादियो को विधान सभाओ म आने नही देती। इसी लिये, पूजीवादी-जनवादी गणराज्यो म, एगेल्स के शब्दो म, 'दौलत अप्रत्यक्ष रूप से, पर और भी ज्यादा कारगर ढग से, अपना असर डालती है।"* पूजीवादी देशो के असली मालिक, जो ससदो और सरकारो के पीछे रहते ह, कोयल, तेल और लोहे के बिना ताज के बादशाह हैं शस्त्रास्त्र निर्माता, बैक स्वामी आदि ह। जब तक वे अपने आपको सुरक्षित महसूस करते है, तब तक वे यही पसन्द करते ह कि उनके कारगर अधिनायकत्व पर "आजादी और

---

*का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए, चार भागो म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग ३, पृ० ३४६

जनवाद" का रगीन परदा पडा रहे, क्योकि उनकी सत्ता को व्यक्तिया, सस्थाम्रा ग्रौर पाटिया के तारतम्य से कोई खतरा नही होता।

लेकिन माक्सवाद द्वारा पूजीवादी जनवाद की ग्रालाचना का मतलब यह नही कि वह उसको बिल्कुल ठुकरा देता है। पूजीवादी जनवाद, मिसाल के लिये, मध्य युगा या ग्रधिनायकत्व के प्रत्यक्ष ग्रातकवादी रूपो की तुलना म ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिशील है, क्योकि उसमे सवहारा के राजनीतिक सगठना को कानूनी रूप मे काम करने का मौका होता है, उसके लिये ग्रपनी शिक्षा की तथा ग्रपने ग्रधिकारो की रक्षा करने की सम्भावनाए होती ह।

सवहारा, जनवाद के लिये सबसे ग्रधिक सुसगत रूप से लडनेवाला वग है। हमे यह बात याद रखनी चाहिये कि ग्रनेक ग्राज़ादिया, सामाजिक सुविधाए ग्रौर ग्रय जनवादी मूल्य जनता न कठोर सघप के दौरान मे पूजीपति वग से ज़बरदस्ती हासिल किया है, ग्रौर श्रमजीवी जनता को इह बचाये रखने के लिये बार बार कदम उठाना पडता है। मज़दूर वग के लिये व्यापक जनवादी मागो के लिय सघष समाजवाद की ग्रोर जाने के रास्त की एक मजिल है, जनवाद के उच्चतम रूप—श्रमजीवी जनता के लिये समाजवादी जनवाद के लिय लडाई मे ग्रागे का एक कदम है।

इसके विपरीत, पूजीवादी इजार जनवाद के दुश्मन ह। साम्राज्यवाद के युग मे पूजीवादी जनवाद सकट के दौर मे प्रवेश करता है, ग्रौर इसकी *ग्रभिव्यक्ति सबसे बढकर पूजीवादी राज्या के फासिस्टीकरण की प्रवत्ति म* होती है। इजारेदारो को जब ज़रूरत पडती है तो उह पूजीवादी-जनवादी विधि व्यवस्था को उठाकर फेकने मे कोई हिचकिचाहट नही होती। लेकिन *ग्राजकल प्रतिक्रियावादियो को ऐसा करने म कठिनाई बहुत ज्यादा होती है,* क्योकि जनवाद ग्रौर समाजवाद का समथन करनेवाली शक्तिया बहुत ताकतवर हो गई हैं ग्रौर इसी लिये प्रतिक्रियावादिया को जनवाद पर ग्रपना *हमला "जनवाद बचाग्रो" नारे के परदे म करना पडता है।* फासिस्टीकरण का खतरा इस बात से भी पैदा होता है कि वह ग्राक्रमणकारी साम्राज्यवादी युद्धो की तयारी से, सैन्यीकरण तथा हथियारबदी की होड से ग्रौर पूजीवादी राज्या के दमनकारी उपकरणा मे वृद्धि से सबधित है। इसी लिय जनवादी ग्राज़ादियो के लिये श्रमजीवी जनता का सघष ग्राज ग्रभिन्न रूप स शाति के सघष स जुडा हुग्रा है।

इस तरह, पूजीवादी राज्य, चाहे उसका रूप कुछ भी क्यो न हो, अतत शासक वर्ग का सगठन है, जिसका काम पूजीवादी व्यवस्था को सुदृढ बनाना तथा अपने वर्ग विरोधियो का दमन करना है। पूजीपति वर्ग के लिये अपने अधिनायकत्व का ढिढोरा पीटना हमेशा सुविधाजनक नही हुआ करता और इसलिये वह इसमे अप्रत्यक्ष ढग से काम लेता है। लेकिन तब पूजीपति वर्ग के लिये इसका कोई कारण नही होता कि श्रमजीवी जनता को व्यापक अधिकार प्रदान करे जिन्हे वह उसके विरुद्ध इस्तेमाल कर सकती है, चुनाचे वह हेराफेरी और चालबाजी से काम लेता है और कुछ सुविधाओ से अधिक कुछ नही देता है। जब वह देखता है कि कोई जनवादी रूप अब उसके लिये सुविधाजनक नही रहा, तो उसे अलग कर दिया जाता है पूजीवादी वधिकता को ढा दिया जाता है और खुल्लम खुल्ला दमनकारी तरीके अपनाये जाते है। राज्य का वर्गीय स्वरूप तीव्र वर्गीय लडाइयो के दौर मे सबसे नग्न रूप मे सामने आता है। इससे इस निर्विवाद तथ्य की पुष्टि होती है कि वर्गों मे खुले सघर्ष से जनता की राजनीतिक चेतना का स्तर ऊचा होता है।

राज्य की उत्पत्ति चूकि वर्गों के साथ होती है, इसलिये उन्ही के साथ उसका लुप्त होना भी अनिवार्य है। वह चिरस्थायी नही है और वर्गों का अत होने के साथ साथ मिट जाता है। परन्तु केवल एक समाजवादी राज्य मिट सकता है और यह एक ऐसा विषय है, जिसपर हम आगे चलकर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

इतिहास की पूरी अवधि मे एक राज्य व्यवस्था की जगह दूसरे की स्थापना बराबर क्राति के जरिए होती रही है। इसी लिए राज्य के आम सिद्धात के बाद अब हम **सामाजिक क्राति के मार्क्सवादी सिद्धात पर** विचार कर सकते है।

सामाजिक क्राति का सिद्धात

सामाजिक क्राति का सिद्धात उन स्थितियो और नियमो पर विचार करता है, जिनके अधीन सामाजिक विकास की प्रक्रिया के दौरान मे एक सामाजिक आर्थिक सरचना से दूसरे मे सक्रमण होता है।

वर्गीय समाजो मे मनुष्यो के पारस्परिक सामाजिक सबधो मे क्रातिया उत्पादन प्रणाली के विकास के वस्तुनिष्ठ नियमो द्वारा निर्धारित होती है।

जैसा कि हम पहले ही साबित कर चुके है (देखिये दूसरा और तीसरा अध्याय) एक उत्पादन प्रणाली से दूसरे म सक्रमण की आवश्यकता उत्पादन सबधा और उत्पादक शक्तियो के स्वरूप की अनुकूलता के नियम के कारण उत्पन्न होती ह। किसी भी सामाजिक क्राति का आर्थिक आधार नई उत्पादक शक्तिया और पुराने उत्पादन सबधा का विरोध है, जा अत्यत तीव्र रूप धारण कर चुका है। इसका उद्देश्य इस विरोध को दूर करना है। **सामाजिक क्राति को उत्पादन साधनो के स्वामित्व के सडे गले रूप को मिटाने, उत्पादन के पुराने सबधो को खत्म करने और इस तरह उत्पादक शक्तियो द्वारा प्राप्त स्तर और स्वरूप के मुताबिक नये उत्पादन सबधो की स्थापना का रास्ता साफ करने के ऐतिहासिक दृष्टि से परिपक्व, कार्यों को पूरा करना है।** क्राति के इस महान नियम का पता मार्क्स ने लगाया था, जिन्होंने लिखा 'अपने विकास की एक खास मजिल पर पहुचकर समाज की भौतिक उत्पादन शक्तिया तत्कालीन उत्पादन सबधा से, या—उसी चीज को कानूनी शब्दावली म या कहा जा सकता है—उन सम्पत्ति सबधा से टकराती ह जिनके अतगत वे उस समय तक काम करती होती है। ये सबध उत्पादक शक्तिया के विकास के अनुरूप न रहकर, उनके लिय बेडिया बन जाते ह। तब सामाजिक क्राति का एक युग शुरू होता है।' *

इस स्थापना से कुछ बहुत महत्वपूर्ण नतीजे निकलते ह

१ सामाजिक क्रातिया किसी भी लिहाज से सामाजिक विकास की "साधारण" गति का "खडन" नही है, जसा कि मार्क्सवाद के शत्रुओ का कहना है, बल्कि ज्यो-ज्यो वर्गीय समाज विकसित होता है, एक से दूसरी सामाजिक आर्थिक सरचना मे सक्रमण का एक आवश्यक रूप ह।

२ क्रातिया अलग व्यक्तियो, समूहो या वर्गों की इच्छा से उत्पन्न नही हुआ करती बल्कि तभी होती है, जब उनके लिय सही भौतिक स्थितिया परिपक्व हो चुकी होती ह।

३ प्रत्येक क्राति का एक निश्चित वस्तुगत सामाजिक आर्थिक अतय होता है, जो मनुष्य की इच्छा और चेतना से स्वतत्र होता है।

किसी क्राति का चरित्र निर्भर करता है उन उत्पादन सबधा पर, जो उसके द्वारा नष्ट होते, तथा उन सबधा पर, जो उनके स्थान पर स्थापित

---

* का० मार्क्स फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए, चार भागो म, प्रगति प्रकाशन मास्को, भाग २, पृ० ६

होते ह। वे ऋातिया, जिनके द्वारा उत्पादन के सामतवादी सबध वि
हुए और उनकी जगह पूजीवादी सबध स्थापित हुए, **पूजीवादी** ऋातिया
इनसे मूलत भिन्न **समाजवादी** ऋातिया ह, जिनके द्वारा उत्पादन
पूजीवादी सबधो को मिटाकर तथा समाजवादी सबध स्थापित करके पूजा
के बुनियादी अतविरोध हल किये जात ह।

अगर सामाजिक ऋाति के कार्यों का पूरा करना है तो जरूरी ह
है कि पुराने समाज क शासक वर्गों के प्रतिरोध को दूर किया जाय,
राज्य को अपनी पकड मे लिये रहत हैं। इस उद्देश्य के लिये आवश्यक हा
है कि राज्य मे सगठित शासक वग की शक्ति के मुकाबले म इस वग
प्रभुत्व का तख्ता उलटने के लिए सघष करनेवाले वग की सगठित शवि
कायम की जाये। शासक वग के हाथो से राज्य सत्ता छीनकर और इस
प्रतिरोध को कुचल कर ही ऋातिकारी शक्तिया पुरान पर नये की विज
मे सहायक हो सकती ह। इसी लिये **किसी भी क्राति मे राज्य सत्ता क
सवाल प्रधान सवाल है।** सही माने मे ऋाति नाम है राज्य सत्ता के एक
वग के हाथो स निकलकर दूसरे के हाथो मे चले जाने का। प्रगतिशाल
सामाजिक शक्तिया जब एक बार नयी ऋातिकारी सत्ता स्थापित कर लती
ह तो वे इसे समाज की अथव्यवस्था म आवश्यक परिवतन लाने के लिये
इस्तेमाल करती ह।

जहा तक शासक वग का प्रतिरोध इसके विरोधी अन्य वर्गों के सगठित
सघष द्वारा कुचला जाता है क्राति इन्ही वर्गों के जरिये आती है, जिसका
मतलब यह है कि **यही वग क्राति की चालक शक्तिया ह।** किसी ऋाति
के सारतत्व और खास विशेषताओ का मूल्याकन करने के लिये इसकी विशष
चालक शक्तियो का बडा महत्व है।

ऋातिकारी विस्फोट की तैयारी पुराने समाज के भीतर वग सघष की
समस्त प्रक्रिया द्वारा होती रहती है। स्वय क्राति प्रगतिशील तथा
प्रतिक्रियावादी शक्तियो के इस सघष का परम बिदु होती है। इससे यह
सवाल तय हो जाता है कि जीत किस वग की होगी, यानी कौन राज्य
सत्ता को अपने हाथो मे लेगा और राजनीतिक दृष्टि से समाज की
प्रभुताशाली शक्ति बनेगा।

**इस अथ मे पिछली सभी क्रातियो मे यह मूल द्वद्व मौजूद था कि वे
अल्पसख्यक शोषको के हित मे बहुसख्यक शोषितो की क्रातिया होती
थीं, निजी स्वामित्व के एक रूप के विरुद्ध और दूसरे के पक्ष की**

क्रांतिया – शोषक जाते थे और आते थे, मगर शोषण जारी रहता था। ये अल्पसख्यका के हित मे बहुसख्यका की क्रातिया होती थीं।

यहा हम एक बात पर जोर दे द, जिसपर विस्तारपूवक विचार आगे चलकर किया जायगा। वह यह कि समाजवादी क्राति म इस तरह का द्वद्व नही होता क्योकि इसकी चालक शक्ति मजदूर वग के नतृत्व म श्रमजीवी जनता है, जिसके हित म यह क्राति होती है। समाजवादी क्राति बहुसख्यको के हित मे बहुसख्यको की क्राति है।

क्राति की चालक शक्तियो के सवाल और उसके सामाजिक आर्थिक अतय म गहरा सबध होता है। क्राति के चरित्र और अतय से प्रकट होता है कि इसका रुख किसके विरुद्ध है और किस तरह के काय इसके सामने ह, और परिणामस्वरूप किसी समाज के किन वर्गों को इससे लाभ होगा और सम्भवत व इसकी चालक शक्तिया बनेगे, और किनको फायदा नही होगा और वे इसका विरोध करगे। वर्गीय दृष्टिकोण से ही हर ठोस परिस्थिति म क्राति की चालक शक्तिया और अतय का सवाल वस्तुनिष्ठ तौर पर तय किया जा सकता है।

सामाजिक क्रातियो को इतिहास म एक अत्यत प्रगतिशील भूमिका अदा करनी पडती है। क्रातियो के दौरान विरोधी सामाजिक वर्गों के प्रत्यक्ष तथा सीधी टक्कर मे सडी-गली आर्थिक व्यवस्था नष्ट कर दी जाती है और प्रगतिशील क्रातिकारी शक्तियो की विजय एक उच्चतर मजिल पर आगे के ऐतिहासिक विकास की व्यापक सम्भावनाओ के द्वार खोल देती है।

मार्क्स ने कहा है "क्रातिया इतिहास के इजन होती ह।"* कोई भी क्राति दमन के बिना, नि स्वाथ वीरता तथा तन मन धन से सघष किये बिना नही हो सकती। एगेल्स न कहा कि क्रातिकारी बल "वह औजार है, जिसकी मदद से सामाजिक गति मत, अश्मीभूत राजनीतिक रूपो को तोडकर अपन लिये रास्ता बनाती है।'** लेनिन ने लिखा "क्रातिया उत्पीडितो तथा शोषितो के उत्सव होती ह।"***

---

*का० मार्क्स, फ्रास म वग सघष। १८४८–१८५०'

**फ्रे० एगेल्स, ड्यूहरिंग मत-खण्डन, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को पृ० ३०६

***व्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए, चार भागो म, प्रगति प्रकाशन, मास्को भाग १ पृ० १६३

एक ऐसी क्रांति के सम्पन्न होने के लिये, जिसकी आर्थिक आवश्यकता परिपक्व हो चुकी है, निश्चित वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ स्थितियों और पूर्वशर्तों का पूरा होना जरूरी है।

उन वस्तुनिष्ठ सामाजिक राजनीतिक स्थितियों के योगफल को, जिनके अंतर्गत क्रांतिकारी विस्फोट हो सकता है, **क्रांतिकारी परिस्थिति** कहते हैं। ऐसी परिस्थिति के लक्षण ये हैं: प्रथम, शासक वर्ग की नीति में संकट, जो उस वर्ग द्वारा अपने प्रभुत्व को कायम रखने की असमर्थता तथा पुराने ढंग से रहने और शासन करने की असमर्थता में प्रकट होता है। इससे सरकार में कमज़ोरी आती है, उसकी नीतियों में ढुलमुलपन पैदा होता है, उसकी जड़ें हिल जाती हैं और उसका तख्ता उलटना आसान हो जाता है। दूसरे, उत्पीड़ित वर्गों की तंगी और कष्टों के अभूतपूर्व रूप से तीव्र हो जाने के कारण उनका पुराने ढंग से जीवन बिताने पर अनिच्छुक होना। तीसरे, जनता के कार्यकलाप में प्रत्यक्ष वृद्धि, जो खुल्लमखुल्ला, स्वतंत्र और क्रांतिकारी कदम उठाने पर तैयार हो।*

इस प्रकार की स्थिति ही से राष्ट्रीय संकट उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा एक विजयी क्रांति की वस्तुनिष्ठ पूर्वशर्तें पूरी होती हैं।

सर्वहारा के संघर्ष का निर्देशन करनेवाली पार्टी राज्य सत्ता हाथों में लेने का तात्कालिक कार्य तभी अपने सामने रख सकती है, जब क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा हो गई हो। नहीं तो ऐसा करना जुआ खेलना और शिकस्त को निमंत्रण देना होगा।

लेकिन हर प्रकार की क्रांतिकारी परिस्थिति क्रांति तक नहीं ले जाती। उदाहरण के लिये रूस में १८५९ से १८६१ तक परिस्थिति क्रांतिकारी थी, लेकिन कोई क्रांति नहीं हुई। यही हाल जर्मनी में १९२० के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में था।

क्रांतियां तभी भड़क उठती और सफल होती हैं, जब आवश्यक वस्तुनिष्ठ स्थितियों के साथ साथ आत्मनिष्ठ तत्व भी मौजूद हो, यानी एक क्रांतिकारी हिरावल पार्टी हो, क्रांतिकारी वर्गों में क्रांति की ज़रूरत का

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० १२०

एहसास और सगठित तथा दढ रूप म जनकाय करन तथा विजय के लिये जान पर खेलन को तयार हान की क्षमता हा।

यह एक नियम ह कि क्राति के भडक उठन के लिये **वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ स्थितिया का योग** जरूरी है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी पाटिया ने समाजवादी क्रातिया की तैयारी करन और उनका अमल म लाने के लिये हमशा इस नियम का पालन किया है। क्राति की वस्तुनिष्ठ स्थितिया वर्गो और पाटिया की इच्छा और चेतना से स्वतत्र रूप म परिपक्व होती ह, परन्तु वस्तुनिष्ठ स्थिति के तयार हा जान पर भी क्राति की सफलता आत्मनिष्ठ तत्व द्वारा निर्धारित हाती है, जिसकी उत्पत्ति बडी हद तक जनता म शिक्षणात्मक तथा सगठनात्मक काय पर निभर करती है। एक लडाकू क्रातिकारी पार्टी का अस्तित्व, जिसका जनता पर प्रभाव हो और जो उसके सघप का नतृत्व और निदशन कर सके, एव समाजवादी क्राति की सफलता के लिय अत्यत महत्वपूण हो जाता है।

लेनिनवादी बोल्शेविक पार्टी ने महान अक्तूबर समाजवादी क्राति की तयारी और उसका पूरा करने के दौरान म इस बात का दष्टिमूलक तथा विश्वासप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस तरह मजदूर वग और किसाना को दृढतापूवक तथा उद्देश्यपूण ढग से अत्यत कठिन हालता मे क्राति के लिये तयार करना चाहिये और स्वय क्राति के दारान म शोपक वर्गो के प्रभुत्व का अत करने के उनके सघप का नतृत्व किस प्रकार करना चाहिये। इस अनुभव का अतर्राष्ट्रीय महत्व बहुत है।

समाजवादी क्राति का सिद्धात

समाजवादी क्राति एक विशेप प्रकार की सामाजिक क्राति ह। सामाजिक क्राति की आम नियमितताए समाजवादी क्राति पर भी लागू होती ह, मगर यह पुरानी क्रातिया से सारत भिन्न है। इसी लिये इसपर अलग से और अधिक विस्तारपूवक विचार करना जरूरी ह।

समाजवादी क्राति की ऐतिहासिक आवश्यकता पूजीवाद के विकास से उत्पन्न होती है। इसका आर्थिक आधार पैदा होता है अतविरोधो के तीव्र होन स, उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा अधिकरण क निजी पूजीवादी रूप के विरोध से। समाजवादी क्राति का उद्देश्य है इस विराध का दूर

एक ऐसी क्रांति के सम्पन्न होने के लिये, जिसकी प्राथमिक आवश्यकता परिपक्व हो चुकी है, निश्चित वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ स्थितियों और पूर्वशर्तों का पूरा होना जरूरी है।

उन वस्तुनिष्ठ सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के योगफल को, जिनके अंतर्गत क्रांतिकारी विस्फोट हो सकता है, क्रांतिकारी परिस्थिति कहते हैं। ऐसी परिस्थिति के लक्षण ये हैं प्रथम, शासक वर्ग की नीति में संकट, जो उस वर्ग द्वारा अपने प्रभुत्व को कायम रखने की असमर्थता तथा पुराने ढंग से रहने और शासन करने की असमर्थता में प्रकट होता है। इससे सरकार में कमजोरी आती है, उसकी नीतियों में ढुलमुलपन पैदा होता है, उसकी जड़ें हिल जाती हैं और उसका तख्ता उलटना आसान हो जाता है। दूसरे, उत्पीड़ित वर्गों की तंगी और कष्टों के अभूतपूर्व रूप से तीव्र हो जाने के कारण उनका पुराने ढंग से जीवन बिताने पर अनिच्छुक होना। तीसरे, जनता के कार्यकलाप में प्रत्यक्ष वृद्धि, जो खुल्लमखुल्ला, स्वतंत्र और क्रांतिकारी कदम उठाने पर तैयार हो।*

इस प्रकार की स्थिति ही से राष्ट्रीय संकट उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा एक विजयी क्रांति की वस्तुनिष्ठ पूर्वशर्तें पूरी होती हैं।

सर्वहारा के संघर्ष का निर्देशन करनेवाली पार्टी राज्य सत्ता हाथों में लेने का तात्कालिक कार्य तभी अपने सामने रख सकती है, जब क्रांतिकारी परिस्थिति पैदा हो गई हो। नहीं तो ऐसा करना जुआ खेलना और शिकस्त को निमंत्रण देना होगा।

लेकिन हर प्रकार की क्रांतिकारी परिस्थिति क्रांति तक नहीं ले जाती। उदाहरण के लिये रूस में १८५९ से १८६१ तक परिस्थिति क्रांतिकारी थी, लेकिन कोई क्रांति नहीं हुई। यही हाल जर्मनी में १९२० के दशक के प्रारम्भिक वर्षों में था।

क्रांतियां तभी भड़क उठती और सफल होती हैं, जब आवश्यक वस्तुनिष्ठ स्थितियों के साथ साथ आत्मनिष्ठ तत्व भी मौजूद हों, यानी एक क्रांतिकारी हिरावल पार्टी हो, क्रांतिकारी वर्गों में क्रांति की जरूरत का

---

*ब्ला० इ० लेनिन, 'साम्राज्यवादी युद्ध के विरोध में', प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ० १२०

एहराम और सगठित तथा दृढ रूप म जनकार्य करन तथा विजय क लिये जान पर खेलन को तयार होन की क्षमता हो।

यह एक नियम है कि क्राति क अदर उठा क लिय वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ स्थितियो का योग जरूरी है। मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियो न समाजवादी क्रातियो की तयारी करन और उनको अमल म लान क लिय हमेशा इस नियम का पालन किया है। क्राति की वस्तुनिष्ठ स्थितिया वर्गों और पार्टियो की इच्छा और इरादा स स्वतत्र रूप म परिपक्व होती ह, परन्तु वस्तुनिष्ठ स्थिति क तयार हो जान पर भी क्राति की सफलता आत्मनिष्ठ तत्व द्वारा निर्धारित होती है, जिसकी उत्पत्ति बडी हद तक जनता म शिक्षणात्मक तथा सगठनात्मक काय पर निभर करती है। एक लडाकू क्रातिकारी पार्टी का अस्तित्व, जिसका जनता पर प्रभाव हो और जो उसक सघष का नतृत्व और निदशन कर सक, एक समाजवादी क्राति की सफलता क लिय अत्यत महत्वपूण हो जाता है।

लेनिनवादी बोल्शेविक पार्टी न महान अक्तूबर समाजवादी क्राति की तयारी और उसको पूरा करन क दौरान म इस बात का दृष्टिमूलक तथा विश्वासप्रद उदाहरण प्रस्तुत किया कि किस तरह मजदूर वग और किसानो को दृढतापूवक तथा उद्देश्यपूण ढग स अत्यत कठिन हालतो म क्राति क लिय तयार करना चाहिय और स्वय क्राति के दौरान म शोषक वर्गों के प्रभुत्व का अत करन क उनक सघष का नतृत्व किस प्रकार करना चाहिय। इस अनुभव का अतर्राष्ट्रीय महत्व बहुत है।

समाजवादी क्राति का सिद्धात

समाजवादी क्राति एक विशेष प्रकार की सामाजिक क्राति है। सामाजिक क्राति की आम नियमितताए समाजवादी क्राति पर भी लागू होती ह, मगर यह पुरानी क्रातियो स सारत भिन्न है। इसी लिये इसपर अलग से और अधिक विस्तारपूवक विचार करना जरूरी है।

समाजवादी क्राति की ऐतिहासिक आवश्यकता पूजीवाद के विकास से उत्पन्न होती है। इसका आर्थिक आधार पैदा होता है अतविरोधो के तीव्र होन स, उत्पादन क सामाजिक स्वरूप तथा अधिकरण के निजी पूजीवादी रूप क विरोध से। समाजवादी क्राति का उद्देश्य है इस विरोध को दूर

करना और उत्पादन साधनो पर निजी स्वामित्व का मिटाकर तथा सामाजिक स्वामित्व की स्थापना करके सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समाजवादी सबंध क़ायम करना।

जसा कि कहा जा चुका है, मजदूर वग तथा शहर ग्रौर देहात के श्रमजीवी, सबसे बढकर किसान, समाजवादी क्रांति की चालक शक्ति हैं, और उसका मूल तत्व श्रमजीवी जनता की सत्ता, सवहारा का अधिनायकत्व स्थापित करना है। इसका मतलब यह है कि क्राति के दौरान मे सवहारा (क) पूजीपति वग की सत्ता का ग्रत करता है, उसे उसके राजनीतिक प्रभुत्व से वचित करता, उसके हाथो से सत्ता के उपकरण छीन लेता और इस तरह स्वय अपने अधिनायकत्व का रास्ता साफ करता है, (ख) पूजीवादी राज्य मशीनरी को, पूजीवादी राज्य के सन्यपुलिस तथा नौकरशाही को भग करता तथा सवहारा राज्य की नयी मशीनरी की स्थापना के लिये ज़मीन तैयार करता है, और (ग) सत्ता स्वय अपने हाथो मे ले लेता है और एक नये राज्य की—सवहारा के नातिकारी अधिनायकत्व की—स्थापना करता है, जिससे वह सवहारा क्राति के उद्देश्यो को पूरा करने तथा कार्यो को सफलीभूत करने और समाजवाद का निर्माण करने का काम लेता है।

अवसरवादियो तथा सशोधनवादियो ने वडी कोशिश की कि समाजवादी क्राति की ऐतिहासिक आवश्यकता पर परदा डाल दें या उससे बिल्कुल ही इनकार कर दे, जिसके लिये वे कहते है कि मार्क्स और एगेल्स ने जिस मजदूर वग के बारे मे लिखा था, अब उसका अस्तित्व ही नही रहा। उनका दावा है कि मज़दूर वग, जो कभी उत्पीडित तथा राजनीतिक अधिकारो से वचित हुआ करता था, अब एक ऐसा वग बन गया है, जिसे ऊचा वेतन मिलता है और पूजीवादी जनवाद की परिधि के अन्दर पूजीपति वग के साथ राजनीतिक समानता प्राप्त है। वे कहते हैं कि "सामाजिक कल्याण राज्य" से ज़रूरत लडने की नही, बल्कि उसपर भरोसा करने की है कि वह समाजवाद का निर्माण करेगा, धीरे धीरे और क्रमश, पूजीपति वग के हितो को चोट पहुचाये विना समाजवाद की ओर कदम बढायेगा।

अवश्य ही चन्द उन्नत पूजीवादी देशो मे मजदूर वग कठोर सघर्ष के बाद पूजीपति वग से उच्च वेतन, सामाजिक विधिनिर्माण, आदि के रूप मे कुछ सुविधाए हासिल करने मे सफल हुआ। लेकिन इस स्थिति मे

कितना ही सुधार क्या न हो जाये, मजदूर वग शोषित वग ही रहता है, जिसका जीवन पूजीपतिया के हाथ अपनी श्रम शक्ति बेचन पर निभर करता ह। उसक श्रम के सारे फल अपहृत हो जाते ह और उसकी भौतिक तथा बौद्धिक दासता के साधन बन जाते ह। इसका मतलब यह है कि उसन जो कुछ हासिल किया है वह टिकाऊ नहीं है, और सच तो यह है कि पूजीपति वग जब चाहता है उसे छीन लेता है। इसके अलावा, मजदूरा क सामन काम की रफ्तार की भयकर तेजी की तलवार लटक रही है और बेरोजगारी का खतरा है, जो पूजीवाद म हमशा ही सामने उपस्थित रहता है।

इसके अतिरिक्त, मजदूरा और पूजीपतियो की राजनीतिक समानता केवल नाम मात्र के लिये है, क्योकि मजदूर वग वास्तव मे आर्थिक या राजनीतिक दृष्टि से पूजीपति वग के बराबर नही है।

अगर १९वी शती से तुलना की जाये तो मजदूर वग की स्थिति मे कुछ बडी तब्दीलिया वास्तव मे हो गई है, लेकिन इनकी वजह से पूजीवाद के मौलिक नियम गलत नही हो जाते और न सवहारा क्राति की जरूरत खत्म हो जाती है, जिसे माक्स ने अपनी कृति 'पूजी' मे साबित किया था। इन परिवतना से सघष की स्थितिया अवश्य ही बदल जाती ह परन्तु स्वय सघष की जरूरत खत्म नही होती।

पूजीवादी विचारका तथा अवसरवादियो न कम्युनिस्टा पर आरोप लगाया है कि वे हिसा तथा जोर-जबरदस्ती के तरीको के समथक है केवल इसलिये कि वे क्राति और क्रातिकारी अधिनायकत्व को आवश्यक मानते है। यह आरोप जितना मूलत गलत है उतना ही इसम मक्कारी और पाखड भी है।

कम्युनिस्टा का विश्वास ह कि जब तक वर्गो, वग सघष और राज्य का अस्तित्व है तब तक बल प्रयोग के विचार का त्याग करना बेकार की बात है। आखिर स्वय राज्य भी बल प्रयोग का अस्त्र ह, इसलिये सवाल दरअसल यह है कि कौन पार्टी किस प्रकार के बल प्रयोग का समथन करती है किस प्रकार का बल प्रयोग किया जा रहा ह प्रतिक्रियावादी या क्रातिकारी।

इतिहास म कुछ आन्दोलना ने (जसे शातिवाद, गाधीवाद तथा [illegible] अधिकार के आदोलन ने) हिसा से काम नही लेन [illegible], लेकिन उह अभी प्रतिक्रियावादी वर्गो को यह समझाना [illegible]

स्वय अपने हिता के लिय वल प्रयाग का त्याग कर दें। इसके अलावा, **साम्राज्यवाद केवल हिंसा को ही जन्म नहीं देता, बल्कि हिंसा को भयकर पमाने पर जन्म देता है।** साम्राज्यवादियान दो विश्व युद्ध की आग भडकाई, जिसम कराडा आदमी मार गय। फासिज्म, अपनी पाशविक विचारधारा और नुर शक्ति पूजा समत, साम्राज्यवाद की ही प्रत्यक्ष पदावार है। इसक वावजूद पूजीवादी विचारका को यह दावा करत लाज नही लगता कि वे हिंसा का त्याग कर मानवीय तरीके अपनान या समथन करत ह।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद की राशनी म कम्युनिस्ट अवश्य ही इतिहास म क्रातिकारी वल की प्रगतिशील भूमिका का मानत ह, लकिन उन्हान किसी लिहाज से यह नही कहा कि जा भी परिस्थिति हा वल का प्रयोग जरूर करना चाहिये। कम्युनिस्ट एक नये समाज की स्थापना करना चाहत ह, और यह मानत ह कि इसके लिय सघप करन म अगर बल प्रयोग स वचा जा सके, तो वचना चाहिये। वल एक अस्त्र है, अपन आपमे ध्येय नही। वल का प्रयोग किम हद तक करना पडता है, यह स्थान खाली करनेवाल वर्गों के प्रतिरोध पर तथा वग सघप की ठोस स्थितिया पर निभर करता है। उनका प्रतिराध जितना भयकर हागा, प्रगतिशील शक्तिया का सघप क उतने ही तीव्र रूप अपनान हागे। इसकी पुष्टि क्रातिकारी मजदूर वग आदालन के इतिहास से हा चुकी है। परिस कम्यून म वरसाई की सना क हमला का जवाव देन के लिये कम्यूनार्डो को धुस्सवन्दी करके लडाई क लिय मजबूर होना पडा। व मुहतोड जवाव नही दे सके और नतीजा यह हुआ कि परिस कम्यून को मजदूरा के खून म डुवो दिया गया। सोवियत रूस के नवजात जनतत्र म गृहयुद्ध की आग सफेद गार्डो ने भडकाई, जिनका समथन विदेशी साम्राज्यवादी कर रह थे। प्रथम समाजवादी दश के मजदूर वग और किसाना को क्राति की सफलताआ की रक्षा के लिय हथियार हाथ म लेकर मजबूरन मदान म उतरना पडा। जनवादी जनतत्रा म, जहा क्रातिविराधी शक्तिया घिर गई थी तथा गृहयुद्ध छेडन मे सफल नही हा सका, क्राति न शातिपूण रास्ता अपनाया और बल प्रयोग कम से कम हुआ।

मार्क्स और एगेल्स का समय इजारेदार पूजीवाद स पहले का समय था, जब पूजीवाद अभी प्रगति की राह पर था और पूजीवाद की पूरी व्यवस्था सवहारा क्राति के लिये अभी परिपक्व नही हुई थी, जब कि इस तरह की क्राति के लिय भौतिक स्थिति केवल यूराप और अमरीका क

ग्राथिक दृष्टि से सबसे उन्नत देशा म ही किसी हद तक तयार हुई थी। इसी लिये मार्क्स और एगेल्स का विश्वास था कि सवहारा क्रांति उन्नत पूजीवादी देशा के सवहारा के मिल-जुले प्रयासा के जरिये ही और सभी उन्नत पूजीवादी देशा म एक साथ विजयी हो सकती है और किसी एक देश म समाजवादी क्रांति सफल नही हो सकती। चुनाचे 'कम्युनिज्म के सिद्धात' म एगेल्स ने लिखा "कम्युनिस्ट क्रांति केवल एक राष्ट्रीय क्रांति नही होगी, वह सभी सभ्य देशा म यानी कम से कम इगलड अमरीका, फ्रास और जमनी म एक साथ होगी।" मार्क्स और एगेल्स ने इस बात पर जोर दिया कि समाजवादी क्रांति एक क्षणिक काय नही, बल्कि सवहारा तथा उसके वर्गीय शत्रुओ के बीच अतर्राष्ट्रीय लडाइया का एक दौर एक युग है। यह स्थापना कि सवहारा क्रांति सभी उन्नत पूजीवादी देशा म केवल एक साथ ही विजयी हो सकती है, इजारेदार पूजीवाद से पहले के दौर के लिये सही थी और उस युग की ऐतिहासिक स्थितिया के अनुकूल थी। परन्तु साम्राज्यवाद के युग म परिस्थितिया बदल गई ह।

जसा कि लेनिन ने दिखा दिया २०वीं शती के मोड पर पूजीवाद विकास की नयी, उच्चतम मजिल पर, साम्राज्यवाद की मजिल पर पहुच गया है, और इस युग मे पूजीवाद का गतिरोध हो जाता है। उन्होने अपने इस निष्कष का आधार सबसे अधिक इस तथ्य को माना कि इस दौर म पूजी के सके द्रण और केद्रीकरण के कारण अथव्यवस्था पर इजार— शक्तिशाली पूजीवादी सस्थान—हावी हो गये है। स्वतत्र प्रतियोगिता के बजाय इजारा की स्थापना इस बात का लक्षण थी कि अथव्यवस्था म गतिरोध की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगी है।

साम्राज्यवाद मे सक्रमण को इस रूप म देखना चाहिये कि [illegible] है एक युग का जिसमे पूजीवाद की पूरी व्यवस्था समाजवाद [illegible] लिय परिपक्व है। लेनिन ने जब समाजवादी क्राति क सिद्धात का [illegible] किया ता वह इसी नतीजे पर पहुचे थे। उन्हाने [illegible] कि [illegible] के दौरान मे राजकीय इजारेदार पूजीवाद और समाजवाद [illegible] मियानी मजिल नही है और यह कि साम्राज्यवाद [illegible] सबसे मुकम्मल भौतिक तयारी है।

इसी के साथ साम्राज्यवाद म [illegible] विकास हो जाता है। मजदूर वग के [illegible]

पूजीपति वग या द्वद्व बराबर तेज हाने लगता है। साम्राज्यवाद मज़दूर वग को ज्ञाति की दहलीज पर पहुचा देता है। परन्तु साम्राज्यवाद मज़दूर वग पर ही नही, बल्कि किसाना पर, शहरी निम्नपूजापतिया पर और बुद्धिजीविया पर भी दबाव डालता है और इन्हा सामाजिक समहा म स मज़दूर वग का क्मावेश दृढ साथी ढूढने पडत और मिलते ह। साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीडित उपनिवेशा और पराधीन देशा मे जनगण का राष्ट्रीय मक्ति सघप सवहारा के लिये एक और विशाल कुमक है।

ज्या-ज्या पूजीवादी उत्पादन प्रणाली का विकास होता है, राष्ट्र विकसित हात है और आपस मे विविध सबध स्थापित करते ह, लकिन वस्तुनिष्ठ रूप से इन प्रगतिशील प्रक्रियाओ पर अतविरोध की छाप हाती है। राष्टवाद और राष्ट्रीय उत्पीडन निजी स्वामित्ववाले समाज की विशिष्ट पदावार ह।

एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का दास बनाया जाना और उत्पीडन, उत्पीडित राष्ट म राष्ट्रीय आजादी के लिये सघप को जन्म देता है और इस प्रकार समय के विषयक्रम म **राष्ट्रीय प्रश्न** जाड दिया जाता है, और वह सवाल यह है कि राष्ट्रीय विरोध और राष्ट्रीय उत्पीडन को कसे दूर किया जाये। जब तक निजी स्वामित्व और वर्गों का अस्तित्व रहेगा, राष्ट्रीय प्रश्न का सम्पूण समाधान नही हो सकता, यद्यपि राष्ट्रो के बीच जनवादी सबधा के विकास से इसमे कुछ नर्मी पैदा की जा सक्ती है। इसी स राष्ट्रीय प्रश्न के प्रति **मावसवादी दृष्टिकोण** का सार निर्धारित होता है, जिस प्रश्न का एक स्वतत्र और स्वत पूण प्रश्न नही, बल्कि क्राति के, समाज के जनवादी अथवा समाजवादी परिवतन के ज्यादा आम सवाल के एक अश के रूप म स्वीकार किया जाता है, श्रमजीवी जनता के मुक्ति के प्रश्न के एक भाग के रूप मे। यही कारण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल्याकन और उसके प्रति मज़दूर वग का रुख इस बात पर निभर करता है कि इसका वस्तुनिष्ठ महत्व इसकी मागे किस हद तक समाज के प्रगतिशील विकास के हिता के अनुकूल है। विभिन राष्ट्रीय आन्दोलनो के पेचीदा द्वद्वात्मक विकास की गुत्थिया केवल इतिहास की ठोस दृष्टि से तथा उक्त युग मे वग सघप की आम प्रगति के सदभ मे ही सही तौर पर सुलझाई जा सकती है। इस बात को ध्यान मे रखत हुए ही राष्ट्रीय प्रश्न की ठोस मागो और ठोस कायक्रम की रचना की जा सकती है।

लेकिन कुछ आम उसूल भी है, जिनके बिना राष्ट्रीय सवाल को हल नहीं किया जा सकता। वे य ह कि राष्ट्रो के पारस्परिक सबधो म किसी भी रूप म बल प्रयोग का सख्ती से त्याग किया जाय, राष्ट्रो द्वारा उनके अपने भविष्य का प्रबध करने म उनकी समानता और सार्वभौम सत्ता का स्वीकार किया जाये, और इस बात को स्वीकार किया जाये कि जातियो के स्थायी सबधो का एकमात्र आधार सहयोग और स्वतत्र इच्छा है।

१६वी शती म इजारेदार पूजीवाद से पूर्वकाल मे राष्ट्रीय प्रश्न चन्द एक यूरोपीय राष्ट्रो तक, जैसे वाल्कन की उत्पीडित जातियो, इटालियन, आयरिश, चेक, पोल और फिन लोगो तक ही सीमित था। इन उत्पीडित जातियो ने बहुत दिनो तक और बडी सख्ती से अपनी राष्ट्रीय आज़ादी के लिये लडाई की। केवल चीन मे ताइपिंग विद्रोह और भारत म १८५७ के विद्रोह ने जबरदस्त चेतावनी दी थी कि उन देशो म कैसी शक्तिशाली ताकते दबी पडी है।

साम्राज्यवाद के युग मे राष्ट्रीय प्रश्न का दायरा फैल जाता है, क्योकि तब यह **राष्ट्रीय-औपनिवेशिक सवाल** बन जाता है यानी साम्राज्यवादी उत्पीडन से उपनिवेशो की उत्पीडित जातियो की आज़ादी का सवाल।

परिणामस्वरूप, साम्राज्यवाद के अतर्गत पूजीवाद के सर्वशक्तिमान प्रभुत्व के खिलाफ सघर्ष का सामाजिक आधार बहुत बढ जाता है। मज़दूर वर्ग, जो हमारे समय की मुख्य क्रातिकारी शक्ति है, सभी विभिन्न साम्राज्यवादविरोधी शक्तियो का नेतृत्व कर सकता है और उसको करना चाहिये ताकि अतत वह उन्हे पूजीवाद के विरुद्ध ले चले। **क्रातिकारी साम्राज्यवाद-विरोधी शक्तियो के विकास से निस्सदेह सर्वहारा को पूजीपति वर्ग के विरुद्ध उसके सग्राम मे बल मिलेगा।**

यह है दूसरा निष्कर्ष, जो लेनिनवाद ने पूजीवाद के विकास की नई मज़िल के विश्लेषण से निकाला।

इसके तथा १६०५ की प्रथम रूसी क्राति के अनुभव के आधार पर लेनिन ने **पूजीवादी-जनवादी क्राति समाजवादी क्राति मे विकसित होने का सिद्धात** निरूपित किया, जिससे यह साबित हुआ कि साम्राज्यवाद के युग मे पूजीवादी-जनवादी तथा समाजवादी क्रातियो को समय की दृष्टि से निकट लाया जा सकता है। लेनिन के सिद्धात ने दूसरे इटरनेशनल के नेताओ की अवसरवादी स्थापनाओ को निराधार साबित किया, जो कहा करते थे कि

पूजीपति वग का द्वद्व वरावर तज होने लगता है। साम्राज्यवाद मजदूर वग को क्राति की दहलीज पर पहुचा देता है। परन्तु साम्राज्यवाद मजदूर वग पर ही नही, वल्कि किसाना पर, शहरी निम्नपूजीपतिया पर और बुद्धिजीविया पर भी दवाव डालता है और इन्हा सामाजिक समूहा म स मजदूर वग का कमावेश दृढ साथी ढूढने पडत और मिलत ह। साम्राज्यवाद द्वारा उत्पीडित उपनिवशा और पराधीन देशा के जनगण का राष्ट्रीय मक्ति सघप सवहारा के लिये एक और विशाल कुमक है।

ज्या-ज्या पूजीवादी उत्पादन प्रणाली का विकास होता है, राष्ट्र विकसित होत ह और आपस म विविध सवध स्थापित करते ह, लकिन वस्तुनिष्ठ रूप से इन प्रगतिशील प्रक्रियाओ पर अतविरोध की छाप होती है। राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय उत्पीडन निजी स्वामित्ववाले समाज की विशिष्ट पदावार ह।

एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का दास वनाया जाना और उत्पीडन, उत्पीडित राष्ट्र म राष्ट्रीय आजादी के लिये सघप को जन्म दता है और इस प्रकार समय के विपयक्रम मे **राष्ट्रीय प्रश्न** जोड दिया जाता है, और वह सवाल यह है कि राष्ट्रीय विरोध और राष्ट्रीय उत्पीडन को कसे दूर किया जाये। जब तक निजी स्वामित्व और वर्गों का अस्तित्व रहेगा, राष्ट्रीय प्रश्न का सम्पूण समाधान नही हो सकता, यद्यपि राष्ट्रो के बीच जनवादी सवधा के विकास से इसम कुछ नर्मी पदा की जा सकती है। इसी से **राष्ट्रीय प्रश्न के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण का सार** निर्धारित होता है, जिस प्रश्न को एक स्वतत्र और स्वत पूण प्रश्न नही, वल्कि क्राति के, **समाज के जनवादी अथवा समाजवादी परिवतन के ज्यादा आम सवाल के एक अश** के रूप म स्वीकार किया जाता है, **श्रमजीवी जनता के मुक्ति के प्रश्न के एक भाग** के रूप म। यही कारण है कि राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल्याकन और उसके प्रति मजदूर वग का रुख इस वात पर निभर करता है कि इसका वस्तुनिष्ठ महत्व इसकी मागे किस हद तक समाज के प्रगतिशील विकास के हितो के अनुकूल हैं। विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलना के पेचीदा द्वद्वात्मक विकास की गुत्थिया केवल इतिहास की ठोस दष्टि से तथा उक्त युग मे वग सघप की आम प्रगति के सदभ म ही सही तौर पर सुलझाई जा सकती ह। इस वात को ध्यान मे रखते हुए ही राष्ट्रीय प्रश्न की ठोस मागा और ठोस कायक्रम की रचना की जा सकती है।

लेकिन कुछ ग्राम उसूल भी ह, जिनके बिना राष्ट्रीय सवाल को हल नहीं किया जा सकता। वे ये ह कि राष्ट्रा के पारस्परिक सबधा म किसी भी रूप म बल प्रयाग या सख्ती स त्याग किया जाये, राष्ट्रा द्वारा उनके अपने भविष्य का प्रबध करन मे उनकी समानता और सावभौम सत्ता को स्वीकार किया जाये, और इस बात को स्वीकार किया जाये कि जातिया के स्थायी सबधो का एकमात्र आधार सहयोग और स्वतत्र इच्छा है।

१९वी शती म इजारदार पूजीवाद से पूवकाल म राष्ट्रीय प्रश्न चन्द एक यूरोपीय राष्ट्रा तक, जैसे बालकन की उत्पीडित जातिया, इटालियन, आयरिश, चेक, पोल और फिन लोगो तक ही सीमित था। इन उत्पीडित जातिया ने बहुत दिना तक और बडी सख्ती से अपनी राष्ट्रीय आजादी के लिये लडाई की। केवल चीन मे ताइपिंग विद्रोह और भारत म १८५७ क विद्रोह ने जबरदस्त चेतावनी दी थी कि उन देशो मे वैसी शक्तिशाली ताकत दबी पडी है।

साम्राज्यवाद के युग मे राष्ट्रीय प्रश्न का दायरा फैल जाता है, क्योकि तब यह **राष्ट्रीय-औपनिवेशिक सवाल** बन जाता है यानी साम्राज्यवादी उत्पीडन से उपनिवेशो की उत्पीडित जातिया की आज़ादी का सवाल।

परिणामस्वरूप, साम्राज्यवाद के अतगत पूजीवाद के सवशक्तिमान प्रभुत्व के खिलाफ सघर्ष का सामाजिक आधार बहुत बढ जाता है। मज़दूर वग, जो हमारे समय की मुख्य क्रातिकारी शक्ति है, सभी विभिन्न साम्राज्यवादविरोधी शक्तिया का नेतत्व कर सकता है और उसको करना चाहिये ताकि अतत वह उन्हे पूजीवाद के विरुद्ध ले चले। **क्रातिकारी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियो के विकास से निस्सन्देह सवहारा को पूजीपति वग के विरुद्ध उसके सग्राम मे बल मिलेगा।**

यह है दूसरा निष्कर्ष, जो लेनिनवाद न पूजीवाद के विकास की नई मजिल के विश्लेषण से निकाला।

इसके तथा १९०५ की प्रथम रूसी क्राति के अनुभव के आधार पर लेनिन ने **पूजीवादी जनवादी क्राति समाजवादी क्राति मे विकसित होने का सिद्धात** निरूपित किया, जिससे यह साबित हुआ कि साम्राज्यवाद के युग मे पूजीवादी-जनवादी तथा समाजवादी क्रातिया को समय की दृष्टि से निकट लाया जा सकता है। लेनिन के सिद्धात न दूसरे इटरनेशनल के नेताओ की अवसरवादी स्थापनाओ को निराधार साबित किया जो कहा करते थे कि

पूजीवादी तथा समाजवादी क्राति के बीच एक लम्बी अवधि का होना जरूरी है।

पूजीवादी जनवादी क्राति के समाजवादी क्राति म विकसित होने के लेनिन के सिद्धात का सार यह है कि जिन देशा के सामने अभी तत्काल पूजीवादी जनवादी परिवतना का पूरा करने का काम है, उनके सामने यह सम्भावना भी है कि क्राति को लगातार विकसित करते रहे, उसे गहरा बनाते रहें और जनवादी मजिल से गुजरकर समाजवादी मजिल मे दाखिल हो बशर्ते कि पूजीवादी-जनवादी क्राति म नेतृत्व सवहारा के हाथा मे हो, श्रमजीवी जनता के गैरसवहारा हिस्सा और अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्यवादविरोधी शक्तिया से उसका एका हो, एक क्रातिकारी-जनवादी अधिनायकत्व की स्थापना कर ली गई हो और एक क्रातिकारी मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी मौजूद हो, जो स्वतत्र तथा उसूली नीति का पालन कर रही हो।

लेनिन का यह विचार आज भी साम्राज्यवाद के खिलाफ सघष म, समाजवाद की विजय के लिये सवहारा का रास्ता रौशन कर रहा है।

आज पहले से भी अधिक सम्भावनाए ह कि जनवादी आन्दोलन को समाजवाद के सघष के निकट लाया जाये, क्योकि एक तो, विश्व के विकास म एक निर्णायक तत्व के रूप मे एक शक्तिशाली समाजवादी व्यवस्था काम कर रही है और दूसरे, खुद जनवादी आन्दोलन का सामाजिक अतय बदल गया है।

पहले, १६वी शती मे और हमारी शती के मोड पर, जनवादी आन्दोलन का रुख सामतवाद तथा उसके अवशेषो के विरुद्ध था, जबकि आज उसका मुख्य विरोधी साम्राज्यवाद है। कहने का मतलब यह नही है कि अब सामतविरोधी काय समय का तकाजा रहे ही नही। कुछ देशा में ये काम अभी भी बाकी है लेकिन वे साम्राज्यवाद के, जो जनगण की आजादी का मुख्य उत्पीडक है, विरुद्ध सघष का अग बन गये ह।

चूकि वतमान युग म समाजवाद की बाह्य और आतरिक आवश्यक परिस्थितिया अधिक अनुकूल हो गई ह, इसलिय एक **गैर-पूजीवादी माग पर अग्रसर होने की सम्भावना** औपनिवेशिक उत्पीडन से मुक्ति पानेवाले, आर्थिक दृष्टि से कम उन्नत देशा के लिय पदा हो रही है।

साम्राज्यवाद सम्पूण सरचना के आधार पर समाजवादी क्राति की आवश्यक भौतिक स्थितिया मुहैया कर रहा, पूजीवाद के सभी अतविरोधा को

तीव्र कर रहा है, और इस प्रकार समाजवादी क्राति के विकास के लिये नई ऐतिहासिक स्थितियो को जन्म दे रहा है।

समाजवाद मे सक्रमण हमारे युग का अधिकाधिक ज़ोरदार तकाज़ा बन रहा है। उत्पादन, विज्ञान, जनता की जनवादी तथा मानवतावादी भावनाए, स्वाधीन हुए देशो मे विकास की आवश्यकताए तथा मानवजाति के विकास और स्वय अस्तित्व का भविष्य – इनका प्रत्यक्ष द्वद्व पूजीवाद से, उसके निजी स्वामित्ववाले सार तथा स्वार्थपूर्ण स्वरूप से बहुत बढ गया है। इसी लिये आज के सभी जनवादी आन्दोलन अपने स्वतत्र ऐतिहासिक महत्व से वचित हुए बिना समाजवाद के लिये सघर्ष को प्रोत्साहित करते है। फलस्वरूप, साम्राज्यवाद के युग मे सर्वहारा की क्रातिकारी पार्टियो के सामने इतिहास मे पहली बार यह सम्भावना और आवश्यकता आती है कि अर्द्धसामती, राष्ट्रीय तथा साम्राज्यवादी उत्पीडन के खिलाफ सभी व्यापक जन आन्दोलनो का नेतृत्व करे और उन्हे समाजवादी क्राति और सर्वहारा अधिनायकत्व के सघर्ष की मुख्य धारा मे ले आये।

साम्राज्यवाद के युग मे **असमान आर्थिक और राजनीतिक विकास का नियम**, जिसका पता लेनिन ने लगाया था, समाजवादी क्राति के विकास पर निर्णायक प्रभाव डालता है। असमान आर्थिक विकास के कारण पूजीवाद के अतर्विरोध और भी तीव्र होते हैं और साम्राज्यवाद का मोर्चा कमज़ोर होता है। इससे यह सम्भावना पैदा होती है कि साम्राज्यवाद की ज़जीर की सबसे कमज़ोर कडी को तोड दिया जाये। यह ज़रूरी नही है कि इस तरह की कडी के रूप मे एक ऐसा देश हो, जिसमे पूजीवाद बहुत विकसित हो चुका हो, मगर ज़रूरी यह है कि वहा एक मज़बूत चेतन और सगठित क्रातिकारी मज़दूर वर्ग हो, जिसके महत्वपूर्ण साथी हो और जहा शासक वर्गों का हाकिम तबका सबसे कमज़ोर हो और उसका विलगाव सबसे ज़्यादा हो चुका हो।

असमान आर्थिक विकास के कारण एक ओर विभिन्न देशो मे क्रातियो के परिपक्व होने मे असमानता होती है, यानी राजनीतिक विकास असमान होता है, और दूसरी ओर ऐसे देश के लिये, जिसने क्राति कर ली है, यह सम्भव हो जाता है कि साम्राज्यवादी देशो के घेरे मे अपने आपको कायम रख सके। इस नियम से लेनिन ने यह नतीजा निकाला कि **समाजवादी क्राति एक साथ सभी देशो मे विजयी नहीं हो सकती थी और पहले**

वह कुछ देशा मे, या केवल एक ही देश मे विजयी हो सक्ती है। लेनिन इस नतीजे पर १९१८ म ही पहुच चुके थे।

लेनिन के सिद्धात से सवहारा के अलग अलग राष्ट्रीय दस्ता को 'अपने" पूजीपति वग के विरुद्ध पहलकदमी करने म सहायता मिली।

इस शती के प्रथम वर्षो म जारशाही रूस ही वह देश साबित हुआ, जहा साम्राज्यवाद की जजीर की कडी सबसे कमजोर निक्ली। वास्तव म, रूस का ही मजदूर वग था, जिसने किसाना की एकता से सबसे पहल एक देश मे सफल समाजवादी क्राति की। इस तरह समाजवादी क्राति के सबध म लेनिन के सिद्धात की शानदार पुष्टि हुई।

समाजवादी क्रातियो का आगे का विकास भी असमान रूप स होता है। अलग अलग देशो मे क्रातिया ज्यो ज्यो परिपक्व होती ह, वे साम्राज्यवाद की जजीर से टूट टूट कर गिरते जाते ह और एक ही समाजवादी समुदाय म सम्मिलित होते जाते हैं। परन्तु आगे आनेवाली क्रातिया समाजवादी देशो की सहायता और समथन पर भरोसा कर सक्ती ह। चूकि कोई भी क्राति अन्दरूनी तत्वा की क्रियाशीलता के कारण परिपक्व होती है, और उसे आदेशानुसार नही तैयार किया जा सक्ता, इसलिये मार्क्सवाद ने यह बुनियादी उसूल निरूपित किया कि "क्राति का निर्यात" नही किया जा सक्ता। इसके विपरीत मजदूर वग तथा समाजवाद की शक्तिया का यह अतर्राष्ट्रीयतावादी कतव्य है कि प्रतिक्राति का निर्यात भी न होने दे तथा विश्व साम्राज्यवाद की किसी भी पुलिस कारवाई के विरुद्ध सघष करे।

विश्व समाजवादी व्यवस्था की उत्पत्ति और मजबूती के कारण अतर्राष्ट्रीय परिस्थिति मे बुनियादी परिवतन हुए हैं। शती की पहली चौथाई म साम्राज्यवाद के आम मोर्चे की कमजोरी का सबध अतर-साम्राज्यवादी विरोधो के तीव्र होने से था, लेकिन आज यह मोर्चा विश्व के दो विरोधी व्यवस्थाआ मे विभाजित होने तथा विश्व समाजवादी व्यवस्था के विकास और मजबूती के कारण कमजोर हुआ है। इसका परिणाम विशेषकर यह हुआ कि साम्राज्यवाद की जजीर की कमजोर कडिया को शातिपूण स्थितिया म तोडने की सम्भावनाए बढती जा रही ह।

सामान्य रूप म युद्ध कभी भी क्राति का कारण नही रहा परन्तु इसने सारे अतविरोधा को हमेशा तीव्र बनाया है और इस तरह क्रातिकारी स्थिति पदा की है और क्रातिकारी विस्फोटा को बढावा दिया है। यह याद रहे

कि रूस म अक्तूबर क्राति, पूर्वी यूरोप और एशिया की क्रातिया प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धो के कारण अतविरोधो के तीव्र हो जाने का परिणाम थी। लेकिन इससे यह नतीजा निकालना गलत होगा कि युद्ध के बिना क्राति असम्भव है। इसके विपरीत आज युद्ध के बिना क्रातिकारी स्थितिया के उत्पन्न होने की अधिकाधिक अनुकूल स्थितिया पदा हो रही हैं।

एक ओर पूजीवाद का पतन, विघटन तथा आम सकट और दूसरी ओर, समाजवाद की रचना, विकास और विजय **वतमान युग की दो मुख्य प्रवृत्तिया** ह, जो विश्व क्रातिकारी प्रक्रिया के विकास का नतीजा ह।

वतमान स्थितिया म पूजीवाद के आम सकट की मुख्य अभिव्यक्ति है विश्व समाजवादी व्यवस्था की रचना और दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाओ म विश्व का विभाजन।

इस सक्ट की एक और महत्वपूण अभिव्यक्ति औपनिवेशिक व्यवस्था का विघटन है, जो राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन के विकास का प्रत्यक्ष नतीजा है।

रूस की महान अक्तूबर क्राति ने औपनिवेशिक तथा पराधीन देशा म राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को जबरदस्त बढावा दिया। इसी के साथ इस प्रक्रिया को तयार करने और तेज करने मे अनेक अदरूनी तत्वो का हाथ था, जिन्होने साम्राज्यवाद की औपनिवेशिक व्यवस्था को अदर ही अन्दर खोखला कर दिया (अनेक औपनिवेशिक और पराधीन देशो म उद्योग और पूजीवादी सबधो का विकास, वहा सवहारा, बुद्धिजीविया और एक राष्ट्रीय पूजीपति वर्ग की उत्पत्ति)।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आदोलन दूसरे विश्व युद्ध के दौरान मे और उसक बाद विश्व समाजवादी व्यवस्था की उत्पत्ति तथा पूजीवादी जगत म सभी सामाजिक प्रक्रियाओ पर उसके क्रातिकारी असर के साथ एक बडी शक्ति शाली लहर के रूप मे फैल गया है।

एक छाटी सी ऐतिहासिक अवधि मे चन्द एक को छोडकर लगभग सभी औपनिवेशिक और पराधीन दश आज़ाद हो गये और दजनो स्वतत्र राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना हुई। लेकिन आज भी करोडो आदमी, खासकर अफ्रीका म औपनिवेशिक जूए तले जीवन बिता रहे ह। मगर वहा भी साम्राज्यवाद के परो तले से जमीन खिसकती जा रही है। इसका मतलब है **साम्राज्यवाद**

की औपनिवेशिक व्यवस्था का सम्पूर्ण पतन, जो कि विश्व समाजवादी व्यवस्था की रचना के बाद इतिहास की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण घटना होगी।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में जनगण द्वारा राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति का यह मतलब नहीं कि इन देशों में साम्राज्यवाद के प्रभुत्व की जड़ सिरे से कट गई है, क्योंकि अभी भी वहां उसकी आर्थिक स्थितियां मजबूत बनी हुई हैं। एक बड़ी समस्या इन देशों का आर्थिक पिछड़ापन है, जिस कारण यह अतिआवश्यक हो जाता है कि ये देश अपने राष्ट्रीय अर्थतंत्र को विकसित करें अगर वे चाहते हैं कि उनका जीवन स्तर ऊंचा हो और वे साम्राज्यवाद से सही मानों में मुक्ति पायें, जो पहले के उपनिवेशों को अपने असर के मातहत लाने के लिये नये और अधिक कपटपूर्ण तरीके अपना रहा है। इन्हीं तरीकों को **नव उपनिवेशवाद** कहते हैं।

दुनिया में आज चूंकि केवल एक पूंजीवादी ही नहीं, बल्कि समाजवादी व्यवस्था भी मौजूद है, इसलिये नवजात देशों के सामने दो सम्भावनाएं हैं **पूंजीवादी तथा गैरपूंजीवादी विकास का रास्ता, जो समाजवाद तक ले जाता है।** इन देशों के समक्ष जो आर्थिक तथा सामाजिक समस्याएं हैं, उनको समाजवादी शिविर तथा पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग के आन्दोलन और साथ ही देश के अन्दर जनवादी शक्तियों को एकजुट करने के आधार पर हल करने की कोशिश से एक ऐसा रास्ता खुलता है, जिससे वे अपने सदियों पुराने पिछड़ेपन को तेजी से दूर कर सकते हैं।

यह प्रयास कि एक ओर जनगण के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन को और दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्था और पूंजीवादी देशों में क्रांतिकारी मजदूर वर्गीय आन्दोलन को एक दूसरे से अलग और खिलाफ खड़ा किया जाये इस झूठे नारे के तहत कि "क्रांतिकारी विश्व ग्राम' पूंजीवाद द्वारा प्रभावित "विश्व नगर" को पराजित करे, बिल्कुल बेकार सी बात है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में बहुत विविध प्रकार की सामाजिक शक्तियां हैं, जिनका संबंध औद्योगिक विकास (सर्वहारा और राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग) और सामंतवाद तथा कबायली संबंधों के अवशेषों (किसान समुदाय, जिसमें कबायली संबंध अब भी मजबूत हैं, आदि) से है। एक और बात जिसका ख्याल रखना पड़ता है, वह है इन देशों के जीवन और विकास पर ऐसे सामाजिक गिरोहों का असर जैसे निम्नपूंजीवादी, बुद्धिजीवी, स्थानीय नौकरशाही उच्च अधिकारी और सेना। इस विचित्र भूमि पर

वनानिक समाजवाद के विचारा को ले जाना तथा स्वाधीनता आदोलन के लिय ऐसी रणविधि और कायनीति निरूपित करना, जा गरपूजीवादी विकास के तकाजा को पूरा कर एक आवश्यक यद्यपि वहुत कठिन काम है। एक आर ममाजवादी विचारा का आकपण, और दूसरी आर अविकसित सामाजिक स्थितिया समाजवाद की विविध धारणाआ – 'अफ्रीकी", "एशियाई", "राष्ट्रीय" तथा अय के लिय उपजाऊ भूमि का काम देती ह। इन धारणाआ तथा उनसे उत्पन्न सामाजिक कायक्रमा का मूल्याकन करने के लिय मवसे वढकर उनके दिशामान का ध्यान म रखना जरूरी हे क्या इनका रख समाजवाद तथा विश्व क्रातिकारी आन्दालन की शक्तिया के साथ एकता स्थापित करने की ओर है, या इन शक्तिया के खिलाफ? साम्राज्यवाद विरोधी है या साम्राज्यवाद के पक्ष मे?

विश्व के दो शिविरा म विभाजन के साथ और खासकर विश्व समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के वाद पूजीवादी व्यवस्था के सरक्षण का सघप माम्राज्यवादी राज्यो की वदेशिक नीति का सवसे महत्वपूण काय हो गया। **साम्राज्यवादी सनिक राजनीतिक गठवधन करते और ब्लाको की रचना करते ह ताकि समाजवादी व्यवस्था के देशो से लड सके और मजदूर वग तथा राष्ट्रीय आजादी के आदोलन को कुचल सके।**

युद्ध पूजीवादी विकास की साम्राज्यवादी अवस्था के आर्थिक अतविरोधा का तथा आर्थिक नियमो के अमल म आने का नतीजा हात है। युद्ध तव तक अनिवाय थे, जव तक दुनिया म ऐसी काई वास्तविक शक्ति नही थी, जो युद्ध की आग भडकाने की नीति को निश्फल वना सकती है। माम्राज्यवाद के युग म ये युद्ध विश्व युद्ध वन गये। लकिन आज मुख्यतया विश्व समाजवादी व्यवस्था की उत्पत्ति और विकास के कारण अतर्राष्ट्राय क्षेत्र म एक ऐसी शक्ति पैदा हो चुकी है, जिसम यह क्षमता ह कि माम्राज्यवादियो की आक्रमणकारी चालवाजिया का प्रतिराध कर मक। इसी लिये कम्युनिस्ट इस वात पर जोर दत ह कि **विश्व थरमोन्युक्लियर युद्ध का रोकना सम्भव है।**

युद्ध या शाति की समस्या हमार समय की मवम महत्वपूण ममस्या ह करोडा अरवा इनसाना के लिय यह जीवन-मरण का सवाल है। "मुख्य

बात है परमोयुक्लियर युद्ध को रोकना, उसे छिड़ने नहीं देना। वर्तमान पीढ़ी यह काम कर सकती है।"*

एक ग्रोर पूंजीवादी व वर्गीय मतविरोधा का तीव्र होना, ग्रोर दूसरी ग्रोर कम्युनिस्ट विचारा का सफलतापूर्वक फलना तथा समाजवादी देशा की उपलब्धियां, साम्राज्यवादियों को मजबूर करता है कि कम्युनिज्म से लड़ने के नये तरीके ग्रोर साधन ढूंढ निकालें। इन स्थितियों में उनकी निगाह इस पर जमी है ग्रोर वह ग्रास लगाये हुए है कि कम्युनिस्ट ग्रान्दोलन में फूट पड़े ग्रोर ग्रलग ग्रलग पार्टियों में राष्ट्रवादी गुटबन्दियां उत्पन्न हों।

इस लिहाज से, माग्रो त्से-तुंग गुट की महानशक्तिवादी, सोवियत विरोधी राष्ट्रवादी नीति साम्राज्यवादियों के लिये एक उपहार साबित हुई। शुरू से ही माग्रोवादियों की 'विशेष लाइन" से विश्व के कम्युनिस्टों के कान खड़े हुए थे, ग्रौर ग्रागे की घटनाक्रम से यह साफ हो गया कि इस लाइन का उद्देश्य यह था ग्रौर ग्राज भी है कि ग्रंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट ग्रान्दोलन में फूट डाली जाये, विभिन्न राष्ट्रों की कम्युनिस्ट पार्टियों में माग्रोवादी गुट कायम किये जायें ग्रोर ग्रात्मनिष्ठ, वामपक्षी ग्रवसरवादी नीतियों पर ग्रमल किया जाय। इसी लिये कम्युनिस्ट ग्रौर मजदूर पार्टियों ने माग्रो गुट की फूटवादी नीति का दृढ़तापूर्वक विरोध किया।

विभिन्न युगों में क्रांतिकारी ग्रान्दोलन का लम्बा इतिहास ग्रौर बड़ा ग्रनुभव मौजूद है, जिससे यह प्रकट होता है कि क्रांतिकारियों की पांति में फूट पड़ने से बहुत नुकसान हुग्रा है। इसी लिये मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धांतों के ग्राधार पर विश्व कम्युनिस्ट ग्रांदोलन की एकता के लिये संघर्ष विश्व क्रांतिकारी प्रक्रिया के सफलतापूर्वक विकास की सबसे महत्वपूर्ण शर्त ग्रौर कार्यभार है। कम्युनिस्ट ग्रौर मजदूर पार्टियों का मास्को सम्मेलन, १९६९, विश्व क्रांतिकारी ग्रान्दोलन की एकता को दृढ़ बनाने में ग्रत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसकी मुख्य दस्तावेज में साफ साफ निरूपित किया गया था कि वर्तमान ग्रवस्था में साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के कार्यभार क्या हैं ग्रौर कम्युनिस्ट तथा मजदूर पार्टियों ग्रौर ग्रन्य सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों के कार्य की एकता सुनिश्चित करने की ग्रावश्यक शर्तें क्या हैं।

---

* सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का कार्यक्रम, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, पृ० ६७

सम्मेलन का यह जगी आवाहन सारे ससार म गूज उठा समाजवादी देशा के जनगण, पूजीवादी दशा के मजदूरा, सारी जनवादी शक्तिया, नव आजाद जातिया तथा उत्पीडित जनगण साम्राज्यवाद के विरुद्ध शाति, राष्ट्रीय स्वाधीनता, सामाजिक प्रगति, जनवाद और समाजवाद के लिये समान सघप मे एकतावद्ध हो।"

चूकि समाजवादी क्राति म मुख्य सवाल पूजीपति वग का तख्ता उलटना तथा सवहारा का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना होता है इसलिय क्राति का विषय हम सीधे सवहारा अधिनायकत्व के विषय तक ले आता है।

सर्वहारा का अधिनायकत्व। समाजवादी राज्य का विकास

सवहारा अधिनायकत्व का विचार मार्क्सवाद के सस्थापका ने वज्ञानिक कम्युनिज्म के अपने सिद्धात क एक वुनियादी उसूल के रूप म पेश किया था। उन्होने सिद्ध किया कि पूजीवादी समाज के अतविरोध अनिवायत सवहारा क्राति तक ले जाते हैं। मार्क्स और एगेल्स न अपने कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' मे लिखा था "मजदूर वग की क्राति का पहला कदम सवहारा वग का उठाकर शासक वग के आसन पर बठाना और जनवाद के लिये होनेवाली लडाई को जीतना है।"*

सवहारा का अधिनायकत्व शासक वग के रूप म सगठित सवहारा है। लेकिन 'कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणापत्र' म सवहारा अधिनायकत्व के विचार को बहुत ही आम शब्दा म व्यक्त किया गया था। १९वी शती की महान वर्गीय लडाइया–१८४८ की क्राति और १८७१ की परिस कम्यून के अनुभव के आधार पर उसे और ठास रूप दिया तथा विकसित किया गया।

१८४८ की क्राति स मार्क्स को इस सद्धातिक नतीजे पर पहुचने म सहायता मिली कि सवहारा वग पूजीवादी राज्य म सत्ता का सीधे सीधे

---

*का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए चार भागा म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग १, पृ० ६८

अपने हाथा म नही ले सकता, बल्कि अगर उसे अपना अधिनायकत्व स्थापित करना है ता उसे पहले पूजीवादी राज्य मशीन को तोडना होगा। अगर सवहारा त्राति को विजयी होना है तो इस मशीन को चकनाचूर करना होगा। सवहारा राज्य के नय कायभारा का पूरा करन क लिय पुराने राज्य की मशीन को इस्तमाल नही किया जा सकता क्याकि वह शापण और उत्पीडन की व्यवस्था से सम्बद्ध है और बनाई ही इस लिये गई है कि श्रमजीवी जनता का दमन कर।

इस स्थापना की सच्चाई रूस की महान अक्तूबर समाजवादी त्राति म और जनवादी जनतन्त्रा की त्रातिया मे पूरी तरह उभर कर सामन आई। उन त्रातिया न यह दिखा दिया कि जहा पुरानी राज्य मशीनरी का तोडने के तरीके और साधन भिन्न हो सकत ह और पुराने राज्य के कुछ अग नय राज्य की प्रणाली मे इस्तेमाल करने के लिये छोडे जा सकते ह, वहा एक सपूण इकाई क रूप म शापक राज्य की व्यवस्था और उसकी बल प्रयाग की सनिक-नौकरशाहाना मशीनरी को सवथा चूर चूर कर देना जरूरी है।

सवहारा का अधिनायकत्व बुनियादी तौर पर एक नये ढग का राज्य है। इतिहास म इसके स्थान और भूमिका की व्याख्या करते हुए मार्क्स ने लिखा 'पूजीवादी और कम्युनिस्ट समाज के बीच एक के दूसरे म त्रातिकारी रूपातरण का काल होता है। इसके समवर्ती एक राजनीतिक सक्रमण काल भी होता है, जिसमे राज्य सवहारा के क्रातिकारी अधिनायकत्व के सिवा और कुछ नही हो सकता।'*

सवहारा के अधिनायकत्व का उद्देश्य उससे शोषक वर्गों के अनिवाय प्रतिरोध को कुचलने के लिये उपकरण का काम लेना है। परन्तु यह मान लेना गलत होगा कि उसकी भूमिका ले देकर केवल बल का प्रयोग करना है। सवहारा अधिनायकत्व शोषका के प्रति बल प्रयोग केवल उसी हद तक करता है, जिस हद तक वह अपने आपको इसपर मजबूर पाता है। जहा तक श्रमजीवी जनता का सबध है, सवहारा राज्य बल प्रयोग के अस्त्र का रूप धारण ही नही करता, बल्कि मजदूर वग द्वारा श्रमजीवी जनता के सभी हिस्सा के राजनीतिक निदेशन का काम करता है। यह राजनीतिक

---

*का० मार्क्स फ़े० एगेल्स, सकलित रचनाए, चार भागा म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग २ पृ० २१६

निदेशन इस लिये जरूरी होता है कि श्रमजीवी जनता को पूजीपति वर्ग से अलग किया जा सके, उन्हे मजदूर वर्ग के गिर्द इकट्ठा किया जा सके और नये समाज के निर्माण मे उन्हे शरीक किया जा सके। मार्क्सवाद को विकसित करने मे लेनिन ने खासकर सर्वहारा अधिनायकत्व के सवाल को **मजदूर वर्ग और किसानो की एकता के एक विशेष रूप मे पेश किया,** जिसमे मजदूर वर्ग अगुआ की भूमिका अदा करता है। यह एकता सर्वहारा अधिनायकत्व का **उच्चतम** सिद्धात है।

सर्वहारा अधिनायकत्व पहले के सभी राज्यो से इस लिहाज से भी भिन्न है कि आर्थिक कार्य इसके सबसे महत्वपूर्ण कार्यों मे हो जाता है। अतीत मे किसी भी राज्य ने उद्देश्यपूर्ण रूप से कभी अपने समक्ष एक नई अर्थव्यवस्था के निर्माण का काम नही रखा है। अकेले एक सर्वहारा राज्य है, जो अपने लिये नये, समाजवादी अर्थतन्त्र के निर्माण का कार्यभार निर्धारित करता है।

सर्वहारा अधिनायकत्व राज्य सत्ता के उपकरण तक सीमित नही है। इसका उद्देश्य है जनता को समाजवादी निर्माण के काम मे शरीक करना, श्रमजीवी जनता का प्रशासन मे भाग लेने पर आमादा करना और इस कारण वह जन सगठनो (सोवियतो, ट्रेड-यूनियनो, सहकारी समितियो, युवक सघो, आदि) की पूरी व्यवस्था है, जिनका नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी करती है। एक प्रमुख नेतृत्वकारी शक्ति के रूप मे पार्टी के बिना सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को अमल मे लाना असम्भव है।

यह ध्यान मे रखते हुए कि सर्वहारा को पुराने राज्य की मशीनरी को तोड देना है, स्वभावत यह सवाल उठता है कि फिर उसका स्थान क्या चीज लेगी, यानी यह सवाल कि **सर्वहारा राज्य का क्या रूप होगा।**

लेनिन ने इस बात पर जोर दिया कि राज्य के रूप का सवाल ठोस स्थितियो के सदर्भ मे तय होता है। मार्क्सवाद ने अपने समक्ष कभी यह कार्य नही रखा था कि भविष्य के राजनीतिक रूपो का "पता लगाये" और इस प्रकार के रूपो की सकुचित व्याख्या करके अपनी कार्य की आजादी पर प्रतिबध लगाना बेतुकी सी बात होगी।* सिद्धात केवल प्रक्रिया के सारतत्व

---

* व्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए, चार भागो मे, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६६, भाग ३, पृ० १५८

की भविष्यवाणी कर सकता है, लेकिन उसके रूपा को पहले से निर्धारित करना सभव नही, उन्हे सिर्फ जिन्दगी के दौरान मे खोजा जा सकता है। परन्तु राज्य का रूप चूकि ठोस स्थितिया पर निभर करता है और चूकि समाजवाद के लिये मजदूर वग का सघप अत्यत भिन्न एतिहासिक स्थितिया मे होता है, इसलिये सिद्धात यह भविष्यवाणी अवश्य कर सकता है कि ये रूप भिन्न हागे। लेनिन न लिखा "पूजीवादी राज्या के रूप अनक ह, लेकिन उनका सार एक है व सभी राज्य, चाहे उनके रूप जस भी हा, अन्तिम विश्लेपण म अनिवायत पूजीपति वग का अधिनायकत्व हात ह। पूजीवाद से कम्युनिज्म म सक्रमण, वेशक, राजनीतिक ढाचा की बहुरूपता तथा प्रचुरता उत्पन किये विना रह नही सकता, लेकिन उनका सार अनिवाय रूप स एक होगा—सवहारा वग का अधिनायकत्व।"* इन सद्धातिक स्थापनाओ की स्पष्टत इतिहास न पुष्टि कर दी है। सन १८७१ की परिस कम्यून सवहारा अधिनायकत्व का प्रथम रूप था। रूस मे सोवियत सवहारा अधिनायकत्व का रूप बनी। दूसरे विश्व युद्ध के बाद समाजवाद म सक्रमण का जनवादी गणतत्रीय रूप सामने आया।

समाजवाद मे सक्रमण के रूप का सवाल सम्बद्ध है उन ठोस स्थितिया से, जिनम समाजवादी क्राति विकसित होती है, वग सघप की तीव्रता म और इस बात से कि उन स्थितिया म सैन्य शक्ति का प्रयोग करके या उसके बिना ही समाजवाद म प्रवेश करना सम्भव है।

जसा कि पहले कहा जा चुका है, मार्क्सवाद ने समाजवाद म शातिपूण सक्रमण की सम्भावना से, यदि इसके लिये अनुकूल परिस्थितिया हो, कभी भी सिद्धात रूप म इनकार नही किया। १८४७ म एगेल्स न अपन 'कम्युनिज्म के सिद्धात' म इस सवाल का जवाब देते हुए कि क्या निजी स्वामित्व को शातिपूण ढग से मिटाना सम्भव है, कहा "इसकी इच्छा करनी चाहिये कि ऐसा हो, और कम्युनिस्ट कदापि इस बात का विरोध नही करेगे।'

रूस मे फरवरी, १९१७ की क्राति के बाद लेनिन ने भी बाल्शेविक पार्टी को इसी दिशा म आगे बढाया कि सोवियत शातिपूण ढग से सत्ता

---

*ब्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए, चार भागा म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९६६, भाग २, पृ० २०७

अपने हाथ मे ले सकती है, मगर आगे चलकर यह रास्ता क्राति विरोधी शक्तियो के चलते ही बद हो गया।

आज, वतमान जनवादी ससदीय साधना क इस्तमाल से समाजवाद मे शातिपूण सक्रमण की सम्भावना का उल्लेख पूजीवादी देशा की कुछ कम्युनिस्ट पाटिया के कायक्रमो मे किया गया ह। इससे समाजवादी क्राति के शातिपूण विकास के एक रूप म **समाजवाद के ससदीय माग** का सवाल पदा होता है। कही यह लेनिनवाद के रास्त से भटक जाना तो नही है?

हम याद रखना चाहिये कि लेनिन ने कडे शब्दा म काउत्स्की और अय अवसरवादियो की आलोचना की थी, जो ससदीय तरीका को पूजीवाद के खिलाफ क्रातिकारी सघष के विरुद्ध रखत थ और कहत थे कि मजदूर वग केवल ससद द्वारा ही सत्ता प्राप्त कर सकता है। अवसरवादियो के लिये ससदीय तरीके का मतलब था, एक तो क्राति की, दूसरे, ससद के बाहर सक्रिय तथा व्यापक जन सघष की और तीसरे, सवहारा वग के अधिनायकत्व की आवश्यकता से इनकार। परन्तु लेनिन द्वारा काउत्स्की के समाजवाद के ससदीय तरीके की आलोचना का मतलब यह नही है कि उन्होने ससदीय साधनो के क्रातिकारी इस्तमाल की सम्भावना से इनकार किया। **समाजवाद के ससदीय तरीके के प्रति अवसरवादी तथा क्रातिकारी दृष्टिकोण के बुनियादी फक को समझना जरूरी है।** आज, कम्युनिस्ट समाजवाद के ससदीय सक्रमण को क्राति स मुह मोडना नही समझते, बल्कि उसका शातिपूण विकास मानत हैं, एक ऐसी स्थिति म, जबकि क्रातिविरोधी शक्तियो को इतना बेजान बना दिया जायेगा कि उनम गृहयुद्ध छेडने का साहस नही रह जायेगा। इन हालतो मे समाजवाद क ससदीय माग का नारा पूजीवाद के विरुद्ध सुदृढ सघष के लिये जनता को सगठित करने का एक तरीका भी हो सकता है। इसके अलावा वतमान स्थिति म यह माग क्राति क गरशातिपूण विकास को वहा नियम विरुद्ध घोषित नहा करता, जहा लाग जनवादी आजादियो से वचित ह और जहा उह हथियार लेकर अपने अधिकारो के लिये लडना पडता है।

मजदूर वग के आन्दोलन का ऐतिहासिक अनुभव यही बतलाता है कि मजदूर वग के सघष म सफलता इस बात पर निभर करती है कि वहा तक स्वय उसन और उसकी क्रातिकारी पार्टी न सघष क हर रूप—शातिपूण और गरशातिपूण, ससदीय और गरससदीय—म कुशलता प्राप्त कर ली है

और रहा तो भी इसी के साथ और आगार संघर्ष के एक रूप को बदलकर दूसरे का बनाता है जिस प्रकार है। हर ठोस सूरत में संघर्ष का रूप उस वर्ग के एक सर्जनात्मक राय है और द्वारा ग्राम ऐतिहासिक स्थितियों के मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्लेषण के आधार पर ही किया जा सकता है।

प्रत्येक समाजवादी देश में राज्य के विकास की अपनी खास विशेषताएं होती हैं लेकिन सबों में कुछ समान लाक्षणिकताएं भी होती हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है क्योंकि हर राज्य का विकास अपने समाज के साथ जुड़ा होता है और दूसरे विकास भी अधिक समाज के विकास की मंजिल पर निर्भर रहती है।

संक्रमण काल और समाजवाद के निर्माण के पूरा होने पर राज्य अपने विकास के एक नये दौर में प्रवेश करता है। समाजवादी समाज में प्रतिरोधी वर्गों को मिटा दिया जाता है मगर समाजवाद की विजय का यह मतलब नहीं कि समाज एक ऐसी स्थिति में आ गया है, जहां राज्य की जरूरत नहीं रही। राज्य की संस्था समाजवाद के अंतर्गत भी जरूरी होती है और यह जरूरत अंदरूनी और बाहरी दोनों कारणों से पैदा होती है।

चूंकि श्रम के पुराने सामाजिक विभाजन—शहर और देहात, मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच तथा श्रमजीवी वर्गों के बीच विभाजन—के अवशेष बाकी रहते हैं इसलिये राज्य उनके समान हितों का संरक्षक बन जाता है। और यह भी एक कारण है कि सार्वजनिक स्वामित्व राजकीय स्वामित्व का रूप धारण करता है।

राज्य चूंकि उत्पादन के मुख्य साधनों का मालिक होता है और आर्थिक क्षेत्र में समाज के हितों का प्रतिनिधित्व करता है, इसका काम अर्थतंत्र को आगे बढ़ाना और योजनाबद्ध करना तथा पूरे देश के पैमाने पर उसे संगठित करना है।

इस आर्थिक-संगठनात्मक कार्यभार के साथ प्रत्यक्ष रूप से सम्बद्ध है राज्य का यह कार्यकलाप कि जनता को शिक्षित करे, उसके आम सांस्कृतिक और तकनीकी स्तरों को ऊंचा करे और उसमें कम्युनिस्ट चेतना पैदा करे। समाजवाद के अंतर्गत आर्थिक विकास के स्तर के कारण चूंकि अभी यह सम्भव नहीं होता कि आवश्यकतानुसार वितरण की विधि जारी की जाये और चूंकि वेतन काम के परिमाण और गुण के अनुसार दिया जाता है—यानी चूंकि वितरण में असमानता बाकी रहती है—इसलिये उन कानूनी

नियमा की मामाजिक जरूरत भी बाकी रहती है, जिनके जरिये श्रम की मात्रा और उपभोग की दर मे आवश्यक सबध कायम किया जाता है। समाजवादी राज्य ही का यह काम भी है कि इन नियमा की रक्षा तथा श्रम की मात्रा और उपभोग की दर को नियत्रित कर।

समाजवाद के अतगत राज्य की आवश्यकता तथा आचरण के बाध्य तथा पालनीय नियमा और अधिनियमा की जरूरत सास्कृतिक विकास के स्तर से भी पदा होती है। अवश्य ही सोवियत सघ तथा दूसरे समाजवादी देशा म मानवा के जीवन की बदलती स्थितिया के अनुकूल और पाटिया और राज्या के सास्कृतिक तथा शिक्षणात्मक प्रयास के परिणामस्वरूप एक नये सास्कृतिक साचे मे ढाला जा रहा है। समाजवादी देशा म अब ऐसे आदमिया की सख्या कम से कम होती जा रही है, जो किसी चीज को सिफ इसलिये तोड और खराब कर सकते है कि वह "उनकी" नही है, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि इन देशा म समाज के सभी सदस्य सबा के भले के लिये सचेत रूप से काम करना सीख गये ह। अक्तूबर क्राति स ठीक पहले लेनिन ने इस बात पर जार दिया था " अगर हम कल्पनावाद म नही फसना है, तो हम यह नही सोचना चाहिय कि पूजीवाद का तख्ता उलटने के बाद फौरन ही लोग अधिकार के किसी मानक के बिना समाज के लिये काम करना सीख जायेगे। और सचमुच पूजीवाद का खात्मा ऐसे परिवत्तन का आथिक आधार फौरन ही नहीं पदा कर देता।"*

अतिम बात, समाज के अतगत अभी यह जरूरत बाकी रहती है कि राज्य चोरा उचक्का से सामाजिक और व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करे और प्रत्येक नागरिक के अधिकारो और आजादियो तथा सम्पूण रूप मे समाजवादी अमन चन को सुनिश्चित बनाये रखे।

समाजवाद के अतगत राज्य के कायम रहने के दो बाहरी कारण भी ह। पहला *और सबसे बडा कारण साम्राज्यवादी शिविर का अस्तित्व है*, जो समाजवादी शिविर का सामना करता और उसके विरुद्ध सघष जारी रखता है। चूकि साम्राज्यवाद के अस्तित्व के साथ युद्ध और आक्रमण का

---

*ब्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए, तीन खण्डो मे, प्रगति प्रकाशन, मास्को, खण्ड २, भाग १, पृ० ४८०

बराबर खतरा बना रहता है, इसलिए समाजवादी समाज का राज्य की आवश्यकता रहती है ताकि वह उसकी सुरक्षा कर, देश की प्रतिरक्षात्मक क्षमता को सुनिश्चित कर तथा विश्व शांति की रक्षा कर।

दूसरे विश्व समाजवादी व्यवस्था की उत्पत्ति तथा एक विशाल क्षेत्र की रचना ने जिसे तीसरी दुनिया कहते हैं, प्रत्येक समाजवादी राज्य के वैदेशिक कार्य का क्षेत्र बढ़ा दिया है जो अब केवल अपने देश की प्रतिरक्षा के कार्य तक सीमित नहीं रहा, बल्कि जिसमें अब समाजवादी शिविर के सभी देशों के साथ सहयोग तथा परस्पर सहायता का संबंध कायम रखना तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की सहायता करना भी शामिल है।

समाजवादी राज्य का स्वरूप, पूरे समाजवादी ऊपरी ढाँचे की तरह ही समाजवादी समाज की बुनियाद और उसके सामाजिक ढाँचे के खास चरित्र और परिवर्तन द्वारा निर्धारित होता है। समाजवाद में संक्रमण के साथ किसान जो कभी एक निम्नपूंजीपति वर्ग थे, समाजवादी समाज का वर्ग बन जाते हैं, जो उत्पादन साधनों की सामाजिक सम्पत्ति से संबंधित हैं। समाजवादी बुद्धिजीवी समुदाय की उत्पत्ति होती है और राष्ट्रीय संबंध बदल जाते हैं।

सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के दौरान में एक नयी सामाजिक इकाई—सोवियत जनगण—की रचना हुई। उसे जोड़नेवाली चीज़ लोगों के बुनियादी आर्थिक और राजनीतिक हितों की एकता और मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा है। इस सामाजिक आधार पर सोवियत देश के अन्दर विरोधी वर्गों को कुचलने का काम, जो सर्वहारा अधिनायकत्व का एक मुख्य कार्य था, धीरे धीरे समाप्त हो जाता है। समाजवादी राज्य ज्यों-ज्यों विकसित होता है, समूचे जनगण की इच्छा को व्यक्त करने लगता है और पूरे जनगण का राज्य बन जाता है।

समाजवादी समाज में मज़दूर वर्ग की नेतृत्व की भूमिका कम्युनिस्ट या मज़दूर पार्टी के ज़रिये व्यक्त होती है, जो नए समाज के निर्माता के रूप में मज़दूर वर्ग की ऐतिहासिक भूमिका को चेतन अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

वैदेशिक क्षेत्र में, दो सामाजिक व्यवस्थाओं के संबंध के क्षेत्र में, समाजवादी राज्य एक वर्गीय राज्य के रूप में, सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद के संवाहक के रूप में काम करता है, क्रांतिकारी मज़दूर वर्गीय तथा राष्ट्रीय

स्वाधीनता आन्दोलन के समर्थन की वर्गीय नीति पर अमल करता है, जिसका उद्देश्य समाजवादी समाज के विकास तथा कम्युनिज्म के निर्माण के लिये अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय स्थितियां और स्थायी शांति सुनिश्चित करना है।

समाजवादी राज्य के विकास का मतलब यह भी है कि जनता का व्यापक से व्यापक हिस्सा प्रशासन में शरीक हो और समाजवादी जनवाद को हर लिहाज से और अधिक विकसित किया जाये।

जनवाद तथा जनता के सृजनात्मक कार्यकलाप को बढ़ाने की एक आवश्यक शर्त नौकरशाहाना चालचलन के विरुद्ध निर्मम संघर्ष करना है। लेनिन ने कहा है "हम नौकरशाही के खिलाफ आखिर तक, पूर्ण विजय प्राप्त होने तक *उसी दशा में लड़ सकते हैं, जब पूरी जनसंख्या शासन के काम में भाग ले।*"*

पहले के सभी शोषक राज्यों के विपरीत, **समाजवादी राज्य अपने विकास के दौरान में स्वयं अपने लोप की आवश्यक स्थितियों को जन्म देता है।** परन्तु अगर इसे बिल्कुल मिट जाना है तो इसके लिये अनुकूल अन्दरूनी और अंतर्राष्ट्रीय स्थितियां आवश्यक हैं। राज्य के बिल्कुल मिट जाने की अन्दरूनी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक शर्तें केवल कम्युनिज्म के उच्चतर स्तर पर, और अंतर्राष्ट्रीय शर्तें उस समय पूरी होती हैं, जब बाहरी हमले का हर खतरा दूर हो जाये, यानी सारी दुनिया में समाजवाद विजयी हो जाये। जब तक वह समय नहीं आता राज्य के अस्तित्व का जारी रहना जरूरी होगा।

राज्य के मिट जाने का अर्थ है बल प्रयोग की विशेष मशीनरी तथा उसके राजनीतिक कार्यशीलता से सम्बद्ध सभी साधनों का विलोपन। राज्य के वे अभिकरण, जिनका संबंध उसके आर्थिक-संगठनात्मक तथा सांस्कृतिक शैक्षणिक कार्यों की पूर्ति से है, लुप्त नहीं होंगे। कम्युनिज्म के अंतर्गत राज्य नहीं होगा, मगर इसका मतलब यह नहीं कि कम्युनिस्ट समाज में उत्पादन और उपभोग के आयोजन, आवश्यकताओं का हिसाब किताब करने, सामूहिक जीवन तथा कार्यकलाप संगठित करने तथा अन्य और कई बातों की जरूरत नहीं रह जायेगी। इन सब चीजों के लिये सुव्यवस्थित संगठन आवश्यक

---

*ब्ला० इ० लेनिन, रूसी कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की आठवीं कांग्रेस में भाषण।

होगा, और यह समाज के सदस्य स्वेच्छापूवक करगे। परिणामस्वरूप कम्युनिस्ट समाज मे स्वशासन के अभिकरण हागे, जिसका मतलब यह है कि **राज्य का विलोपन पूरे जनगण के राज्य का कम्युनिस्ट सामाजिक स्वशासन मे रूपातरण है।**

समाजवादी क्राति के फलस्वरूप शोषणकारी विधि नष्ट की जाती है और उसके स्थान पर एक नई, समाजवादी वधानिक्ता, एक क्रातिकारी विधि कायम हाती है।

प्रारम्भ से ही सोवियत सत्ता ने विधि से पुराने आथिक, सामाजिक और विचारधारात्मक सबधा को नष्ट करने तथा नये सबध स्थापित करन का काम लिया। इसका पहला कानूनी कदम—भूमि पर निजी स्वामित्व का उन्मूलन—क्राति की विजय तथा आगे चलकर समाजवादी निर्माण के प्रयास के लिये अत्यत महत्वपूण था। फिर सोवियत सरकार न बका, रेलवे, वैदेशिक व्यापार, व्यापारिक जहाजरानी और इसके बाद पूरे बडे पमान के उद्योग के राष्ट्रीयकरण की आज्ञप्तिया जारी की, आठ घटे के काय दिवस, सामाजिक बीमे के कानून बनाये, सामाजिक दर्जों को मिटाया, गिरजा को राज्य से और स्कूल को गिरजा से अलग करने की आज्ञप्ति जारी की।

समाजवादी विधि राज्य कायकलाप, इसके कार्यो और कायभारो के सभी रूपो को निर्धारित करती है, और इसी से कानून की क्रियाशीलता तथा सामाजिक विकास को प्रभावित करने की उसकी पूरी क्षमता निश्चित होती है।

समाजवाद की विजय के साथ विधि समाजवादी समाज के समस्त जनगण की विलयित राज्य इच्छा का रूप धारण कर लेती है, जो विधान मे प्रतिष्ठापित हो जाती है। समाजवादी उत्पादन सबध, स्थापित और विजयी हाकर इस बात का भौतिक आधार मुहैया करते ह कि स्वय लोक हित मे लोक इच्छा की पूति की जाये। समाजवादी समाज म विधि वस्तुनिष्ठ नियमा को चेतन रूप से अमल म लाने और लागू करन के उपकरण का काम देती है। सम्पूण राज्य के पैमान पर राष्ट्रीय अथव्यवस्था और सस्कृति के विकास की योजना केवल वस्तुनिष्ठ नियमा के प्रतिबिब के रूप म ही नही, बल्कि कानूनी अधिनियम के रूप म भी व्यक्त हाती है। एक केद्रीकृत अयतत्र को, जो पूरे समाज पर व्याप्त हो, राज्य की सहायता से स्थापित करने और दढ बनाने म समाजवादी विधि एक खास बडी भूमिका अदा करती है।

कम्युनिस्ट निमाण क दौर म समाजवादी विधि और अधिक दढीभूत हो जाती है और समाज के कायकलाप को नियंत्रित करनेवाले कानूनी नियमो म, जिनका उद्देश्य कम्युनिस्ट निर्माण के सभी कार्यों को सुलझाना है, और सुधार होता है। समाजवादी कानून और न्याय की व्यवस्था का उद्देश्य अपराध और उसके कारणो का सम्पूर्ण उन्मूलन है। यह ऐसी चीज़ है जिससे आगे चलकर यह सम्भव होगा कि अपराध क दड के बजाए सामाजिक प्रभाव की कारवाइया जारी की जायें।

राज्य के विलोपन के साथ राजनीति वस्तुओ तथा उत्पादन प्रक्रियाओ क प्रबध की विद्या बन जाती है। मानवो के परस्पर सबधो का क्षेत्र जो कानूनी नियत्रण के अधीन नही है फैलता जाता है, मानव सबधो को नियंत्रित करन म नैतिकता अधिक भूमिका अदा करती है, नतिकता और विधि का भेद मिटता जाता है और नागरिको के अधिकार और दायित्व सुसगत रूप म नियमो की सुसम्बद्ध सहिता म विलयित हो जात ह, जिनके द्वारा कम्युनिस्ट समाज नियंत्रित होता है।

आठवां अध्याय

ऐतिहासिक प्रक्रिया का बौद्धिक पक्ष

पिछले अध्यायो म समाज का एक क्रियाशील और विकासशील व्यवस्था के रूप म अथवा मानव कायकलाप के परिणाम के रूप म विश्लेषण करत हुए हमे हमेशा ही **सामाजिक चेतना** पर विचार करना पडा। यह बिल्कुल स्वाभाविक था क्योकि सामाजिक चेतना किसी भी सामाजिक व्यवस्था के ढाचे का एक आवश्यक तत्व और मानवो की ऐतिहासिक सरगर्मी का एक जरूरी अग है। मगर सामाजिक चेतना सामाजिक जीवन की अन्य परिघटनाओ और मानवो की ठोस ऐतिहासिक सरगर्मी से केवल सम्बद्ध ही नही है वह सामाजिक जीवन का एक विशेष क्षेत्र भी है, एक विशष सामाजिक परिघटना, जिसका अध्ययन करने की जरूरत है ताकि जीवन मे और समाज तथा हर व्यक्ति के विकास म इसकी भूमिका का स्पष्टीकरण किया जा सके।

पूजीवादी लेखको ने अकसर यह आरोप लगाया है कि मार्क्सवाद समाज के विकास को केवल आर्थिक विकास के धरातल पर ले आता है, स्वय मनुष्य को केवल एक उत्पादक इकाई समझता है, मानव की आकाक्षाओ को भौतिक मूल्यो की प्राप्ति की चिन्ता तक सीमित कर देता और समाज मे मानव के बौद्धिक जीवन के महत्व को नजर अदाज करता है। इस प्रकार के आरोप, अवश्य ही जहा वे मार्क्सवाद के प्रति खुली दुश्मनी का नतीजा नही ह, वहा केवल यह प्रकट करते हैं कि सामाजिक विकास के मार्क्सवादी सिद्धात का उनका ज्ञान सतही है।

हम देख चुके ह कि इस सिद्धात के अनुसार सामाजिक विकास एसे
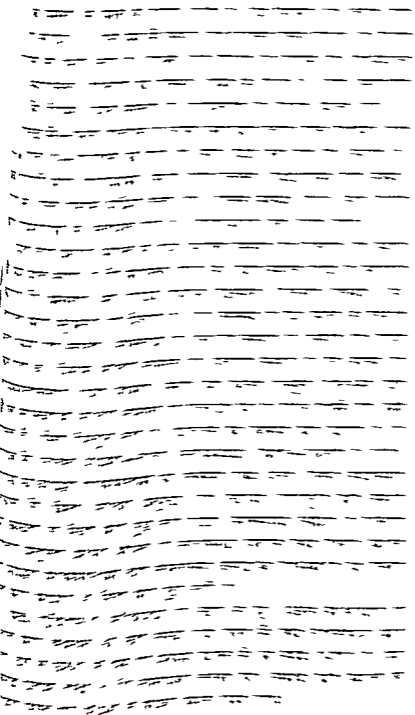
सामाजिक चेतना सवप्रथम प्राकृतिक तथा सामाजिक ययाथ का प्रतिबिंब है। इसकी उत्पत्ति अनिवायत हुई, क्योकि इसके बिना श्रम, प्रकृति के तत्वो के उद्देश्यपूण रूपातरण तथा मनुष्य की आवश्यक्ताओ के साथ उनके अनुकूलन के रूप मे, तथा उद्देश्यपूण कायकलाप आम तौर से असम्भव होता।

मनुष्य की सरगर्मी ससार को व्यवहार म बदलती ही नहा बल्कि बद्धि म आत्मसात भी करती है और इसके परिणाम सामाजिक चेतना म सुस्थिर होते हैं। **सामाजिक चेतना के क्षेत्र मे कायकलाप—बौद्धिक उत्पादन—विचारो, सिद्धातो, धारणाओ, कलात्मक कल्पना, इत्यादि का "उत्पादन" है।** परन्तु जो चीज एक ओर कायकलाप के रूप म प्रकट होती है, उसकी अभिव्यक्ति दूसरी ओर अस्तित्व के रूप म, वस्तु रूप म होता है। समस्त कायकलाप उस पदावार म, जो उसका नतीजा होता है, शारीरिक रूप धारण करता, पूरा होता और "खो जाता" है। इसी प्रकार बौद्धिक कायकलाप के नतीजे भाषा, पुस्तको, प्रविधि, इमारतो, कला की कृतियो तथा अन्य चीजो मे भौतिक रूप धारण करते ह।

समाज का बौद्धिक जीवन कवल विचारो का उत्पादन नही, बल्कि सामाजिक चेतना का अमल, यानी व्यक्तिगत चेतना स इसकी परस्पर क्रिया भी है। इसमे विभिन सामाजिक समूहो और वर्गो के बीच सद्धातिक सघष, विचारो, दष्टिकोणो और सिद्धातो का आदान प्रदान उनकी उत्पत्ति और विकास भी शमिल है। समाज के बौद्धिक जीविन का सामाजिक जीवन से गहरा सबध है, वह सामाजिक प्रक्रियाओ, टक्करो और झगडो को प्रतिबिबित करता है, और मानवो की सामाजिक सरगमियो के विभिन्न रूपो से सम्बद्ध होता है।

समाज के बौद्धिक जीवन को समझन के लिये सबसे पहले **सामाजिक चेतना की बनावट** पर सामाजिक जीवन की एक अपेक्षाकृत स्वतत्र परिघटना के रूप मे विचार करना आवश्यक है।

सामाजिक चेतना की बनावट के विश्लेषण के उसूल

सामाजिक चेतना एक ऐसी परिघटना है, जो बहुरूपी है और जिसमे एतिहासिक परिवतन होता है। इसपर विभिन पहलुओ से विचार करना स्वाभाविक और आवश्यक है। कुल मिलाकर हम विश्लेषण के लिये तीन

मुख्य पहलू मिलते ह ऐतिहासिक औत्पत्तिक, सज्ञानशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय।

प्रथम पहलू सामाजिक विकास की ऐतिहासिक मजिला के प्रसग म इसके इतिहास का अध्ययन ह। जसा कि मार्क्स ने कहा है बौद्धिक और भौतिक उत्पादन के सबध के विश्लेषण के लिये सवप्रथम आवश्यक है कि स्वय भौतिक उत्पादन पर एक निश्चित ऐतिहासिक रूप मे विचार किया जाय। अत भौतिक उत्पादन की पूजीवादी प्रणाली के अनुरूप एक प्रकार का बौद्धिक उत्पादन होता है, जो मध्य युग क उत्पादन से भिन्न हे समाजवादी बौद्धिक उत्पादन पूजीवादी से भिन्न है आदि। 'अगर स्वय भौतिक उत्पादन को उसके विशेष ऐतिहासिक रूप म नही लिया जाये तो यह समझना असम्भव है कि बौद्धिक उत्पादन मे उसके अनुरूप क्या विशिष्टताए ह और एक का दूसरे पर पारस्परिक असर क्या पडता है।"*

हर सामाजिक आर्थिक सरचना मे चेतना के अतय की ही नही, वल्कि उसकी बनावट की भी अपनी खास विशेषताए होती हैं। लेकिन इसपर विकास की बुनियादी मजिला के दृष्टिकोण से देखा जाय तो इतिहास मे तीन खास सरचनाए उभरकर सामने आती ह वगपूव समाज की चेतना, अतविरोधी वर्गीय सरचनाओ की चेतना तथा कम्युनिस्ट सरचना की चेतना, जिसकी उत्पत्ति इस समय हो रही है।

आदिम सामुदायिक सरचना म विचारो, धारणाओ तथा चेतना का उत्पादन प्रारम्भ म भौतिक कायकलाप से प्रत्यक्ष रूप मे सम्बद्ध था। धारणाओ की उत्पत्ति विचारना और समस्त बौद्धिक सव्यवहार मानवो क बीच भौतिक सबधो की प्रत्यक्ष पदावार मालूम होता था। चूकि आदिम समुदाय के सबध आदिम उत्पादन पर निभर करते थे इसलिये चेतना भी अविकसित और आदिम थी, केवल अतय मे ही नही वल्कि अपनी बनावट म भी। उस समय अभी वह साहतिक थी और आध्यात्मिक तत्वो के पचीदा मिश्रण के रूप मे दिखाई देती थी, जिसम नतिक अधिनियम, अनुभूत ज्ञान, धार्मिक विश्वास तथा कलात्मक भावना को एक दूसरे से अलग करना अभी बाकी था।

---

*का० मार्क्स, पूजी', खण्ड ४

उस समय के व्यक्ति के लिये सामाजिक चेतना और समूह-गण, कबीले-की चेतना एक थी। एंगेल्स ने लिखा "कबीला मनुष्य की सीमा बना रहा, स्वयं उसके अपने लिये भी और बाहरवाला के संबंध में भी। कबीला, गोत्र और उसकी प्रथाएं पवित्र और अलघ्य थी, एक उच्चतर शक्ति, जिसे प्रकृति ने प्रतिष्ठित किया हो, जिसके प्रति व्यक्ति भाव, विचार तथा कर्म में सर्वथा अधीन था।"*

अंतर्विरोधी वर्गीय संरचनाओं में न केवल चेतना के अंतर्य, बल्कि उसकी बनावट में भी गुणात्मक परिवर्तन होता है। पहले, नई सामाजिक संस्थाओं (राज्य) तथा सामाजिक जीवन के नये क्षेत्रों (राजनीतिक और कानूनी संबंध) के साथ साथ अनुरूपी राजनीतिक चेतना, विधि चेतना, आदि की भी उत्पत्ति होती है। दूसरे, समाज के वर्गों में बंट जाने के साथ सामाजिक चेतना विभिन्न वर्गों की चेतना के रूप में प्रकट होती है। आर्थिक तथा राजनीतिक हैसियत से प्रभुत्वशाली वर्ग की चेतना प्रभुत्वशाली चेतना के रूप में प्रतिष्ठापित हो जाती है। तीसरे, श्रम विभाजन तथा मानसिक और शारीरिक श्रम के बिलगाव के आधार पर सैद्धांतिक चेतना (दर्शन, विज्ञानों का प्रारम्भ) की उत्पत्ति होती है। सामाजिक चेतना के विकास से उसमें आंतरिक विभेदीकरण होता है और उसके भीतर अपेक्षाकृत स्वतंत्र रूप अलग हो जाते हैं राजनीतिक, कानूनी, नैतिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, सौंदर्यशास्त्रीय और दार्शनिक। इन रूपों में सामाजिक चेतना का विकास सभी अंतर्विरोधी संरचनाओं के अंतर्गत होता रहता है। बौद्धिक कार्यकलाप शासक वर्ग का विशेषाधिकार बन जाता है और श्रमजीवी जनता को नुकसान पहुंचाकर किया जाता है, जिसका काम शारीरिक श्रम का बोझ उठाना रह जाता है और जिसे हर बौद्धिक तत्व से वंचित कर दिया जाता है।

पूंजीवाद से कम्युनिज्म के संक्रमण के वर्तमान युग में अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका है कि चेतना की बनावट में पूरी तरह वह तब्दीलियां की जायें, जो कम्युनिज्म की उस समय की विशेषता होगी, जब वह सारी दुनिया में स्थापित हो जायेगा, लेकिन आज भी सोवियत संघ तथा अन्य समाजवादी देशों के अनुभव से इसकी प्रवृत्ति स्पष्ट हो गई है। चुनांचे

---

*का० मार्क्स, फ्रे० एंगेल्स, संकलित रचनाएं, चार भागों में, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग ३, पृ० २८६

सावियत सघ म समाज आर्थिक और राजनीतिक हिता की समानता के आधार पर सद्धातिक रूप से एकतावद्ध है। व्यक्तिगत निजी स्वामित्ववाली चेतना के अवशेष धीरे धीरे दूर हो रहे हैं। समाजवादी समाज म मनुष्या की विविध जरूरता की पूर्ति के रूपो मे परिवतन हुआ है और इसकी अभिव्यक्ति सबसे बढकर इस बात म हुई कि चेतना के धार्मिक रूपा का प्रभाव धीरे धीरे कम हा रहा है। सोवियत सघ म ८७ प्रतिशत से अधिक लोग नास्तिक ह। इसके अलावा राजनीति और कानून के क्षेत्र म काफी तब्दीलिया के साथ समाजवादी समाज की राजनीतिक और कानूनी चेतना म भी परिवतन हुआ है। यद्यपि अभी उनकी भूमिका बडी है, भविष्य म जब राजनीति और कानून के क्षेत्र के विलोप की स्थिति उत्पन्न हागी, तो इनके तकाजा को पूरा करनेवाले चेतना के रूप भी मिट जायेंगे।

अब आइये हम मानवजाति के ऐतिहासिक विकास के दौरान म चेतना का बनावट से अपना ध्यान सज्ञानशास्त्रीय पहलू की ओर मोडे। सज्ञानशास्त्रीय दृष्टिकोण का मतलब है सामाजिक चेतना पर इस दृष्टिकोण स विचार करना कि वह किस चीज को, कैसे और किस हद तक प्रतिविबित करती है सतही तौर पर या गहराई के साथ, सही तौर पर या गलत। हम देखते है कि चेतना अपनी सभी अभिव्यक्तिया मे प्रतिबिंव के रूप म यानी यथाथ के सज्ञान के रूप मे सामने आती है और इसका मूल्याकन सही और गलत के प्रवर्गो मे होता है। उदाहरण के लिये धार्मिक अथवा भाववादी दाशनिक चेतना से यथाथ का गलत प्रतिबिम्ब मिलता है, और वज्ञानिक या भौतिकवादी दाशनिक सज्ञान से यथाथ का सही ज्ञान प्राप्त होता है। सज्ञानशास्त्रीय विश्लेषण मे अनिवायत चेतना तथा सामाजिक-एतिहासिक व्यवहार के बीच सम्पक स्थापित करना भी शामिल है, क्याकि यही व्यवहार सज्ञान का आधार और उसकी सत्यता की कसौटी है।

सामाजिक चेतना के सज्ञानशास्त्रीय विश्लेषण से यह सम्भव हाता है कि इसके भीतर दो रचनात्मक स्तरा का फक देखा जा सके पहला, सामाजिक मानव की चेतना मे यथाथ के प्रत्यक्ष प्रतिबिंब का स्तर, अर्थात, साधारण चेतना, और दूसरा, प्रतिबिंव का एक ज्यादा गहरा स्तर, जो चेतना के पहले के विकास स सबद्ध है और जो व्यवस्थित सद्धातिक (या

फलात्मक) चेतना का रूप लेता है। साधारण और व्यवस्थित चेतना* को एक समझना गलत है, क्योंकि दोनों प्रकार की चेतना में सामान्यीकरण होते हुए भी साधारण चेतना एक निम्नतर स्तर का सामान्यीकरण है, जो रोजमर्रे के व्यवहार के दौरान में सामने आता है। इस विचारों और सिद्धांतों को एक सुसंगत व्यवस्था का बाकायदा रूप नहीं दिया गया है। व्यवस्थित चेतना की उत्पत्ति इसके विपरीत, विचारों के सुलभ भंडार से होती है, वह उसको विकसित करती है और एक उच्चतर स्तर के सामान्यीकरण के रूप में सामने आती है। विषयवस्तु से इसका सम्पर्क पूर्वसंचित विचारों के भंडार के जरिये से होता है। चेतना की बनावट का और अधिक सज्ञानशास्त्रीय विश्लेषण करने से उसके अन्दर के विभिन्न अंगभूत भाग सामने आते हैं, जो विषयवस्तु और प्रतिबिंब के रूप द्वारा निर्धारित होते हैं। उदाहरण के लिये, साधारण और व्यवस्थित चेतना के भीतर विभिन्न वस्तुओं, प्रकृति और समाज, औजार बनाने, विभिन्न परियोजनाओं के निर्माण की प्रणाली का ज्ञान, रोगों तथा उनकी चिकित्सा, आदमियों और राष्ट्रों के संबंधों, यथार्थ की सौंदर्यशास्त्रीय विशेषताओं और मानवीय भावनाओं, मानव हितों और समाज की आवश्यकताओं का ज्ञान शामिल है। परन्तु साधारण चेतना में प्रतिबिंब के इन सभी स्वरूपों का अभी स्पष्ट रूप में विभेदीकरण नहीं होता, जबकि व्यवस्थित चेतना में वे विशेषज्ञों के–वैज्ञानिकों, डाक्टरों, कलाकारों, विचारकों, सैनिकों, राजनीतिज्ञों आदि के कार्यकलाप की पैदावार होते हैं।

तीसरे–**समाजशास्त्रीय**–पहलू से हम सामाजिक चेतना पर **एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था के अंग के रूप में** विचार कर पाते और उस व्यवस्था की क्रियाशीलता और विकास में उसकी भूमिका का विश्लेषण कर पाते हैं। चेतना का समाजशास्त्रीय विश्लेषण वैज्ञानिक तभी होता है, जब सज्ञानशास्त्रीय विश्लेषण से इसका बुनियादी संबंध हो। सच तो यह है कि सम्पूर्ण रूप में, या इसके अलग अलग अंगों के रूप में चेतना की सामाजिक भूमिका को समझना असम्भव है, जब तक कि इस पर विचार न किया

---

*"व्यवस्थित चेतना" की शब्दावली का प्रयोग चेतना (यथार्थ के प्रतिबिंब) के उस स्तर के लिये, जो साधारण चेतना से उच्च स्तर की है, केवल इस कारण किया गया है कि इससे बेहतर कोई शब्द नहीं मिल सका। इसका प्रयोग करनेवालों को इसकी कमियों का एहसास है।

जाय कि वह किस चीज को और किस प्रकार प्रतिबिम्बित करती है। इसी के साथ समाजशास्त्रीय दष्टिकोण के बिना सज्ञानशास्त्रीय विश्लेषण स्पष्टत अपर्याप्त सिद्ध होता ह, क्योकि सज्ञानशास्त्र के दष्टिकोण से विज्ञान, नतिकता, धम, कला, दशन तथा विधि केवल विशेष वस्तुओ के प्रतिबिब, यानी सज्ञान के विशेष रूप मात्र जान पडते ह। समाजशास्त्रीय विश्लेषण उन सामाजिक आवश्यकताओ को ध्यान म रखता है, जिनके कारण उक्त बौद्धिक तत्व और उनकी क्रियाए जन्म लेती है और इस तरह चेतना क उपयुक्त रूपो के विभेदो को सामाजिक जीवन म उनकी भूमिका के अनुसार सामने लाने म सहायता देता है। इससे यह सम्भावना भी उत्पन्न होती है कि सामाजिक चेतना की बनावट म नये नये पक्ष सामने लाये जायें, जो सज्ञानशास्त्रीय दष्टिकोण अपनानेवाले विश्लेपक की निगाहो से बच निकलते ह।

फिर चेतना के समाजशास्त्रीय विश्लेषण से इसकी बनावट को समझने म क्या मदद मिलती है? इसकी सहायता से चेतना का विश्लेषण एक निश्चित सामाजिक व्यवस्था के भीतर के कार्यकलाप की भूमिका के रूप म किया जा सकता है।

वास्तव म, व्यवहार चेतना और उसके अलग अलग अगो को जन्म देता है ताकि वे इसके काम आये और उसे उद्देश्यपूर्ण बनायें। मानव व्यवहार बहुरूपी है, परन्तु सामाजिक मानव के सयोगिक व्यवहार म पात्र और वस्तु के बीच तीन मुख्य प्रकार के सबध पाये जाते ह, जिनके अनुसार विश्व के बौद्धिक आत्मीकरण की तीन प्रणालिया कायम हुइ

प्रथम, मनुष्य और, रूपातरण की विषयवस्तु के रूप म, प्राकृतिक या सामाजिक वस्तु का सबध, जिसके लिए वस्तुनिष्ठ ज्ञान की आवश्यकता होती है।

दूसरे, मनुष्य और मनुष्य का सबध, या मानवो के बीच सामाजिक सबध, जो एक निश्चित उत्पादन प्रणाली के आधार पर निरूपित होते ह और जिनकी रचना के लिये एक विचारधारा की आवश्यकता होती है।

तीसरे, पात्र और यथाथ का सौदर्यात्मक सबध, जिसके अनुसार कला की सष्टि होती है।

आदिम समाज की चेतना म भी समाजशास्त्रीय विश्लेषण से तीन तत्वो को उभार कर सामने लाने म सहायता मिलती है, जो बिना विभेदीकरण

मे विद्यमान होते थे। ये तत्व है जनता का आनुभविक ज्ञान, जिसकी प्राप्ति परख और भूल-चूक से होकर व्यावहारिक कार्यकलाप के आधार पर होती थी और जिसके द्वारा उस कार्यकलाप मे सहायता मिलती थी, मानवों के जीवन की सामाजिक स्थितियो का बोध, जो इन स्थितियो को रूप देने तथा स्थापित करने के एक साधन का काम देता था, एक साधन था, जिससे व्यक्ति का समाजीकरण होता और उसे सामाजिक जीवन की आवश्यक स्थितियो के अधीन किया जाता था, जो उस दौर मे अभी सुव्यवस्थित नही होता और जो सामाजिक मनोवृत्ति के रूप मे प्रकट होता था, जन रचनात्मकता, जिसका निरूपण उसी रफ्तार से होता था, जिस रफ्तार से मनुष्य यथार्थ से अपने संबंध का सौन्दर्यात्मक बोध प्राप्त करता था और जो सौन्दर्यात्मक गुणों के दृष्टिकोण से यथार्थ के संज्ञान तथा मूल्यांकन के साधन का, मानव के इन्द्रियासक्ति का विकसित करने के साधन का और जनता को शिक्षित करने और उसको सामाजिक कार्यभारों को पूरा करने के लिये एकजुट करने के साधन का काम देती थी।

समाज का ज्यों ज्यों विकास होता है, साधारण चेतना के ये तीनों अंगभूत लक्षण कायम रहते हैं क्योंकि जन चेतना मे यथार्थ का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब और रोजमर्रे के साधारण व्यवहार का प्रत्यक्ष बोध क़ायम रहता है। लेकिन अंतर्विरोधी संरचनाओं मे सामाजिक चेतना के विकास मे काफी फ़र्क पैदा हो जाता है। इसमे एक नया रचनात्मक स्तर उत्पन्न होता है, यानी पूर्वविद्यमान बौद्धिक विकास द्वारा निश्चित सैद्धांतिक और सौन्दर्यात्मक चेतना का क्षेत्र विज्ञान की उत्पत्ति सैद्धांतिक चिन्तन के माध्यम से उत्पन्न ज्ञान के रूप मे होती है विचारधारा की उत्पत्ति ऐसे विचारों की व्यवस्था के रूप मे होती है, जो चिंतन के संचित भंडार से जन्म लेते और युक्तिसंगत रूप मे उसको विकसित करते है, पेशावर कला की उत्पत्ति सौन्दर्यात्मक कल्पना मे यथार्थ के प्रतिबिम्ब के रूप मे होती है, जो पहले के सौन्दर्यात्मक व्यवहार से पैदा होता और उसको विकसित करता है।

इनमे से हर एक तत्व की पेचीदा बनावट होती है। इतिहास के दौरान मे विज्ञान मे विभेदीकरण और समाकलन की प्रक्रिया जारी रहती है, जिसके कारण आज वह ज्ञान की एक सुसंगत और अन्दरूनी तौर पर विभेदीकृत व्यवस्था दिखाई पड़ता है, जैसे एक बड़ा पेड़ और उसकी अनेक शाखाएं हों। वर्तमान स्थितियो मे विचारधारा मे छ भिन्न रूप शामिल है—

राजनीतिक विचारधारा, विधि चेतना, नैतिकता, धम, सौदर्यात्मक विचार तथा दशन, पेशावर कला भी एक ऐसी परिघटना के रूप मे सामने आती हे, जिसकी बनावट पचीदा ह। कला के उन प्रकारा मे, जिनकी जडें पुरानी ऐतिहासिक हैं—चित्रकला, साहित्य, नाटक, सगीत, आदि—नये प्रकार जोडे जा रहे ह, जैसे कला फोटाग्राफी, सिनेमा टेलीविजन, आदि।

यथाथ के सैद्धातिक चिन्तन के माध्यम से उत्पन्न प्रतिबिम्ब के य सभी अग मौलिक रूप म वही भूमिका अदा करत हैं, जा साधारण चेतना के अनुरूपी अगभूत तत्वो की होती है, मगर इनकी उत्पत्ति नये सामाजिक-ऐतिहासिक व्यवहार के आधार पर होती है। विज्ञान उस अवस्था म उत्पन्न हाता है, जब व्यावहारिक कायकलाप सैद्धातिक ज्ञान क बिना असम्भव हा जाता है। विचारधारा की उत्पत्ति उस अवस्था मे हाती है, जब बडी सख्या म जनता—वग—सामाजिक समस्याओ को सुलझाने क लिये आगे बढती है, जिसको एकताबद्ध होकर सफलता के साथ कदम उठान के लिये विचारा की एक व्यवस्था की जरूरत होती है, जिनके द्वारा उसके समान हितो की अभिव्यक्ति हो और जो इन हितो के माध्यम से यथाथ को प्रतिबिम्बित करे। पेशावर कला उस अवस्था मे, जब समाज उन लोगो का बोझ उठा सकता है, जो कला को एक पशे के रूप म अख्तियार करते हं, और जब निहायत उन्नत सौदर्यात्मक उपकरणो के माध्यम से मानवा की भावनाओ, इच्छा और मन को प्रभावित करने की जरूरत पदा हो गई हो।

जनता की साधारण चेतना तथा व्यवस्थित चेतना मे, जो पशावर वज्ञानिको, विचारको तथा कलाकारा द्वारा विकसित होती है, गहरा सबध होता है और वे एक दूसर को प्रभावित करती ह। इस परस्पर प्रभाव का ठोस स्वरूप निर्धारित होता है प्रथमत प्रत्येक समाज की अपनी खास विशपताओ द्वारा, और दूसरे, चेतना के युक्त तत्व की अपनी खास विशेपताओ द्वारा।

सामाजिक चेतना की बनावट के य आम क्षण हैं। इस बनावट का स्पष्ट करने स यह सम्भव होता है कि समाज म बौद्धिक तथा भौतिक जीवन की परस्पर क्रिया का ठोस अध्ययन सामाजिक चेतना की अत्यत विविधता पर विचार करते हुए किया जाये।

अब हम सामाजिक चेतना की बनावट और इसक विभिन्न अगभूत तत्वा की भूमिका पर विस्तारपूवक विचार कर।

17

सज्ञान और विचारधारा

मानव चूंकि प्रकृति या सामाजिक जीवन पर उद्देश्यपूर्ण प्रभाव डालते हैं इसलिये उन्हें यथार्थ के विशेष गुणों और नियमों के वस्तुनिष्ठ ज्ञान की आवश्यकता पडती है। मनुष्य एक बिजलीघर का निर्माण पूंजीवादी समाज में कर रहे हों चाहे समाजवादी समाज में, वे एक ही वस्तुनिष्ठ नियमों की रोशनी में काम करते हैं, जिनका ज्ञान उन्हें होना चाहिये। यहां सामाजिक हित दरअसल इस बात में निहित है कि वस्तु, को, उसके मूल स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जाय, इस बात का ज्ञान कि वह स्वय, मनुष्य से स्वतन्त्र रूप में क्या है और मनुष्य से उसका सबध क्या है। व्यावहारिक आवश्यकताए मनुष्य को प्रेरित करती हैं कि वह युक्त वस्तु में निश्चित पक्षों तथा सबधों का पता लगाये, परन्तु उसे अपने कार्यकलाप में अगर सफल होना है तो आवश्यक है कि वह उनका वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त करे, यानी वस्तुनिष्ठ सत्य तक पहुचे जो पात्र से स्वतन्त्र होता है। कोई आदमी, जो सरदी के मारे काप रहा है अपने विचारों को उन्ही चीजों पर केन्द्रित करेगा, जिनसे वह अपने शरीर मे गरमी पहुचा सके, परन्तु आग जलाने के लिये उसे वस्तुओं के वास्तविक गुणों का ज्ञान होना चाहिये अगर उसने पत्थरों का ढेर लगा दिया तो इससे आग नही जल जायेगी।

लेकिन स्वय कार्यकलाप का एक और पहलू भी होता है। श्रम, व्यवहार वस्तु को प्रभावित करने का मनुष्य का सक्रिय ढग है और इसका सबध इस बात से है कि उद्देश्य निर्धारित किये जाये, कार्यक्रम तय किया जाये, कार्यकलाप के तरीके और साधन निकाले जाये, इत्यादि। इसी लिये मनुष्य के व्यवहार के दौरान मे केवल वस्तुनिष्ठ ज्ञान की ही जरूरत नही पैदा होती, बल्कि यथार्थ के प्रति एक आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण भी उत्पन्न होता है, जिसकी अभिव्यक्ति वास्तविक परिघटनाओं के, भौतिक और बौद्धिक उत्पादन के नतीजो के मूल्याकन में, यानी एक दूसरे से उनके परस्पर सबध तथा सामाजिक पात्र के हितो और आवश्यकताओं के मूल्याकन में होती है। व्यक्ति अपने आप में एक पात्र के रूप में केवल अत मे प्रकट होता है, क्योंकि आम तौर से वह पात्र गोत्र, कबीला वर्ग, सामाजिक समूह या ठोस समाज होता है। इसी लिये युक्त आत्मनिष्ठ

दष्टिकोण सामाजिक चेतना म सामाजिक महत्व प्राप्त करता और सुस्थिर होता है।

वस्तुनिष्ठ ज्ञान तथा यथाथ के प्रति आत्मनिष्ठ दष्टिकोण को व्यक्त करने क रूपा म विविध और पेचीदा सबध पैदा होत है, परन्तु उनका सवतोमुखी विश्लेषण इस पुस्तक के दायर से बाहर ह। हम केवल उस सबध पद्धति पर विचार करेंगे, जो सज्ञान और विचारधारा के बीच पैदा होती है, जो सामाजिक पात्र की स्वत अभिव्यजना और स्वत प्रतिष्ठापन का रूप है, आधुनिक समाज की विशेषता हे और उसके जीवन म बडी भूमिका अदा करती है। विचारधारा भी, ज्ञान की तरह, सामाजिक हिता से उत्पन्न हाती है, मगर इन हिता का चरित्र भिन्न है। सबसे आम रूप मे विचारधारात्मक चेतना इस सीधी-सादी वास्तविकता से उत्पन्न हाती है कि कोई भी उत्पादन कायकलाप एक निश्चित सामाजिक रूप म अमल म आता है, ठोस सामाजिक सबधा की परिधि मे हाता है और सामाजिक पात्र (समाज, वग) इन सबधो को समझने की आवश्यकता महसूस करने लगता है ताकि वह सामाजिक सबधा के उक्त रूप को सुदढ बना और कायम रख सके अथवा उसका बदल सके।

इसी लिये सामाजिक चेतना के विकास मे **दो परस्पर सम्बद्ध प्रवृत्तिया** उत्पन्न होती ह प्रथम, **सज्ञानात्मक प्रवृत्ति**, जो सामाजिक मनुष्य के वास्तविक व्यवहार के हिता से निर्धारित होती है—प्रकृति तथा समाज के बारे मे वस्तुनिष्ठ नान की सचिति और दूसर, **विचारधारात्मक प्रवत्ति**, जिसका निर्धारण उन सामाजिक हिता द्वारा होता है, जिनका उद्देश्य युक्त सामाजिक सबधा को कायम रखना या बदलना ह। **वास्तविक जीवन मे ये दोना प्रवृत्तिया एक दूसरे मे घुली मिली होती ह और अकसर एक दूसरे पर बिल्कुल ठीक उतरती है**, जिस कारण उन्ह अलग केवल सद्धातिक विश्लेषण द्वारा, अमूत रूप मे ही किया जा सकता है। विचारधारात्मक प्रक्रिया का एक सज्ञानात्मक पहलू होता ह और सज्ञान के विकास का एक विचारधारात्मक पहलू होता है। लेकिन इन प्रवत्तिया को एक नही मानना चाहिये, क्याकि सज्ञान का और विचारधारा का विकास भिन्न नियमितताओ के अधीन ह और इस लिये कि सामाजिक चेतना के ये अगभूत तत्व विभिन्न भूमिकाए अदा करते है। ठीक जिस प्रकार प्रकृति से मनुष्य के भौतिक सबध हमेशा उत्पादन के निश्चित सबधो द्वारा साकार होते हैं,

उसी प्रकार यथार्थ से मनुष्य के सम्बन्धात्मक मबध हमेशा युक्त सामाजिक स्थितियों द्वारा उत्पादित निश्चित विचारधारात्मक रूपों द्वारा साकार होते हैं।

विचारधारा सामाजिक चेतना का वह अंग है, जिसका प्रत्यक्ष सबंध समाज के समक्ष उठनेवाले सामाजिक कामभारों की पूर्ति से है और जिनके द्वारा सामाजिक संबधों को बदलने या दृढ़ करने में सहायता मिलती है। वर्गीय समाज में विचारधारा का स्वरूप वर्गीय होता है, यानी वह विभिन्न वर्गों के भौतिक हितों की बौद्धिक अभिव्यक्ति है। ऐसा क्यों है?

समाज जब एक बार वर्गों में विभाजित हो जाता है तो विभिन्न वर्गों के भौतिक हित, जो उत्पादन के युक्त संबधों की व्यवस्था के भीतर उनकी वस्तुनिष्ठ हैसियत से पैदा होते हैं, मानवों द्वारा उनके अपने सामाजिक अस्तित्व तथा उनके चारों ओर की समस्त वास्तविकता के बोध पर निर्णायक प्रभाव डालते हैं। प्रगतिशील वर्गों के हित उन सामाजिक आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति का एक रूप होते हैं, जिन्हें सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमों की क्रियाशीलता ने जन्म दिया है, और प्रतिक्रियावादी वर्गों के हित उनसे टकराते हैं। वर्गीय हित सामाजिक विकास के प्रमुख कार्यभारों की पूर्ति में भी निर्णायक महत्व के होते हैं, क्योंकि समाज को जिन सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है उनका समाधान केवल वर्ग संघर्ष द्वारा होता है। वर्ग संघर्ष के अमल से इस बात की आवश्यकता पैदा होती है कि वर्गीय हितों और उसको पूरा करने की प्रणाली की सैद्धांतिक पुष्टि और उसका औचित्य प्रमाणित किया जाये। यह सामाजिक कर्म वर्गों की विचारधारा द्वारा ही पूरा किया जाता है। वर्गीय समाज में विचारधारा सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियमों को पूरा करने की आवश्यक आत्मनिष्ठ शर्त का काम देती है।

विचारधारा की प्रक्रिया में यथार्थ का एक सही और एक विकृत प्रतिबिम्ब दोनों होता है। यथार्थ का विकृत प्रतिबिम्ब विचारधारा में व्यक्त होता है विभिन्न राजनीतिक, कानूनी, धार्मिक, नैतिक दार्शनिक तथा अन्य भ्रांतियों के जरिये से। लेकिन विचारधारा में यथार्थ के विकृत प्रतिबिम्ब को कोई आकस्मिक घटना नहीं समझना चाहिये क्योंकि उसके भी अपने भौतिक कारण होते हैं, ठीक उसी तरह जैसे कमेरा के लेन्स में उ[illegible] के भौतिकीय कारण होते हैं। ये कारण क्या [illegible]

प्रभुता और अधीनता के सबध की उत्पत्ति के साथ, जब आर्थिक तौर पर प्रभुत्वशाली वग के हित सामाजिक उत्पादन की प्रेरक शक्ति बन गय, सामाजिक सबधो का सार सामाजिक जीवन की ऊपरी सतह पर विकृत रूप मे सामने आया। मानवा के बीच मे आर्थिक सबधा की स्थापना का उद्देश्य उत्पादन का विकास है, और विभिन्न वर्गो द्वारा अपनाय गये उद्देश्य स्वय अतत उत्पादन के जरिये निर्धारित होते हैं। परन्तु परिघटनाओ की सतह पर श्रमजीवी जनता का भौतिक-उत्पादक कायकलाप केवल प्रभुत्वशाली वग के उद्देश्यो को पूरा करने के साधन के रूप म प्रकट होता है।

परिणामस्वरूप, ऐसा लगता है कि चेतना भौतिक, व्यावहारिक काय-कलाप द्वारा पैदा और निर्धारित नही होती, बल्कि, इसके विपरीत चेतना ही मनुष्या के भौतिक कायकलाप को निर्धारित करती है। इस आभास को प्रतिबिम्बित करने मे चेतना अपन आपको यथाथ से अलग कर लेती है और उसके विरुद्ध खडी हो जाती है। "इस क्षण से लेकर चेतना को वास्तव म यह मिथ्याभिमान हो सकता है कि वह वतमान व्यवहार की चेतना के बजाय कुछ और है   इस समय से चेतना इस स्थिति म होती है कि अपन आपको ससार से मुक्त कर ले और 'शुद्ध' सिद्धात, धमशास्त्र, दशन, नतिकता, आदि की रचना के लिये कदम उठाये।"*

शारीरिक और मानसिक श्रम के बिलगाव की परिस्थितियो म जो लोग मानसिक कायकलाप से सम्बद्ध हो गये, वे समझने लगे कि चिन्तन मन की स्वतत्र क्रियाशीलता का नतीजा है, जिसका सरोकार विचारा के भडार से है और जो केवल आदमी के स्वय अपने चिन्तन का नतीजा होता है या अपने पूवजो के चिन्तन का। बौद्धिक प्रक्रिया की सापेक्ष स्वतत्रता निरपेक्ष जान पडती है। चेतना और भौतिक यथाथ के सबध का बोध मिट जाता है। सामाजिक चेतना का विकास अब पूरी सामाजिक ऐतिहासिक प्रक्रिया का भौतिक रूप से निर्धारित, आवश्यक तत्व और पहलू नही, बल्कि एक सवथा स्वतत्र प्रक्रिया मालूम पडता है, जो इतिहास की प्रक्रिया को निर्धारित करती है।

शोषक वर्गों ने हमशा ही यह प्रयास किया है कि अपने विशेष हित का सार्विक रूप म पेश करे, अर्थात स्वय अपनी विचारधारा का सावजनिक, वर्गेतर महत्व प्रदान करे।

---

*का० माक्स, फ्रे० एगेल्स, 'जमन विचारधारा'

उन ऐतिहासिक जमाना म, जब शोषक वग ने अभी अपना प्रभत्व स्थापित नहा किया है और अभी इसके लिये लड रहा हाता है, जब इसका हित किसी हद तक बहुसख्यक लागा के हिता से मिलता है, तो इसक विचारक, जिनकी नजर भविष्य पर होती ह, पूरी ईमानदारी से भावी समाज को आदश रूप म पश करत ह और बिना किसी निजी स्वाथ क उस वग के प्रभुत्व की स्थापना के सघष का इस रूप म प्रस्तुत करत हैं मानो वह सवव्यापी मानवीय सत्य, बुद्धि और न्याय का सघष हो।

वस्तुनिष्ठ दृष्टि स दखात, स्पिनोजा, हल्वेतियस और दिदरो नवजात पूजीपति वग के विचारक थे, मगर सामाजिक विचार के इतिहास म उनका स्थान बिल्कुल सही ही ऐसे मनीषिया के रूप मे सुरक्षित है, जिन्होंने सत्य और न्याय की सेवा म सब कुछ अर्पित कर दिया था।

काई शोषक वग जब अपनी प्रभुता स्थापित कर लेता है तो उसकी हैसियत बिल्कुल बदल जाती है। उसके लिये महत्वपूण चीज यह है कि जिस अथतत्र के अतगत उसका प्रभुत्व कायम हुआ है उसे स्थायी और अपरिवतनीय सिद्ध करे। परन्तु चूकि काई भी आर्थिक व्यवस्था स्थायी और अपरिवतनीय नही होती इसलिये शासक वग के हितो और यथाथ के बाच अतरविरोध पैदा हो जाता है। इन स्थितिया म शासक वग के विचारक यथाथ को तोड मराड कर पश करते हैं, और वज्ञानिक ज्ञान की मुक्त खाज करनेवालो की जगह चाटुखार समथको का दल सिर उठाने लगता है।

परिणामस्वरूप, शोषणकारी समाज मे विचारधारा के विकास और सज्ञान के विकास को एक नही समझना चाहिये, और न यह समझना चाहिये कि विचारधारा की विकृतिया सत्य की तलाश मे भूल चूक का नतीजा हैं क्योकि उनके पीछे एक निश्चित सामाजिक भूमिका मौजूद है।

लेकिन सज्ञानात्मक और विचारधारात्मक प्रक्रियाओ के विभेद को वैज्ञानिक तथा विकृत चेतना के विरोध तक ही सीमित नही समझना चाहिये। प्रगतिशील वर्गो के विचारको ने हमेशा किसी हद तक विज्ञान का सहारा लिया है और उनका हित इसी मे था कि उसकी सामग्री को अपन वर्गीय उद्देश्या के लिये इस्तमाल करे। इसी लिये हर विचारधारा को आम तौर पर झूठी चेतना समझना सही नहा होगा। महत्वपूण बात यह पता लगाना है कि कोई विचारधारा किस वग के हितो को व्यक्त करती है और उसका वास्तविक सारतत्व क्या है।

पूंजीवादी विचारक व्यापक रूप से यह मान लेते ह कि कोई भी विचारधारा वग विकृत (विगडी), झूठी चेतना है, जिसम "भ्रम पैदा करन की शक्ति" है, कि वह कोई ऐसी चीज है, जा एकागी पक्षपाती, आत्मनिष्ठ तथा विज्ञान के विपरीत है, जिससे उसका कोई मेल नही है। वे "विज्ञान के हित मे" विचारधारा का त्याग करते और यह माग करत ह कि विज्ञान को उसके प्रभाव से मुक्त करना चाहिये। आजकल इसी "विचारधारा रहित" सिद्धात का चलन है, जिसके समथक इस अकाट्य सत्य को नजरअदाज कर जाते है कि **चरम निरपेक्षता सामाजिक विज्ञानो मे, दशन मे सम्भव होना तो दूर की बात रही, वास्तव मे गरजरूरी है** क्योकि केवल प्रगतिशील सामाजिक हितो और मूल्यो को देखकर ही एक वैज्ञानिक सही दृष्टिकोण अपना कर सामाजिक यथाथ का वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकता, सामाजिक जीवन की नियमितताओ और वास्तविक अतविरोधो का पता लगा सकता, ठीक ठीक उन सामाजिक शक्तिया का पहचान सकता है, जो इन अतविरोधा को सुलझा सकती है। इसी लिये एक ऐसी विचारधारा है, जो समाज के समक्ष सामाजिक समस्याओ को हल करन के लिये वैज्ञानिक ज्ञान से काम लेती है। हमारे युग मे यह **मार्क्सवाद लेनिनवाद है, एक वैज्ञानिक विचारधारा, जो यथाथ के सच्चे तथा वस्तुनिष्ठ ज्ञान पर आधारित है।** इसका कारण यह है कि **मार्क्सवाद लेनिनवाद सवहारा की विचारधारा है,** उस वग की, जिसके वस्तुनिष्ठ हित समाज के प्रगतिशील विकास के अनुकूल है। इससे यह सम्भावना पैदा होती है कि **वैज्ञानिक पहलू को वर्गीय पहलू से, पार्टी दृष्टिकोण और क्रातिकारिता के साथ मिलाया जा सके।** लेकिन यह बात मन मे रखनी चाहिये कि सवहारा के वस्तुनिष्ठ हितो तथा विचारधारा मे उनके सैद्धातिक प्रतिबिम्ब की समता मार्क्सवाद म कोई बिल्कुल बनी-बनाई चीज नही है। नई ऐतिहासिक स्थितिया मे यह अपने आप स्थापित नही हो जाती। वस्तुनिष्ठ प्रक्रिया की अपरिपक्वता, मजदूर वग के एक या दूसर दस्ते के आशिक, अस्थायी हितो का प्रभाव, विभिन्न सैद्धातिक कार्यकर्ताओ मे अनुभव और ज्ञान का सीमित होना विभिन्न देशो म किसी एक या अन्य समय मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात के रूप को विगाड सकता अथवा उसके मूल अतय को भी विकृत कर सकता है। इसी लिये सामाजिक विकास के नियमो और चालक शक्तियो को प्रतिबिम्बित करते हुए, मार्क्सवाद-लेनिनवाद हमेशा वही नही होता, जो उसके अलग

उन ऐतिहासिक जमानों में, जब शोषक वर्ग ने अभी अपना प्रभुत्व स्थापित नहीं किया है और अभी इसके लिये लड़ रहा होता है, जब इसका हित किसी हद तक बहुसंख्यक लोगों के हितों से मिलता है, तो इसके विचारक, जिनकी नजर भविष्य पर होती है, पूरी ईमानदारी से भावी समाज का आदर्श रूप में पेश करते हैं और बिना किसी निजी स्वार्थ के उस वर्ग के प्रभुत्व की स्थापना के संघर्ष को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं मानो वह सर्वव्यापी मानवीय सत्य, बुद्धि और न्याय का संघर्ष हो।

वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देकार्त, स्पिनोजा, हल्वेतियस और दिदरो नवजात पूंजीपति वर्ग के विचारक थे मगर सामाजिक विचार के इतिहास में उनका स्थान बिल्कुल सही ही ऐसे मनीषियों के रूप में सुरक्षित है, जिन्होंने सत्य और न्याय की सेवा में सब कुछ अर्पित कर दिया था।

मागो को निरूपित उन धारणाओ और प्रवर्गों के रूप म करती है, जिनकी उत्पत्ति विचारधाराओ के ऐतिहासिक विकास के दौरान म हो चुकी है। परिणामस्वरूप, चिन्तन-सामग्री एक युग द्वारा दूसरे को सौंप दी जाती है। मिसाल के लिये बराबरी की माग विभिन्न युगो म की जाती रही है। मगर प्रारम्भिक ईसाइयत ने, जो दासो तथा अन्य उत्पीडितो की विचारधारा थी, बराबरी को खुदा की नजरो म सबकी बराबरी के रूप म देखा। पूजीवादी क्रातियो म बराबरी की माग अभिजात वग के विशेषाधिकारो के विरुद्ध सघष की अभिव्यक्ति थी। सवहारा के लिये बराबरी का मतलब है वर्गों का मिट जाना। आजादी, जनवाद, न्याय, आदि की धारणाओ की जड भी ऐतिहासिक हैं। जहा तक विचारो के अतय का सवाल है मरणासन्न वर्गों के विचारक आम तौर पर पिछली विचारधारा के भडार से प्रतिक्रियावादी विचारो को चुन लेते और उन्हे अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर लेते हैं। कभी-कभार वे ऐसे सिद्धातो का भी इस्तेमाल करते ह, जो अपने जमाने म प्रगतिशील हुआ करते थे, लेकिन उनको वे अपने ढग स पेश करते और उनके ऐतिहासिक अथ को तोड मरोडकर पेश करते ह। इसकी एक अच्छी मिसाल अरस्तु के सिद्धात की मध्यकालीन व्याख्या है, जिसको समस्त खोजबीन, द्वद्वात्मक विचारो और साहसपूण अटकलो से वचित करके उसकी सबसे क्षीण बातो को पत्थर की लकीर बना दिया गया।

इसके विपरीत प्रगतिशील वग अपनी विचारधारा मे अतीत के उन्नत विचारो पर निभर करते ह। उन्नतिशील पूजीपति वग के विचारको ने प्राचीन यूनानी और रोमन मानवतावादी और भौतिकवादी विचारो का पुनरुद्धार किया, उनका ब्योरा किया तथा मध्यकाल की विचारधारा के विरुद्ध पेश किया।

अत सामाजिक विचारो के विकास तथा नई विचारधारा की सष्टि पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान मे रखना होगा कि अथतन्त्र इस क्षेत्र म किसी नई चीज को जन्म नही देता, बल्कि केवल यह तय करता है कि जो विचार सामग्री पहले से मौजूद है उसे कसे बदला और आगे बढाया जाये।*

---

* फ्रे० एगेल्स, क० श्मीदत के नाम पत्र, २७ अक्तूबर, १८९०

घलग विचारख उसी नाम पर रहने का दावा करते हैं। विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना और परीक्षा क्रांतिकारी व्यवहार के दौरान में होता है, जो क्रमगत सत्य की सबसे बड़ी परख होता है। केवल यही विचारधारा, जो वस्तुनिष्ठ रूप में होनेवाली प्रक्रियाओं और उनके नियमों को प्रतिबिम्बित कर उन सामाजिक कार्यभारों को पूरा करने में मदद दे सकती है, जो मजदूर वर्ग के समक्ष उठते रहते हैं। यथार्थ के वैज्ञानिक विश्लेषण और वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन में पथभ्रष्ट होना और वैज्ञानिक दृष्टि से निराधार फार्मूलों को अपनाना सर्वहारा के वर्गीय हितों की पूर्ति का विरोध कर देता है।

विचारधारा के विकास का एक विशेष पहलू यह है कि हर नया वर्ग स्वयं अपनी विचारधारा को जन्म देता है, जो उस वर्ग की बदलती अवस्था और हितों के साथ साथ बदलती है। जब कोई वर्ग इतिहास के मंच से विदा होता है तो वे विचार और सामाजिक सिद्धांत, जिनके द्वारा उसने यथार्थ के अपने दृष्टिकोण तथा अपने हितों को व्यक्त किया था, धीरे धीरे अपना असर खोने लगते हैं।

हर वर्ग के लिये स्वयं अपनी विचारधारा को जन्म देना क्यों जरूरी है? इसका कारण वर्गों की वस्तुनिष्ठ स्थिति की भिन्नता और यह वस्तुस्थिति है कि उनमें से हर एक को स्वयं अपने ऐतिहासिक कार्यभारों का समाधान करना होता है। इसके लिये वह पुरानी विचारधारा से काम नहीं ले सकता, जिसकी उत्पत्ति भिन्न कार्यभारों को पूरा करने के लिये हुई थी।

इस सवाल को कि हर नया वर्ग क्या स्वयं अपनी विचारधारा की उत्पत्ति करता है, उस दूसरे सवाल से गड्डमड्ड नहीं करना चाहिये कि वह उसकी उत्पत्ति कैसे करता है। कोई भी नई विचारधारा हवा में नहीं उत्पन्न होती। वह उन विचारों, और धारणाओं के भंडार से काम लेती है, जिनकी संचिति उस समय तक के विकास के दौरान में हो चुकी है। इसका मतलब यह है कि विचारधारा का विकास क्रमबद्ध है। विचारधारात्मक क्रमबद्धता का स्वरूप क्या है?

हर नये वर्ग की विचारधारा बदलती हुई ऐतिहासिक स्थितियों और विशेष अंतर्विरोधों को प्रतिबिम्बित करती है और जिन कामों को पूरा करना है उन्हें प्रस्तुत करती है। परन्तु वह इनको प्रतिबिम्बित तथा अपनी

मागा को निरूपित उन धारणाओ और प्रवर्गो के रूप मे करती है, जिनकी उत्पत्ति विचारधाराओ के ऐतिहासिक विकास के दौरान म हो चुकी है। परिणामस्वरूप, चितन सामग्री एक युग द्वारा दूसरे को साप दी जाती हे। मिसाल के लिये बराबरी की माग विभिन्न युगो मे की जाती रही है। मगर प्रारम्भिक ईसाइयत ने, जो दासो तथा अय उत्पीडिता की विचारधारा थी, बराबरी को खुदा की नज़रा मे सबकी बराबरी के रूप म देखा। पूजीवादी जातिया म बराबरी की माग अभिजात वग के विशेषाधिकारा के विरुद्ध सघप की अभिव्यक्ति थी। सवहारा के लिये बराबरी का मतलब है वर्गो का मिट जाना। आजादी, जनवाद, न्याय, आदि की धारणाआ की जड भी ऐतिहासिक है। जहा तक विचारो के अतय का सवाल है मरणासन्न वर्गों क विचारक आम तौर पर पिछली विचारधारा के भडार से प्रतिक्रियावादी विचारो को चुन लेते और उहे अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर लेते है। कभी-कभार वे ऐसे सिद्धातो का भी इस्तेमाल करत ह, जो अपने ज़माने मे प्रगतिशील हुआ करते थे, लेकिन उनको वे अपने ढग से पेश करते और उनके ऐतिहासिक अथ को तोड मरोडकर पेश करत ह। इसकी एक अच्छी मिसाल अरस्तु के सिद्धात की मध्यकालीन व्याख्या है, जिसको समस्त खोजबीन, द्वद्वात्मक विचारो और साहसपूण अटकला से वचित करके उसकी सबसे क्षीण बाता को पत्थर की लकीर बना दिया गया।

इसके विपरीत प्रगतिशील वग अपनी विचारधारा मे अतीत के उन्नत विचारो पर निभर करते है। उन्नतिशील पूजीपति वग के विचारको ने प्राचीन यूनानी और रोमन मानवतावादी और भातिकवादी विचारो का पुनरुद्धार किया, उनका ब्योरा किया तथा मध्यकाल की विचारधारा के विरुद्ध पेश किया।

अत सामाजिक विचारो के विकास तथा नई विचारधारा की सष्टि पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान मे रखना होगा कि अथतन्त्र इस क्षेत्र म किसी नई चीज को जम नही देता, बल्कि केवल यह तय करता है कि जो विचार सामग्री पहले से मौजूद है उसे कसे बदला आर आगे बढाया जाये।*

---

* फ्रे० एगेल्स, क० श्मीदृत के नाम पत्र, २७ अक्तूबर, १८९०

विचारधारा म क्रमबद्धता जरूरी है तथा ऐतिहासिक विकास क लिए बहुत महत्व रखती है। क्रमबद्धता क बिना मनुष्य का यथार्थ का प्रतिबिम्बित करने क लिये हर बार अपनी धारणाओं और प्रवर्गों का नये सिरे से निरूपित करना पडता। तब नये वर्गों क विचारको क लिये यह सम्भव नहीं होता कि पुरानी पीढ़ियों क चिंतन क प्रचड प्रयास क परिणामो से लाभ उठा सक और अगलो की सारी उपलब्धिया मलियामेट हो गई होतो। विचारधारा अपना सामाजिक कर्तव्य पूरा करने म असमर्थ होती और समाज की प्रगति म बडी बाधाए पडतों।

विभिन्न विचारधाराओं की उत्पत्ति और तारतम्य क अलावा इतिहास म वज्ञानिक सज्ञान की तेज प्रगति भी होती है। सज्ञान की यह प्रगति केवल ठोस विज्ञानो क विकास क जरिये ही नहीं, बल्कि एक हद तक विचारधारा क क्षेत्र म भी होती है।

सज्ञान की प्रगति मनुष्यो के उत्पादक और सामाजिक-ऐतिहासिक कार्य कलाप की आवश्यकताओं पर आधारित होती है। इस आधार पर निश्चित ऐतिहासिक युगो म जो वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है वह समाज की उपलब्धि है, जिसका वह कभी त्याग नहीं करता। न्यूटन या मन्देलयेव न जिन नियमो की खोज की थी, उनका दोबारा पता लगाने की कोई जरूरत नहीं, और न स्मिथ और रिकार्डो द्वारा निरूपित मूल्य के श्रम सिद्धात का पुन अन्वेषण करने की आवश्यकता है। सुलभ ज्ञान को ठुकराकर नहीं, बल्कि उसका स्वीकार, विकसित और गहन करके ही विज्ञान का विकास होता है और व्यवहार की जरूरतो को पूरा किया जाता है। इसी लिये वज्ञानिक सज्ञान मे आवश्यक है कि दिये से दिया यूही जलता रहे। सापेक्ष से परम सत्य की ओर मानव ज्ञान की गति मे प्रगति की यह एक आवश्यक शर्त है।

फलस्वरूप **विचारधारा मे क्रमबद्धता वज्ञानिक सज्ञान की क्रमबद्धता से भिन्न है।** क्रमबद्धता दोनो क्षेत्रो म है, परन्तु वज्ञानिक सज्ञान म इसका मतलब होता है पूर्व अर्जित वस्तुनिष्ठ ज्ञान को सुरक्षित रखना और इस्तेमाल करना। विचारधारा मे क्रमबद्धता का अर्थ है चिन्तन सामग्री को सुरक्षित रखना, जिसमे से इस्तेमाल वही अश किया जाता है, जो उक्त वर्ग के हितो के अनुकूल हो और जिसका ठोस अतर्य युग की हालतो द्वारा निर्धारित होता है।

सामाजिक मनोवृत्ति और विचारधारा

विचारधारा क विपरीत, जिसकी सृष्टि और विकास विचारका द्वारा होता है, **सामाजिक मनोवत्ति जन चेतना** है। यह उन विचारा और ख्यालो स मिलकर बनती है, जिनका निरूपण जनता क रोज़मर्रे के जीवन और कायकलाप के दौरान म हाता है और जिनमे उनके जीवन और कायकलाप की स्थितिया, उनक हित और आवश्यक्ताए प्रतिविम्बित होती ह। **सामाजिक मनोवत्ति जनता को चेतना मे अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब, उसके रोजमर्रे के सीमित व्यावहारिक कायकलाप का बोध है।**

मनुष्य चूकि विभिन्न वर्गों से सबध रखत ह, उनके मन उनक जीवन की विभिन्न स्थितिया को, और परिणामस्वरूप, विभिन्न व्यावहारिक आवश्यक्ताग्रा और हिता को भी प्रतिविम्बित करत ह। **वर्गीय समाज मे** सामाजिक मनावत्ति **विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियो** के रूप म प्रकट होती है जसे निम्नपूजीवादिया की मनावृत्ति, जिसका आशय सामाजिक सवाला के प्रति निम्नसम्पत्तिवाला की विशिष्ट उदासीनता से, अपने निजी आराम की सबस अधिक चिन्ता से, अपनी सम्पत्ति तथा अपनी निज की छाटी सी दुनिया स उसके सबस ज्यादा लगाव, आदि से है। ये सब बात निम्नपूजीवादी की जीवन स्थितिया स उत्पन्न होती हैं। सवहारा का पूजीपतियो के अधीन होना तथा उनका प्रतिदिन साथ मिलकर सामूहिक रूप म काम करना यह चेतना पदा करता है कि बेहतर हालात, आदि के लिये अय सवहारा के साथ मिलकर लडना जरूरी है।

लेकिन **सवहारा की साधारण चेतना**, किसी भी अय वग की चेतना की भाति, अपने अस्तित्व के सैद्धातिक बोध के स्तर तक नही पहुच सकती। इसके लिय वनानिक अध्ययन की जरूरत ह, जिसका मतलब है पूवकाल म सचित चिन्तन सामग्री पर आलोचनात्मक ढग स पुन विचार करना। लनिन न कहा है कि स्वत स्फूत मजदूर आन्दोलन से ट्रेड-यूनियन चेतना स अधिक कुछ पदा नही हो सकता। **सवहारा वग के बुनियादी हितो की वज्ञानिक अभिव्यक्ति** उसकी सामाजिक मनोवृत्ति या मजदूर वग के आदोलन के स्वत स्फूत विकास स नही हुआ करती, बल्कि **विज्ञान के विकास द्वारा होती है और मजदूर वग के आदोलन मे उसे सवहारा की क्रातिकारी पार्टी दाखिल करती है।**

इससे प्रकट होता है कि सामाजिक मनोवृत्ति किसी वर्ग के बुनियादी हितो के बोध के स्तर तक, या यथार्थ के महत्वपूर्ण पहलुओं और नियमों की खोज निकालने तक नही पहुंच सकती, बल्कि वह विचारधारा से मिलकर काम करती और उसको एक निश्चित भावात्मक रंग और शक्ति प्रदान करती है।

विचारधारा के विपरीत, जो कि विचारों की एक व्यवस्था है और जो इस ग्रंथ में सुसबद्ध है, सामाजिक **मनोवृत्ति एक निश्चित योगफल है बौद्धिक तत्वों का** विचारों, भावों, आवश्यकताओं, मानसिक स्थिति, भ्रांतियों, आचरण, धारणाओं, आदि का। इसके विविध अंगभूत तत्वों का विशेष अध्ययन मौलिक महत्व रखता है क्योंकि इतिहास को जनता के इतिहास के रूप मे समझना असम्भव है, जब तक जन आन्दोलनों की मनोवृत्ति को ध्यान मे नही लिया जाये। १९०७ में लेनिन ने क्रांतिकारी भावना के महत्व पर जोर देते हुए लिखा था "रूस में पूंजीवादी विकास के स्पष्ट पिछडेपन की स्थिति मे पार्टी गुटों मे इस स्पष्ट विभाजन का एकमात्र कारण इस युग की तूफानी क्रांतिकारी मानसिक स्थिति हो सकती है जिसमें पार्टियों का निर्माण और वर्गीय चेतना का विकास और निरूपण ठहराव या तथाकथित शांतिपूर्ण प्रगति के युग की तुलना में कही ज्यादा तेजी से होता है।"*

सामाजिक मनोवृत्ति मनुष्यों के मनो मे यथार्थ के प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब के रूप में (यानी एक ऐसी चीज के रूप में, जो सैद्धांतिक चिन्तन के माध्यम से उत्पन्न नही हुई है) जन चेतना के रूप मे एक विशेष विज्ञान—**सामाजिक मनोविज्ञान**—का विषय है, जो वर्गों, समाज के हिस्सों तथा अलग अलग समूहों की चेतना की अभिव्यंजना के अनेक और विविध स्वरूपों का अध्ययन करता है ताकि उनकी चेतना में जीवन स्थितियों के प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब का, और साथ ही सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों—अनुकरण, सम्मोहन, सहानुभूति, विद्वेष, जन सनक, मतैक्य, आदि—का पता लगायें, जो जन चेतना में नजर आते है और जिनका ताल्लुक मानवों के परस्पर सम्पर्क से है।

---

*व्ला० इ० लेनिन, 'दूमा में चुनाव और रूसी सामाजिक जनवाद की कार्यनीति' १९०७

यद्यपि सामाजिक मनोवृत्ति जनता, वर्गों और समूहो की बौद्धिक बनावट की विशेषता का लक्षण होती है, इसका अस्तित्व वास्तव मे ठोस, जीवित व्यक्तियो की चेतना के रूप मे होता है, जिनसे मिलकर सामाजिक एकत्व बनते है। जनता के अतिरिक्त इसके कोई सवाहक नही होते, जबकि विचारधारा के सवाहक विचारक और पार्टिया हो सकती है।

इसके सिवा, विचारधारा के बरखिलाफ, जो हमेशा पुस्तको, लेखो, भाषणो अथवा कार्यक्रमो का रूप धारण कर लेती है, सामाजिक **मनोवृत्ति व्यक्तियो की सर्वथा अतस्थ वस्तु के रूप मे, बौद्धिक स्थिति के रूप मे व्यक्त होती है।** पूजीवादी सामाजिक मनोवैज्ञानिक इस सतही असर को, इस "दिखाव" को सामाजिक मनोवृत्ति के अपने विश्लेषण का प्रारम्भिक तथा निर्णयकारी बिन्दु बनाते है। मगर वास्तव मे अधिक गहरा अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तियो की चेतना का मुख्य तत्व समाज से प्राप्त होता है, इसका विकास व्यक्तियो द्वारा सामाजिक अनुभव, ज्ञान, तथा समाज के अधिनियमो और आवश्यकताओ को आत्मसात करने के आधार पर होता है। हर व्यक्ति जब जीवन मे प्रवेश करता है तो वह न केवल भौतिक व्यवहार को, बल्कि सामाजिक रूपो (भाषा, कलात्मक कल्पना, नैतिक धारणायें, आदि आत्मसात करता है, जिनमे मानवजाति चारो ओर के जगत के प्रतिबिम्ब को अकित करती है। वास्तव मे सामाजिक रूपो के बिना मानव चेतना का अस्तित्व ही नही हो सकता। लेकिन सवाल केवल व्यक्ति द्वारा चेतना के सामाजिक रूपो को आत्मसात करने का नही है। उसकी चेतना का स्वय अतय ही, उसका झुकाव उसके कार्यकलाप के पीछे काम करनेवाले प्रोत्साहन, प्रेरणा और उद्देश्य, किसी निश्चित मूल्यमान के प्रति उसका रुख – ये सभी चीजे समाज से प्राप्त होती है। परिणामस्वरूप सामाजिक मनोवृत्ति को व्यक्तियो की चेतना की *अलग अलग स्थितियो का* मात्र योगफल नही समझना चाहिये। रूप और सार दोनो की दृष्टि से सामाजिक मनोवृत्ति एक सामाजिक पैदावार है, जनता के मनो मे वस्तुनिष्ठ एकत्व का, उनके वास्तविक अस्तित्व का, उनकी समान जीवन स्थितियो का प्रतिबिम्ब है।

अतविरोधी सरचनाओ की सामाजिक मनोवृत्ति के बरखिलाफ **समाजवादी समाज मे जनता, वर्गो और समूहो की सामाजिक मनोवृत्ति बिल्कुल भिन्न आधार पर निरूपित होती है** प्रथम, यहा देश के तमाम नागरिको मे

सामाजिक अस्तित्व की स्थितिया समान है, दूसर, शिक्षा की समाजवादी प्रणाली का प्रभाव पडता है, और तीसरे, वैज्ञानिक, मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा का असर होता है। इसी लिये मानव व्यक्तित्वा का वभव और उनकी विविधता, जो अपने उत्पादन, रोजमर्रे के, कलात्मक, खेलकूद के तथा अन्य दिलचस्पियो और रुझाना की दृष्टिया से भिन्न होत ह, समाजवाद के अतगत समस्त सोवियत जनगण की सामाजिक मनोवृत्ति के मख्य तत्व की समानता के साथ समन्वित होती है। **समाजवाद ने एक नये सामाजिक चरित्र और नये गुणोवाले मनुष्य को जन्म दिया है,** समाजवादी समाज के मनुष्य को, जो सामूहिकतावादी है, श्रम का आदर करता है, मानवतावादी है, अतर्राष्ट्रीयतावादी है और जिसे अपने समाजवादी देश से बेहद प्रम है।

सामाजिक चेतना के रूप

सभी समाजो म, जो कबायली व्यवस्था के विघटन के बाद इतिहास के दौरान मे एक के बाद एक आते रहे ह, **सामाजिक चेतना निम्नलिखित मुख्य रूपो मे व्यक्त होती रही है राजनीतिक विचारधारा, विधि चेतना, नतिकता, धम, विज्ञान, सौदर्यात्मक विचार और कला तथा दशन।**

इद्रधनुष के सात रगो की भाति उन्ही से प्रत्यक समाज म बौद्धिक जीवन की रगारग तस्वीर बनती है। चेतना के सभी रूप एक समुच्चता म सुसम्बद्ध होकर समाज की विविध आवश्यक्ताओ की पूर्ति करत ह, परन्तु हर एक की अपनी अलग विशेषता है, अपना अलग रग है, क्योकि वह मनुष्य के विशेष सबधो और कायकलाप की जरूरतो को पूरा करता है। **चेतना के रूप सामाजिक चेतना के अपेक्षाकृत स्वतन्त्र रचनात्मक तत्वो के रूप मे होते ह।** उनके सार और ऐतिहासिक विकास की विशेषताओ का अध्ययन विशेष विज्ञानो द्वारा किया जाता है मिसाल के लिये विधि चेतना और विधि का अध्ययन विधि के इतिहास और सिद्धात द्वारा किया जाता है, कला और उसकी विभिन्न शाखाए (चित्रकला, सगीत, आदि) कलाशास्त्र द्वारा, विज्ञान का अध्ययन विज्ञान के इतिहास द्वारा, दशन का उसके इतिहास द्वारा आदि किया जाता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद इन विज्ञानो का स्थान नही ले सकता क्योकि वह चेतना के अलग अलग रूपो

का अध्ययन भिन्न दृष्टिकोण से करता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद एक दार्शनिक-समाजशास्त्रीय विज्ञान के रूप में चेतना के रूपों का अध्ययन इस दृष्टिकोण से करता है कि सामाजिक परिघटनाओं की व्यवस्था में उनका स्थान क्या है, उनकी विशेषताएं और सामाजिक कार्य क्या हैं, समाज के जीवन और विकास में वे क्या भूमिका अदा करते हैं, आदि।

सामाजिक चेतना के ठोस रूपों पर विचार हम राजनीतिक विचारधारा से शुरू करते हैं क्योंकि इसका गहरा और प्रत्यक्ष संबंध अर्थतंत्र से है और चेतना के अन्य रूपों पर, जिनका अर्थतंत्र से संबंध अक्सर वर्गों के राजनीतिक हितों के माध्यम से होता है, वह सबसे अधिक प्रभाव डालती है।

राजनीतिक विचारधारा सामाजिक चेतना का ऐसा रूप है, जिसके द्वारा वर्गों के संबंध, राज्य से, युक्त समाज के विकास के एक या अन्य स्तर पर सामाजिक-राजनीतिक संगठन से और अंत में, अन्य समाजों और राज्यों से उनके संबंध प्रतिबिम्बित होते हैं। राजनीतिक विचारधारा की परिधि के भीतर सार्विक वर्गीय उद्देश्य, कार्यभार तथा राजनीतिक कार्यक्रम निरूपित होते हैं, जिन्हें वर्ग अपने संघर्षों द्वारा तथा राजनीतिक संस्थाओं और संगठनों के कार्यकलाप द्वारा हासिल करना चाहते हैं। वर्गों और राज्यों की वास्तविक नीति निर्धारित करने में राजनीतिक विचारधारा को एक बड़ी भूमिका अदा करनी पड़ती है। राजनीति का रूप दरअसल निर्धारित होता है किसी वर्ग के बुनियादी आर्थिक हितों के अनुकूल, मगर वह इनकी अभिव्यक्ति स्वतःस्फूर्त ढंग से नहीं करता है, बल्कि केवल उसी हद तक करता है, जिस हद तक वे उस वर्ग, उसके विचारकों और राजनीतिज्ञों की राजनीतिक चेतना से होकर गुजरते हैं। यही वजह है कि एक ही आर्थिक बुनियाद से अपेक्षाकृत भिन्न राजनीतिक सिद्धांत, विचार और कार्य जन्म ले सकते हैं। इस प्रसंग में महत्व केवल शुद्ध आर्थिक कारणों का नहीं है, बल्कि अलग अलग जातियों के विकास में उनकी राष्ट्रीय विशेषताओं, उनकी संस्कृति की खासियतों और साथ ही राजनीतिक पार्टियों, राज्यों के प्रमुख नेताओं के चरित्र, ज्ञान और क्षमता का भी होता है। ऐतिहासिक अनुभव से साफ जाहिर है कि रूस में महान अक्तूबर समाजवादी क्रांति की विजय में एक महत्वपूर्ण भूमिका इस बात की थी कि वहां की प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व लेनिन कर रहे थे, जो एक महान प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ थे, और इस बात की भी कि रूसी पूंजीपति वर्ग को मजदूर वर्ग को धोखा

देने का और राजनीतिक समझौता का उतना अनुभव नही प्राप्त जितना, मिसाल के लिय, अंग्रेज पूजीपति वग को था।

वग और उनकी पाटिया वग सघप के प्रमुख रूप, राजनातिक मे, यानी राज्य के मामला मे भाग लेने, सामाजिक सुधार, या राज्य के स्वरूप मे परिवतन करने के लिये सघप म राजनीतिक विचारधारा निदेशन प्राप्त करती ह। इसी लिये विचारधारा के क्षेत्र म वर्गों का सवप्रथम उनके राजनीतिक विचारा के सघप म प्रतिविम्वित होता है।

जब पुरानी सरचना की कोख के भीतर विकसित उत्पादक शि और पुराने उत्पादन सवधा म द्वद्व उत्पन्न होता है, तो सामाजिक वि की तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रतिविम्व के रूप मे नये राजनीतिक वि सामने आते हैं, जिनके द्वारा राजनीतिक सघप के उद्देश्य निरूपित तथा इन उद्देश्या को प्राप्त करने के रास्तो और साधना की ओर स मिलता है। ये विचार जनता को एकताबद्ध करके एक ऐसी राजनी सेना तैयार कर देते ह, जो पुरानी व्यवस्था को मिटाने का सामथ्य र है। अत **उन्नत राजनीतिक विचार अथतन्त्र के विकास मे और इसी अनुकूल सामाजिक जीवन के अय पहलुओ के विकास मे एक सगठनका एकताकारी तथा परिवतनकारी भूमिका अदा करते ह।**

आधुनिक जगत म पूजीवादी और समाजवादी राजनीतिक विचारधारा मे एक तीव्र सघप जारी है। साम्राज्यवादी पूजीपतिया की राजनीति विचारधारा जन विरोधी और प्रतिक्रियावादी है। उसका उद्देश्य साम्राज्यव के प्रभुत्व को कायम रखना और इजारेदार पजी की आक्रमणका आकाक्षाओं पर परदा डालना है। इसे समाजवादी राज्या तथा नातिका सवहारा तथा राष्ट्रीय-स्वाधीनता आन्दोलन के विरुद्ध सघप के काम म लग दिया गया है। साम्राज्यवादिया का मुख्य विचारधारात्मक राजनीति हथियार **कम्युनिज्म विरोध** है, जिसके झडे तले वे प्रतिक्रियावाद की सर्व स्याह शक्तिया को एकताबद्ध करके सामाजिक प्रगति का रास्ता रोकना चाहत हैं। इन हालता म **प्रगतिशील शक्तिया की पक्की राजनीतिक एकता,** जसा कि कम्युनिस्ट और मजदूर पाटिया के अतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, जून, १९६९ के फसला म जोर दे कर कहा गया है, **साम्राज्यवाद क विरुद्ध तथा शाति, जनवाद और समाजवाद के लिये सघप की एक आवश्यक शत है।**

राजनीतिक विचारधारा चूकि राज्य, राजनीतिक पाटिया, वर्गों और

ग्राम जनता के कायकलाप मे मूतिमान होता है इसलिये ग्रथतत्र तथा सामाजिक जीवन के हर पहलू का बहुत प्रभावित करता है। ग्राज जब कि पूजीवादी इजार लागो को ग्राधुनिक उत्पादन की ममस्त क्षमताग्रा का मानवजाति के भले के लिये इस्तेमाल करने से रोक रहे ह, यह बात दिना दिन स्पष्ट होती जा रही है कि पूजीवादी सबध ग्राज भी कायम ह तो इसको मुख्यतया राजनीतिक ऊपरी ढाचे द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। पूजीपति वग के हाथा म सेना, सरकार तथा प्रचार के साधन ह। वह बल तथा छलकपट से काम लेकर प्रयास कर रहा है कि ग्रपने प्रभुत्व को कायम रखे ग्रौर इस प्रकार एक तात्कालिक ग्राथिक ग्रावश्यकता की पूर्ति म बाधक हो रहा है।

ग्रत मे यह कह दे कि राजनीतिक विचारधारा समाज क ग्रायिक विकास पर केवल प्रत्यक्ष ही नही, बल्कि ग्रप्रत्यक्ष प्रभाव भी, सामाजिक चेतना के ग्रन्य रूपो जसे विधि-चेतना, नतिकता, धम, विज्ञान, ग्रादि के माध्यम स डालता है। राजनीति ग्रौर राजनीतिक विचारधारा चेतना के ग्रन्य सभी रूपा को एक निश्चित वग की सेवा म लगा दते ह। यह समझना सही नहा होगा कि चेतना के ग्रय रूप जस विज्ञान ग्रथवा कला, राजनीति या राजनीतिक विचारधारा से स्वतत्र ह। यह एक ऐसा विचार है, जिसस व्यवहार म थैलीशाहा के हितो पर, शासक वग की नीतिया पर उनकी निभरता को ढाकने का काम लिया जाता है। परन्तु राजनीतिक विचारधारा ग्रौर राजनीति चेतना के ग्रन्य रूपा को प्रभावित ही नही करत, उनसे प्रभावित भी होते ह। मिसाल के लिय दशनशास्त्र, नैतिकता, विज्ञान, ग्रादि ने राजनीतिक विचारो की विभिन्न प्रणालिया के निरूपण पर हमेशा बहुत कुछ प्रभाव डाला है। लेकिन राजनीतिक विचारधारा का सबम गहरा सबध विधि चेतना से है।

विधि चेतना विचारो की ऐसी सहति है, जिसकी जडें इतिहास मे ह, जिसका उदय वर्गों की उत्पत्ति के सग होता है ग्रौर जो बदलती हुई सामाजिक ग्रायिक व्यवस्था के साथ बदल जाती है। इसमे समाज द्वारा ग्राम तौर पर स्वीकृत ये धारणाए, सिद्धांत ग्रौर उसूल शामिल हैं कि मानवा, राज्यो तथा राष्ट्रों के परस्पर सबधो मे क्या क़ानूनी ग्रौर क्या ग़ैर-क़ानूनी है, क्या न्यायसगत है, ग्रौर क्या ग्रनिवाय ग्रौर ग्रावश्यक है। इसम किसी समाज के भीतर चालू विधि व्यवस्था का मूल्याकन भी शामिल है।

देने का और राजनीतिक समझौतों का उतना अनुभव नहीं प्राप्त था, जितना मिसाल के लिये, अंग्रेज पूंजीपति वर्ग को था।

वर्ग और उनकी पार्टियां वर्ग संघर्ष के प्रमुख रूप, राजनीतिक संघर्ष में यानी राज्य के मामलों में भाग लेने, सामाजिक सुधार, या राज्य सत्ता के स्वरूप में परिवर्तन करने के लिये संघर्ष में राजनीतिक विचारधारा द्वारा निदेशन प्राप्त करती हैं। इसी लिये विचारधारा के क्षेत्र में वर्गों का संघर्ष सर्वप्रथम उनके राजनीतिक विचारों के संघर्ष में प्रतिबिम्बित होता है।

जब पुरानी संरचना की कोख के भीतर विकसित उत्पादक शक्तियों और पुराने उत्पादन संबंधों में द्वंद्व उत्पन्न होता है, तो सामाजिक विकास की तात्कालिक आवश्यकताओं के प्रतिबिम्ब के रूप में नये राजनीतिक विचार सामने आते हैं, जिनके द्वारा राजनीतिक संघर्ष के उद्देश्य निरूपित होते तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के रास्तों और साधनों की ओर संकेत मिलता है। ये विचार जनता को एकताबद्ध करके एक ऐसी राजनीतिक सेना तैयार कर देते हैं, जो पुरानी व्यवस्था को मिटाने का सामर्थ्य रखती है। अतः **उन्नत राजनीतिक विचार अर्थतंत्र के विकास में और इसी के अनुकूल सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं के विकास में एक संगठनकारी, एकताकारी तथा परिवर्तनकारी भूमिका अदा करते हैं।**

आधुनिक जगत में पूंजीवादी और समाजवादी राजनीतिक विचारधाराओं में एक तीव्र संघर्ष जारी है। साम्राज्यवादी पूंजीपतियों की राजनीतिक विचारधारा जन विरोधी और प्रतिक्रियावादी है। उसका उद्देश्य साम्राज्यवाद के प्रभुत्व को कायम रखना और इजारेदार पूंजी की आक्रमणकारी आकांक्षाओं पर परदा डालना है। इसे समाजवादी राज्यों तथा क्रांतिकारी सर्वहारा तथा राष्ट्रीय-स्वाधीनता आन्दोलन के विरुद्ध संघर्ष के काम में लगा दिया गया है। साम्राज्यवादियों का मुख्य विचारधारात्मक राजनीतिक हथियार **कम्युनिज्म विरोध** है, जिसके झंडे तले वे प्रतिक्रियावाद की सभी स्याह शक्तियों को एकताबद्ध करके सामाजिक प्रगति का रास्ता रोकना चाहते हैं। इन हालतों में **प्रगतिशील शक्तियों की पक्की राजनीतिक एकता,** जैसा कि कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, जून, १९६९ के फैसले में जोर दे कर कहा गया है, **साम्राज्यवाद के विरुद्ध तथा शांति, जनवाद और समाजवाद के लिये संघर्ष की एक आवश्यक शर्त है।**

राजनीतिक विचारधारा चूंकि राज्य, राजनीतिक पार्टियों, वर्गों और

ग्राम जनता के कायकलाप मे मूर्तिमान होता है, इसलिय ग्रथतत्व तथा सामाजिक जीवन के हर पहलू का वहुत प्रभावित करता है। ग्राज जव कि पूजीवादी इजारे लागा को ग्राधुनिक उत्पादन की समस्त क्षमताग्रा का मानवजाति के भले के लिये इस्तेमाल करने स रोक रहे हैं यह वात दिना दिन स्पष्ट होती जा रही है कि पूजीवादी सवध ग्राज भी कायम ह तो इसको मुख्यतया राजनीतिक ऊपरी ढाचे द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। पूजीपति वग के हाथो मे सेना, सरकार तथा प्रचार के साधन ह। वह वल तथा छलकपट से काम लेकर प्रयास कर रहा है कि ग्रपने प्रभुत्व को कायम रखे ग्रौर इस प्रकार एक तात्कालिक ग्राथिक ग्रावश्यकता की पूर्ति म वाधक हो रहा है।

ग्रत म यह कह दे कि राजनीतिक विचारधारा समाज क ग्राथिक विकास पर केवल प्रत्यक्ष ही नही, वल्कि ग्रप्रत्यक्ष प्रभाव भी, सामाजिक चेतना के ग्रन्य रूपा जसे विधि-चेतना, नतिकता, धम, विज्ञान ग्रादि क माध्यम से डालता है। राजनीति ग्रौर राजनीतिक विचारधारा चेतना क ग्रन्य सभी रूपा को एक निश्चित वग की सेवा म लगा दत ह। यह समझना सही नहा होगा कि चेतना के ग्रन्य रूप जसे विज्ञान ग्रथवा कला राजनीति या राजनीतिक विचारधारा से स्वतत्र ह। यह एक ऐसा विचार है, जिसस व्यवहार म थलीशाहो के हिता पर, शासक वग का नीतिया पर उनकी निभरता को ढाकने का काम लिया जाता है। परन्तु राजनीतिक विचारधारा ग्रौर राजनीति चेतना के ग्रन्य रूपा का प्रभावित हा नही करत उनस प्रभावित भी होते हैं। मिसाल के लिये दशनशास्त्र, नतिकता, विज्ञान, ग्रादि ने राजनीतिक विचारो की विभिन्न प्रणालिया के निरूपण पर हमेशा वहुत कुछ प्रभाव डाला है। लेकिन राजनीतिक विचारधारा का सवस गहरा सवध विधि चेतना स है।

विधि चेतना विचारो की ऐसी सहति है, जिसकी जड़ें इतिहास म ह, जिसका उदय वर्गों की उत्पत्ति के सग होता है ग्रौर जो वदलती हुई सामाजिक-ग्राथिक व्यवस्था के साथ वदल जाती है। इसमे समाज द्वारा ग्राम तौर पर स्वीकृत ये धारणाए, सिद्धांत ग्रौर उसूल शामिल ह कि मानवा, राज्या तथा राष्ट्रों क परस्पर सवधो मे क्या क़ानूनी ग्रौर क्या ग्रर-क़ानूनी है, क्या न्यायसगत है, ग्रौर क्या ग्रनिवार्य ग्रौर ग्रावश्यक है। इसम किसी समाज क भीतर चालू विधि व्यवस्था का मूल्याकन भी शामिल ह।

देने का और राजनीतिक समझौता का उतना अनुभव नही प्राप्त था, जितना मिसाल के लिय, अंग्रेज पूजीपति वग को था।

वग और उनकी पाटिया वग सघप के प्रमुख रूप, राजनीतिक सघप मे, यानी राज्य के मामला म भाग लेन, सामाजिक सुधार, या राज्य सत्ता के स्वरूप म परिवतन करने के लिय सघप म राजनीतिक विचारधारा द्वारा निदशन प्राप्त करती ह। इसी लिय विचारधारा के क्षेत्र म वर्गों का सघप सवप्रथम उनके राजनीतिक विचारा के सघप म प्रतिबिम्बित होता ह।

जब पुरानी सरचना की काख के भीतर विकसित उत्पादक शक्तिया और पुराने उत्पादन सबधा म द्वद्व उत्पन्न होता है, तो सामाजिक विकास की तात्कालिक आवश्यकताओ के प्रतिबिम्ब क रूप म नये राजनीतिक विचार सामने आते हैं, जिनके द्वारा राजनीतिक सघप क उद्देश्य निरूपित हात तथा इन उद्देश्या को प्राप्त करने के रास्ता और साधना की ओर सकेत मिलता है। ये विचार जनता को एकताबद्ध करके एक ऐसी राजनीतिक सेना तयार कर देते हैं, जो पुरानी व्यवस्था को मिटाने का सामथ्य रखती है। अत **उन्नत राजनीतिक विचार अथतन्त्र के विकास मे और इसी के अनुकूल सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओ के विकास मे एक सगठनकारी, एकताकारी तथा परिवतनकारी भूमिका अदा करते ह।**

आधुनिक जगत मे पूजीवादी और समाजवादी राजनीतिक विचारधाराओ मे एक तीव्र सघप जारी है। साम्राज्यवादी पूजीपतिया की राजनीतिक विचारधारा जन विरोधी और प्रतिक्रियावादी है। उसका उद्देश्य साम्राज्यवाद के प्रभुत्व को कायम रखना और इजारेदार पजी की आक्रमणकारी आकाक्षाओ पर परदा डालना है। इसे समाजवादी राज्यो तथा क्रातिकारी सवहारा तथा राष्ट्रीय-स्वाधीनता आन्दोलन क विरुद्ध सघप क काम म लगा दिया गया है। साम्राज्यवादिया का मुख्य विचारधारात्मक राजनीतिक हथियार **कम्युनिज्म विरोध** है, जिसके झडे तले व प्रतिक्रियावाद की सभी स्याह शक्तिया को एकताबद्ध करके सामाजिक प्रगति का रास्ता रोकना चाहत हैं। इन हालतो मे **प्रगतिशील शक्तियो की पक्की राजनीतिक एकता,** *जसा कि कम्युनिस्ट और मजदूर पाटियो के अतर्राष्ट्रीय सम्मलन, जून, १९६९ के फसला म जोर दे कर कहा गया है,* **साम्राज्यवाद के विरुद्ध तथा शाति, जनवाद और समाजवाद के लिये सघप की एक आवश्यक शत है।**

राजनीतिक विचारधारा चूकि राज्य, राजनीतिक पाटिया, वर्गों और

ग्राम जनता के क्रियकलाप में मूर्तिमान होता है, इसलिए ग्रथतन्त्र तथा सामाजिक जीवन के हर पहलू को बहुत प्रभावित करता है। ग्राज, जब कि पूंजीवादी इजारे लागों को ग्राधुनिक उत्पादन की समस्त क्षमताग्रा का मानवजाति के भले के लिये इस्तेमाल करने से रोक रहे हैं, यह बात दिनों दिन स्पष्ट होती जा रही है कि पूंजीवादी सबंध ग्राज भी कायम हैं तो इसका मुख्यतया राजनीतिक ऊपरी ढांचे द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। पूंजीपति वर्ग के हाथों में सेना सरकार तथा प्रचार के साधन हैं। वह बल तथा छलकपट से काम लेकर प्रयास कर रहा है कि ग्रपने प्रभुत्व को कायम रखे ग्रौर इस प्रकार एक तात्कालिक ग्राथिक ग्रावश्यकता की पूर्ति में बाधक हो रहा है।

ग्रत में यह कह दें कि राजनीतिक विचारधारा समाज के ग्राथिक विकास पर केवल प्रत्यक्ष ही नहीं, बल्कि ग्रप्रत्यक्ष प्रभाव भी, सामाजिक चेतना के ग्रन्य रूपों जैसे विधि-चेतना, नैतिकता, धर्म, विज्ञान ग्रादि के माध्यम से डालता है। राजनीति ग्रौर राजनीतिक विचारधारा चेतना के ग्रन्य सभी रूपों को एक निश्चित वर्ग की सेवा में लगा देते है। यह समझना सही नहीं होगा कि चेतना के ग्रन्य रूप जैसे विज्ञान ग्रथवा कला, राजनीति या राजनीतिक विचारधारा से स्वतन्त्र है। यह एक ऐसा विचार है, जिससे व्यवहार में थैलीशाहों के हितों पर, शासक वर्ग की नीतियों पर उनकी निर्भरता को ढाकने का काम लिया जाता है। परन्तु राजनीतिक विचारधारा ग्रौर राजनीति चेतना के ग्रन्य रूपों को प्रभावित ही नहीं करते, उनसे प्रभावित भी होते हैं। मिसाल के लिये दर्शनशास्त्र, नैतिकता, विज्ञान, ग्रादि ने राजनीतिक विचारों की विभिन्न प्रणालियों के निरूपण पर हमेशा बहुत कुछ प्रभाव डाला है। लेकिन राजनीतिक विचारधारा का सबसे गहरा सबंध विधि चेतना से है।

विधि चेतना विचारों की ऐसी सहति है, जिसकी जड़ें इतिहास मे है, जिसका उदय वर्गों की उत्पत्ति के संग होता है ग्रौर जो बदलती हुई सामाजिक ग्राथिक व्यवस्था के साथ बदल जाती है। इसमे समाज द्वारा ग्राम तौर पर स्वीकृत ये धारणाए, सिद्धांत ग्रौर उसूल शामिल है कि मानवों, राज्यों तथा राष्ट्रों के परस्पर सबधों मे क्या क़ानूनी ग्रौर क्या ग़ैर-कानूनी है, क्या न्यायसंगत है, ग्रौर क्या ग्रनिवार्य ग्रौर ग्रावश्यक है। इसमे किसी समाज के भीतर चालू विधि व्यवस्था का मूल्यांकन भी शामिल है।

विधि के विपरीत, जो नियमा और कानूना की व्यवस्था है, f राज्य जारी और लागू करता है, विधि चेतना कानूनी और ग़ैर-कानूनी बारे म मनुष्या क विचारा और धारणाग्रा की सहति है। ग्रतविरोधी मम म न तो दो विधि व्यवस्थाए हो सकती ह और न एक विधि चेतना सकती है। शासक, शोषक वर्गों की विधि चेतना विधि व्यवस्था म रूप धारण करती है जो प्रत्येक एतिहासिक युग के लिय विशिष्ट हो है और दूसरी ओर उत्पीडित वर्गों की विधि चेतना अपन दृष्टिकोण वतमान विधि व्यवस्था का मूल्याकन करत हुए शासक वर्गों की विधि त विधि चेतना के प्रतिकूल है। **शासक वर्गों की विधि चेतना कवल वतमा विधि व्यवस्था मे मूत रूप मे प्रकट ही नहीं होती, बल्कि उसका औचित भी प्रस्तुत करती, उसकी सद्धातिक पुष्टि करती और उसे एकमात्र उचि विधि व्यवस्था के रूप मे पूरे समाज पर थोपने का प्रयास करती है।** शास वग चाहता है कि इन विधिया का, जो इसके इरादे का व्यक्त करत ह, पालन किया जाये, और केवल यही नही कि उसके पीछे राज्य की शक्ति लगा देता है, बल्कि समाज की विधि चेतना स अपील भी करता है। उसकी विधि विचारधारा समाज मे चालू कानूना के महत्व का गुणगान करती, उनका पालन करन की ग्रावश्यकता की सैद्धातिक पुष्टि करती और इसके लिये निहायत विविध दार्शनिक, नैतिक, ऐतिहासिक तथा धार्मिक तर्कों का सहारा लेती है।

पूजीवादी समाज मे पूजीवादी विधि चेतना के बरखिलाफ एक **सवहारा विधि चेतना** का उदय हुआ है। जहा पूजीवादी विधि चतना कानून की नजर मे सभी नागरिका की नाम की समानता घापित करती है (और इस नाम की समानता स तरह तरह के अपवादा का भी उचित ठहराती है), वहा सवहारा विधि चेतना मजदूरा और पूजीपतिया की वास्तविक असमानता का बेनकाब करती है जिसका कारण उनकी आथिक हालत है, यह बताती है कि पूजीवादी जनवाद सीमित और छलपूण है और यह सिद्ध करती है कि पूजीवादी व्यवस्था को मिटाने का सघष न्यायसगत है।

समाजवाद के अतगत मजदूर वग की विधि चेतना और विकसित होती और सम्पूण समाज की विधि चतना बन जाती है। **समाजवादी विधि चेतना** समाजवादी विधि व्यवस्था मे साकार होती है और नागरिका को समाजवादी वधिकता की भावना के अनुसार शिक्षित करने का एक साधन है। समाजवाद

के अंतर्गत विधि चेतना की भूमिका बढ़ जाती है, क्योंकि कानूनों का पालन राज्य की दमनकारी सत्ता पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना पूरे जनगण की समाजवादी विधि चेतना पर जो समाजवादी राज्य के कानूनों को स्वयं अपनी इच्छा की अभिव्यक्ति मानते हैं।

किसी संरचना की सामाजिक परिघटनाओं की व्यवस्था के भीतर विधि चेतना का स्थान और भूमिका प्रत्यक्ष रूप में समाज में वर्तमान विधि व्यवस्था तथा कानून से उसके संबंधों द्वारा निर्धारित होते हैं। शासक वर्गों की विधि चेतना द्वारा वर्तमान स्वामित्व संबंधों तथा पूरी सामाजिक व्यवस्था की रक्षा होती है, जबकि उत्पीड़ित वर्गों की विधि चेतना द्वारा युक्त सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था का उन्मूलन करने में सहायता मिलती है। उत्पादन संबंधों द्वारा विधि चेतना उत्पादन के विकास को भी प्रभावित करती है। जहां विधि चेतना उत्पादन के सड़े-गले संबंधों की रक्षा करती है, वह उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक बन जाती है, और जहां वह उत्पादन के सड़े-गले संबंधों का विरोध करती है, उन संबंधों को मजबूत करने में सहायक होती है, जो उत्पादक शक्तियों के अनुकूल हैं, वह उत्पादन के विकास को प्रोत्साहित करती है।

यद्यपि विधि चेतना चेतना का एक ऐसा रूप है, जो राजनीतिक विचारधारा से भिन्न है, फिर भी इसका एक राजनीतिक अंतर्य होता है, क्योंकि इसका उदय वर्गों के बीच एक निश्चित संबंध प्रणाली के आधार पर, अर्थात एक राजनीतिक आधार पर होता है। इसी के साथ, विधि चेतना राज्य के कानूनों में साकार होकर राजकीय नीति के रूप में लागू की जाती है। इस प्रसंग में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि राजनीति की अभिव्यक्ति केवल कानूनी नियम बनाने में ही नहीं होती, बल्कि उनको लागू करने में भी होती है, और यह राजनीतिक तथा विधि चेतना के संबंध की एक और विशेषता है।

सभी सामाजिक विचारों और सिद्धांतों की तरह विधि चेतना को भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, यानी उसकी वास्तविक गति में देखना चाहिए। जैसे किसी एक या अन्य वर्ग का पतन होता है, उसकी विधि चेतना निरीह हो जाती है, तथा नये वर्ग की विजय के साथ एक नई विधि चेतना स्थापित हो जाती है। लेकिन बात इससे अधिक है। कानूनी विचारों, सिद्धांतों और उसूलों पर उनकी प्रगति में विचार करने से प्रकट होता है कि

जहा हर ठोस सूरत मे वे निश्चित वर्गों के दृष्टिकोण से अपने काल को और आर्थिक व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करते हैं, उनमे किसी न किसी हद तक वास्तविक सामाजिक सबधो और उनके ऐतिहासिक विकास के वस्तुनिष्ठ ज्ञान के तत्व भी मौजूद होते हैं। इसलिये हम कह सकते ह कि उनकी बदौलत सज्ञान मे क्रमबद्धता सुनिश्चित होती है, हालाकि यह क्रमबद्धता भी विचारधारात्मक (यानी पक्षपाती) है। इस बात पर ध्यान देना काफी होगा कि विभिन प्रकार के कानूनी सबधो की पहचान, विधि-सबधी प्रवर्गों तथा न्यायिक कार्यपद्धति के निरूपण का स्वय सज्ञानात्मक मूल्य भी होता है।

निस्सदेह, विधि चेतना की प्रगति, जो विधि तथा न्यायिक कार्यपद्धति के अधिक विकसित रूपो म व्यक्त और साकार होती है, किसी हद तक मानवो के वास्तविक सबधो के, जो कानूनी नियत्रण के अधीन होते हैं, ज्ञान के प्रयोग से सबद्ध होती है। यह ज्ञान विधि-सबधी विचारो और विधि व्यवहारो के विकास के दौरान मे सचित होता है। समाजवादी विधि चेतना भी, जो इतिहास के सभी वर्गों की विधि चेतना से गुणात्मक हैसियत स भिन है और एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित होती है, पूर्वकालीन विधि चेतना का सवथा निराकरण नही करती। वह पहले के इतिहास की श्रेष्ठतम उपलब्धियो से, जनवादी विधि चेतना के तत्वो से फायदा उठाती है और उन्हे सर्वहारा के सघर्ष के अनुभव से समृद्ध करती है।

उदाहरण के लिये लेनिन ने अपनी पुस्तक 'राज्य और क्राति' म कहा कि पूजीवादी कानून के तत्व समाजवादी राज्य मे पूजीवादियो के बिना रहेगे इस अर्थ मे कि समान मापक असमान मनुष्यो पर लागू किया जायेगा। उनके कहने का मतलब यह था कि समाजवाद के अतर्गत उपभोग के सामानो की प्रचुरता अभी नही होती, इसी लिये उनके वितरण के दौरान मे उपभोग का मापक श्रम की दर के अनुसार तय करना होता है। समान कार्य के लिये समाजवाद के अतर्गत लोगो को समान वेतन मिलता है। परन्तु कानून के अनुसार समान होते हुए भी, वास्तव म हो सकता है कि वे असमान हो, जैसा कि एक अविवाहित म और एक बडे परिवारवाले व्यक्ति के मामले मे हो सकता है। अत समाजवाद के अतर्गत सामाजिक स्वामित्व उत्पादन साधनो के प्रति सभी आदमियो की बराबरी का आधार मुहैया करता है, और कोई भी दूसरो के श्रम का शोषण करके नही रह सकता। मगर

समाजवाद वितरण म समानता नही लाता और न ला सकता है, और यही कारण है कि इस क्षेत्र मे औपचारिक समानता के तत्व आ जाते हैं।

सर्वहारा क्राति के कारण शोषक विधि व्यवस्था का विघटन होता और उसका स्थान एक नई, समाजवादी वैधिकता, एक क्रांतिकारी कानून लेता है। इसी लिये इस बात पर बल देना आवश्यक है कि **सक्रमण काल तथा समाजवाद के युग मे विधि चेतना की भूमिका कम नहीं होती, बल्कि गुणात्मक दृष्टि से भिन्न हो जाती है।**

लेनिन ने इस बात पर जोर दिया था कि मजदूर वग को समाज का राजकीय निदशन करते हुए विधि व्यवस्था की आवश्यकता है क्योकि "इच्छा यदि राज्य की इच्छा है, तो राज्य द्वारा स्थापित विधि के रूप मे व्यक्त होनी चाहिये। अन्यथा, 'इच्छा' का शब्द बेमानी है।"*

समाजवादी विधि सर्वहारा विधि चेतना का साकार रूप है, जिसका व्यापक विकास क्राति के दौरान मे तथा उसके बाद समाजवाद के लिये सघर्ष के दौरान म जनता के व्यावहारिक-राजनीतिक कायकलाप के आधार पर होता है जिनका नेतत्व सर्वहारा पार्टी द्वारा किया जाता है। पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका सोवियत सघ के विधान की धारा १२६ द्वारा निश्चित कर दी गई है।

समाजवादी विधि चेतना मनुष्यो क कार्यों का मूल्याकन समाजवादी वैधिकता की रोशनी म करती है। सोवियत कानूनो की ताकत का रहस्य स्वय जनता का समथन है। इसी लिय सभी नागरिको को समाजवादी विधि चेतना की भावना के अनुसार प्रशिक्षित करना समाजवादी समाज को मजबूत और विकसित करने का एक महत्वपूण साधन है।

परन्तु इतिहास का, खासकर सोवियत सघ मे नये समाज के निर्माण का अनुभव, जिसका विश्व ऐतिहासिक महत्व है, बतलाता है कि मानवीय सबधो को विधि चेतना तथा विधि द्वारा नियत्रित करना कितना ही महत्वपूण क्यो न हो, नियत्रण का यह उपाय अभी भी अपर्याप्त है। यह अब भी इस रूप म काम करता है कि वह मनष्य से बाहर की कोई वस्तु है, जिसे समाज और राज्य उसपर थोपते ह। यही कारण है कि नैतिकता, जो सामाजिक चेतना का एक विशेष रूप है, पूरे इतिहास के दौरान म मानव सबधो

---

*ब्ला० इ० लेनिन, 'प्रतिविरोधी स्थिति'

के एक अद्भुत नियत्रक के रूप म काम करता रहा है और अब ज्यो ज्यो कम्युनिज्म की ओर कदम उठाये जाते हैं उसका महत्व बढता जाता है।

नतिकता सामाजिक चेतना का एक विशेष रूप है, जो मानवो के परस्पर सबधो को अच्छे और बुरे, न्याय और अन्याय, ईमानदारी और बेईमानी, आदि के प्रवर्गों मे प्रतिबिंबित करता है तथा मनुष्य से, उसके रोजमर्रे के जीवन मे, समाज या वग के तकाजो को नतिक आदर्शों, आचरण के उसूलो और नियमो के रूप मे निर्धारित करता है। ये वस्तुनिष्ठ तकाजे नैतिक चतना म अय लोगा के प्रति, परिवार के प्रति, स्वय अपने तथा अय वर्गों के प्रति, मातभूमि, राज्य, इत्यादि के प्रति नैतिक उत्तरदायित्वा के रूप मे प्रतिबिम्बित होत हैं। इन उत्तरदायित्वा के नैतिक एहसास की एक खासियत यह है कि वे काई ऐसी चीज नही मालूम पडते, जा बाहर से लादी गई हो, बल्कि ऐसी चीज जान पडते हैं, जो व्यक्ति के अपने अदरूनी विश्वास से उत्पन्न हुई हो। लेकिन इसका यह मतलब नही है कि नैतिक चेतना या इहसास जन्मजात होता है। नैतिक नियम मनुष्य का "आतरिक विश्वास' बनते हैं शिक्षा के जरिये, सामाजिक परम्पराओ, तौर-तरीको, रिवाजो और आदतो को आत्मसात करने से। नतिक चेतना तथा व्यक्ति के विश्वासा के अनुसार काम करने की आतरिक प्रेरणा क रूप मे अत करण की उत्पत्ति होती है।

परिणामस्वरूप, समाज की नतिक चेतना एक व्यक्ति के कार्यों के सामाजिक मूल्याकन, यानी उसके सामाजिक महत्व के मूल्याकन क रूप मे व्यक्त होती है। व्यक्ति द्वारा स्वीकृत होने पर वह उसके कार्यों के अदरूनी मूल्याकन के रूप म, उन तकाजा क रूप मे प्रकट हाता है, जो वह अपने आप से करता है। इसी लिये **अत करण मानव के सामाजिक स्वभाव की अभिव्यक्ति के सिवा और कुछ नहीं है।**

मानव कायकलाप म नैतिक तत्व का एक अहम भूमिका अदा करती है। यह कायकलाप निस्सदेह वतमान सामाजिक स्थितिया से निर्धारित होता है। लेकिन मनुष्य चूकि एक चेतन जीव है, किसी परिस्थिति म उसका आचरण तरह तरह का हो सकता है। आत्मनिष्ठ तत्व, मनुष्य का व्यक्तित्व उसके आचरण के माग का निर्धारित करने म बडा महत्व रखता है। अपेक्षाकृत रूप म मनुष्य को इच्छा की, अपना रास्ता चुनने की आजादी है, और किसी परिस्थिति द्वारा निर्धारित परिधि के भीतर वह एक या

दूसरा रास्ता अपना सकता है, अच्छा या बुरा काम कर सकता है, आदि। इस सवाल पर लेनिन ने लिखा है "नियतिवाद के विचार ने, जिसका कहना है कि मानव कर्म आवश्यकता के अधीन है और जो स्वतंत्र इच्छा की अनर्गल कहानी का अस्वीकार करता है, कदापि मानव विवेक या अंत:करण को, या उसके कार्यों के मूल्यांकन को नष्ट नही करता। इसके बिल्कुल विपरीत, केवल नियतिवादी विचार द्वारा ही एक पक्का और सही मूल्यांकन सम्भव है बजाय इसके कि स्वतंत्र इच्छा को हर चीज़ का कारण समझ लिया जाये।"*

व्यक्ति के लिये एक निश्चित नैतिक मानदंड निर्धारित करने में समाज या वर्ग सार्वजनिक राय की शक्ति से उसकी पुष्टि करते हैं। नैतिकता की एक स्पष्ट विशेषता, विधि के बरखिलाफ, यह है कि इसके सिद्धांत और नियम आम तौर पर अलिखित हुआ करते हैं और सार्वजनिक नैतिकता को लागू करने के लिये विशेष संस्थाएं नही होती हैं। जो लोग नैतिकता के नियमों का उल्लंघन करते हैं, लोकमत द्वारा उनकी निन्दा की जाती है। इस प्रकार की निन्दा की ताकत केवल नैतिक निश्चय पर निर्भर नही करती, बल्कि इस बात पर भी कि साधारणतः इसके समर्थन में निश्चित कारवाई की जाती है। अगर कोई आदमी कबीले के नैतिक नियम का गम्भीर उल्लंघन करता तो उसे कबीले से निकाल दिया जाता था। कोई कुलीन पुरुष भद्रता के आचरण का उल्लंघन करता तो उसके "सजातीय" लोग न सिर्फ उसकी निन्दा करते बल्कि वास्तव में उसका हुक्का पानी बन्द कर देते थे, इत्यादि।

अतः **समाज नैतिकता को जन्म देता और उसकी रक्षा करता है।** इस वैज्ञानिक स्थापना की मदद से ऐतिहासिक भौतिकवाद को नैतिकता के धार्मिक तथा भाववादी सिद्धांतों से अलग किया जा सकता है। **धर्म इस बात पर ज़ोर देता है कि नैतिक सिद्धांतो को भगवान ने जन्म दिया है और ये सिद्धांत भगवान की इच्छा को अभिव्यक्त करते हैं,** चुनांचे नैतिक सिद्धांतो का पालन करना आदमी का धर्म है और ऐसा नही करने पर उसे भगवान की ओर से दंड भोगना पडेगा। पादरी लोगों को विश्वास दिलाना चाहते

---

*व्ला० इ० लेनिन '"जनता के मित्र" क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं'

चिरन्तन और अधि ऐतिहासिक नतिकता नहीं होती। वर्गीय समाज मे नतिकता का चरित्र भी वर्गीय होता है, जिसमे शासक वग की नतिकता प्रभुताशाली होती है। परन्तु जैसे-जैसे समाज प्रगति करता है आचरण के कुछ ऐसे प्रारम्भिक नियम निरूपित होते है, जिन्ह विभिन्न राष्ट्रो और वर्गों के सदाचार मे शामिल कर लिया जाता है। य किसी एक वग के विशेष हित या स्थिति का प्रतिनिधित्व नही करत, वल्कि विभिन्न मानवीय समुदाया की नतिकता के आम पहलुओ की अभिव्यक्ति करते है। इन पहलुओ के अस्तित्व का कारण वे आम विशेषताए ह जो किसी भी मानव समूह को जानवरा के झुड स भिन्न बनाती है। यह मानवीय सबधा की सास्कृतिक विशेषताए है, जिन्हे लेनिन ने सामाजिक जीवन की प्रारम्भिक शर्तें कहा था। लेकिन सार्विक मानवीय नतिकता के इन पहलुओ को भी अधि-ऐतिहासिक नही समझना चाहिये क्योकि व भी ऐतिहासिक विकास ही का नतीजा हैं।

नैतिक चेतना एक सामाजिक पैदावार है और यही वह आधार है, जिस पर नैतिकता की परीक्षा सम्पूण रूप मे, एक विशिष्ट सामाजिक परिघटना के रूप मे करना सम्भव है, यद्यपि वास्तव मे इसका अस्तित्व इतिहासत ठोस, निश्चित नतिकता के रूप म होता है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी इस विचार को अस्वीकार करत हैं कि नैतिक नियम और सिद्धात चिरन्तन और अपरिवर्तनीय है, मगर वे दूसरी चरम सीमा, अर्थात, नतिक सापेक्षवाद का भी अस्वीकार करते हैं, जो मानव आचरण का मूल्याकन करने मे आत्मनिष्ठता और मनमानेपन को सर्वोच्च मानता है और नैतिक तथा अनैतिक मे कोई भेद नही मानता। नतिक सापेक्षवाद नैतिक मूल्याकना की सापेक्ष हैसियत स फायदा उठाता है और नैतिक नियमा की वास्तविक परिवर्तनशीलता को परम मानत हुए मानव कर्म का कोई भी वस्तुनिष्ठ मानदड स्वीकार करने से इनकार कर देता ह।

मार्क्सवादी आचारशास्त्र नैतिक नियमा की परिवर्तनशीलता का बदलती ऐतिहासिक परिस्थितिया पर उनकी निभरता का सबूत मानता है। यही वजह है कि मार्क्सवाद नतिकता के प्रति तथा विभिन्न युगा मे विभिन्न वर्गों के लोगा के नतिक आचरण के मूल्याकन के प्रति ठोस ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर जोर देता है।

हैं कि धम और ईश्वर के डर के बिना नैतिक्ता नही रहेगी, और यह कि जो लोग धम का विरोध करते हैं वे, उनके अनुसार, नतिक्ता का जड काटते हैं।

भाववादी आचारशास्त्र नतिकता की उत्पत्ति को चेतना से मानता है चाहे वह मानवीय हो या अधिमानवीय हो और दरअसल नैतिक्ता क धार्मिक विचार को दाशनिक रूप देता है। मिसाल के लिये काट के विचार के अनुसार यह नही समझना चाहिय कि नैतिक विचारा की उत्पत्ति मनुष्य के भौतिक जीवन से हुई है। उन्हाने कहा कि नैतिक्ता मानव विवक म अनात जगत से डाल दी गई थी, जिसके अस्तित्व का उस विश्वास रूप मे स्वीकार कर लेना चाहिये। काट के अनुसार मनुष्य नैतिक नियमा का पालन तभी करता है, जब उसकी इच्छा सनातन, अपरिवतनीय तथा सार्विक नतिक नियम द्वारा निर्धारित हो, जो अनुभवातीत जगत का नियमितताओ की अभिव्यजना हो।

नैतिक्ता के धार्मिक तक के विरुद्ध सघष का प्रारम्भ माक्स और एगेल्स से बहुत पहले हो चुका था। एपिक्योरस, लुक्रीशियस स्पिनोजा, हाल्बाख, फायरबाख तथा चेनिशेंव्स्की और अय अनेक भौतिकवादिया न यह तक प्रस्तुत किया था कि इश्वर का भय या अनुभवातीत जगत नही, बल्कि स्वय मानव, उसका अपना भौतिक स्वभाव ही नतिक्ता का स्रात है। उन्होने कहा कि अनीश्वरवादियो का समाज ईश्वरवादिया के समाज से अधिक नतिक हो सक्ता है। लेकिन इन दाशनिको ने यद्यपि इस क्षेत्र मे बडा काम किया फिर भी वे नैतिक्ता की जडो का पता लगाने या आचारशास्त्र से भाववाद का उन्मूलन करने मे असमथ रहे।

यह काम माक्सवाद का था कि उसने सिद्ध कर दिया कि नतिकता न तो समाज पर कहीं ऊपर से लादी गई है और न वह मनुष्य के अधि ऐतिहासिक स्वभाव की उपज है। माक्सवाद ने सिद्ध किया कि **नतिकता का स्रोत समाज, सामाजिक हित ह।** चूकि समाज का ढाचा और उसके हित आथिक व्यवस्था, बुनियाद द्वारा निर्धारित होते हैं, इसलिये नतिकता अतिम रूप से अथतत्र द्वारा निर्धारित होती है। नैतिक्ता के स्रोत का एक सुसगत भौतिक विचार अनिवायत इस अय महत्वपूण निष्कष तक ले जाता है **ज्यो ज्या समाज का विकास होता है, उसका आथिक ढाचा बदलता है, नतिकता मे भी अनिवायत परिवतन होते ह। कोई अमूत, अपरिवतनीय,**

चिरन्तन और अधि-ऐतिहासिक नतिकता नहीं होती। वर्गीय समाज मे नतिकता का चरित्र भी वर्गीय होता है, जिसमे शासक वग की नतिकता प्रभुताशालो होती है। परन्तु जसे-जैसे समाज प्रगति करता है आचरण के कुछ ऐसे प्रारम्भिक नियम निरूपित होते हैं जिन्ह विभिन्न राष्ट्रो और वर्गो के सदाचार मे शामिल कर लिया जाता हैं। ये किसी एक वग के विशेष हित या स्थिति का प्रतिनिधित्व नही करते, वल्कि विभिन्न मानवीय समुदायो की नैतिकता के आम पहलुओ की अभिव्यक्ति करते है। इन पहलुओ के अस्तित्व का कारण वे आम विशेषताए हैं जो किसी भी मानव समूह को जानवरो के झुड से भिन्न बनाती हैं। यह मानवीय सबधो की सास्कृतिक विशेषताए ह, जिन्ह लेनिन ने सामाजिक जीवन की प्रारम्भिक शर्तें कहा था। लेकिन सार्विक मानवीय नैतिकता के इन पहलुओ को भी अधि ऐतिहासिक नही समझना चाहिये, क्योकि व भी ऐतिहासिक विकास ही का नतीजा हैं।

नतिक चेतना एक सामाजिक पैदावार है, और यही वह आधार है, जिस पर नैतिकता की परीक्षा सम्पूण रूप मे, एक विशिष्ट सामाजिक परिघटना के रूप मे करना सम्भव हे, यद्यपि वास्तव म इसका अस्तित्व इतिहासत ठोस, निश्चित नैतिकता के रूप म होता है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी इस विचार को अस्वीकार करत हैं कि नतिक नियम और सिद्धात चिरन्तन और अपरिवतनीय हैं मगर वे दूसरी चरम सीमा, अर्थात, नैतिक सापेक्षवाद को भी अस्वीकार करते ह, जा मानव आचरण का मूल्याकन करने म आत्मनिष्ठता और मनमानेपन को सर्वोच्च मानता है और नैतिक तथा अनैतिक मे कोई भेद नही मानता। नतिक सापेक्षवाद नैतिक मूल्याकनो की सापेक्ष हैसियत स फायदा उठाता है और नतिक नियमा की वास्तविक परिवतनशीलता को परम मानते हुए मानव कम का कोइ भी वस्तुनिष्ठ मानदड स्वीकार करने से इनकार कर देता ह।

मार्क्सवादी आचारशास्त्र नैतिक नियमा की परिवतनशीलता का बदलती ऐतिहासिक परिस्थितिया पर उनकी निभरता का सबूत मानता है। यही वजह है कि मार्क्सवाद नतिकता के प्रति तथा विभिन्न युगो म विभिन्न वर्गो के लोगो के नतिक आचरण के मूल्याकन के प्रति ठोस ऐतिहासिक दृष्टिकोण पर जोर देता है।

सामाजिक चेतना के एक रूप की हैसियत स, जो आर्थिक सबधा का प्रतिबिम्बित करती है, नैतिकता विचारधारा का रूप धारण करती है, यानी ऊपरी ढाचे के एक तत्व का, जो बुनियाद की पदावार है और उसकी सेवा करती है। इसी के साथ नैतिक चेतना सामाजिक सबधा के सज्ञान का रूप भी है। नतिकता मानव सबधा के अनुभव को समेटती और उसका सामान्यीकरण करती है, उसे आचरण के निश्चित नियमा तथा मानदडा का रूप देती है। नतिकता मे सज्ञान का एक वस्तुनिष्ठ रूप म सच्चा तत्व शामिल है, और नैतिकता का यही वास्तव म सच्चा तत्व है, जिसकी सवाहक जनता – इतिहास की निर्माता – है और जा नैतिकता के ऐतिहासिक विकास के दौरान मे बोधगम्य होता और सुरक्षित रहता है। इसके अलावा, नैतिकता क सज्ञानात्मक पहलू से इस बात मे मदद मिलती है कि ठोस ऐतिहासिक स्थितिया म किसी मानव समुदाय के जीवन के ठोस ऐतिहासिक अनुभव को सचित और सगहीत किया जा सके। यह अनुभव मुख्यतया अस्थायी महत्व का होता है, फिर भी वतमान सामाजिक सबधा के सज्ञान मे एक तत्व होता है।

विकास के हमारे वतमान स्तर पर, अभी ही **सच्ची मानवीय नतिकता** को व्यापक रूप म स्वीकार किया जाने लगा है, उस नैतिकता का, जिसका भविष्य है, **कम्युनिस्ट नतिकता** का जा एक स्वतत्र मानव समुदाय म स्वतत्र मनुष्या के सबधो को नियत्रित करती है।

राजनीतिक कानूनी और नैतिक चेतना, यथाथ के प्रतिबिम्ब के रूप मे हमे यथाथ के बारे मे निश्चित ज्ञान प्रदान करते हैं, मगर हम देखत हैं उनकी उत्पत्ति इस उद्देश्य से नही हाती कि समाज को ज्ञान प्रदान करे। उनका सामाजिक काय कुछ और है और वह है मानव सबधो को नियत्रित करना। सामाजिक विकास के दौरान मे ज्ञान सचित करने मे मुख्य भूमिका **विज्ञान** अदा करता है, जो सामाजिक चेतना का एक विशेष रूप है।

विज्ञान यथाथ के व्यवस्थित सज्ञान का एक रूप है, जो सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार के आधार पर उत्पन्न और विकसित होता है और जो वस्तुगत जगत के नियमो और मूल पहलुओ को धारणाओ, प्रवर्गों और नियमा के अमूत तकसगत रूपो मे व्यक्त करता है। मगर विज्ञान केवल उस ज्ञान का नाम नही जा अनुभव के दौरान मे प्राप्त और सिद्ध हुआ है। वह एक कायकलाप भी है, जिसका उद्देश्य नया ज्ञान प्राप्त करना

सम्पदा है। उस ज्ञान को समाज फक नही देता, बल्कि अपने व्यवहार म तथा वज्ञानिक सज्ञान को और आगे बढाने के लिये काम म लाता है।

मानवजाति न उत्पादन की विधिया का विकसित करने म, और उन राष्ट्रा म, जिन्हाने समाजवाद का माग अपनाया है, सामाजिक परिवतन के क्षेत्र मे भी जा विशाल प्रगति की है, उसे विज्ञान की प्रगति से अलग नही किया जा सकता, जो हमार समय मे, इस महानतम वज्ञानिक तथा तकनीकी क्राति के युग म, सामाजिक विकास की एक ज़बरदस्त शक्ति बन गया है। आधुनिक विज्ञान सामाजिक विकास म महान भूमिका अदा करता है, जो निरन्तर बढती जाती है। आज बडी सख्या म लोग विशेष वज्ञानिक समस्याओ मे दिलचस्पी लेते है। अब प्राकृतिक विज्ञाना को विकसित करने के लिय हाथ के बने उपकरणो से सुसज्जित छोटी प्रयोगशालाए पर्याप्त नही है। आज उनके लिये जरूरत है व्यापक औद्योगिक आधार की, बडी सख्या मे कायकर्ताओ की और खच के लिये करोडो की रकम की। विज्ञान प्रभावशाली रूप म जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे हस्तक्षेप कर रहा है, विकास की गति को तज कर रहा तथा मानवजाति की भौतिक और बौद्धिक प्रगति के लिय नई और अभूतपूव सम्भावनाए पदा कर रहा है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी की २४वी काग्रेस मे बोलते हुए लै० इ० ब्रेज्नेव ने कहा "और सम्भावनाए ये ह कि विज्ञान तथा उसके आविष्कारो द्वारा उत्पादन शक्तियो के विकास म जिस क्राति का श्रीगणेश हुआ है, वह अधिकाधिक महत्वपूण और गहरी होती जायेगी। हमारे सामने, साथियो, जो कायभार है, वह ऐतिहासिक महत्व का है वज्ञानिक तथा तकनीकी क्राति की उपलब्धियो को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की सुविधाओ के साथ आगिक रूप म सश्लिष्ट करना, उत्पादन के साथ विज्ञान के समवन के स्वय अपन, मूलत समाजवादी रूपा को व्यापक पमाने पर विकसित करना है।'

परन्तु ससार म प्रतिक्रिया की काली शक्तिया भी ह, जो आधुनिक विज्ञान की महानतम उपलब्धिया का इस्तमाल करके जनगण का हानि पहुचाना, मानव द्वारा उत्पादित भौतिक मूल्या को नष्ट करना तथा बडे पमाने पर स्वय मानवा की हत्या करना चाहती ह। वज्ञानिक उपलब्धिया क उपयाग का प्रश्न समाज के लिय तथा मानवजाति क भविष्य क लिय मौलिक महत्व प्राप्त करता जा रहा है। समाजवाद का सघष विज्ञान का सघष भी है,

इस बात के लिये संघर्ष कि मानव प्रतिभा की महान उपलब्धियों को बुराई का स्रोत नहीं बनने दिया जाय, और उन्हें मनुष्य के भले के लिये, प्रगति तथा मानवजाति की सुख-समृद्धि के लिये इस्तेमाल किया जाये।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि पूंजीपति वर्ग चूंकि उत्पादन का मालिक है, इसलिये उसे विज्ञान की आवश्यकता है। यह प्राकृतिक और तकनीकी विज्ञानों के विकास के लिये स्थितियां पैदा करता है मगर वह **विज्ञान को अपना इजारा बनाये रखना, मुनाफा कमाने का, शोषण करने का साधन बनाये रखना चाहता है। पूंजीवादी देशों में विज्ञान का सैन्यीकरण** तथा मानवों और भौतिक मूल्यों को नष्ट करने के शक्तिशाली उपकरण तैयार करने के लिये उसका प्रयोग **विज्ञान का विकृत प्रयोग** है, जो अपने आप में एक रचनात्मक शक्ति है। इसकी जवाबदेही पूंजीवाद पर है।

समाजवादी देशों में विज्ञान के विकास के लिये सामाजिक स्थितियां मूलतः भिन्न हैं। समाजवाद विज्ञान को जनता की सेवा में लगाता है और उसे सामाजिक प्रगति के लिये सार्वजनिक शिक्षा के व्यापक विकास के लिये तथा जनता के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा करने के लिये इस्तेमाल करता है। अर्थतंत्र का नियोजित और तेज विकास, पूरे देश के पैमाने पर वैज्ञानिक विकास का समाकलन और नियोजन, वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टिकोण का प्रभुत्व—इन सब बातों से समाजवाद के अंतर्गत विज्ञान की तेज प्रगति के लिये अत्यंत अनुकूल परिस्थितियां पैदा होने में मदद मिलती है। समाजवाद के अंतर्गत प्राकृतिक तथा सामाजिक दोनों विज्ञान जनता की सेवा करते हैं तथा अभूतपूर्व रूप से व्यापक पैमाने पर प्रकृति का रूपांतरण करने, समाज के जीवन और विकास का निदेशन करने तथा स्वयं मनुष्य के, उसकी शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं के सर्वतोमुखी विकास को प्रोत्साहित करने के लिये उनका प्रयोग किया जाता है।

लेनिन ने लिखा है "पुराने जमाने में मानव प्रतिभा, इन्सान का दिमाग सृजन सिर्फ इसलिये करता था कि कुछ लोगों को प्रविधि और संस्कृति की सारी सुविधाएं प्राप्त हों और दूसरे लोग अत्यंत आवश्यक चीजों—शिक्षा और विकास से भी वंचित रहें। अब से विज्ञान के सारे कारनामे तथा संस्कृति की सारी उपलब्धियां सार्वजनिक सम्पत्ति बनेंगी और

फिर कभी आदमी का दिमाग और मानव प्रतिभा उत्पाडन और शापण क लिय इस्तेमाल नही की जायगी।"*

वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक ज्ञान क विपरीत, ऐतिहासिक विकास के दौरान म यथाय के एक अपरूप और विकृत प्रतिबिम्ब तथा व्याख्या के तौर पर धम की उत्पत्ति हुई और विज्ञान की महान प्रगति क वावजूद उमका असर अभी भी कायम है।

धम क सारतत्व का समझन के लिय यह स्पष्टीकरण जरूरी है कि इसकी उत्पत्ति क्या हुई और समाज के जीवन और विकास म इसन क्या भूमिका अदा की है।

धम "ईश्वरीय ज्ञान" का भडार नहा और न किसी विशेष, अतिप्राकृतिक जगत का प्रतिबिम्ब है। चेतना के अय रूपा की भाति धम **सामाजिक मानव की चेतना मे यथाय का प्रतिबिंब है, और आकाश की नहीं इसी धरती की उपज है।** धम किसी भी दृष्टि से मनुष्य का जमजात विशेषता नहीं है। मनुष्य जम से कोई धामिक चेतना या धामिक भावना लेकर नही आता। गत शताब्दी म आदिम इतिहास के एक प्रमुख फ्रासासी विद्वान गवरियल द मातिले ने सिद्ध किया था कि पुरापाषाण युग मे धामिक तत्वा का सिरे स कोई नामोनिशान ही नही था।** उस समय स सारी दुनिया के वैज्ञानिका, खासकर सोवियत वज्ञानिका ने नये सबूत एकत्रित किये ह, जिनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है।

यह मान लेना सही नही होगा कि धम की उत्पत्ति अचानक हो गइ, जब अनपढ और भोले-भाले लोगा को कुछ चालबाज लोगा ने बेवकूफ बनाया, जसा कि माक्स के पूव चद भौतिकवादी अपने भोलेपन मे कहा करते थे। इसम सदेह नही कि ज्ञानाभाव से धम का सहायता मिलती है और चालबाजी तथा धम का चोली-दामन का साथ है मगर धम का असली स्रोत कही और है।

धम की उत्पत्ति उस समय हुई, जब मानव का अपने श्रम द्वारा प्रकृति से बिलगाव हो चुका था, मगर उस समय तक वह लगभग सवथा प्राकृतिक शक्तिया का अधीन था।

---

*व्ला० इ० लेनिन, मजदूरो, सनिका और किसाना की तीसरी अखिल रूसी काग्रेस मे (१६१८) भाषण।

** Gabriel de Mortillet *Le prehistorique* Paris 1883

धम का उदय उत्पादन शक्तियो के विकास के एक निश्चित निम्न स्तर पर होता है तथा किसी अन्य स्तर पर हो ही नहा सकता उनके विकास के निम्नतम स्तर पर भी नही। बात यह है कि हर काल म उत्पादन के विकास के स्तर से कवल यही नही जाहिर होता कि किस हद तक मनुष्य प्रकृति पर हावी है बल्कि यह भी कि वह किस हद तक उसके अधीन है। मार्क्स ने लिखा है 'प्रविधि प्रकृति के साथ मनुष्य के व्यवहार पर और उत्पादन की उस क्रिया पर प्रकाश डालती है जिससे वह अपना जीवन निर्वाह करता है, और इस तरह वह उसके सामाजिक सबधो तथा उनसे पैदा होने वाली मानसिक अवधारणाओ के निर्माण की प्रणाली को भी खोलकर रख देती है। यहा तक कि धम का इतिहास लिखने म भी यदि इस भौतिक आधार को ध्यान म नही रखा जाता तो ऐसा प्रत्येक इतिहास आलोचनात्मक दृष्टि से वचित हो जाता है।'* उदाहरण के लिये, आरिग्नेशियन-सलूत्रियन युग म उत्पादन स्तर से, एक ओर, यह पता चलता है कि पशु अवस्था से उबरने पर मनुष्य की शक्ति क्या थी और दूसरी ओर, यह कि वह बडी हद तक बाह्य प्रकृति की शक्तियो के अधीन था।

" समस्त धम मानवो के मन म उन बाह्य शक्तियो की अपरूप प्रतिछाया के सिवा कुछ नही है, जो उसके रोजमर्रे के जीवन का नियत्रण करती है ऐसी प्रतिछाया, जिसम पार्थिव शक्तिया अतिप्राकृतिक शक्तियो का रूप धारण कर लेती है।'**

प्रारम्भ म मनुष्य ने "अपार्थिव' शक्तियो को प्रकृति से अलग नही किया था। उसने प्राकृतिक परिघटनाओ को खासकर उनको, जो उसके जीवन म महत्वपूर्ण है, मूर्त रूप दिया था और उन्हे यह क्षमता प्रदान की थी कि वे उसके जीवन पर चेतन प्रभाव डालती है। रहस्यपूर्ण पर ताकतवर प्राकृतिक शक्तियो, जो उसकी समझ से बाहर होती थी, मगर जिनके सामने वह अपने आपको बेबस महसूस करता था, उसकी कल्पना

---

* का० मार्क्स, 'पूजी', प्रगति प्रकाशन, मास्को, खण्ड १, पृ० ४२३

** फ्रे० एगेल्स, 'ड्यूहरिंग मत खण्डन', विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, मास्को, पृ० ४१८

म अच्छी ग्रौर बुरी ग्रात्मा, देवी-दवताग्रा, शतान, फरिश्ता ग्रौर खुदा क रूप धारण कर लती थी।

परिणामस्वरूप **ग्रादिम धार्मिक चेतना प्रकृति के विरुद्ध लडाई मे जगलं मनुष्य की बेबसी का प्रतिबिंब है।**

• ग्रतविराधी वर्गीय सरचनाग्रा म प्राकृतिक शक्तिया पर, खासकर कृषि म, मनुष्य की ग्रधीनता किसी हद तक जारी रहती है, लकिन इस समय **धम का मुख्य स्रोत सामाजिक विकास की स्वत स्फूत शक्तिया के प्रति मनुष्य की ग्रधीनता हो जाती है।** धम काल्पनिक ग्रौर भ्रामक रूप म उन सामाजिक शक्तिया का, जा मानव क खिलाफ खडी हाती ह, तथा मनुष्य की वास्तविक निभरता का, शोषण क सबधा का प्रतिबिंबित करता है ग्रौर श्रमजीवी मानव की बेबसी ग्रौर दरिद्रता का उचित ठहरान की काशिश करता है। फलस्वरूप वर्गीय समाज म धम की जडें मुख्यत सामाजिक होती ह।

धार्मिक धारणाए बाह्य शक्तिया पर मानव की निभरता की प्रतिछाया हान क कारण ग्रनुकूल व्यवहार का जन्म देती ह। मनुष्य उन ग्रतिप्राकृतिक शक्तिया का तुष्ट करना चाहता है जिनका वह ग्रपन ख्याल म ग्रधीन ह उनकी पूजा करता है ताकि व उस विभिन विपदाग्रा से सुरक्षित रख ग्रौर उन्ह उसके शत्रुग्रा पर डाल दे। धम इन ग्रतिप्राकृतिक शक्तिया को सम्बोधित करन तथा उनस 'सम्पक' स्थापित करने के विधिया की रचना करता ह। इन विधिया स मनुष्य भगवान से सहायता, सलाह, ग्राश्वासन, सहानुभूति ग्रादि की प्राथना करता है। ग्रपनी ग्रपनी परम्परा, रूढि तथा पूजा-पाठ की व्यवस्था सहित धार्मिक पथा का जन्म होता है। कायकलाप के इस विशिष्ट रूप के कारण एक खास श्रेणी के लोग पदा हा गय ह जसे शामान पुरोहित, पादरी, मुल्ला, ग्रादि, जो मानवा ग्रौर भगवान के बीच मध्यस्थता का काम करते ह।

धम समाज, सम्प्रदाय परिवार, ग्रादि म मनुष्य के ग्राचरण तथा कायकलाप का नियत्रण विभिन्न निर्देशना, निषेधा, ग्राज्ञाग्रो, उपदेशो ग्रादि के जरिये करता है, जा भगवान के नाम पर दिये जात ह ग्रौर इसी लिय पवित्र माने जाते है।

धम द्वारा मानव कायकलाप के नियत्रण की इस व्यवस्था से फायदा उठाकर शोषक वग ग्रपने प्रभुत्व को पुष्ट करते ह।

परिणामस्वरूप, धम इन सामाजिक स्थितियो को पदावार है, जिनके अंतगत मानव अजनबी प्राकृतिक अथवा सामाजिक शक्तिया के अधीन होता है, जो उसकी चेतना मे अपार्थिव, अतिप्राकृतिक शक्तिया का काल्पनिक रूप धारण कर लेती ह, जिनमे उसे आस्था होती है और जिनकी वह पूजा करता है। धम इन शक्तिया स एक पवित्र सबध स्थापित करन म महायक हाता है। धम की उत्पत्ति एक सामाजिक व्यवस्था की इस आवश्यकता क कारण हाती है कि मानव कायकलाप क नियत्रण क लिये पवित्र रूप ढूढ निकाल जाय।

कवल कम्युनिस्ट सरचना म ही जब मानव सामाजिक विकास की स्वयम्फूत शक्तिया की अधीनता स मुक्त हा जात ह उन स्थितिया का अत हा जाता है, जिनम धामिक चेतना जम लेती है।

कम्युनिस्ट पार्टी धामिक विचारधारा क प्रति निष्पक्षता का दष्टिकोण नहा अपनाती और न उसक प्रति उदासीन रह सकती है क्याकि स्वय इसका अपना दष्टिकाण अनीश्वरवादी है।

पूववत क महान भौतिकवादिया न अनक जाशीली तथा प्रतिभाशाली नास्तिकवादी कृतिया धम क विरुद्ध लिखी परन्तु चूकि उनका इतिहास का दष्टिकाण भाववादी था, वे धम की सामाजिक जडा तक निगाह डालने तथा उमक उमूलन के तरीके बतलाने म असमथ रहे।

द्वद्वात्मक भौतिकवाद पुरान भौतिकवाद की त्रुटिया को दूर करके धम के विरुद्ध सघष का वज्ञानिक स्तर पर सगठित करता है। धम की जडे चूकि सामाजिक ह और चूकि उसकी उत्पत्ति और पालन-पाषण उन भौतिक स्थितिया म हाता है जिनम जनता जीवन व्यतीत करती है जो उसके सामाजिक पतन की स्थितिया ह, इसलिये धम के उमूलन के लिये सवप्रथम यह आवश्यक है कि उसको जम देनवाल कारणा को, यानी पूजीवाद को मिटाया जाय। इसी लिय माक्सवादी इस सवाल पर कि धम क प्रति क्या रुख अपनाया जाये पूजीवाद के विरुद्ध वग सघष क ठास व्यवहार के प्रसग म विचार करत ह। माक्सवादी लेनिनवादी पाटिया समाजवाद तथा कम्युनिज्म के लिये सघष म सभी श्रमजीवी जनगण को, चाह उनकी विचारधारा उनका धामिक विश्वास कुछ ही क्या न हो, एकताबद्ध करना चाहत ह। उनकी माग है कि धम का राज्य म अलग किया जाय वे धम क नाम पर मनुष्यो के उत्पीडन का नाश कर

19

अनुसार मनुष्यो को अलग अलग श्रेणियो मे बाटने का विरोध करते है। इस पृथ्वी पर सुख-समृद्धि के लिये सघर्ष मे श्रमजीवी जनता की एकता इस वादविवाद से अधिक महत्वपूर्ण है कि स्वर्ग मे कोई भगवान है या नही। शाति की सुरक्षा के आम जनवादी आदोलन मे विशाल सख्या मे नर-नारी भाग लेते है चाहे उनके राजनीतिक विचार और धार्मिक विश्वास कुछ ही क्यो न हो। इनमे पक्के धार्मिक लोग और अनेक प्रगतिशील धार्मिक नेता भी होते है।

समाजवाद के अतर्गत धर्म के प्रति क्या रुख अपनाया जाता है? सोवियत सघ मे जो मौलिक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हुए उनके कारण धर्म की जड कमज़ोर हो चुकी है और इस कारण श्रमजीवी जनता के सास्कृतिक स्तर के ऊचा होने के साथ ही मेहनतकश जनता की अधिकाश सख्या धार्मिक विश्वासो से उन्मुक्त हो चुकी है। व्यापक पैमाने पर सोवियत सघ की मेहनतकश जनता के हर हिस्से ने मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण को अपना लिया है।

लेकिन अभी भी सोवियत सघ मे कुछ श्रमजीवी धार्मिक है। ऐसा क्यो है? सदियो से धार्मिक विचारो का बीज मानवो के मन मे बोया जाता रहा है, और बिल्कुल स्वाभाविक है कि समस्त जनगण थोडे समय के अदर इनसे उन्मुक्त नही हो सकते। इसके अतिरिक्त, फासिज्म के विरुद्ध कडा युद्ध, जिससे सोवियत जनता को बहुत दुख सहना और विपदा झेलनी पडी आबादी के एक हिस्से मे धार्मिक विचारो की पुष्टि का कारण हुआ। एक और बात यह है कि विभिन्न धार्मिक सस्थाए बहुत कार्यशील हो गई है।

ठोस समाजशास्त्रीय छानबीन से पता चलता है कि लोगो मे धार्मिक रुख धार्मिक परम्पराओ और धार्मिक वातावरण (सम्प्रदाय, धार्मिक समूह धार्मिक परिवार) द्वारा बना रहता है, जो अपना पुनरुत्पादन करते रहते है और बना रहता है व्यक्तिगत स्थितियो द्वारा, जिनमे लोग चाहे परम्परा की पुष्टि के कारण या अपने भाव की निर्बलता के कारण तसल्ली के लिये धर्म का सहारा लेते है।

सोवियत सघ की कम्युनिस्ट पार्टी यथाक्रम काम कर रही है ताकि श्रमजीवी जनता को अतत धार्मिक विश्वासो और पूर्वाग्रहो से उन्मुक्त होने मे सहायता मिले।

समाजवादी समाज म इस महत्वपूण समस्या के समाधान की क्या विधि और साधन हो सकते हैं?

धार्मिक पूर्वाग्रहो को आज्ञप्तियो, निषेधो अथवा दमन के जरिये दूर नही किया जा सकता क्योंकि इन सबका उलटा नतीजा होता है और इनके कारण धार्मिक विश्वास और पुष्ट और तेज हो जा सकता है। धार्मिक विश्वासो के विरुद्ध तक करते हुए यह ध्यान रखना चाहिये कि कोई अपमानजनक बात धम गुरुओ या धार्मिक लोगो की भावनाओ के प्रति न कह दी जाय।

सोवियत सघ के विधान म धम की स्वतन्त्रता कानूनी तौर पर सुरक्षित कर दी गई है और यह घोषणा कर दी गई है कि धम एक व्यक्तिगत मामला है। सोवियत सघ म धम सस्था को राज्य मे और स्कूलो को धम सस्था से अलग कर दिया गया है। लोगो को धम कम की तथा धम विरोधी प्रचार की पूरी आजादी है।

धम सस्था को राज्य मे और स्कूलो को धम सस्था स अलग करने क कारण, जिसपर सोवियत सघ म पूरी कडाइ स अमल किया गया लोगो को धम की एसी स्वतन्त्रता मिल गई है जो किसी भी पूजीवादी देश म सुलभ नही है। सोवियत सघ मे धम का उन्मूलन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसम कम्युनिज्म के सक्रिय और सचेत निर्माण म सभी श्रमजीवियो की शिरकत, भौतिक तथा सास्कृतिक स्तर का ऊचा होना और श्रम क पुराने सामाजिक विभाजन के अवशेषो का मिटना, तथा स्थायी वैज्ञानिक, नास्तिक प्रचार द्वारा धार्मिक विचारधारा के विरुद्ध विचारात्मक सघष शामिल ह।

कला क सबध म कहा गया है कि वह सामाजिक जीवन क एक विशेष क्षेत्र की चीज है उस क्षेत्र की जिसका काम यथाथ को सौदर्यात्मक तथा व्यावहारिक रूप म आत्मसात करना है। लकिन यह ऐसा क्षेत्र नही है, जो दूसरो से अलग थलग हो। यथाथ के प्रति मानव का सौदर्यात्मक दृष्टिकोण हर प्रकार के मानव कायकलाप पर और मानवीय सबधो की सारी विविधता पर हावी ह। केवल सिद्धात म ही इस क्षेत्र को एक स्वतन्त्र क्षेत्र क रूप मे अलग किया जा सकता है। मनुष्य केवल विज्ञान क नियमो के अनुसार सष्टि नही करता बल्कि "सौन्दय के नियमो' क अनुसार भी करता ह। यही कारण है कि मनुष्य के श्रम के उपकरणो म, उसके

सामान म तथा मानव सबधा म सौन्दर्यात्मक तत्व पाय जात ह। मगर बात यह है कि वहा सौन्दर्यात्मक तत्व मुख्य नही, बल्कि पूरक क रूप म हाता है। मिसाल के लिय लिबास खूबसूरत हाना चाहिय, मगर इसस भी महत्वपूण बात यह है कि उस मौसम के अनुसार हाना चाहिये, पहनन म आरामदेह हाना चाहिये, इत्यादि। यहा सौदर्यात्मक तत्व व्यावहारिकता के अधीन है।

यद्यपि सौदर्यात्मकता का क्षेत्र बहुत व्यापक है, मगर केवल कला म ही—यानी साहित्य सगीत, चित्रकला आदि म—सौन्दर्यात्मक तत्व का स्वतन्त्र महत्व होता है।

सामाजिक चेतना के एक रूप तथा मानव कायकलाप के एक विशप प्रकार की हैसियत से कला का उद्देश्य यथाथ क साथ मनुष्य के सौन्दर्यात्मक सबधा को प्रतिबिम्बित करना और समाज क सौन्दर्यात्मक व्यवहारा को दज तथा विकसित करना है। चेतना के इस रूप की अपनी विशेषता इस बात म निहित है कि वह यथाथ को कलात्मक प्रतिमाओ द्वारा प्रतिबिम्बित करता है। यहा यथाथ से हमारा मतलब वह सभी कुछ है, जा मनुष्य क चारो ओर है सभी कुछ, जिनसे अपन जीवन और कायकलाप के दौरान मे उसका सम्पक हाता है प्रकृति, समाज तथा मानव के विचारो, भावनाओ तथा अनुभूतिया का अपना आतरिक जगत।

कला एक अत्यत पेचीदा और बहुमुखी वस्तु है। इसका विश्लेषण करन के लिये हम पहले एक सीधा-सादा तक ल। हर आदमी जब कोई किताब पढता या कोई फिल्म, नाटक या चित्र देखता है तो तीन दष्टिकोणा से उसका मूल्याकन करता है चाहे वह स्वय इससे अवगत न हो पहल, क्या पढने, सुनने या देखने मे इसका **मन लगा**? दूसर क्या पुस्तक, नाटक, चित्र आदि मे जिस बात का वणन किया गया है वह **सच है**? और तीसरे, उस कृति द्वारा **किस प्रकार के विचार, भावनाए और अनुभूतिया** मन मे पदा होती ह? इन प्रत्यक्ष रुखो को समझ लेन पर कहा जा सकता है कि कला की प्रत्येक कृति का मूल्याकन हम उसके **सौदर्यात्मक** मूल्य, उसकी **सच्चाई** और उसके **विचारात्मक** अतय की दृष्टि से करत हैं। यह बिल्कुल स्वाभाविक है क्योकि कला अपने अतय मे यानी वस्तुगत दष्टि से इन तीना तत्वो—**सौदर्यात्मक, सज्ञानात्मक** तथा **विचारात्मक** तत्वा—की एकता है।

निस्सन्देह इन तीनो मे से किसी भी एक तत्व को उसके सदर्भ से अलग कर लिया जा सकता, परम वस्तु म रूपान्तरित किया जा सकता और यह सिद्ध करने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है कि, उदाहरण के लिये, कला सज्ञान के सिवा कुछ नही है जो विज्ञान से केवल अपने सज्ञान के विशेष सौदर्यात्मक प्रतीकात्मक रूप म भिन्न है अथवा यह कि वह केवल विचारधारा है जो, ममलन राजनीतिक या नतिक विचारो से केवल इतना ही भिन्न है कि इसम इन विचारो का कलात्मक ढग से चित्रित किया गया है अथवा यह कि यह सौदर्यात्मकता का क्षेत्र है जिसका अस्तित्व केवल "कला कला के निमित्त" के रूप म है। इनम से कोई भी दृष्टिकोण सही नही है क्योकि हर दृष्टिकोण एकागी है। परन्तु इनमे हर एक कला के एक पक्ष का पेश करता है जो अवश्य ही उसमे निहित है। फलस्वरूप, कला का सारतत्व और उसकी विशेषताए स्पष्ट रूप म तभी व्यक्त होती है, जब इन तीनो पहलुओ का मिला कर देखा जाता है।

अब हम कला के मुख्य पहलुओ पर सक्षिप्त मे विचार करे।

यथार्थ के प्रतिबिम्ब की हसियत म कला इसके सज्ञान का एक रूप है, परन्तु यह सज्ञान का एक विशेष रूप है, जो विज्ञान से निम्न कारणो मे भिन्न है।

पहला यह कि विज्ञान, यथार्थ म जो सामान्य और मौलिक है उसको वयक्तिक से, ठोस से अलग करके जिसमे सामान्य वास्तव म जुडा हुआ है, प्रतिबिम्बित करता है। जहा तक कला की बात है वह सामान्य को ठीक उसी तरह प्रतिबिम्बित करती है, जिस तरह जीवन म वह पाया जाता है, यानी वयक्तिक और ठोस से उसके वास्तविक सबध की स्थिति मे। अन्य शब्दो मे **विज्ञान नियमो को प्रतिबिम्बित करता है और कला उन चीजो को, जो प्रारूपिक है।** यही कारण है कि विज्ञान द्वारा जब किसी नियम का पता एक बार लग जाता है तो दोबारा उसका पता नही लगाना पडता। दूसरी ओर चूकि प्रारूपिक वस्तु या परिघटना के, मसलन एक या अन्य सामाजिक प्ररूप को अनेक ठोस अभिव्यक्तिया जीवन म होती है, इसलिये कला मे उसे बार बार प्रतिबिम्बित किया जा सकता है।

दूसरे विज्ञान म सज्ञान विषयवस्तु की ऐसी प्रतिछाया है, जसी वह अपने आपम होती है, मानव से, उसकी चेतना और इच्छा से स्वतत्र रूप म। जहा तक कला की बात है वह महज यथार्थ को नही जसा वह अपने

आपम है, वलि उसक प्रति मानव अभिव्यक्ति का प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करती है, जा यह सही है उन वस्तुनिष्ठ विशेषताओं द्वारा निर्धारित होती है, जो स्वय यथाथ म अतर्निहित होती हैं। वहा भी जहा कला प्रकृति की प्रतिछाया तक सीमित ह (विभिन्न वस्तुओं, प्राकृतिक दृश्यों के चित्र, आदि), कलाकार क ध्यान म मानव को ही केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है। कला कृतियां जसे लेवितान क "स्वर्ण पतझड", वान गाग के 'आर्लेस की अगूर वाटिका" या चायकोव्स्की के "मौसम" की विशेषता वह भाव, सवेदना विचार और धारणाएं हैं जो मानव हृदय म इन प्राकृतिक वस्तुओं द्वारा उत्पन्न होते ह। प्रकृति की एक बेजान नकल को कला की बढ़िया कृति नही माना जाता। गेटे ने एक बार कहा था कि एक पूडल कुत्ते का चित्र देखकर जिसम सारी तफसील दी हुई थी, उसे लगा कि एक कुत्ता खडा है, परन्तु मन पर यह प्रभाव नही पडा कि यह कोई कला कृति है। मानव का प्रकृति से तथा अन्य मानवो स सबध, मानव भावना, विचार और अनुभूतिया जगत कला मे हमेशा केन्द्रीय स्थान रखती है।

तीसरे, विज्ञान के विपरीत एकमात्र कला द्वारा ही यथार्थ की सौन्दर्यात्मक विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त होता है। समुद्रवैज्ञानिक, भौतिकी, रसायनशास्त्री, जीववैज्ञानिक तथा अन्य क्षेत्रो के वैज्ञानिक समुद्र का सर्वतोमुखी वर्णन उसके भौतिक तत्वो, रासायनिक विशेषताओं उसमे पाये जानेवाले जीवो, इत्यादि की दृष्टि से कर सकते हैं, मगर एकमात्र कला द्वारा ही उसकी सुदरता को प्रतिबिम्बित किया जा सकता है।

फलस्वरूप, **कला के प्रतिबिम्ब का एक खास विषय है,** और इसके अनुकूल प्रतिछाया का उसका एक विशेष रूप होता है। **कला यथार्थ को कलात्मक प्रतिमा द्वारा प्रतिबिम्बित करती है।**

कलात्मक प्रतिमा मौलिक, प्रारूपिक तत्व को वैयक्तिक के माध्यम म व्यक्त करती है अथवा अन्य शब्दो म, वह यथार्थ के प्रारूपिक, मौलिक पहलुओ का सामान्यीकरण है एक वैयक्तिक वस्तु के रूप म, अर्थात ठोस प्रत्यक्ष रूप म। लेकिन यह नही समझ लेना चाहिये कि कला मे सृजन की क्रिया के लिय बस इतना काफी है कि बने बनाये प्रारूप ढूढ लिये जाय और उन्हे हू-ब-हू कला कृति म उतार दिया जाये। इसके विपरीत यह ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा यथार्थ मे उस चीज का उभारा जाता है, जो उसमे सबसे सामान्य और मौलिक है और जो मानव मन मे विशेष विचारो

भावनाओं तथा अनुभूतियों को जन्म देने में समर्थ हो सकता है। परन्तु प्रतिमा में हर अभिव्यक्ति कलात्मक नहीं होती। बहुत से लोग छन्दोबद्ध कर लेते अथवा चित्र खींच लेते हैं मगर इसका यह मतलब नहीं है कि वे सभी कला कृतियों का सृजन करते हैं। कला द्वारा यथार्थ सादा प्रतिमाओं में नहीं बल्कि कलात्मक प्रतिमाओं में प्रतिबिम्बित होता है अर्थात वह यथार्थ की सौंदर्यात्मक प्रतिछाया होती है। कला द्वारा प्रतिबिम्बित चाहे कोई चीज़ की जाये – वह अच्छी हो या बुरी आथलो हो अथवा यागो – प्रतिछाया का स्वयं सौन्दर्यात्मक होना चाहिये। फलस्वरूप, कला की प्रतिमा स्वयं सौन्दर्यात्मक होती है उसके द्वारा यथार्थ की सौन्दर्यात्मक अनुभूति व्यक्त होती है तथा सौन्दर्यात्मक भावनाएं पैदा होती हैं। कोई ऐसी चीज़ जिसमें सौन्दर्यात्मक गुण न हो कलात्मक प्रतिमा में नहीं ढाली जा सकती। अतः यह असम्भव है कि ऐटम के भीतर इलेक्ट्रोन की गति को शरीर की पाचन क्रिया को या आम तौर पर किसी भी ऐसी परिघटना को प्रतिबिम्बित किया जा सके जो मानव भावनाओं को प्रभावित नहीं करती और न कर सकती है और इसी लिये किसी सौंदर्यात्मक अनुभूति को जन्म नहीं दे सकती।

यद्यपि कला और विचारधारा को एक नहीं समझना चाहिये, मगर उसे विचारधारा से अलग भी नहीं किया जा सकता। विचारधारा से कला का संबंध दो तरह से है एक तो वह किसी निश्चित सामाजिक व्यवस्था के एक तत्व के रूप में अनिवार्यतः निश्चित वर्गों के राजनीतिक वैधानिक, नैतिक, सौन्दर्यात्मक, दार्शनिक और अन्य विचारों के संवाहक का काम करता है जो उस समाज के अनुरूप होते हैं दूसरे उसका अपना स्वरूप विचारधारात्मक होता है। आखिर कला यथार्थ को न केवल प्रतिबिम्बित करती है, बल्कि उसका मूल्यांकन भी करती और उसके प्रति एक निश्चित रुख भी प्रकट करती है। कलाकार अपनी सौंदर्यात्मक प्रतिमा की युक्ति द्वारा हमेशा किसी न किसी चीज की पुष्टि करते हैं या उससे इनकार करते हैं, अर्थात किसी न किसी रूप में अक्सर अनजाने ही एक निश्चित सामाजिक आदर्श का समर्थन करते हैं। समस्त कला विचारधारात्मक होती है, चाहे कलाकार इससे अवगत हो या न हो चाहे वह इसे स्वीकार करे या न करे। यही कारण है कि वे कलाकार या लेखक भी जो 'गैर-विचारवादी' होने का दावा करते हैं वास्तव में निश्चित विचारों के

सवाहर सिद्ध होत है। ऐतिहासिक अनुभव स यह स्पष्ट है कि वतमान स्थितियो मे **"गर विचारवादी"** कलाकृतिया दरअसल पूजीवादी विचारो के प्रचार का एक रूप ह।

सच तो यह ह कि कला के विचारधारात्मक हान क कारण ही उसक और ठास ऐतिहासिक सरचना तथा उसक वर्गों क बीच एक सबध कायम हाता ह दास प्रथा तथा सामती समाज की कला का, अथवा कम्युनिस्ट कला को पूजीवादी कला स अलग किया जा सकता है और कला क वर्गीय स्वरूप और उसकी मातहत भूमिका का ममझा जा सकता है। कवल कम्युनिस्ट समाज म ही कला का विकास वर्गीय अतविराधा स उन्मुक्त होता है और तभी वह समाज के तमाम मदस्या के बौद्धिक विकास के हेतु अपनी भूमिका अदा करती है।

परन्तु कला की खास विशेपता यह है कि इसके सज्ञानात्मक तथा विचारधारात्मक तत्व सौन्दर्यात्मक धरातल पर आधारित हात हैं। कला वास्तविक परिघटनाओ की पुनरावत्ति और मूल्याकन उनके सौन्दर्यात्मक गुणो के अनुसार, सौदर्यात्मक नियमो के अनुसार, सौन्दर्यात्मक प्रवर्गो क माध्यम से तथा सौन्दर्यात्मक आदर्शो पर नजर रखते हुए करती है। इसका अथ यह है कि जीवन की परिघटनाओ का चित्रण और मूल्याकन जब कलाकार करता है ता यह देखता है कि वह सुदर है या असुन्दर, दुखात है या हास्यपूण आजस्वी है या घटिया। इसी लिय कलाकृति द्वारा **सौदर्यात्मक अनुभूतिया** जन्म लेती हैं, जो विशेप भावनाओ क रूप म यथाथ का मूल्याकन होती है। सौदर्यात्मक अनुभति ठोस वस्तुओ और परिघटनाओ मानव कायकलाप तथा कलात्मक कृति को दखने की एक विधि है, जिसके द्वारा मनुष्य प्रशसा हप शोक, राप, प्रेम, घणा आनन्द, अवसाद तथा कामलता अनुभव करता है। सौदर्यात्मक भावना प्रकृति म कामकाज म, अपन प्रयास के नतीजा म, मानव म खुशी का एहसास पदा करती है। मगर सौदयात्मक अनुभूतिया की रचना मे कला हा मबस बडी भूमिका अदा करती है। कला ही के माध्यम से उन छाटी छाटी, मन क काने खुदरे मे दबी भावनाओ का स्पष्टीकरण हाता तथा उनको मम्पूण अभिव्यक्ति मिलती है, जि ह हर आदमी वस्तुओ, परिघटनाओ को देखकर, आये दिन की स्थितियो मे या मानव काय देखकर अनुभव करता है। इसी लिये अक्सर ऐसा हाता है कि हम किसी पुस्तक मे किसी स्थिति का वणन

पढकर इतना प्रभावित होते है जितना उसी प्रकार की घटना का स्वय देखकर नही होते, क्याकि कला मे यह क्षमता हाती है कि हमारी अनुभूतिया को मूत्त रूप दे सके और उसमे हमारे भावा को प्रभावित करने की वडी शक्ति होती ह। मार्क्स ने लिखा है कलाकृति ऐसे जनगण को जन्म देती है, जा कला को अवधारण कर सकता हो।"*

अत इतिहास के दारान म तथा सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार तथा विज्ञान और कला के विकास के आधार पर मनुष्य केवल अपने चारा ओर के वारे म ज्ञान की ही सचिति नही करता और कवल अपने मन को ही विकसित नही कर पाता है, बल्कि अपनी इद्रियो क अपनी भावनात्मक पहलू को भी विकसित और समद्ध करता है। इससे उस यथाथ के सौदर्यात्मक गुणा का अधिकाधिक गहरा बोध प्राप्त होता है। मनुष्य के भावनात्मक पहलू का विकास उसके सास्कृतिक विकास का एक मौलिक अग है।

शोषण व्यवस्था म अधिकाश कलाकृतिया श्रमजीवी जनता की पहुच से वाहर होती हैं। इसी के साथ आधुनिक साम्राज्यवादी राज्या म इजारेदार जान-बूझकर जन सूचना के शक्तिशाली साधना द्वारा आम जनता की पसन्द का विगाडते हैं। केवल समाजवाद के अतगत ही जनता का कलाकृतिया को देखने-समझने का अवसर मिलता है और इनसे जनगण की सौन्दर्यात्मक अनुभूति को विकसित करने म अधिकाधिक सहायता मिलती है। लेनिन न क्लारा जेटकिन से वातचीत म समाजवादी कला के कायभारा की एक वडी गहन व्याख्या की थी। उन्होने कहा था "कला जनगण की चीज है। इसकी जडे ठीक आम श्रमजीवी जनता के बीच मे गहरी जमी होनी चाहियें। इसे इस जनता के लिये वोधगम्य और उनमे जनप्रिय हाना है। इसे इस जनता की अनुभूतिया, विचारो और आकाक्षाओ को एकतावद्ध करना और उनका स्तर ऊचा करना चाहिय। इन लागा म जो कलाकार की आत्मा है, इस उसको जगाना और विकसित करना है।

यह जिम्मदारी—जनगण मे कलाकार की आत्मा को जगाना और विकसित करना—जनता की सौन्दर्यात्मक अभिरुचि को प्रात्साहित करन म कला की भूमिका को अभिव्यक्त करती है।

सौन्दर्यात्मक सज्ञानात्मक तथा विचारधारात्मक तत्वा की एकता को

---

*का० मार्क्स, आर्थिक पाडुलेख (१८५७-१८५८) भूमिका

हमियत से कला मनुष्य को शिक्षित करने का एक विशेष और शक्तिशाली साधन है, जो मनुष्यों पर जबरदस्त प्रभाव डालता है क्योंकि वह उनके लिये बोधगम्य, ठोस और दृष्टिगोचर है। कला विचारात्मक, नैतिक तथा सौंदर्यात्मक शिक्षा का एक साधन है। चूंकि इसमें विचारधारा का तत्व हमेशा मौजूद रहता है, इसलिये यह वर्ग संघर्ष का एक महत्वपूर्ण हथियार है। अपने विचारधारात्मक तत्व के अनुकूल यह दो में से कोई एक भूमिका अदा कर सकती है और वास्तव में करती भी है एक प्रगतिशील भूमिका और एक प्रतिक्रियावादी। कला, जब समझ-बूझकर जनगण और प्रगति की सेवा करे तो वह सामाजिक परिवर्तन में अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। अपने समकालीन लोगों के हृदय और मन को प्रभावित करके वह पूंजीवादी व्यवस्था को, जो अपना समय पूरा कर चुकी, मिटाने के संघर्ष में सक्रिय भाग लेती है।

दर्शनशास्त्र का चेतना के रूपों में अपना एक अलग स्थान है। एक ओर आम जनगण इसको सबसे कम जानते-बूझते हैं, जिससे देखने में ऐसा लगता है कि इतिहास के मार्ग पर इसका प्रभाव सबसे कम पड़ता है। दूसरी ओर चूंकि मनुष्य अपने कार्यकलाप में सामाजिक चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियों से निर्देशित होते हैं, और चूंकि इसके सभी रूप किसी न किसी तरह विश्व के आम सैद्धांतिक दृष्टिकोण से सबंधित होते हैं जो दर्शनशास्त्र से मिलता है इसलिये यह स्पष्ट है कि दर्शनशास्त्र इतिहास के मार्ग पर अत्यंत महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। परिणामस्वरूप, यद्यपि देखने में ऐसा लगता है कि दर्शनशास्त्र चेतना की वह अभिव्यक्ति है, जिससे चन्द विशेषज्ञों को छोड़ कर और किसी को कुछ लेना-देना नहीं है, मगर वास्तव में यह विचारों की एक ऐसी पद्धति है, जो व्यापक सामाजिक महत्व और दिलचस्पी की चीज है।

दर्शनशास्त्र की खास विशेषता इस बात में है कि वह सज्ञान का एक रूप है, जिसका विज्ञानों की आम व्यवस्था में एक निश्चित स्थान है, और साथ ही विभिन्न वर्गों के हितों की सैद्धांतिक अभिव्यक्ति, उनकी विचारधारा है, जिसका प्रत्येक समाज के विचारधारात्मक रूपों की पद्धति में भी एक स्थान होता है।

सज्ञान का एक रूप होने के नाते दर्शनशास्त्र सैद्धांतिक तौर पर निरूपित धारणाओं की व्यवस्था है, जो विश्व को एक सुसम्बद्ध और विलयित

समुच्चता की हैसियत से पेश करती है और मनुष्य द्वारा इसके सज्ञान की विधिया और साधना की व्याख्या करती है। ठोस, विशिष्ट विज्ञाना के विपरीत, दशनशास्त्र विश्व पर विचार उसके अत्यत सामाय पहलुग्रा और नियमा की दष्टि से करता है, जो इसकी विभिन्न ठास (विशिष्ट) अवस्थाओ का सपक स्थापित करते ह। यह सही है कि सामाजिक विकास का प्रारम्भिक अवस्थाओ मे विज्ञान की विभिन्न शाखाओ के अलग अलग होने से पहले, दशनशास्त्र मे ठोस वैज्ञानिक नान भी शामिल था और इसम विचार उन बाता पर किया जाता था जो आगे चलकर विशेष विज्ञाना की विषयवस्तु बनी। यही कारण है कि अतीत म दशनशास्त्र का विषय आज की तुलना मे कही ज्यादा व्यापक था। दशनशास्त्र जब तक ठोस विज्ञाना म नही बटा था, प्राथमिक सज्ञान की मौलिक विशेषता और इस बात की अभिव्यक्ति था कि सज्ञान इतिहास की दष्टि स अभी सीमित था। परन्तु इन सबके बावजूद सनान के एक खास रूप की हैसियत से दशनशास्त्र की व्युत्पत्ति का सबध विश्व की चद आम धारणाओ के सैद्धातिक निरूपण तथा मनुष्य द्वारा विश्व के सज्ञान स है।

वास्तव म दशनशास्त्र की व्युत्पत्ति ऐसी आम धारणाओ तथा विचारणाओ की आवश्यकता के कारण हुई, जिनके द्वारा विश्व तथा उसके सज्ञान की प्रक्रिया की आम व्याख्या की जा सके। ध्यान म रखने की बात यह है कि ऐतिहासिक व्यवहार के दौरान म मनुष्या का इस बात की जरूरत पडी कि अलग अलग वस्तुओ और परिघटनाओ तथा उनके उन गुणा का, जो उनकी विशेषता ह और उनको अय चीजा से अलग करती ह, नान हासिल करे। मगर इतना ही नही उह जरूरत इस की भी पडी कि वस्तुओ के सबध का, उनके परस्पर लगाव का तथा एक अवस्था से दूसरी म उनके सक्रमण का भी ज्ञान प्राप्त करे। यही वह आधार है, जिसस मानव के चारा आर वस्तुओ की विविधता, विश्व की एकता, एकलित स बहुलित तक सक्रमण के माग के सद्धातिक बोध की आवश्यकता पैदा हाता है। सद्धातिक चिन्तन की एक खास विशेषता यह है कि जो प्रत्यक्ष रूप म दिखाइ देता है, उससे पर जाकर, वह वस्तुओ की तह तक पहुचने का तथा उनका धारणाओ म प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करता है। मसलन आदिम यूनानी दाशनिक हराक्लिटस न जब यह दावा किया कि 'यह विश्व किन्ही दवताओ अथवा मनुष्या न नहीं बनाया है, बल्कि यह

हमेशा से था और है और हमेशा रहेगा, एक चिरन्तन अग्नि, जो निश्चित नियमों के अनुसार जलती और निश्चित नियमों के अनुसार बुझती है,'* तो इस बात में बड़ा भोलापन था, मगर मूलतः यह एक सही प्रयास था कि विश्व की व्याख्या स्वयं उसके द्वारा की जाय तथा आसपास की वस्तुओं की प्रत्यक्ष विविधता को पार करके उनकी मौलिक, आंतरिक एकता का पता लगाया जाये।

लेकिन जैसा कि हमेशा रहा, दर्शनशास्त्र यथार्थ के ज्ञान के एक रूप मात्र का नाम नहीं है। सभी अन्य विज्ञानों के बरखिलाफ एकमात्र दर्शनशास्त्र ही किसी भी सज्ञान सिद्धांत का मौलिक सवाल उठाता और उसका समाधान करता है, यह सवाल कि विश्व की एकता कहाँ से आती है, विश्व में प्राथमिक, मुख्य और मौलिक क्या है, यानी इसकी विविधता का "आद्य स्रोत क्या है? इसी लिये सभी विज्ञानों में एकमात्र दर्शनशास्त्र ही विश्व का आम सैद्धांतिक दृष्टिकोण, एक निश्चित विश्वधारणा प्रदान करता है। परन्तु मनुष्य का विश्व दृष्टिकोण स्वयं विश्व की विशेषता को ही नहीं, बल्कि उसके प्रति मनुष्य के रुख की विशेषता को भी चित्रित करता है और यह हमेशा इस बात पर निर्भर करता है कि समाज में आदमी की हैसियत क्या है और इस कारण उसका हित क्या है। अपनी व्युत्पत्ति और विकास में दर्शनशास्त्र सदा मानवों के भौतिक हितों द्वारा निर्धारित होता रहा है, जो सामाजिक संबंधों की किसी व्यवस्था के भीतर उनकी हैसियत पर निर्भर करते हैं।

जब समाज वर्गों में विभाजित हुआ और वर्ग संघर्ष ने जोर पकड़ा तो प्रतिरोधी वर्गों तथा विभिन्न सामाजिक गिरोहों के हितों की सैद्धांतिक पुष्टि की जरूरत आ पड़ी। लेकिन इसके लिये पहले यह जरूरी था कि किसी वर्ग विशेष के हितों को सार्विक हितों के रूप में पेश किया जाय, और दूसरे, यह दिखाया जाये कि उस वर्ग की आकांक्षाएं और आदर्श विश्व के सामान्य दृष्टिकोण और सारतत्व का नतीजा हैं और इस प्रकार वर्ग हित को इस तरह पेश किया जाय कि वह एक आवश्यकता है, जिसकी उत्पत्ति वस्तुओं के मौलिक स्वरूप से होती है। यह आसानी से देखा जा सकता है

---

* *Philosophers Speak for Themselves from Thales to Plato* (Ed.) T. V. Smith University of Chicago Press 1956 p. 11

कि एकमात्र दर्शनशास्त्र ही यह भूमिका अदा कर पाया है क्योंकि केवल यही अपने अमूर्त सैद्धांतिक रूप में विश्व की एक आम अवधारणा निरूपित करता है जो किसी वर्ग की हैसियत और हितों के अनुरूप होती है और एकमात्र यही उस वर्ग की आम विचारधारात्मक आकांक्षाओं तथा सामाजिक राजनीतिक स्थिति की पुष्टि करता है। इसी कारण दर्शनशास्त्र प्रतिरोधी वर्गों की विचारधारा बन जाता है। परिणामस्वरूप सामाजिक चेतना के एक रूप के नाते दर्शनशास्त्र की खास विशेषता इसके सर्जनात्मक तथा विचारधारात्मक कार्यभारों की एकता में उत्पन्न होती है।

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि स्वयं दार्शनिकों के मन में यह बात साफ नहीं रहती है कि उनकी दार्शनिक स्थापनाओं को प्रतिरोधी वर्गों के वास्तविक हितों से जोड़ा जा रहा है। इससे भी बड़ी बात यह है कि उनमें से बहुतों का सचमुच यह विश्वास था कि उनके सिद्धांत सनातन दार्शनिक समस्याओं का जैसे मन और भूत के संबंध, विश्व की बोध्यता, गति के सार, मानव क्या है आदि का उत्तर प्रदान करते हैं। संक्षेप में वे मानते थे कि उनके सिद्धांत सत्य की खोज का परिणाम हैं। इसी लिये जब हम यह कहते हैं कि अमुक दार्शनिक किसी निश्चित वर्ग का विचारक है, तो इसका अर्थ कदापि यह नहीं होता कि वह जान-बूझकर उसका प्रतिनिधि-वक्ता है, या जन्म या सामाजिक हैसियत की दृष्टि से उसका संबंध उस वर्ग से है। जो बात उसको उस वर्ग का अधिवक्ता बनाती है वह यह है कि उसके सैद्धांतिक प्रयास उसको उन्हीं निष्कर्षों पर पहुंचाते हैं जहां वह वर्ग व्यवहार रूप में पहुंचता है।

अंतर्विरोधी संरचनाओं के विकास के पीछे चालक शक्ति प्रगतिशील तथा प्रतिक्रियावादी वर्गों का संघर्ष है। वर्गों की हैसियत और हितों का भेद उनके विश्व दृष्टिकोण में, भौतिकवाद तथा भाववाद के संघर्ष में प्रतिबिम्बित होता है। भौतिकवाद और भाववाद दर्शनशास्त्र के दो प्रधान दल हैं, जिनका भेद दर्शनशास्त्र के प्रधान सवाल के प्रति उनके भिन्न रुख के कारण है। वह प्रधान सवाल है मन और भूत, विचार और अस्तित्व के परस्पर संबंध का सवाल। दर्शनशास्त्र के लिये यह मौलिक प्रश्न है क्योंकि इसी के उत्तर पर यह निर्भर करता है कि विश्व के प्रति किसी व्यक्ति का क्या रुख होगा, यानी यह कि क्या वह विश्व को भौतिक मानता है या भावगत। इसी प्रश्न के उत्तर से अन्य सभी दार्शनिक प्रश्नों के

विश्लेषण का सैद्धांतिक आधार मिलता है। अगर सगार भौतिक है तो सज्ञान का काय है भौतिक जगत के सवधा और नियमा की विशयताओं को जमा कि वास्तविक रूप म व पाय जात हैं, अध्ययन करना। लेकिन इसके विपरीत अगर वह भावगत है तो सज्ञान का काय विश्व के आध्यात्मिक दविक सार के अध्ययन तक ही सीमित रहेगा।

भौतिकवादी विश्व दष्टिकोण विश्व को उसी रूप मे देखता है, जसा वह है, उसम बाहर से कुछ नहीं जोडता, जबकि भाववाद विश्व का ग़लत अवलोकन, एक विकृत विश्व दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

भौतिकवाद तथा भाववाद का सघष, विभिन्न दाशनिक मता, सिद्धान्ता तथा दष्टिकोणा की टक्कर सामाजिक वर्गों के सघष का प्रतिबिम्ब है।

परन्तु दाशनिक पद्धतिया को विशाल विविधता का जो इतिहास म एक के बाद एक की जगह लेती रही ह ठास विश्लेषण करने के लिय केवल यही ज़रूरी नही है कि किसी देश या काल विशेष म वर्गीय सबधा के स्वरूप का ध्यान म रखा जाय। विज्ञाना खासकर प्राकृतिक विज्ञान के स्तर का, दाशनिक धारणाआ के भडार या जसा कि कहा जाता है विचार सामग्री का और साथ ही उस समाज के बौद्धिक वातावरण का—उसकी सस्कृति की अवस्था, मानसकीय रुख, एक या अन्य प्रकार की चेतना के प्रभाव के स्वरूप, आदि का भी ध्यान म रखना भी अत्यत महत्वपूण है।

मार्क्सवाद की उत्पत्ति दशनशास्त्र के ऐतिहासिक विकास म एक महत्वपूण सीमाचिह्न थी। मार्क्स और एगेल्स ने ऐसा दशनशास्त्र पश किया, जिसमे केवल प्रकृति का ही नही, बल्कि समाज का भी सुसगत रूप से भौतिक अवलोकन किया गया था। सच पूछा जाये तो मार्क्सवादपूर्व दशन शास्त्र का इतिहास वज्ञानिक विश्व दष्टिकोण का प्रागैतिहासिक युग है। लेकिन इसका मतलब यह नही है कि उसके अध्ययन का महत्व केवल ऐतिहासिक रह गया है। इसके बरखिलाफ, वह अत्यत महत्वपूण है न सिफ आज का विचारधारात्मक सघष चलाने के दृष्टिकोण से, बल्कि वज्ञानिक मार्क्सवादी लेनिनवादी दशनशास्त्र के विकास के लिय भी। लेनिन ने इस बात पर जोर दिया था कि कोई व्यक्ति विचारा की उस सम्पदा को आत्मसात किये बिना कम्युनिस्ट नहीं हो सकता जिसकी व्युत्पत्ति सारी मानवजाति द्वारा हुई थी। इसम दाशनिक विचारा का इतिहास भी शामिल है।

मार्क्सवादी दर्शन सर्वहारा वर्ग का विश्व दृष्टिकोण है। उसका विकास इसी सामाजिक धरातल पर होता है और उससे सर्वहारा के वर्ग संघर्ष में सहायता मिलती है। वह उन सिद्धांतों का परित्याग है जो शोषक वर्गों के विश्व दृष्टिकोण की तह में काम करते हैं। वह यथार्थ को चिंतन मात्र का विषय नहीं, बल्कि ऐसा विषय मानता है, जिसका क्रांतिकारी परिवर्तन करना है। मार्क्स ने ज़ोर देकर कहा था "दार्शनिकों ने विश्व की केवल व्याख्या की है, विभिन्न ढंग से, असल काम इसको बदलना है।"*

मार्क्सवाद की उत्पत्ति के साथ यथार्थ के प्रति दर्शनशास्त्र के रुख में तब्दीली होती है। दर्शनशास्त्र क्रांतिकारी और सक्रिय हो जाता है और विश्व के व्यावहारिक रूपांतरण का एक अस्त्र बन जाता है। पूर्वकालीन दर्शनशास्त्र के बरखिलाफ़, जो कभी जनता के हाथों में नहीं पहुंच पाता था तथा छोटे छोटे मतों की चारदीवारी तक सीमित रहा करता था, **मार्क्सवादी दर्शन ने समझ बूझकर अपना नाता व्यापक जनता के संघर्षों से जोड़ा है।**

केवल एक *वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र* ही, जो प्रकृति और समाज के वस्तुनिष्ठ नियमों को ठीक ढंग से प्रतिबिम्बित करता है, जनगण की, *समाज को बदलने के लिये उनके संघर्ष की लाभदायक सेवा कर सकता है।* मार्क्सवादी दर्शन में मौलिक और अटूट रूप से वैज्ञानिक तथा क्रांतिकारी दृष्टिकोणों का समाकलन है। **सर्वहारा का दर्शन एक वैज्ञानिक विचारधारा है, यानी वह एक ही साथ विचारधारा भी है और विज्ञान भी।** पहली बार इसने विचारधारात्मक तथा संज्ञानात्मक तत्वों के बीच अंतर्विरोधों को दूर कर दिया है, जो किसी न किसी हद तक सभी पूर्वकालीन दर्शनों की विशेषता थे।

मार्क्सवाद की उत्पत्ति के साथ विज्ञानों के प्रति दर्शनशास्त्र का रुख बदल जाता है। पूर्वकालीन दर्शनशास्त्र के विपरीत, मार्क्सवाद किसी भी अर्थ में विज्ञानों का विज्ञान नहीं है, जो ठोस विज्ञानों पर अपने ठोस निष्कर्ष थोपा करता है। यह भी अन्य विज्ञानों की भांति एक विज्ञान है, जिसका विषय अन्य विज्ञानों से भिन्न है। पात्र और विषयवस्तु की संबंध विधि, भौतिक जगत तथा चिन्तन के विकास के अत्यंत आम नियमों का अध्ययन करते हुए, मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन अन्य विज्ञानों का एक सही

---

*का० मार्क्स, 'फ़ायरबाख़ पर निबंध'

विश्व दष्टिकोण वज्ञानिक सनान का सिद्धात तथा विधि प्रदान करता है।

पूवकाल म दशनशास्त्र का विकास भौतिकवाद तथा भाववाद के सघष द्वारा एक के वाद एक विभिन्न दाशनिक पद्धतिया के माध्यम स हुआ करता था। वदलती ऐतिहासिक स्थितिया के कारण दशनशास्त्र की पुरानी पद्धतिया का अत हो जाता तथा नई पद्धतिया उनका स्थान ले लेती। माक्सवाद की उत्पत्ति के साथ दशनशास्त्र का विकास भी वदल जाता है। चूकि माक्स वादी दशन एक विज्ञान है, इसलिये इसका विकास भी एक विज्ञान की तरह होता ह, यानी इसक मौलिक सिद्धात—भौतिकवाद तथा द्वद्ववाद—अपरिवर्तित रहत है। मगर वदलती ऐतिहासिक स्थितिया के कारण तथा नई वैज्ञानिक खोजा की रौशनी मे माक्सवादी दशनशास्त्र का विकास होता है तथा नई स्थापनाम्रा और निष्कर्षा द्वारा वह और समद्ध हाता है। अव नई दाशनिक पद्धतियो की स्थापना की ज़रूरत नही है, जो माक्सवादी दशन का स्थान ले सके, क्योकि ज़रूरत सिफ इसकी है कि स्वय माक्सवादी दशन को विकसित किया जाये। अत इजारा पूव पूजीवाद स साम्राज्यवाद तथा सवहारा क्रातियो के युग मे सक्रमण के साथ तथा नये वैज्ञानिक आविष्कारा के सवध म यह जरूरत पदा हा गई कि वग सघष के नये अनुभव और विज्ञान की प्रगति का खुलासा किया जाय। यह काय महान लनिन ने पूरा किया। उन्हाने इस तरह माक्सवाद को एक नई अवस्था मे पहुचाया और पूर माक्सवादी सिद्धात खासकर माक्सवादी दशन के सृजनात्मक विकास के लिय एक नमूना मुहैया किया। **माक्सवादी दशन के विकास को नई अवस्था को लेनिनवाद की अवस्था कहते ह।**

माक्सवादी लनिनवादी दशन का विकास सभी प्रकार क भाववादा तथा अधिभूतवादी और भाडे भौतिकवादी सिद्धाता के विरुद्ध सघष म, माक्सवाद लेनिनवाद स पथभ्रष्टता के विरद्ध सघष म, मतवाद और सशोधनवाद क विरद्ध सघष म हुआ।

विश्व के दो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाम्रा म विभाजित हा जान पर माक्सवाद-लेनिनवाद को विराधी शिविर यानी पूजीवादी शिविर की विचारधारा क खिलाफ, प्रतिक्रियावादी साम्राज्यवादी पूजीवादी दशन क खिलाफ, सघष करना पड रहा है। माक्सवादी-लेनिनवादी दशन का काम जनता का पूजीवादी विश्व दष्टिकाण क सभी रूपा तथा अभिव्यक्तिया क प्रभाव म उन्मुक्त करना है।

सामाजिक और व्यक्तिगत चेतना

सामाजिक चेतना का व्यक्तिगत चेतना के साथ सबध के बाहर कोई अस्तित्व नहीं होता क्योकि समाज म मानव के सिवा और कोई चेतन जीव नही है।

व्यक्तिगत चेतना व्यक्ति का बौद्धिक जगत है। सामाजिक चेतना को व्यक्तिगत चतना से अलग नही किया जा सकता, परन्तु व्यक्तिगत चेतना सामाजिक चेतना का कण मात्र नही है। व्यक्तिगत चतना **एकलित चेतना** है, जो हर व्यक्ति म उन विशेपताओ को अलग अलग ढग से एकत्रित करती है, जो उस युग की चेतना म **आम तौर से** पाई जाती है, खास विशेषताओ को, जिनका सबध इस बात स है कि उस व्यक्ति का जन्म किन सामाजिक स्थितिया म हुआ और अलग अलग व्यक्तिगत विशेषताओ का, जो व्यक्ति की शिक्षा, योग्यताओ तथा निजी जीवन की स्थितिया पर निभर करती ह।

इसी लिये किसी युग विशेष, वग, राष्ट्र अथवा सामाजिक समूह की चेतना म सामान्य खासियता के अतरनिहित होने का मतलब यह नही है कि इस सामान्यता की निश्चित परिधि के भीतर व्यक्तिगत चेतना म विविधता नही पाई जायगी या व्यक्तिगत तथा सामाजिक चेतना म अतविरोध नही पाया जायेगा। हर एक को ऐसी मिसाले मालूम होगी कि पूजीपति वग म जन्म लेनेवाले व्यक्ति सवहारा के साथ चले आये, उसके विचारधारा को स्वीकार कर लिया और स्वय अपने वग का विरोध करने लगे। लोगो ने सोशल डिमोक्रेटिक आन्दोलन के ऐसे अवसरवादी नेताओ का और कुछ ढुलमुल कम्युनिस्ट नेताओ का भी नाम सुना है, जिन्होने मजदूर वग के हितो से गद्दारी की, हालाकि उन्होने जन्म उसी वग म लिया था। यह बात कि क्या एक व्यक्ति विशेष अन्य वग के दृष्टिकोण को स्वीकार करता है, दूसरा व्यक्ति क्यो नही उसकी अपनी व्यक्तिगत खासियता पर निभर करती है, यद्यपि स्वय इस परिघटना के कारण सामाजिक होते ह।

व्यक्तिगत तथा सामाजिक चेतना मे एक द्वद्वात्मक एकता होती है। व्यक्तिगत चेतना का निरूपण व्यक्ति की जीवन-परिस्थितिया के प्रभाव के अतगत, अन्य लोगो के साथ, आसपास के सामाजिक वातावरण, जिसम सामाजिक चेतना भी शामिल है, के साथ परस्पर क्रिया के जरिये होता

है। व्यक्ति की चेतना की रचना करने मे सामाजिक चेतना के दो मुख्य पहलुग्रों को दखा जा सकता है।

एक, सामाजिक चेतना के साथ सबध ही है, जिससे व्यक्ति को भाव (विचार) के रूप म यथाथ को प्रतिबिम्बित करने म सहायता मिलती है ग्रौर जो कहा जा सकता है कि, उसके ग्रन्दर भाव का उत्पन्न करने की क्षमता पैदा करता है। मार्क्स ने लिखा है "विचार इसके सिवा ग्रौर कुछ नही कि भौतिक ससार मानव मस्तिष्क म प्रतिबिम्बित होता है ग्रौर चिन्तन के रूपा म बदल जाता है।"* इस स्थापना की सही समझदारी प्राप्त करने के लिय यह बात ध्यान म रखनी चाहिय कि "मानव-मस्तिष्क" का ग्रस्तित्व केवल समाज म होता है, ग्रौर एक बार समाज स, सामाजिक चेतना से ग्रलग हो जाने पर उसमे "मानवीय ढग" स भूत को भाव म बदलने का सामर्थ्य नही रह जाता। भाव (विचार, चेतना) का ग्रस्तित्व केवल तभी होता है जब उसको सहारे के लिये तीन चीजें प्राप्त होती ह विषयवस्तु, मानव मस्तिष्क तथा सामाजिक चेतना, जा ग्रपने ग्रन्दर प्रतिच्छाया के उन रूपा का सचित करती रहती है, जिन्ह मानवजाति ने ग्रपने पूव विकास के दौरान मे सामाजिक ढग से जन्म दिया है।

कायकलाप के दौरान मे सामाजिक चेतना स परस्पर क्रिया मानव म यथाथ का बोध करने की क्षमता पदा करती है। हर व्यक्ति चिन्तन का पात्र तभी बनता है जब वह भाषा, धारणाए तथा तकशास्त्र को जान लेता है जा सामाजिक ऐतिहासिक व्यवहार के विकास की पदावार ह।

दूसरे, **सामाजिक चेतना से मनुष्य को ग्रावश्यक ज्ञान, सस्कृति, विचार धारा, ग्रादि प्राप्त होती है।** सामाजिक चेतना वह बौद्धिक वातावरण है, जिसमे मनुष्य रोजमर्रे का जीवन विताता तथा व्यावहारिक कायकलाप करता है, जिसम छोटी-बडी समस्याए ज्यो ज्या ग्रलग ग्रलग समुदायो, वर्गो राष्ट्रो तथा पूरे समाज के जीवन मे उठती ह, प्रतिबिम्बित होती है। ग्रादमी इसी वातावरण म सास लेता है, इसी मे जीवन गुजारता ग्रौर इसी को ग्रात्मसात करता है। वह उन परम्पराग्रो तथा नतिक ग्रधिनियमो को जो समाज मे या किसी उससे छोटे दायरे मे प्रचलित होते ह, स्वीकार करता है, ग्रौर साथ ही उन विचारा, रुखा रायो, ग्रादता ग्रौर पसद

---

*का० मार्क्स, पूजी, प्रगति प्रकाशन मास्को, खण्ड १, पृ० २७

नापसन्द को भी कबूल करता है जिनसे उसका ग्राचरण तथा यथाथ के प्रति उसका रवया प्रभावित होता है।

इससे यह नतीजा निकलता है कि व्यक्ति की चेतना उसकी विशेष व्यक्तिगत खासियता को ग्रलग करके देखा जाये तो मूलत एक सामाजिक चेतना है क्याकि हर व्यक्ति ग्रपने समय की सामाजिक जीवन स्थितिया की पदावार होता है।

लेकिन व्यक्तिगत चेतना तथा सामाजिक चेतना के बीच मे कई चीजे ग्राती है, जसे उम्र, जीवन पद्धति, व्यक्ति के कायकलाप का स्वरूप उसकी जरूरते, दिलचस्पिया, विकास का ग्राम स्तर समाज की स्थिति, ग्रादि। इसी लिये **मानव द्वारा सामाजिक चेतना के ग्रसर को ग्रात्मसात करने की क्षमता ग्रसमान होती है** ग्रौर यह मानव के व्यक्तित्व की ही ग्रभिव्यक्ति है।

इसी के साथ **सामाजिक चेतना मानवो, उनकी व्यक्तिगत चेतना द्वारा विकसित तथा समद्ध होती है। व्यक्तिगत चेतना सामाजिक चेतना के विकास का साधन है।** इसी लिये सामाजिक चेतना, ग्रपनी ठास ग्रभिव्यजना म, उन व्यक्तियो की खासियता की छाप लिये होती है, जो इसके निरूपण मे भाग लेते है। जहा तक उन रूपो ग्रौर विधियो का सबध है जिनसे व्यक्ति सामाजिक चेतना को विकसित करने मे भाग लेते ह, उन विधिया का, जिनके द्वारा वे इस विकास काय म लगते हैं, ग्रौर साथ ही उस जनगण की व्यापकता का, जो सामाजिक चेतना के विकास मे सक्रिय रूप से भाग लेते हैं, तो ये सारी बात ऐतिहासिक स्थितिया पर तथा इस विकास काय मे हिस्सा लेने वाले चेतना के रचनात्मक तत्वा (विज्ञान या कला, विचारधारा या साधारण चेतना, ग्रादि) पर निभर करती हैं। लेकिन हर सूरत मे सचित चिन्तन सामग्री, धारणा प्रणाली तथा चिन्तन के रूपो की, जो पूव विकास के दौरान मे रचित हुए ह, ग्रालोचनात्मक स्वीकृति सामाजिक चेतना विकास मे व्यक्तिगत चेतना क भाग लेने की एक जरूरी शत है।

ग्रत व्यक्तिगत चेतना मे यथाथ क प्रतिबिम्वित होने मे सामाजिक चेतना द्वारा मध्यस्थता होती है, क्योकि व्यक्तिगत चेतना का निरूपण सामाजिक चेतना के ग्राधार पर होता है। दूसरी ग्रार सामाजिक चेतना म यथाथ का प्रतिबिम्ब (तथा यथाथ पर उसका प्रभाव) व्यक्तिगत चेतना के जरिये होता है। उनकी परस्पर क्रिया की यही द्वद्वात्मकता है।

सामाजिक चेतना के सामाजिक कार्य

यह कहना कि किसी ऐतिहासिक युग की सामाजिक चेतना भौतिक रूप से निर्धारित होती है यह मान लेना है कि सामाजिक चेतना मानवा के भौतिक उत्पादन तथा समूच सामाजिक कायकलाप का एक आवश्यक पहलू है, और इससे यह सम्भव हो जाता है कि इसके कार्या और सामाजिक भूमिका का वज्ञानिक वणन किया जा सके।

ऐतिहासिक भौतिकवाद भाववाद का प्रतिद्वद्वी है, जिसका मत यह है कि सामाजिक विकास मे निणयात्मक भूमिका विचारा का अदा करनी है, तथा भाडे भौतिकवाद का भी विराधी है जो उनकी सक्रिय भूमिका से इनकार करता है। इस सवाल पर सही मत इस स्थापना द्वारा प्रकट होता है कि इतिहास के माग का विचार निर्धारित नही कर सकते, परन्तु वे एक सक्रिय शक्ति हैं जिसमे यह क्षमता होती ह कि ऐतिहासिक प्रक्रिया को प्रभावित कर सक, इसे ठोस रूप मे अभिव्यक्त कर सके, सामाजिक विकास की गति को तेज या धीमा कर सके।

जैसा कि हम कह चुके ह विचारधारा की भूमिका उन सामाजिक समस्याओ के समाधान म प्रकट होती है, जो समाज के सामने उठत रहते ह और निभर इस बात पर करती है कि उसके द्वारा किन वर्गों के हितो की अभिव्यक्ति होती है तथा सामाजिक विकास की तात्कालिक आवश्यकताए और व्यापक जनगण के हित कहा तक ठीक ठीक और कितनी गहराई के साथ प्रतिबिम्बित हाते ह।

अगर किसी विचारधारा को समाज के जीवन को प्रभावित करना है तो उसे एक भौतिक शक्ति बनना पडेगा।

शासक वग की विचारधारा उन सस्थाग्रा द्वारा मूत रूप धारण करती है, जिन्हे शासक वग कायम करता है और जा उसके हिता की सरक्षक हाती हैं। राज्य, शिक्षालय तथा धम की सहायता स शासक वग की विचारधारा पूर समाज पर लादी जाती और प्रभुताशाली विचारधारा बन जाती है। उपरी ढाचे की सस्थाग्रा की कारवाई के जरिये यह विचारधारा, एक भौतिक शक्ति के रूप म विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाग्रा के माग को प्रभावित करती तथा समाज मे विभिन्न दूसर काय भी पूरे करती है।

प्रगतिशील विचारधारा का कायकलाप नये सामाजिक सवधा की स्थापना ग्रौर विकास के लिये सघष म व्यक्त हाता है। इस सघष मे नयी विचारधारा का विरोध केवल पुरानी विचारधारा द्वारा ही नही किया जाता, बल्कि पुराने समाज की सस्थाग्रा की भौतिक शक्ति का भी इसके लिये इस्तेमाल किया जाता है। *नये प्रगतिशील विचार ग्रपने ग्राप पुरानी व्यवस्था को मिटा* नही सकत। वे ग्रादमी को केवल उस व्यवस्था के विचारा के दायरे स बाहर ले जा सकते हैं।* प्रगतिशील विचारा का ग्रगर ग्रपना सामाजिक काय पूरा करना है ग्रौर नयी व्यवस्था की उत्पत्ति मे हाथ बटाना है तो उन विचारा का एक भौतिक शक्ति मे रूपातरित हाना पडेगा। वे भौतिक शक्ति तब बनते ह, जब जनता के दिला मे घर कर लेते हैं, उसे एकत्रित ग्रौर सगठित करते ह उस सघष के लिय, जिसके द्वारा सामाजिक विकास के ऐतिहासिक दष्टि से तात्कालिक कायभार पूरे होगे।

इस सघष के दौरान म प्रगतिशील सामाजिक वग नये समाज की स्थापना तथा उसकी उपलब्धिया को सुदढ करने के लिये नयी सस्थाग्रा की रचना करते ह।

ठोस विज्ञाना, *खासकर प्राकृतिक विज्ञाना* **का एक विशेष काय पूरा करना होता है।** विचारधारा क वरखिलाफ **प्राकृतिक विज्ञान प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन के विकास मे सहायक होते ह।** प्रकृति के नियमा को प्रतिविम्बित करत हुए ठोस प्राकृतिक विज्ञान मनुष्य को इस *योग्य* बनात ह कि वह सामाजिक श्रम की उत्पादक शक्ति को बढाने क लिये प्रकृति के नियमा का ग्रधिक से ग्रधिक व्यापक तथा सवतोमुखी उपयोग कर सके। प्राकृतिक विज्ञाना की उपलब्धिया मूत्त रूप जनता के सगठन म नही, बल्कि सवप्रथम उत्पादन के उपकरणा तथा साधना म ग्रौर निश्चित प्राविधिक प्रक्रियाग्रो मे धारण करते हैं। लेकिन श्रम के उपकरणा को बेहतर से बेहतर बनाते रहने के लिये प्रत्यक्ष उत्पादको मे ग्रधिकाधिक ज्ञान तथा सस्कृति की जरूरत होती है, इसलिये प्राकृतिक विज्ञान की जानकारी का खुद जनता मे प्रचार जरूरी हो जाता है। ग्रन्यथा श्रमजीवी जनता के सास्कृतिक तथा तकनीकी स्तर को ऊचा करना ग्रसम्भव होगा।

प्राकृतिक विज्ञान चूकि चारो ग्रोर के जगत का सद्धातिक ज्ञान प्रदान

---

* का० माक्स, फ्रे० एगेल्स, 'पवित्र परिवार'

करता है, इसलिये वैज्ञानिक विश्व दष्टिकोण के निरूपण के आधार का काम भी देता है, और वह एक महान शक्ति है, जो रहस्यवाद, अंधविश्वास तथा भ्रामक चेतना के जालो को साफ करता है और फलस्वरूप विचारधारात्मक सघष मे हिस्सेदार बन जाता है। इसी के साथ स्वय वस्तुगत विज्ञानो की सामग्री का बोध भी निश्चित विचारधारात्मक रूपो म होता है, और इस कारण विज्ञान विचारधारात्मक सघष का क्षेत्र बन जाता है।

प्राकृतिक विज्ञान सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को, विचारधारा समेत, प्रभावित करता है, पर वह ऐसा, एक ओर, उत्पादक शक्तियो, तथा दूसरी ओर, दशनशास्त्र के माध्यम से करता है।

अत **मानव कायकलाप से सामाजिक चेतना का सबध सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में होता है।** उत्पादक शक्तियो के सजन और उपयोग करने मे, सामाजिक सबधो के क्रातिकारी रूपातरण मे और आम तौर पर सामाजिक जीवन के सभी अतविरोधो का समाधान करने मे वह सक्रिय भूमिका अदा करती है।

विचारधारा की भूमिका के बारे म आम स्थापनाए समाजवादी विचार धारा पर भी लागू होती है मगर एक बुनियादी फक के साथ। समाजवादी विचारधारा पहले के समस्त युगो की विचारधाराओ से केवल सारतत्व की दष्टि से ही भिन्न नही है बल्कि उस भूमिका की दष्टि से भी, जो उसे समाज के जीवन और विकास म अदा करनी होती है।

हमे यह बात ध्यान म रखनी चाहिये कि कम्युनिस्ट सरचना की उत्पत्ति और विकास सामाजिक विकास के नियमो चालक शक्तियो तथा प्रवत्तियो के वैज्ञानिक ज्ञान के बिना, नये समाज के निर्माण म व्यापक जनता के चेतन रूप से भाग लिये बिना असम्भव है।

समाजवाद सजीव और सजनात्मक है और स्वय जनता की चीज है। एकमात्र **वज्ञानिक विचारधारा** ही जनता को एकत्रित करने म सहायक हो सकती है और उसकी इच्छा शक्ति को एक समान ध्येय की प्राप्ति की ओर लगा सकती है। शोषक वर्गों का मिटाने से एक समान विचारधारा के अतगत समाज की अधिकाधिक राजनीतिक एकता के लिये स्थितिया पदा होती ह।

समाजवादी विचारधारा नय समाज के श्रमजीवी जागरण का न सिफ उनके अपने हितो की वज्ञानिक चेतना प्रदान करती है, बल्कि वह रास्ता

भी दिखाती है, जिससे समाज म उत्पन्न हानेवाल अतविरोधो को हल किया जा सकता और जनगण के भौतिक तथा सास्कृतिक स्तर का ऊचा किया जा सकता है। वह कम्युनिज्म के निर्माण का रास्ता दिखाती है। उनमे यह विश्वास पदा करती है कि वे अपने महान ध्यय, कम्युनिज्म का, अवश्य प्राप्त करगे, और उनमे उन बौद्धिक तथा नैतिक गुणा को जन्म देती है, जो मानवा के बीच नये सबधा के लिये उपयुक्त ह। समाजवादी विचार धारा सोवियत लागा की उस ऐतिहासिक आशावादिता का आधार है, जो पूजीवादी नेताओ को आश्चयजनक लगती है और जिसका कारण उनकी समझ मे नही आता।

समाजवाद विचारधारा को एक नया सामाजिक काय सौंपता है और वह काय है विशाल जनता को नये समाज के निर्माण के लिये शिक्षित, सगठित तथा एकत्रित करने का।

कम्युनिज्म का निर्माण करने क लिय भविष्य के इनसान की परवरिश करनी होगी। समाजवादी विचारधारा को आत्मसात करने से जनता मे वज्ञानिक विश्व दष्टिकोण का निरूपण हाता है, मानव के मानसिक क्षितिज का विस्तार होता है, उनम यह समझ पैदा होती है कि उनके व्यक्तिगत तथा सामाजिक हित समान ह, हर व्यक्ति इस योग्य बनता है कि सक्रिय तथा उद्देश्यपूण रूप स कम्युनिज्म के आम सघष म भाग ले सके। समाजवादी विचारधारा का बोध स्वय कम्युनिज्म को विकसित करने का साधन है।

समाजवादी विचारधारा तथा क्रातिकारी जन आन्दोलन को सयोजित करने का काय माक्सवादी लेनिनवादी कम्युनिस्ट तथा मजदूर पाटिया द्वारा पूरा होता है, जो सवहारा का अगुआ, सगठित तथा चेतन हिस्सा हैं। माक्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा समाजवादी समाज के विकास का सवप्रथम इन पाटिया द्वारा अमल मे लाई गई नीति के जरिये प्रभावित करती है। पार्टी की नीति सद्धातिक उसूला को निश्चित ऐतिहासिक स्थितिया म ठोस अमली कायक्रम मे रूपातरित कर दती है। विचारधारा एक पवित्र आशा मात्र रह जाती यदि उसका सयोजन राजनीति स, जन कारवाई स नही हुआ होता।

माक्सवाद लेनिनवाद क्रातिकारी कम्युनिस्ट और मजदूर पाटिया की नीति का सद्धातिक आधार है। चूकि समाजवाद क अतगत यह नाति पूर

समाज के विकास पर उद्देश्यपूर्ण प्रभाव के माध्यम का काम देती है, इसलिये मार्क्सवादी लेनिनवादी विचारधारा का, जिसपर यह नीति आधारित होती है, सामाजिक जीवन के आर्थिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक क्षत्रा म महान भूमिका अदा करनी होती है।

मार्क्सवाद लेनिनवाद सर्वहारा की विचारधारा, समाज मे सर्वहारा की स्थिति, उसके हितो की सद्धांतिक अभिव्यक्ति और उसके ऐतिहासिक कार्यभार का निरूपण है। इसी लिये स्वय मजदूर वग और उसकी पार्टी नही चाहती कि उसके उसूलो को विकृत किया जाये, उनकी मनमानी व्याख्या की जाये, विचारधारा सबधी कोई उलझन पदा की जाय, क्योंकि मजदूर वग के सघष की सफलता के लिये ये बात बहुत बडा खतरा ह। इन्ही से मार्क्सवाद म 'बहुलता' का नकारात्मक विचार पदा होता है और इस बात पर जोर दिया जाता है कि मार्क्सवाद विभिन्न प्रकार का हो सकता है। विज्ञान केवल एक ही हो सकता है और सिफ ठोस हालता पर उसका लागू करने का रूप बदल सकता है। क्रातिकारी सर्वहारा पार्टी अपने वग के प्रति अपने कतव्य पालन मे नाकाम रहती यदि उसने पूरी दढता के साथ मार्क्सवादी लेनिनवादी सिद्धात की शुद्धता का सरक्षण नही किया होता यदि उसने मतवादिया तथा सशोधनवादिया के विरुद्ध निमम सघष नही किया होता। इसी के साथ पार्टी का कहना है कि क्रातिकारी सिद्धात की शुद्धता के लिये सघष सामाजिक व्यवहार के तकाजा और विज्ञान द्वारा जुटाई नई सामग्री के आधार पर स्वय इस सिद्धात के निरन्तर सजनात्मक विकास के बिना असम्भव है। वज्ञानिक सिद्धात की शुद्धता का अथ जड सूत्र की शुद्धता नही है। परिवतन मे जड सूत्र नष्ट हो जाता है, मगर किसानो म विज्ञान का काम जारी रहता है।

समाजवादी समाज म मार्क्सवादी-लेनिनवादी विचारधारा की भूमिका कवल यह नही ह कि सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र म पार्टी की नीति के समथन मे वैज्ञानिक तक पेश करे, बल्कि यह भी है कि जनता को उस बुलन्दी पर पहुचा दे कि वह पार्टी की नीति को समझ सके और उसे इस नीति का अमली जामा पहनाने के लिये मुस्तदी से तथा सजनात्मक पहलकदमी पर आमादा करे।

अवश्य ही समाजवाद के अतगत जीवन स्थिति जनता म काम के प्रति नये, समाजवादी रुख के तत्व, नई, कम्युनिस्ट नैतिकता आदि क तत्व का

जन्म दती है। परन्तु समाजवाद के ग्रतात साधारण तथा वनानिक-सद्धातिक चेतना का भेद वाक़ी रहता है। अपन अस्तित्व या उसक विकास की नियमिततात्रा को काइ वनानिक समझ जनता की जीवन स्थितिया से प्रत्यक्ष रूप म उत्पन्न नही हाती। **कम्युनिस्ट चेतना विश्व के सज्ञान मे पूरे इतिहास का योगफल, निष्कष है, इसकी उत्पत्ति विज्ञान द्वारा होती तथा इसका विकास विज्ञान के रूप मे होता है।** कोई व्यक्ति कम्युनिस्ट तभी बनता है जब वह मानवजाति द्वारा पदा किय हुए विचारो की सारी सम्पदा क ज्ञान स अपने मन को समद्ध कर लेता है।* इसी कारण व्यापक जनता म वैज्ञानिक, समाजवादी चेतना को प्रचारित करने का काय समाजवाद के युग म भी पार्टी क समक्ष उतने ही बडे पमाने पर रहता है। समाज वाद की विजय के साथ और शोषक वर्गों का ग्रत हा जाने पर समाजवादी विचारधारा पूरे जनगण की विचारधारा बन जाती हे और इससे जनता म व्यापक पैमाने पर इसके फलने के लिय ग्रत्यत अनुकूल स्थितिया पैदा हो जाती ह। ऐसी हालत म यह पहली बार सम्भव हाता है कि समस्त श्रम जीवी जनगण की चेतना को उसके हिरावल की चेतना के स्तर तक ऊचा करने, यानी हर व्यक्ति म वज्ञानिक चेतना पैदा करने का व्यावहारिक कायभार सामने रखा जा सके। बडा महत्व इस बात का है कि प्रचार ठीक ढग से सगठित किया जाये, कायकर्तायो के शिक्षण और प्रशिक्षण का जनता क ग्रमली, परिवतनकारी कायकलाप से निकटतम सबध हो और इसका तरीक़ा यह हो कि वज्ञानिक सिद्धात को स्वय जनता के ग्रमली अनुभव से जोड दिया जाये।

सोवियत राज्य के विकास के अनुभव से प्रकट होता है कि जनता के बीच विचारधारात्मक काय म सफलता तथा इसकी साधारता कई बाता पर निभर करती है, जिनम सबसे महत्वपूण का उल्लेख यहा किया जा सकता है

क) पार्टी द्वारा एक सही राजनीतिक नीति पर ग्रमल, जो जनता के बुनियादी हिता और महत्वपूण जरूरता को ग्रभिव्यक्त करती हो,

ख) पूजीवादी विचारधारा, सशोधनवाद तथा मतवाद के विरुद्ध, और लोगो के मन म ग्रतीत के ग्रवशेषो क खिलाफ निमम सघष,

---

*व्ला० इ० लेनिन, सकलित रचनाए चार भागा म प्रगति प्रकाशन मास्को, भाग ४, पृ० १६६

ग) सिद्धात और व्यवहार, कथनी और करनी की एकता ताकि जनता स्वय अपने व्यावहारिक अनुभव से सीख सके कि पार्टी का सिद्धात और नीति सही है व्यावहारिक काय के दौरान लोगो की शिक्षा,

घ) ठोस प्रचार, जिसका अटूट सबध जीवन से हो, पार्टी द्वारा निधारित और एक निश्चित सामूहिक सगठन द्वारा पूर किये जानेवाले कायभारो से हो, मतवाद का निराकरण,

च) कारगर तथा उसूली आलोचना तथा आत्मालोचना का विकास और इसी के साथ प्रकट त्रुटियो का विलोपन

छ) उच्चतर सास्कृतिक स्तर

ज) प्रचारको के विचारधारात्मक तथा सैद्धातिक स्तर को ऊचा करके प्रचार के स्तर मे निरन्तर सुधार,

झ) स्पष्ट तथा सुबोध प्रचार और आदोलन, घिसी-पिटी शब्दावली का परित्याग, विचारधारात्मक प्रचार के सभी उपलब्ध साधनो का उपयोग।

सोवियत सघ के विकास का अनुभव बतलाता है कि **जनता मे समाजवादी चेतना की उत्पत्ति और विकास का गहरा सबध आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक तथा अन्य समस्याओ के समाधान से है, जो समाज वाद के विकास के दौरान मे उत्पन्न होती रहती ह, त्रुटियो को दूर करने के सघष से है, और यही कारण है कि यह केवल विचारधारात्मक प्रचार तथा शिक्षा की ही बात नहीं है।**

अत समाजवादी समाज की उत्पत्ति, अस्तित्व और विकास वस्तुनिष्ठ नियमो के सज्ञान तथा उन्हे चेतन ढग से लागू करने के आधार पर हाता है उसका निर्माण वैज्ञानिक आधार पर किया जाता है। यहा विचारधारा समाज की आवश्यकताओ को सिफ उस समय ही नही पूरा करता जब सडी-गली सामाजिक स्थितिया का क्रातिकारी परिवतन द्वारा विघटन हो रहा होता है बल्कि प्रत्येक क्षेत्र मे जीवन के नये रूपो के सजन के रोजमर्रे के काम मे भी पूरा करता है।

समाज और व्यक्ति

हमारे जमाने मे व्यक्ति की समस्या बहुत तीव्र हो उठी है। यह एक ऐसी समस्या है, जिससे हर एक का दिलचस्पी और वास्ता है।

विश्व इतिहास की प्रगति एक ऐसी अवस्था तक पहुच गई है, जब कि हर चिन्तनशील आदमी को इस बात का गहरा इहसास हो गया है कि उसका अपना व्यक्तिगत नसीबा तथा बुनियादी सामाजिक समस्याओ का समाधान जिस पर मानवजाति का भविष्य निर्भर करता है, एक दूसरे से सम्बद्ध है। समाज, अपनी कौम और पूरी मानवजाति के भविष्य के लिये व्यक्ति की जिम्मेदारी बराबर बढ़ती गई है, तथा पूजीवाद और समाजवाद, सर्वहारा और पूजीपति वर्ग, प्रगति और प्रतिक्रिया की शक्तियो के परस्पर सघर्ष म मानवीय समस्याओ का महत्व बढ़ रहा है।

व्यक्ति की समस्या पर मार्क्सवाद तथा विभिन्न पूजीवादी दार्शनिक और समाजशास्त्र-सबधी प्रवृत्तियो मे तीव्र विचारधारात्मक सघर्ष चल रहा है। मानव की समस्या के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण के सारतत्व का पूजीवादी विचारक तोड-मरोड कर पेश करते और जिद करते है कि मार्क्सवाद इस समस्या को गौण मानता है। वे आरोप लगाते है कि मार्क्सवाद-लेनिनवाद ने व्यक्ति का नजरअन्दाज किया है और समाजवाद तो व्यक्ति को कुचल डालता और समूह म गुम कर देता है। जब समाजवाद तीव्र वर्गीय सघर्ष के दौरान मे उभर रहा और अपने आपको स्थापित कर रहा था, जब उसको अपने विकास के प्रारम्भिक दिनो म जबरदस्त कठिनाइयो का सामना

करना पडा, जो कठिनाइया पूजीवादी जगत की दुश्मनी के कारण, पिछडेपन के कारण तथा फासिज्म के विरुद्ध जग आदि के कारण पदा हुई थी, ता वस्तुगत स्थितिया ने व्यक्ति की समस्या को बिलकुल स्वभावत ही उभर कर सामने नही आने दिया। सावियत जनगण ने पिछडेपन स निकलन समाजवाद का निर्माण करने तथा समाज और व्यक्ति की सवतो मुखी प्रगति के लिये नीव डालने की खातिर बडे त्याग किय। मार्क्सवाद के शत्रुओ न उस अस्थायी हालत को परम बना कर प्रस्तुत किया और उसकी बुनियाद पर यह दावा करत फिरे कि मार्क्सवाद लेनिनवाद की नजर म व्यक्ति की हैसियत राज्य की मशीन के एक पुर्जे स अधिक नही है। लेकिन यह दावा गलत है और मार्क्सवाद-लनिनवाद के सार और वास्तविक अभिप्राय को व्यक्त नही करता, जिसके लिय **मानव और उसके सवतोमुखी विकास का मूल्य सर्वोच्च है।** अब जबकि समाजवादी व्यवस्था परिपक्वता की एक निश्चित स्थिति पर पहुच गई है, जबकि कम्युनिस्ट निर्माण सोवियत जनगण के सामने एक व्यावहारिक कायभार के रूप म उपस्थित हे, व्यक्ति की समस्या, स्वाभाविक तौर पर, सामाजिक विकास तथा वज्ञानिक और दाशनिक अध्ययन दोना दष्टिया से अधिकाधिक महत्व धारण कर रही है।

समाज और व्यक्ति के सबध का ठास अध्ययन जाहिर है कि कई सैद्धातिक समस्याओ को निरूपित और हल किये बिना असम्भव है। ऐतिहासिक भौतिकवाद जा एक दाशनिक समाजशास्त्रीय विज्ञान है, इन समस्याओ का निरूपित करता और उन्हे खास विश्लेषण का विषय बनाता है। इनम सबसे महत्वपूण है व्यक्ति के विकास, उसके कायकलाप तथा उसकी क्षमताओ की अभिव्यक्ति और उपयाग के लिये समाज कानसी सामाजिक स्थितिया, भौतिक तथा बौद्धिक अवसर प्रदान करता है? सामाजिक स्थितियो स मनुष्य का लगाव कस कायम होता है उसका व्यक्तित्व कसे बनता है? समाज और व्यक्ति के हितो म सामजस्य एक सामाजिक व्यवस्था के दायरे मे कैसे स्थापित किया जाता है और उनके सबध किन नियमा द्वारा निर्धारित होत है जो विभिन सामाजिक व्यवस्थाओ क ढाचा से उत्पन हाते ह? व्यक्ति के बनने और विकसित हान की ऐतिहासिक क्रिया क्या है और इतिहास म व्यक्ति की भूमिका क्या है?

सिद्धांत से अलग करता है। मार्क्सवाद मनुष्य के, और फलस्वरूप व्यक्ति के भी सारतत्व के विषय में अपना दृष्टिकोण उस ठोस समाज के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है, जिसमें मनुष्य का निरूपण होता है।

इस या उस समाज का अध्ययन करने पर हम उसमें रहनेवाले मनुष्यों की मूल खासियतों तथा ठोस सारतत्वों का पता चलता है। परन्तु मनुष्य का सारतत्व ही समूचा मनुष्य नहीं है। जब हम समाज का अध्ययन करते हैं तो उससे हमें मनुष्य की वैयक्तिक अभिव्यंजनाओं तथा समाज से उसके संबंधों की अगाध विविधता की जानकारी नहीं होती। हर आदमी समाज की हू-ब-हू नक्ल नहीं होता। मनुष्य समाज में घुल नहीं जाता है, बल्कि इस के विपरीत वह एक ऐसी चीज़ है, जो समाज से भिन्न होता है, क्योंकि हर आदमी का अपना खास व्यक्तित्व, एक निश्चित शख्सियत होती है।

परिणामस्वरूप, व्यक्तित्व **आम मानवीय तत्व** का वाहक होता है (हर व्यक्तित्व एक मनुष्य है), **विशिष्ट तत्वों** का (क्योंकि हर आदमी का संबंध किसी निश्चित युग से, किसी ठोस समाज, राष्ट्र और वर्ग से होता है) और **अनुपम खासियतों** का भी, जो केवल उस व्यक्तित्व की अपनी होती हैं, जिनके कारण हर आदमी का व्यक्तित्व अद्वितीय होता है। व्यक्तित्व की रचना एक ऐसी क्रिया है, जिसमें ये तीन पहलू शामिल हैं, जिसमें व्यक्तित्व की आम मानवीय खासियतें (अनुभूति, सोचने और करने की क्षमता) और उसकी व्यक्तिगत खासियतें ठोस समाज की स्थितियों में निरूपित होती हैं, जिसकी स्वयं अपनी विशेष खासियत होती है।

व्यक्तित्व के शख्सी विकास पर विचार करते समय पहली चीज, जिस पर ध्यान देने की जरूरत है, मानव की **प्राकृतिक-जैविकी उत्पत्ति** है। हर आदमी का जीवन निश्चित **जैविकी क्रम** के अनुसार चलता है वह जन्म लेता है, प्रौढावस्था पर पहुंचता, बूढ़ा होता और मर जाता है। मानव की जैविकी विशेषताओं के कारण ही बच्चे इतने अधिक दिनों तक अपने मां बाप पर निर्भर करते हैं। मनुष्यों को खाने, पीने, सोने और विश्राम करने, अपनी कामवासना पूरी करने आदि की जैविकी आवश्यकताएं होती हैं। हर आदमी का निरालापन उसके शारीरिक सामर्थ्य, उसके विशेष स्वभाव आदि से सम्बद्ध होता है। समाज में मनुष्यों में लिंग भेद आयु और नस्ल का फर्क होता है, जिसका आधार जैविकी है।

अत मनुष्य **प्रकृति से जनमा है** और उसके सामाजिक विकास का स्तर कितना ही ऊचा क्या न हो जाये प्रकृति से उसका सबध कभी टूटने नही पाता, और इसका असर प्रत्यक व्यक्तित्व के शख्सी विकास पर पडता है। **मनुष्य के सामाजिक विकास** का हमेशा एक जविकी आधार और पूवावश्यकताए होती हैं, मगर जो सामाजिक स्थितियो के प्रभाव से परिवतित होती हैं और जिनके निश्चित सामाजिक परिणाम होते ह। चुनाचे निजी स्वामित्व की व्यवस्था म **लिंग भेद** का परिणाम यह होता है कि नारी सामाजिक आर्थिक रूप म पुरुष के अधीन हो जाती है। विभिन्न नस्लो के लोगो म रग, केश आदि का खालिस सतही फक भौगोलिक वातावरण के प्रभाव के कारण उत्पन होता हैं, मगर अतविरोधी समाज म उसके भयकर सामाजिक परिणाम नस्ली भेदभाव, असमानता और सघष के रूप मे सामने आते हैं। नस्लवादी सिद्धात, मानव स घणा करनेवाली नस्लवादी विचारधाराए जम लती हैं, जो नस्ली फक को परम तथा नस्लो के सघष को विश्व इतिहास की धुरी मानती ह। इस परिस्थिति का अफसोसनाक पहलू यह है कि जहा तक मनुष्यो के सस्कार और चिन्तन तथा कायक्षमता का सबध है, नस्ली भेद का उसपर कोई असर नही पडता।

आयु के फक का भी सामाजिक महत्व होता है। पूजीवादी देशो मे नौजवानो की समस्याए – पीढियो की दूरी – बहुत तीव्र हो उठी ह। नौजवान लोग या उनका एक हिस्सा पूजीवादी समाज की बुराइयो स अवगत है, उन्ह अस्वीकार करता है, और इस प्रकार प्रतिरोध अनेक रूपो म प्रदर्शित होता है।

एक व्यक्ति चूकि एक निश्चित स्थान म और एक निश्चित समय म जम लेता है इसलिय उसमे तथा एक निश्चित सामाजिक, राष्ट्रीय, आदि वातावरण मे एक सबध स्थापित हो जाता है, और यह चीज किसी हद तक उसके व्यक्तिगत विकास, उसके भविष्य के स्वरूप को पूवनिश्चित करती है। निस्सदेह सामाजिक वातावरण ही मनुष्य के व्यक्तित्व को बनाता है। खालिस जविकी दृष्टि से भी **मनुष्य का अस्तित्व समाज के बाहर, एक निश्चित भौतिक और सास्कृतिक वातावरण के बाहर नहीं होता और न हो सकता है।**

पहली बात ध्यान म रखने की यह है कि अपने जीवन के एक तिहाई भाग म मनुष्य प्रत्यक्ष रूप स दूसरे मनुष्यो पर निभर करता है, क्योकि

भिन्नाता से अलग करता है। मार्क्सवाद मनुष्य के, और फलस्वरूप व्यक्ति के भी सारतत्व के विषय म अपना दृष्टिकोण उस ठास समाज के सदभ म प्रस्तुत करता है, जिसमें मनुष्य का निरूपण होता है।

इस या उस समाज का अध्ययन करने पर हम उसम रहनेवाले मनुष्यो की मूल खासियता तथा ठास सारतत्वा का पता चलता है। परन्तु मनुष्य का सारतत्व ही समूचा मनुष्य नही है। जब हम समाज का अध्ययन करते ह तो उससे हमे मनुष्य की वैयक्तिक अभिव्यजनाग्रा तथा समाज स उसके सबधा की अगाध विविधता की जानकारी नही हाती। हर आदमी समाज की हू-ब-हू नक्ल नही हाता। मनुष्य समाज म घुल नही जाता है, बल्कि इस के विपरीत वह एक ऐसी चीज है, जा समाज से भिन्न हाता है, क्याकि हर आदमी का अपना खास व्यक्तित्व, एक निश्चित शख्सियत होती ह।

परिणामस्वरूप, व्यक्तित्व **आम मानवीय तत्व** का वाहक हाता है (हर व्यक्तित्व एक मनुष्य है) **विशिष्ट तत्वो** का (क्योकि हर आदमी का सबध किसी निश्चित युग से किसी ठास समाज, राष्ट्र और वग स हाता है) और **अनुपम खासियतो** का भी, जो केवल उस व्यक्तित्व की अपनी होती है, जिनके कारण हर आदमी का व्यक्तित्व अद्वितीय होता है। व्यक्तित्व की रचना एक ऐसी क्रिया है जिसमे ये तीन पहलू शामिल ह, जिनमे व्यक्तित्व की आम मानवीय खासियत (अनुभूति, सोचने और करने की क्षमता) और उसकी व्यक्तिगत खासियतें ठोस समाज की स्थितियो म निरूपित होती हैं, जिसकी स्वय अपनी विशेष खासियत होती ह।

व्यक्तित्व के शख्सी विकास पर विचार करते समय पहली चीज, जिस पर ध्यान देने की जरूरत है मानव की **प्राकृतिक जविकी उत्पत्ति** है। हर आदमी का जीवन निश्चित **जविकी क्रम** के अनुसार चलता है वह जम लेता है, प्रौढावस्था पर पहुचता, बूढा होता और मर जाता है। मानव की जैविकी विशेषताग्रा के कारण ही बच्चे इतने अधिक दिनो तक अपने मा बाप पर निभर करते हैं। मनुष्यो का खाने, पीने, साने और विश्राम करने, अपनी कामवासना पूरी करने आदि की जविकी आवश्यकताए होती ह। हर आदमी का निरालापन उसके शारीरिक सामथ्य उसक विशेष स्वभाव आदि से सम्बद्ध हाता है। समाज मे मनुष्यो मे लिग भेद, आयु और नस्ल का फक होता है, जिसका आधार जविकी है।

अत मनुष्य **प्रकृति से जनमा है** और उसके सामाजिक विकास का स्तर कितना ही ऊचा क्या न हो जाये, प्रकृति से उसका सबध कभी टूटने नही पाता, और इसका असर प्रत्येक व्यक्तित्व के शख्सी विकास पर पडता है। **मनुष्य के सामाजिक विकास** का हमेशा एक जविकी आधार और पूर्वावश्यकताए होती हैं, मगर जो सामाजिक स्थितियो के प्रभाव से परिवर्तित होती हैं और जिनके निश्चित सामाजिक परिणाम होते हैं। चुनाचे निजी स्वामित्व की व्यवस्था मे **लिंग भेद** का परिणाम यह होता है कि नारी सामाजिक आर्थिक रूप मे पुरुष के अधीन हो जाती है। विभिन्न नस्लो के लोगो मे रंग, केश आदि का खालिस सतही फर्क भौगोलिक वातावरण के प्रभाव के कारण उत्पन्न होता है, मगर अतर्विरोधी समाज मे उसके भयकर सामाजिक परिणाम नस्ली भेदभाव, असमानता और सघर्ष के रूप मे सामने आते है। नस्लवादी सिद्धात, मानव से घृणा करनेवाली नस्लवादी विचारधाराए जन्म लेती हैं जो नस्ली फर्क को परम तथा नस्लो के सघर्ष को विश्व इतिहास की धुरी मानती है। इस परिस्थिति का अफसोसनाक पहलू यह है कि जहा तक मनुष्यो के सस्कार और चिन्तन तथा कार्यक्षमता का सबध है, नस्ली भेद का उसपर कोई असर नही पडता।

आयु के फर्क का भी सामाजिक महत्व होता है। पूजीवादी दशा मे नौजवानो की समस्याए – पीढियो की दूरी – बहुत तीव्र हो उठी है। नौजवान लोग या उनका एक हिस्सा पूजीवादी समाज की बुराइयो से अवगत है, उन्हे अस्वीकार करता है, और इस प्रकार प्रतिरोध अनेक रूपो मे प्रदर्शित होता है।

एक व्यक्ति चूकि एक निश्चित स्थान मे और एक निश्चित समय मे जन्म लेता है इसलिये उसमे तथा एक निश्चित सामाजिक, राष्ट्रीय, आत्मिक वातावरण मे एक सबध स्थापित हो जाता है, और यह चीज किसी हद तक उसके व्यक्तिगत विकास, उसके भविष्य के स्वरूप को पूर्वनिश्चित करती है। निस्सदेह सामाजिक वातावरण ही मनुष्य के व्यक्तित्व को बनाता है। खालिस जविकी दृष्टि से भी **मनुष्य का अस्तित्व समाज के बाहर, एक निश्चित भौतिक और सास्कृतिक वातावरण के बाहर नहीं होता और न हो सकता है।**

पहली बात ध्यान मे रखने की यह है कि अपने जीवन के एक तिहाई भाग मे मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से दूसरे मनुष्यो पर निर्भर करता है, क्योकि

वह उनकी देख रेख उनके द्वारा खिलाने पिलाने, आवश्यकता पूरी कराये बिना जिन्दा नही रह सकता। शेष जीवन म उसे अपनी जरूरत की सभी चीजे अन्य लोगो से लेन देन के जरिये मिलती हैं। इसके अलावा, उसकी "खालिस जविकी" जरूरता (उन जरूरतो का तो कहना ही क्या, जो आग चलकर उसके सामाजिक विकास के दौरान म पदा हाती हैं) को पूरा करने के सारे सामान, तथा उनको पूरा करने की विधि और साधन का उत्पादन समाज मे होता है। और अतिम बात यह कि बौद्धिक रूप से भी वह अन्य मनुष्यो पर निभर करता है, क्योकि उन्ही स वह अपनी भाषा सीखता, ज्ञान प्राप्त करता, अधिकारो और कतव्यो की धारणा ग्रहण करता और सदाचार के नियम और मापदड प्राप्त करता है। वास्तव म समाज से मनुष्य सिफ यही नही सीखता है कि जीवन कस व्यतीत किया जाय, बल्कि उसी से काय करना भी सीखता है।

व्यक्ति की शिक्षा और विकास ऐसी प्रक्रिया नही, जो समय की दष्टि से मनुष्य की आयु के किसी खास दौर तक सीमित हो। सच पूछिये तो **मनुष्य मे सारा जीवन बदलने और सुधरने का सामथ्य होता है**। लेकिन इस प्रक्रिया मे गुणात्मक दष्टि से विशेष मजिल हाती ह। मनोवज्ञानिक इस बात पर एकमत हैं कि मनुष्य की मानसिक बनावट मे हर आयु म अपनी अपनी विशेषताए होती हैं। बचपन और जवानी म रूप रग स्थिर हो जाने पर, मनुष्य का प्रयास होता है कि बाह्य प्रभावा तथा प्रेरणाओ के प्रति अनुक्रिया की जो विधि स्थापित हो चुकी है, वह बनी रहे, और वह उसमे किसी प्रकार के परिवतन का विरोध करता है। जा आदत पड जाती है वह मनुष्य की मानसिक बनावट पर गहरा असर डाले विना नही रहती। इससे यह नतीजा निकलता है कि व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के दौरान मे आदमी मे परिवतन तथा जीवन स्थितियो से उसके अनुकूलन की प्रक्रिया, जो वास्तव मे उसके जीवन भर जारी रहती है, सम्पूण रूप स दो मुख्य अवस्थाओ मे विभाजित की जा सकती है **अनुकूलन की अवस्था**, जो बचपन स जवानी तक रहती है, तथा **प्रौढ़ व्यक्ति के सक्रिय कायकलाप की अवस्था**, जिसे समाज मे मनुष्य की "स्वतत्र" क्रियाशीलता का जमाना कहा जा सकता है। मनुष्य जब समाज म एक निश्चित सामाजिक भूमिका अदा करने लगे तो प्रौढ हो जाता है, और यह उसके आत्म मूल्याकन तथा अन्य लोगा के बारे मे उसके मूल्याकन मे परिवतन का आधार हाता है।

तो फिर वह क्या चीज है, जो शब्जियत में, हर आदमी के अद्वितीय व्यक्तित्व की खास विशेषताओं को निर्धारित करता है? हम अपने रोजाना के अनुभव से जानते हैं कि बड़े बड़े सामाजिक समूह, राष्ट्र, आदि जहां एक ओर एक सम्पूर्ण व्यवस्था होते हैं, वहां साथ ही उनमें व्यक्तियों की विविधता भी होती है, जिनके भेद उन अलग अलग स्थितियों द्वारा निर्धारित होते हैं, जिनमें आदमी जीवन बिताता है। किसी समाज की आम हालतों, सबंधों और नियमों तथा किसी व्यक्ति और उसके कार्यकलाप के बीच में **पास-पड़ोस के वातावरण, छोटे समूहों, व्यक्तिगत जीवन के रूप में मध्यस्थ अवस्थाएं होती हैं।** व्यक्ति की रचना उसका जीवन उसका कार्यकलाप हमेशा एक ठोस वातावरण की स्थितियों में – परिवार स्कूल, *उत्पादन जत्था, आदि जैसे समूह में होता है। उसका व्यक्तिगत अस्तित्व सीधे* उसके तात्कालिक परिवेश के, 'छोटे छोटे समूहों' के जो दूसरे लोगों के साथ उसके प्रत्यक्ष सम्पर्कों का क्षेत्र है विशिष्ट लक्षणों पर निर्भर करता है। व्यक्तित्व का उसके अस्तित्व की प्रत्यक्ष भौतिक परिस्थितियों छोटे छोटे समूहों में मौजूद मूल्यों, परम्पराओं तथा नियमों की प्रणाली मूर्त रूप देती है। अवश्य ही पास-पड़ोस के वातावरण के दायरे में भी भिन्न व्यक्तित्वों की रचना होती है। मानव आस-पास की स्थितियों का प्रभाव चुपचाप ग्रहण नहीं करता, बल्कि उनके प्रति सक्रिय रुख अपनाता है। आम तथा आस-पास के वातावरण दोनों के प्रभाव हर आदमी पर एक से नहीं होते। इसके अनेक कारण हैं, जिनमें हर आदमी के स्वाभाविक सामर्थ्य तथा उसकी क्रियाशीलता की भी बड़ी भूमिका होती है।

इसी के साथ, **मनुष्य और उसके आस-पास वातावरण का समाकलन सामाजिक सबंधों की एक अधिक व्यापक व्यवस्था – वर्गीय, अंतरवर्गीय, जातीय, अंतर्राष्ट्रीय आदि – में होता है।** इसी लिये यह नहीं समझना चाहिए कि व्यक्तित्व की रचना केवल आस-पास के वातावरण का नतीजा होती है। विभिन्न प्रभावों की पेचीदा व्यवस्था में, जिनके द्वारा व्यक्तित्व की रचना होती है, निर्णायक महत्व समाज में जीवन की आम स्थितियों का होता है, जो व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से भी तथा पास-पड़ोस के वातावरण के माध्यम से भी प्रभावित करते हैं। सामाजिक प्रौढ़ता की एक निश्चित अवस्था पर पहुंचने के बाद व्यक्ति वर्गीय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय हितों से पैदा होनेवाली *समस्याओं के प्रति सक्रिय रवैया अपनाने लगता है।* ये

ऐसी समस्याए है, जो छोटे समूह के प्रत्यक्ष हिता के दायर से बहुत ग्राग बढ जाती है।

एक ग्रादमी का ग्रपना कायकलाप ही हमेशा वह ग्राधार हाता है, जिसपर वह ग्रास पास स्थितिया का, ग्रपने वातावरण का प्रभाव ग्रहण करता है। व्यक्तित्व की रचना की प्रारम्भिक ग्रवस्था म यह कायकलाप क्रीडा का रूप धारण करता है। खेल ही के जरिये बच्चा पहले पहल दुनिया का ज्ञान ग्रौर वस्तुग्रा के गुणा की जानकारी प्राप्त करता है, ग्रौर ग्रपने व्यक्तित्व का निरूपण तथा ग्रभिव्यक्ति करता है। ग्रागे चलकर शिक्षा, श्रम तथा विभिन्न प्रकार के भौतिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक कायकलाप उस प्रक्रिया मे शामिल हो जात हैं, जिनके जरिये ग्रादमी ससार स परस्पर क्रिया करता है। मनुष्य का सारतत्व सक्रियता है। वह ग्रपने वातावरण का निष्क्रिय पैदावार नही है ग्रौर ग्रपेक्षाकृत उससे स्वतत्र है। यह सापक्ष स्वतत्रता व्यक्तिगत व्यवहार की बनावट की एक जरूरी शत है, जबकि व्यक्ति उन फसलो के ग्राधार पर काम करता है, जो उसने खुद एक सष्टिकारक पात्र की हैसियत से लिये हैं, ग्रौर एक ऐस प्राणी की हैसियत स नही, जिसका व्यवहार पूवनिश्चित हे ग्रौर उसके वातावरण द्वारा पूणत निर्धारित है। यही कारण है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास का एक लक्षण यह हे कि वह किस हद तक ग्रपने व्यवहार म स्वतत्र है।

व्यक्तित्व का ऐतिहासिक विकास

जैसा कि हमने कहा, मनुष्य की उत्पत्ति प्रकृति से श्रम की प्रक्रिया के दौरान म ग्रौर उसके ग्राधार पर हुई। लेकिन ग्रादिम समाज म वह ग्रपने समुदाय (ग्रादिम यूथ, गण, कबीले) से इतना जुडा हुग्रा था कि वह ग्रपने को व्यक्तित्व के रूप म महसूस भी नही करता था ग्रौर वास्तव मे उसका स्वतत्र व्यक्तित्व ग्रभी तक बनने ही नही पाया था। माक्स के शब्दा म, मनुष्य ने ग्रभी ग्रपने नाभिनाल को काटा नही, जो उसे प्रकृति स बाध हुए था, ग्रौर उसे ग्रपने व्यक्तिगत ग्रस्तित्व का एहसास केवल एक निश्चित समुदाय के सदस्य की हैसियत से था। मनुष्य तथा समुदाय की यह प्रारम्भिक, ग्रादिम एकता नतीजा थी उत्पादन शक्तिया की ग्रविकसित

स्थिति तथा प्रकृति पर मनुष्यों की निर्भरता थी, जिसका सामना वे व्यक्तिगत उत्पादकों के रूप में नहीं, बल्कि एक निश्चित समूह के रूप में करते थे।

कबायली समूह में व्यक्ति का समाजीकरण हुआ और उसमें अपने गण या कबीले के कार्यकलाप के रूपों तथा जीवन के नियमों का ज्ञान कराया गया। लेकिन अभी तक यह ऐसी प्रक्रिया नहीं थी, जिसमें व्यक्तित्व का निरूपण होता।

ऐतिहासिक दृष्टि से व्यक्तित्व के रूप में मानव की रचना एक आदिम सामुदायिक समूह के विघटन तथा वर्गीय समाज की उत्पत्ति के साथ हुई, ज्यों ज्यों मनुष्यों के कार्यकलाप के परिणाम अधिकाधिक उनके व्यक्तित्व पर तथा उनके अपने फैसलों पर निर्भर करने लगे। इन स्थितियों में व्यक्तित्व के रूप में आदमी का विकास एक ऐसी जरूरत बन गया, जो बाह्य रूप से लागू की जाती है और जो सामाजिक विकास की वस्तुगत आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है।

समाज और व्यक्ति के संबंध की समस्या के प्रति हर सामाजिक संरचना का अपना दृष्टिकोण और अपना समाधान है जिसपर विभिन्न देशों की ठोस खासियतों और परम्पराओं का असर पड़ता है।

व्यक्तित्व के विकास तथा समाज से व्यक्ति के संबंध की विशेषता पर विचार करते समय तीन बातों की ओर ध्यान देना जरूरी है

१) व्यक्तित्व के विकास के लिये समाज द्वारा प्रस्तुत वस्तुगत स्थितियां,

२) व्यक्ति की अपनी आत्मचेतना और क्रियाशीलता का विकास किस हद तक हुआ है,

३) समाज किस हद तक आदमी को व्यक्तित्व के रूप में मान्यता प्रदान करता है।

निजी स्वामित्व तथा समाज के वर्गीय विभाजन के आधार पर व्यक्तित्व का निरूपण वर्गीय व्यक्तित्व की हैसियत से होता है, जो समाज से अप्रत्यक्ष तौर पर, वर्ग या समाज के किसी अन्य समूह के प्रतिनिधि के रूप में सम्बद्ध होता है। इसी के अनुसार शुरू ही से शासक तथा शोषित वर्गों में व्यक्तित्व के विकास के लिये विभिन्न स्थितियां उत्पन्न हो जाती हैं। यूनान में दास प्रथा के युग में प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। उनका व्यक्तित्व इसलिये विकसित हो सका कि प्रत्यक्ष उत्पादकों यानी दासों की अवस्था

घरेलू पशुश्रा श्रौर वस्तुश्रा से बेहतर नही थी। सामतो की वीरता का आधार यह था कि किसाना को "पशुश्रा के झुड" के स्तर तक गिरा दिया गया था। जनता के उत्पीडन, शोषण श्रौर दासता तथा मानसिक श्रौर सृजनात्मक कायकलाप से उनके बिलगाव के कारण उनके व्यक्तित्वा के विकास म बाधा हुई।

इसके अतिरिक्त, व्यक्तित्व की रचना म आत्मचेतना का विकास भी शामिल होता है। अवश्य ही व्यक्तित्व को केवल आत्मचेतना तक सीमित कर देना सही नही है, जैसा कि भाववादियो की प्रवत्ति हाती है, मगर व्यक्ति की आत्मचेतना तथा समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारी के एहसास का स्तर उसके व्यक्तित्व के विकास को विलक्षित करते ह। इसम बात केवल चेतना की नही बल्कि वस्तुस्थिति की भी है। व्यक्ति की आत्म चेतना सम्पूण रूप से किस हद तक विकसित हुई है, यह ऐतिहासिक स्थितिया पर निभर करता है। अत जिस समाज मे वर्गीय दर्जाबन्दी हो चुकी है, उसम मनुष्य अपने को एक व्यक्तित्व के रूप मे नही, बल्कि एक वग विशेष के प्रतिनिधि के रूप म प्रतिष्ठापित कर पाता है। कुलीन पुरुष का सम्मान सबसे अधिक इस बात से था कि उसका सबध अभिजात वग से था। पूजीपति की नजरा मे व्यक्तित्व को सम्पत्ति से अलग नही किया जा सकता। पूजीवाद के अतगत मनुष्य एक स्वतत्र व्यक्ति के रूप मे कवल सम्पत्ति के मालिक की हैसियत से आता है श्रौर उसका सम्मान उसकी आमदनी के बराबर होता है। इसी लिये जिन लोगा के मन इस विचारधारा से पूरी तरह प्रभावित हा चुके हैं वे ईमानदारी से यह विश्वास करते हाग कि जब समाजवाद निजी स्वामित्व का अत कर देता है तो वह सभी आदमिया को गिरा कर नीचे स्तर पर पहुचा देता है श्रौर व्यक्तित्व को नष्ट कर देता है।

अत म, समाज श्रौर व्यक्ति के सबध का विश्लेषण करन मे समाज द्वारा व्यक्ति श्रौर उसके अधिकारा की श्रौपचारिक मान्यता तथा वास्तविक मान्यता का सवाल पदा हाता है। विभिन्न ऐतिहासिक युगा मे यह समस्या ठोस रूप मे सामने आती रही है, मगर इसका सबध हमेशा वास्तविक आर्थिक सगठन से, सामाजिक व्यवस्था से श्रौर युक्त समाज की विचार धारा से रहा है। दासा श्रौर भूदासा को व्यक्तित्व के अधिकार से वचित कर दिया गया था। पजीवादी समाज का सिद्धात है कि कानून की नजर

म सब बराबर हैं। यह व्यक्तित्व के अधिकारों की मान्यता की दिशा में एक बड़ा कदम था, मगर **पूंजीवाद के अंतर्गत आदमी का सामाजिक स्थान और उसकी सम्पत्ति ही उसका मूल्य निर्धारित करती है।**

सदियों से शोषक वर्गों के सदस्य आम श्रमजीवी जनता को नीरस बेचेहरा झुंड समझते आये थे, जिसमें व्यक्तित्वों का कोई अस्तित्व नहीं था। *यह घमंड शोषकों के दृष्टिकोण से जनता की पीड़ित अधीन अवस्था* का ही इजहार था और इससे उन लोगों की अवस्था का औचित्य साबित करने में बड़ी सुविधा होती थी, जो धन या कुलीनता के शिखर पर पहुंचे हुए थे। इसलिये व्यक्तित्व का परम मूल्य स्वीकार करनेवाले मानववादी तथा जनवादी विचार सामाजिक चिन्तन की एक बड़ी उपलब्धि है, यद्यपि अंतर्विरोधी समाज में यह विचार साकार नहीं हो सकता।

ऐसा लगता है कि पूंजीवाद, एक ओर, अपने विकसित औद्योगिक उत्पादन, संचार व्यवस्था और जन-सूचना साधनों, मनुष्यों के बीच सम्पर्क स्थापित करने की व्यापक सम्भावनाओं, अपनी औपचारिक समानता आदि समेत, व्यक्तित्व के विकास के लिये अधिक अनुकूल परिस्थिति मुहैया कर रहा है और मनुष्य से मांग कर रहा है कि यदि निरन्तर जारी जीवन संग्राम में उसे अपने अस्तित्व को बचाये रखना है तो अपनी सारी शक्तियों से ज्यादा काम लेना चाहिये। लेकिन, दूसरी ओर, **पूंजीवाद मानव को मसल डालता है, उसके व्यक्तित्व को बिगाड़ता और मानव आत्मा को नष्ट कर देता है।**

पूंजीवाद के अंतर्गत श्रम विभाजन के सभी रूप विकास के उच्च स्तर पर पहुंच जाते हैं, मगर वे विकृत होते हैं कारखानों के अंदर और उत्पादन की शाखाओं के बीच विशेष तकनीकी विभाजन है, फिर शहर और देहात में और मानसिक तथा शारीरिक श्रम में विभाजन है। इस प्रकार का श्रम विभाजन आदमी को कार्यकलाप के एक खास क्षेत्र में, एक निश्चित पेशे में बांधे रखता है और इसका नतीजा उसके व्यक्तित्व का एकांगी विकास होता है। मजदूर एक "आंशिक श्रमिक" होकर रह जाता है, वह मशीन का एक पुर्जा बन जाता है और इससे उसका व्यक्तित्व एकांगी हो जाता है और उसकी समस्त क्षमताओं और शक्तियों का विकास नहीं हो पाता। दूसरी ओर, पूंजीपति का व्यक्तित्व पूंजी की साकार मूर्ति के रूप में सामने आता है। पूंजीपति के लिये पूंजी का अर्जन संरक्षण और संवर्धन ही सर्वस्व

बडी चीज है, और इमस उसके व्यक्तित्व का मानसिक क्षितिज और उसकी आकाक्षाओं म एक विशेष प्रकार की सकीणता पैदा हो जाती है।

अवश्य ही, मानव का जीवन उत्पादन क क्षेत्र तक सीमित नही है, क्योकि उसे समाज म अनेक सामाजिक भूमिकाए अदा करनी पडती ह। वह एक नागरिक है, एक परिवार का सदस्य है विभिन्न सगठनो का सदस्य है आदि। सवधा की विभिन्न व्यवस्थाओ म शामिल होने और हर एक म एक निश्चित भूमिका अदा करन क कारण मनुष्य अपनी इन विभिन्न भूमिकाओ से अवगत रहता है। इस तरह उसका व्यक्तित्व **विभिन्न सामाजिक भूमिकाओ के योगफल के रूप मे सामने आता है।** यहा जिस चीज की चर्चा हो रही है वह व्यक्तित्व का बहुमुखी रूप नही है, बल्कि विभिन्न सामाजिक सस्थाओ के तकाजो के प्रति, जो बाहर से उसपर लाद दिय गय ह, उसका अनुकूलन है। इसी लिये मनुष्य का कायकलाप उसकी स्वत स्फूत क्रिया की, उसके हितो की अभिव्यक्ति के रूप म नही, बल्कि किसी कतव्य क पालन के रूप म, किसी एक भूमिका के रूप म सामने आता है।

इसका नतीजा यह है कि मनुष्य को स्वय अपन आपम कुछ होन का एहसास केवल उपभोग के क्षेत्र म होता है एकमात्र जहा वह यह अनुभव करता है कि उसम अपन अह की अभिव्यजना का सामथ्य है, उसम यह क्षमता है कि स्वतत्र रूप स फैसला कर और ऐसे कायकलाप म लग सके जिसमे उस कुछ दिलचस्पी है। ऐसी हालत म हम यही दखते ह कि मनुष्य अपन निजी जीवन की सीमित परिधि म फम कर रह जात ह, मगर वहा भी उन्ह आत्म अभिव्यजना की सच्ची आजादी नही मिलती है।

मार्क्स की आयु अभी बहुत नही हुई थी जब उन्होने लिखा कि **पूजीवाद मनुष्य को वस्तुओ का दास बना देता है।** आधुनिक पूजीवादी समाज म वस्तुओ द्वारा मनुष्यो की यह दासता अनेक रूप धारण करती है। पूजीवादी समाज मनुष्यो मे एक **घटिया उपभोक्ता प्रवत्ति** पदा करने की चेष्टा करता है। वस्तुओ का अजन अपने आपमे एक उद्देश्य बन जाता है, जिससे चीज़ें उपभोग का साधन मात्र नही, जरूरत पूरी करन का साधन नही, बल्कि मनुष्य की हैसियत, समाज म उसके स्थान को परिलक्षित करती है, यानी उनका काम उसकी प्रतिष्ठा को बनाना हो जाता है। आदमी का मूल्य इस बात से निर्धारित होता है कि उसके पास क्या चीजे ह, और इस कारण वह उपभोग का खास स्तर अपनाता है। नतीजा यह होता

है कि ग्रादमी को केवल यह भ्रम होता है कि रोजमर्रे के जीवन मे यह ग्रपने ग्राप मे कुछ है। वास्तव मे उसकी पसन्द-नापसन्द, उसके उपभोग का स्वरूप उसका दष्टिकोण ग्रौर उसकी राए, ये सब पूजीवादी इश्तहारबाजी ग्रौर जन-सचार के शक्तिशाली साधना, समाचारपत्रा, पत्रिकाग्रो, रेडियो, टेलाविजन, ग्रादि द्वारा निर्धारित होते है। पूजीवादी इजार इन साधना का प्रयोग उपभाक्ता "पैदा" करने के लिये करते है ग्रौर साथ ही छुटभैयो को ग्रवकाश के समय कुछ करने का मिल जाता है, उसके दिमाग म घटिया बाते "जन सस्कृति" के नाम पर भर दी जाती ह। मनुष्य की चिन्तन की ग्रादत छुडा दी जाती है, उसे मन्द-बुद्धि कर दिया जाता है, उसकी ग्रात्मा नष्ट कर दी जाती है ग्रौर सी० राइट मिल्स के शब्दो मे "हसता बोलता रोबट" बना दिया जाता है। इस तरह एक **प्रतिरोध,** जिस **"वियोजन"** (alienation) कहत है, **व्यक्तित्व के विकास की वास्तविक ग्रावश्यकताग्रो तथा पूजीवादी समाज की पूरी जीवन पद्धति मे उत्पन्न होता है।**

मार्क्स ने ग्रपनी पहले की कृतियो मे वियोजन का विश्लेषण करते हुए दिखाया है कि पूजीपति, उत्पादन के मुख्य साधना का मालिक, मजदूरो यानी प्रत्यक्ष उत्पादको के श्रम की पैदावार को हस्तगत कर लता है ग्रौर उसे श्रमजीवी जनगण का शोषण करने के लिये इस्तेमाल करता है।* दूसर शब्दा म उत्पादक के श्रम की पैदावार उससे वियोजित कर ली जाती ग्रौर फिर एक ऐसी शक्ति बना दी जाती है, जो उसपर हावी हा जाती है। **इस वियोजन का ग्रसली कारण श्रम विभाजन तथा उत्पादन साधना का निजी स्वामित्व है** ग्रौर इसलिये वियोजन को दूर करने का एकमात्र उपाय यह है कि निजी स्वामित्व ग्रौर सामाजिक श्रम विभाजन को मिटा दिया जाये।

वियोजन की प्रक्रिया द्वारा "विकृत दुनिया" पैदा होती ह, जिसमे व्यक्ति को पूजीवाद के ग्रतगत जीवन व्यतीत करना होता है। सच तो यह है कि मनुष्य के जीवनोपयोगी कायकलाप का मौलिक रूप श्रम है। श्रम ग्रौर उसके परिणामो म उसका सामर्थ्य, ज्ञान, ग्रनुभव, उसकी बौद्धिक तथा शारीरिक शक्तिया ग्रौर उसकी क्षमताए साकार होती ह। परन्तु जब

---

* Karl Marx *Economic and Philosophic Manuscripts of 1844* Moscow, 1959

श्रम की पैदावार उत्पादक स वियाजित कर ली जाती है ता श्रम का यह अर्थ खत्म हो जाता है, वह ऐसा क्षेत्र नही रह जाता, जिसम मनुष्य का सजनात्मक प्रतिभा, उसका व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है, और जीविका अजन का साधन मात्र बनकर रह जाता है। मनुष्य से वियोजित हाकर उसके श्रम की पैदावार और सामाजिक सबध एक स्वतत्र सक्रिय शक्ति बन जाते ह, और मनुष्य, कायकलाप का असली पात्र, एक विषयवस्तु बन जाता है, जो उनके प्रभाव के अतगत, सामाजिक शक्तिया की स्वत स्फूत क्रिया के अधीन हो जाता है।

पूजीवाद के अतगत वियोजन का असर जीवन के आर्थिक ही नहीं, बल्कि राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्रो पर भी पडता है। राजनीतिक सत्ता समाज से वियुक्त हाती है और अपक्षाकृत एक स्वतत्र शक्ति बन जाती है, जो मेहनतकश जनता पर अपना प्रभुत्व कायम कर लेती है। यह राजनीतिक वियोग शोषणकारी राज्य की मनिक-नौकरशाहाना मशीन के विकास के साथ बहुत प्रत्यक्ष हो जाता है।

इसक अलावा, शारीरिक श्रम से मानसिक श्रम की वियुक्ति का नतीजा यह होता है कि जनगण बौद्धिक सस्कृति से तथा सस्कृति के क्षेत्र म सृजनात्मक कायकलाप स वियुक्त हो जाते ह।

अत पूजीवाद के अतगत व्यक्ति और समाज का एक दूसरे से वियाजन हो जाता है व्यक्ति पराई सामाजिक सस्थाओ, शक्तिया और सबधा क जगत मे, वियोजन के जगत म जीवन व्यतीत करता है।

श्रम के क्षेत्र म वियोजन, पैदावार का अपने उत्पादक से वियाजन, आदमी को आदमी से वियुक्त कर देता है। निजी स्वामित्व आदमिया को अलग अलग करता है, जिस कारण हर एक को केवल अपने आपस मतलब रहता है और इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्तिवाद की भावना ज़ोर पकडने लगती है। व्यक्ति, समाज से और दूसरे आदमियो से वियुक्त हो कर, अपने आपको अकेला, खाया खोया, और बिछुडा हुआ महसूस करता है। इसके आधार पर बुद्धिजीवियो, लेखको, कलाकारा और वैज्ञानिको के वाज क्षेत्रा मे[1], जो वियाजन की इस स्थिति का गहरा अनुभव रखत हैं, मगर जिह इससे मुक्ति का कोई उपाय नही दीखता, पूजीवाद की एक मानवतावादी आलोचना विकसित होती है। अकसर उनका विरोध आधुनिकतावादी कला के भिन विकृत रूपा मे प्रकट होता है। लेकिन,

हर प्रकार के वियोजन को दूर करने के वास्तविक उपाय मौजूद ह। मार्क्सवाद ने इनका वैज्ञानिक वणन किया है। वह उपाय यह है कि उत्पादन साधनो के निजी स्वामित्व को मिटाया जाये **और समाजवाद तथा कम्युनिज्म का निर्माण किया जाये।**

निस्सन्देह, सभी ग्रादमी वियोजन की ग्रवस्था स ग्रवगत नही ह ग्रौर वहुतेरे ऐसे भी हैं, जा मानसिक तौर पर इस ग्रवस्था का स्वीकार कर लेते ह ग्रौर कूपमडूक ग्रौर लकीर के फकीर वन जाते हैं तथा मौजूदा ढाचे क ग्रदर "कायशील" रहते हैं।

पूजीवादी व्यवस्था को ग्रादर्शीय मानकर पूजीवादी विचारक यह दावा करते ह कि इसके द्वारा व्यक्ति ग्रौर समाज म एक सामजस्य स्थापित हो गया है, जिससे उनके कथनानुसार यह पता लग गया है कि व्यक्ति तथा समाज के हिता मे सही सतुलन क्या हाना चाहिये।

ग्रवश्य ही, जसा कि हमने कहा है, पूजीवादी जनवाद की उपलब्धियो को नजरग्रन्दाज करना गलत होगा, मगर **ग्रौपचारिक ग्राजादी के साथ ग्रगर समाज के सभी सदस्यो के विकास के लिये भौतिक स्थितियो का पक्का प्रबध नहीं किया जाये तो जाहिर है कि इससे न तो सामाजिक ग्रसमानता दूर होगी ग्रौर न व्यक्ति ग्रौर समाज का पारस्परिक प्रतिरोध।** पूजीवादी समाज मे व्यक्ति की स्वतत्रता पूजीवादी व्यक्तित्व की स्वतत्रता है, जब कि सर्वहारा, उत्पीडित जनता को इस स्वतत्रता से वहुत कम लाभ पहुचता है, ग्रौर इसकी बडी ग्रच्छी मिसाल हडताल ग्रान्दोलन, नागरिक ग्रधिकारो के लिये ग्रमरीका के काले लोगा के सघप, छात्र ग्रान्दोलन ग्रादि मे मिलती है।

पूजीवादी विचारक व्यक्तिगत ग्रौर सामाजिक हितो से **व्यक्तित्ववाद के सिद्धात** के ग्राधार पर सामजस्य स्थापित करना चाहते ह। निजी कारोवार का रहस्य, उनके कथनानुसार यह है कि इसम हर ग्रादमी की प्राकृतिक सहजप्रवत्ति काम ग्राती है, उसे यह इजाजत दी जाती है कि खुद फायदा उठाये ग्रौर स्वय ग्रपनी सेवा करते हुए समाज की सेवा भी करे।*

---

* C Randall *A Creed for Free Enterprise* Boston 1952 p 13

व्यक्तित्वादी प्रवृत्तिवाले आदमी की मनोवृत्ति और नैतिकता पूंजीवादी समाज की स्थितियों द्वारा निरूपित होती है, जिसमे अपने को प्रतिष्ठापित करने का मुख्य रूप जातीय सफलता और समृद्धि है। सफलता का मापक रुपया है सम्पत्ति, वस्तुए—धन के लक्षण। सफलता की होड मे व्यक्ति अपने पडोसियो को या तो अपना प्रतिरोधी समझता है, या अपने उद्देश्य पूरा करने का साधन। इससे वह सबध कायम होता है, जो रूखे हिसाब किताब पर नकद की धुरी पर आधारित है। अमरीकी समाजवैज्ञानिक मर्टन कहते हैं "यह कहना कि धन-दौलत मे कामयाबी का ध्येय अमरीकी (पूंजीवादी—स०) सभ्यता मे रचा-बसा हुआ है, केवल यही कहना है कि अमरीकियो पर चारो ओर से ऐसी धारणाओ की बौछार होती है, जिनमे इस अधिकार और अकसर, कर्तव्य पर जोर दिया जाता है कि बार बार असफल होने पर भी इस ध्येय को सामने रखना चाहिये।"* पूंजीवादी प्रचार मे इसी को आदर्श वाक्य के रूप मे पेश किया जाता है और तरह तरह से यही बात दुहराई जाती है कि "तुम भी करोडपति बन सकते हो।"

साम्राज्यवाद मे संक्रमण होने पर, खासकर राजकीय इजारेदाराना पूंजीवाद का विकास हो जाने पर, **पूंजीवादी व्यक्तित्ववाद** संकट मे फस गया है। एक ओर, जनता को अब भी बहला-फुसला कर "निजी सफलता" की बात स्वीकार करने पर आमादा किया जाता है, और दूसरी ओर, आदमी को यह महसूस होता है कि वह **श्रम के पूंजीवादी अनुशासन के कडे शिकंजे मे जकडा हुआ है**, एक पुर्जा मात्र बन गया है, जिसका अपना कोई चेहरा नही एक वस्तु मात्र है, जिससे पूंजीवादी इजारो तथा राज्य मशीन की नौकरशाही का ऊपर से नीचे तक का अमला जिस तरह चाहे काम लेता है। किसी शक्तिशाली कारपोरेशन के एक साधारण क्लर्क के लिये निजी सफलता की क्या सम्भावनाएं है? वह सारी "मूल्य व्यवस्था", जो उसके मन मे पूंजीवादी जीवन पद्धति के बारे मे इश्तहारो द्वारा कायम की गई थी, वास्तविकता से पहली ही टक्कर मे जमीन पर आ गिरती है। इससे निराशा, सूनापन, निरर्थक जीवन, उदासीनता आदि जन्म लेते है, एक ऐसी मानसिक स्थिति, जिससे मानसिक रोग, अत्यधिक शराबखोरी

---

* R Merton *Social Theory and Social Structure*, Glencoe Illinois 1957 pp 136 137

गाजे आदि की लत, अपराध, आत्महत्या तथा अन्य सामाजिक बुराइयों को बढावा मिलता है। सयुक्त राज्य अमरीका म अपराधियों (खासकर नवयुवको म) के समाजवज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि अनेक अपराधो के पीछे "निजी सफलता की निशानी प्राप्त करने की इच्छा काम कर रही थी। व्यक्तित्ववाद की प्रवत्ति अपराध का असल कारण बन गई।

व्यक्तित्ववाद की विचारधारा और मनोवृत्ति का आधुनिक पूजावाद के राजकीय इजारदाराना सगठन द्वारा उत्पन्न आवश्यकताओं से भी टकराव होता है, जिसका काम व्यक्ति म यह धारणा पदा करना है कि वह कारपोरेशन, फम, कारोबार के मामलो म दिलचस्पी लिया करे। यह चेष्टा की जाती है कि किसी न किसी तरह व्यक्तित्ववाद की परम्परागत "मूल्यो" के मिथ्या तर्कों को दिखावटी पूजीवादी "सामूहिकता' के तकाजों के चौखटे म पेश किया जाये। इजारो के विचारक यह साबित करने का प्रयास करते ह कि मजदूर और उसके मालिक दोनो का उद्देश्य और हित एक ही हैं।

चुनाचे, पूजीवाद ने व्यक्तित्ववाद के सिद्धात को व्यक्ति स्वतन्त्रता की अभिव्यजना, तथा व्यक्ति और समाज के परस्पर सबध की समस्या के समाधान के आधार के रूप म पश किया है। पूजीवाद ने बुजुआ पथभ्रष्ट मनोवत्तिवाले प्रकार का व्यक्तित्व विकसित किया है। पूजीवादी व्यक्तित्व वाद का वतमान सकट यही बतलाता है कि व्यक्ति और समाज के अतर्विरोध को दूर करने म पूजीवादी समाज असमथ है और व्यक्तित्ववाद के आधार पर निजी और सामाजिक म सामजस्य नहीं स्थापित किया जा सकता। और फिर सबसे बढकर यह कि आधुनिक पूजीवाद के कारण व्यक्तित्व का विघटन, मनुष्य का आत्म वियोजन होता है, क्योंकि अमरीकी समाजवज्ञानिक डी० राइसमैन के अनुसार "अन्य द्वारा निर्देशित व्यक्ति केवल अपनी अनेक क्रमगत भूमिकाओं की प्रतिच्छाया बनने लगता है तथा उसके मन म यह प्रश्न और सन्देह उठने लगता है कि वह कौन है या किस दिशा म जा रहा है।"*

---

* D Riesman, *The Lonely Crowd A Study of the Changing American Character* New Haven 1950, p 147

पूजीवाद के विरुद्ध सवहारा के नातिकारी सघप म एकमात्र भाग लेने स ही व्यक्ति के लिये सम्भव होता है कि सीमित पूजीवादी चौखट को पार करे और बौद्धिक रूप से एक ठोस व्यक्तित्व का निर्माण कर, जिसका जीवन ग्रत्यत ग्रथपूण हो, क्योकि उसका सबध सच्चे मानवतावादी ग्रादर्शों तथा मूल्यो के ग्रनुसरण से है।

पूजीवाद के विपरीत **समाजवाद सच्ची सामूहिकता को** विकसित करता **है तथा उसी को समाज ग्रौर व्यक्ति के सबध को समस्या के समाधान का ग्राधार बनाता है।**

समाजवादी सामूहिकता काई ऐसी वस्तु नही, जिसे समाज पर ऊपर से लादा गया हो, वह समाज के विकास की वतमान ग्रवस्था पर उसकी ग्रपनी ग्रावश्यक्ताग्रो क कारण उत्पन्न हाती है। उत्पादक शक्तिया, जा ग्रपन स्वभाव से सामाजिक है मनुष्या को सामूहिक उत्पादन क कायकलाप म, तथा सामाजिक जीवन के ग्रन्य क्षेत्रो म, विज्ञान मे भी, साथ लाती ह। सामूहिकतावाद का समाजवादी सिद्धात इस सामाजिक जरूरत की ग्रभि-यक्ति है ग्रौर इसकी स्थापना समाजवादी उत्पादन सबधो तथा समाजवादी समाज म सारी जीवन पद्धति, नैतिकता, विचारधारा ग्रौर मनुष्यो की मनावत्ति मे हो जाती है।

समाजवादी सामूहिकतावाद का सामाजिक ग्राथिक ग्राधार **समाजवाद के ग्रतगत निजी ग्रौर सामाजिक हितो की वस्तुनिष्ठ एकता** है, जो उत्पादन साधनो के सामाजिक स्वामित्व, उत्पादन सवधा, विरादराना सहयोग तथा श्रम के परिमाण तथा गुण के ग्रनुसार वितरण के समाजवादी सिद्धात से उत्पन्न होती है।

वितरण की इस पद्धति के ग्रतगत निजी ग्रौर सामाजिक हितो म सामजस्य इस कारण पदा होता है कि हर एक व्यक्ति समाज के लिये जितना ग्रधिक काम करता है उतना ही ग्रधिक उसे ग्रपने निजी इस्तमाल के लिये भौतिक सामान मिलता है। इससे मनुष्या को ग्रपने काम के परिणामो से भौतिक प्रोत्साहन मिलता है, उनम ग्रपने कौशल को बेहतर बनाने की इच्छा पदा होती ग्रार इसी के साथ, हर एक का कल्याण प्रत्यक्ष रूप से सम्पूण समाज के कल्याण पर ग्राश्रित हाता है। उत्पादन की वद्धि के साथ वितरण के लिये उपलब्ध सामान की मात्रा मे भी वृद्धि होती है। इसी लिये वितरण के समाजवादी सिद्धात के ग्रतर्गत केवल यही

नही कि मनुष्यो को अपने श्रम के परिणामो से, बल्कि पूरे सामाजिक उत्पादन के विकास से भौतिक प्रोत्साहन मिलता है। **निजी भौतिक प्रोत्साहन के उसूल** से समाजवाद के अतगत काम लेने की जरूरत इस लिये पडती है कि श्रम अभी तक जीविका अर्जन का साधन बना रहता है, क्योकि अभी कुछ दिनो के लिये समाज मे यह सामर्थ्य नही होता कि लोगो की समस्त आवश्यकताए पूरी कर सके। ऐतिहासिक अनुभव बतलाता है कि श्रम के अनुसार वितरण के नियम का उल्लघन करने से लोग भौतिक प्रोत्साहन से वचित हो जाते है और निजी और सामाजिक मे विरोध उत्पन्न होता है, जिसका सामाजिक उत्पादन के विकास पर बुरा असर पडता है। सोवियत सघ तथा अन्य समाजवादी देशो मे आर्थिक सुधारो का एक अत्यत महत्वपूर्ण कार्यभार यह है कि मेहनतकशो के निजी भौतिक प्रोत्साहन को बढाया जाये और ऐसे आर्थिक कदम उठाये जाये, जिनसे उत्पादन और वितरण मे व्यक्ति, समूह और समाज के हितो मे सामजस्य पैदा किया जा सके।

लेकिन समाजवाद के अतगत व्यक्ति और समाज के सामजस्य का यह मतलब नही कि **उनमे अतविरोध** पैदा होने की सम्भावना का अत हो गया। ये अतविरोध समाज के विकास की वस्तुनिष्ठ स्थितियो के कारण पैदा होते रहते है और इसलिये भी कि कुछ व्यक्ति समाज के प्रति जिम्मेदारी का पूरा एहसास नही रखते। इसका इज़हार कभी इस बात मे हो सकता है कि कुछ स्थितियो मे समाज व्यक्ति से अपने निजी हितो को त्यागने और केवल समाज की ज़रूरतो की पूर्ति के लिये काम करने की माग करे। मिसाल के लिये प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि मे सोवियत जनगण अनेक कुर्बानिया करने के लिये तत्पर रहते थे और समझ-बूझकर उन्होने अपनी बहुत सी ज़रूरतो को सीमित किया ताकि भारी उद्योग को विकसित करने के लिये साधन जुटाया जा सके। वे जानते थे कि इससे जनगण की बुनियादी ज़रूरते पूरी होती है और इसलिये उन्होने अपने निजी हितो को समाज के अधीन कर दिया। यह अतविरोध को हल करने और आधुनिक समाजवादी उद्योग के निर्माण की कठिनाइयो को दूर करने के लिये जरूरी था।

व्यक्ति और समाज मे अतविरोध उस समय पैदा हो सकता है, जब व्यक्ति कोई ऐसी हरकत करता है, जो समाज के लिये हानिकारक हो, या

जब वह सामाजिक ग्रावश्यकताग्रो को नजरग्रदाज करता है। ऐसी स्थिति म समाज को यह ग्रधिकार है कि उस ग्रादमी को चेताये ग्रौर उसे ग्राम मानदड ग्रौर नियमो का पालन करन पर बाध्य करे।

इस प्रकार, यद्यपि **सामाजिक हितो को हमेशा ही निजी हितो पर प्राथमिकता प्राप्त होती है**, फिर भी निजी हितो का सामाजिक हिता के ग्रधीन होना केवल उस क्रिया का एक पक्ष है, जिसके द्वारा समाज ग्रौर व्यक्ति के परस्पर ग्रतविरोध को दूर किया जाता है। लेकिन जब कोई ग्रादमी स्वतत्र रूप से, सामाजिक जरूरतो ग्रौर हिता की रौशनी म काम करता है तो उसको ग्रधीन करने का कोई सवाल ही नही होता। सामाजिक ग्रौर व्यक्तिगत हिता मे सामजस्य पैदा करना समाजवाद का एक सिद्धात है।

कम्युनिस्ट सरचना मे समाज ग्रौर व्यक्ति के सबध के सद्धातिक सवाल का निरूपण मार्क्स ग्रौर एगेल्स ने निम्नलिखित मूल प्रस्थापनाग्रो मे किया था

१ "केवल समुदाय मे दूसरा से मिलकर ही प्रत्येक व्यक्ति को यह ग्रवसर मिलता है कि ग्रपनी क्षमताग्रा का सर्वतोमुखी विकास कर सक, इसलिये केवल समुदाय मे ही व्यक्तिगत स्वतत्रता सम्भव हो सकती है।"*

२ "तब वर्गो ग्रौर वग विरोधो से विधे पुराने पूजीवादी समाज के स्थान पर एक ऐसे सघ की स्थापना होगी, जिसमे व्यक्ति की स्वतत्र प्रगति समष्टि की स्वतत्र प्रगति की शत होगी।"**

इन प्रस्थापनाग्रा से प्रकट होता है कि मार्क्सवाद के सस्थापको ने समाज ग्रौर व्यक्ति के परस्पर सबध की समस्या के प्रति गूढ द्वद्वात्मक रुख ग्रपनाया था।

पहली प्रस्थापना बताती है कि **समाज की मुक्ति व्यक्ति की मुक्ति की शत है, कि व्यक्ति की स्वतत्रता समाज के बाहर, उससे ग्रलग रहकर ग्रकल्पनीय है, ग्रौर ग्रत मे, यह कि स्वतत्र समाज को व्यक्ति के विकास के लिये कुछ उठा नहीं रखना चाहिये।**

व्यक्ति तभी स्वतत्र हो सकता है, जब समाज शोपण से मुक्त होगा, भविष्य की चिन्ता से, सामाजिक विकास की स्वत स्फूत शक्तियो क प्रभुत्व

---

* Marx and Engels *The German Ideology* p 93

**का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए चार भागा म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग १, पृ० ६६

से, अधिकाश की भूख और गरीबी से मुक्त होगा। जब समाज मुक्ति के स्तर तक पहुच जाता है और प्रकृति के साथ स्वय अपने तथा मानवों के आपस के सबध को अपने चेतन नियत्रण म ले आता है तो समाज के सभी सदस्यो का विकास, लोगो के भौतिक तथा सास्कृतिक स्तर म उन्नति उसकी प्रगति की शर्त और परिलक्षण बन जाती है। समाजवादी समाज **व्यक्ति की स्वतत्रता की कानूनी जमानत** भी (भाषण, प्रकाशन, धर्म आदि की आजादी) प्रस्तुत करता है, मगर असल चीज यह नही है कि शब्दो मे व्यक्ति की आजादी का केवल कानूनी आश्वासन दिया जाये, बल्कि यह है कि व्यक्ति के सर्वतोमुखी विकास के लिये भौतिक सामाजिक और राजनीतिक स्थितिया प्रस्तुत की जाये और उसकी क्षमताओ की अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया जाये।

मार्क्स और एगेल्स की दूसरी प्रस्थापना इस विचार को व्यक्त कर रही है कि **कम्युनिस्ट सरचना मे दूसरो को नुकसान पहुचाकर कोई विकास नहीं हो सकता** और यह कि **समाज के हर व्यक्ति का स्वतत्र विकास पूरे समाज के अस्तित्व और प्रगति** का शर्त है।

अवश्य ही इन उसूलो को अमल म लाना स्वय एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है, क्योकि किस हद तक उनपर अमल किया जायगा यह समाजवाद की भौतिक और बौद्धिक परिपक्वता पर निर्भर करता है।

समाजवाद और कम्युनिज्म वह सामाजिक व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य **है मानव व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी विकास और समृद्धि**। जहा तक 'व्यक्ति स्वतत्रता" के व्यापक रूप से प्रचलित वाक्य का सवाल है वह एक पूजीवादी अराजकतावादी वाक्य मात्र रह जायगा, जब तक उसका सबध जनता की सभी प्रकार के उत्पीडन से मुक्त करने के सघर्ष से कम्युनिज्म के सघर्ष से नही जोडा जायगा। सच यह है कि इस महान आदर्श की प्राप्ति का सघर्ष ही हमारे समय म व्यक्ति के विकास तथा उसकी प्रतिभाओ की अभिव्यक्ति का आधार प्रदान करता है।

कम्युनिस्ट सरचना का उसूल – **"हर एक से उसकी क्षमता के अनुसार"** – बडे प्रगतिशील महत्व का है। पहली बार समाज अपने परचम पर यह अकित करता है कि वह वास्तव म यह चाहता है कि समाज के सभी सदस्यो का विकास हो और उनकी क्षमताओ से काम लिया जाय क्योकि सामाजिक श्रम की उत्पादक शक्ति हर आदमी की क्षमताओ के विकास

ग्रौर पूण उपयोग पर निभर करता है। इससे मनुष्य की उन्नति के लिये एक बहुत ही शक्तिशाली सामाजिक प्रोत्साहन मिल जाता है। इस सिद्धात पर ग्रमल समाज ग्रौर व्यक्ति दोना पर निभर करता है, क्याकि एक बार जब विकास की वस्तुगत स्थितिया पदा हो जाती हैं तो उनसे काम लेना मनुष्य पर, उसके कायकलाप ग्रौर उसकी चेतना पर निभर करता है। व्यक्तिगत ग्रौर सामाजिक विकास के ग्रधिकाधिक सामजस्य की स्थापना समाजवादी समाज की ग्राथिक ग्रौर सामाजिक राजनीतिक प्रगति के साथ तथा जनता के बढते हुए भौतिक तथा सास्कृतिक स्तर ग्रौर उनकी उन्नतिशील ग्रात्मचेतना के साथ साथ होती है।

ग्रत **समाजवाद द्वारा जिस चीज की सम्भावना उत्पन्न होती है वह व्यक्ति का दमन नहीं, व्यक्ति की उपेक्षा नहीं, व्यक्ति की ग्रधीनता नहीं, बल्कि व्यक्ति ग्रौर समाज का सामजस्य है।**

समाजवाद के ग्रतगत मनुष्य, उसके हित ग्रौर उसकी ग्रावश्यकताए समाज की चिन्ता का केद्रबिदु होती हैं। समाजवाद की विशेषता है मनुष्य के लिये समाज की चिता, ग्रौर यह ऐसी चीज है, जो पूजीवाद म नही होती, क्योकि वहा हर एक को केवल ग्रपनी चिन्ता होती है। समाजवाद के ग्रतगत व्यक्ति के लिय समाज की चिन्ता मनुप्या को प्रेरित करती है कि समाज के कल्याण के लिये सलग्न हा। मेहनतकश लोगा की भौतिक समद्धि ग्रौर सास्कृतिक स्तर म वृद्धि, काम के घटो मे कमी, बेहतर रिहाइशी मकान, शिशु कल्याण सस्थानो का व्यापक प्रबध, सावजनिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा की ग्रच्छी व्यवस्था, ग्रादि, य सब चीज समाजवाद व्यक्ति को प्रदान करता है ग्रौर इस तरह उसके विकास के लिये ग्रभूतपूव ग्रनुकूल स्थितिया प्रस्तुत करता है।

समाजवाद व्यक्ति को समूह के विरुद्ध खडा करना तो दूर रहा, उसको समूह से ग्रलग ही नही करता। समाजवादी समूह के समद्ध जीवन का मतलब यह होता है कि ग्रादमिया मे व्यक्तित्वो ग्रौर प्रतिभाग्रा की बहुलता हो। चाहे यह समूह एक फैक्टरी ग्रौर कारखाने का हो, ग्रथवा सामूहिक फाम, राजकीय फाम, कार्यालय या किसी सस्थान का हो, समूह कभी भी व्यक्ति का बेडिया नही पहनाता, बल्कि उसका हित ग्रपने सदस्यो की सहायता करने म है ताकि वे ग्रपने कौशल को विकसित कर सक ग्रौर ग्रपनी याग्यता से काम ले सके। जो लोग समाजवाद को पूजीवादी

दष्टिकाण से दखते ह व यह समझ ही नही सकत कि समाजवादी समाज की राजनीतिक, नतिक और विचारधारात्मक एकता व्यक्ति क स्वतत्र विकास क अनुकूल है, और इसी लिये व समाजवाद क बार म पुरानी सडी-गली धारणाए फलात हैं कि समाजवाद के अतगत लाग एक तरह साचते, एक तरह की बात करत, एक तरह का कपडा पहनते हैं, आदि।

इस पहलू को अच्छी तरह समझने के लिय हम इस बात पर विचार कर कि मिसाल क तौर पर सभी भौतिकीविद न्यूटन क यान्त्रिकी क नियमा या आइन्स्टाइन क सापक्षता के सिद्धात का सही मानत हैं। मगर इस सवसम्मति क कारण कोई यह दावा नहा करगा कि भौतिकीविदा का अपना अपना व्यक्तित्व खतम हो गया। लकिन समाजवादी समाज चूकि शाति की रक्षा और कम्युनिज्म क निमाण क सवाल पर सवसम्मत है, इसलिय कुछ लाग कहते हैं कि अलग अलग व्यक्तित्वा का एक रग कर दिया गया। वास्तविकता यह है कि पूजीवादी व्यक्तित्व का मापदड समाजवादी समाज पर लागू नही किया जा सकता क्याकि यह मापदड इसके लिय बहुत छाटा है। समाजवादी समाज का आधार भिन्न सिद्धाता पर है। **माक्सवादी समाजवाद ने कभी भी यह नहीं समझा कि समानता के विचार का मतलब व्यक्तिगत भेदो को मिटा देना है।** "हर एक स उसकी योग्यता के अनुसार" का सिद्धात स्पष्टत यह मान कर चलता है कि योग्यताए भिन्न होती हैं और व्यक्तित्वा म फक हाता है। पूणतम सामाजिक समानता इन फर्को का मिटाने के बजाय, व्यक्तित्व के सवतामुखी विकास और शख्सियत क पूरी तरह फलने-फूलने का अवसर प्रदान करेगा। इसी लिये **व्यक्तित्ववाद और व्यक्ति की स्वतत्रता को एक समझना उतना ही गलत है जितना अतिरिक्त मूल्य और अतिरिक्त पदावार को एक समझना।** व्यक्तित्ववाद का विकास व्यक्ति और समाज के प्रतिराध की स्थिति म हुआ और वह उस प्रतिरोध का प्रतिबिम्ब है, और जहा तक सामूहिकता का प्रश्न है, वह इस प्रतिरोध को दूर करती और व्यक्ति तथा समाज मे सामजस्यपूण एकता स्थापित करती है।

इतिहास मे पहली बार कम्युनिज्म समाज के सभी सदस्या के सम्पूण और सामजस्यपूण विकास की सम्भावना ही नही उत्पन्न करता, बल्कि वास्तव मे उसका आवश्यक बनाता है। कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार इसके लिये तमाम जरूरी स्थितिया पैदा करेगा और वह

ग्रौर पूण उपयोग पर निभर करता है। इससे मनुष्य की उन्नति के लिये एक बहुत ही शक्तिशाली सामाजिक प्रोत्साहन मिल जाता है। इस सिद्धात पर ग्रमल समाज ग्रौर व्यक्ति दोना पर निभर करता है, क्योकि एक बार जब विकास की वस्तुगत स्थितिया पैदा हो जाती हैं तो उनसे काम लेना मनुष्य पर, उसके कायकलाप ग्रौर उसकी चेतना पर निभर करता है। व्यक्तिगत ग्रौर सामाजिक विकास के ग्रधिकाधिक सामजस्य की स्थापना समाजवादी समाज की ग्राथिक ग्रौर सामाजिक-राजनीतिक प्रगति के साथ तथा जनता के वढते हुए भौतिक तथा सास्कृतिक स्तर ग्रौर उनके उन्नतिशील ग्रात्मचेतना के साथ साथ होती है।

ग्रत समाजवाद द्वारा जिस चीज की सम्भावना उत्पन्न होती है वह **व्यक्ति का दमन नहीं, व्यक्ति की उपेक्षा नहीं, व्यक्ति की ग्रधीनता नहीं, बल्कि व्यक्ति ग्रौर समाज का सामजस्य है।**

समाजवाद के ग्रतगत मनुष्य, उसके हित ग्रौर उसकी ग्रावश्यकताए समाज की चिन्ता का केद्रबिन्दु होती हैं। समाजवाद की विशेषता है मनुष्य के लिये समाज की चिन्ता, ग्रौर यह ऐसी चीज है, जो पूजीवाद म नही होती, क्योकि वहा हर एक को केवल ग्रपनी चिन्ता होती है। समाजवाद के ग्रतगत व्यक्ति के लिय समाज की चिन्ता मनुष्या को प्रेरित करती है कि समाज के कल्याण के लिये सलग्न हो। मेहनतकश लोगो की भौतिक समद्ध ग्रौर सास्कृतिक स्तर मे वृद्धि, काम के घटो मे कमी, वेहतर रिहाइशी मकान, शिशु कल्याण सस्थानो का व्यापक प्रवध, सावजनिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक सुरक्षा की ग्रच्छी व्यवस्था, ग्रादि, ये सव चीज समाजवाद व्यक्ति को प्रदान करता है ग्रौर इस तरह उसके विकास के लिये ग्रभूतपूव ग्रनुकूल स्थितिया प्रस्तुत करता है।

समाजवाद व्यक्ति को समूह के विरुद्ध खडा करना तो दूर रहा, उसको समूह से ग्रलग ही नही करता। समाजवादी समूह के समद्ध जीवन का मतलव यह होता है कि ग्रादमियो मे व्यक्तित्वा ग्रौर प्रतिभाग्रा की वहुलता हो। चाहे यह समूह एक फैक्टरी ग्रौर कारखाने का हो, ग्रथवा सामूहिक फाम, राजकीय फाम, कार्यालय या किसी सस्थान का हो, समूह कभी भी व्यक्ति को वेडिया नही पहनाता, वल्कि उसका हित ग्रपने सदस्यो की सहायता करने म है ताकि वे ग्रपने कौशल को विकसित कर सक ग्रौर ग्रपनी योग्यता से काम ले सक। जो लोग समाजवाद को पूजीवादी

दष्टिकाण से दखते हैं वे यह समझ ही नही सकत कि समाजवादी समाज की राजनीतिक, नैतिक और विचारधारात्मक एकता व्यक्ति क स्वतत्र विकास क अनुकूल है, और इसी लिये व समाजवाद क बारे म पुरानी सडी-गली धारणाए फैलाते ह कि समाजवाद क अतगत लाग एक तरह साचत एक तरह की बात करत, एक तरह का कपडा पहनते ह, आदि।

इस पहलू को अच्छी तरह समझने क लिय हम इस बात पर विचार करे कि मिसाल के तौर पर सभी भौतिकीविद न्यूटन क यात्रिकी क नियमा या आइन्स्टाइन क सापक्षता के सिद्धात को सही मानते ह। मगर इस सवसम्मति के कारण काई यह दावा नही करेगा कि भौतिकीविदो का अपना अपना व्यक्तित्व खतम हो गया। लेकिन समाजवादी समाज चूकि शाति की रक्षा और कम्युनिज्म के निर्माण के सवाल पर सवसम्मत है, इसलिये कुछ लाग कहते हैं कि अलग अलग व्यक्तित्वा का एक रग कर दिया गया। वास्तविकता यह है कि पूजीवादी व्यक्तित्व का मापदड समाजवादी समाज पर लागू नही किया जा सकता क्याकि यह मापदड इसके लिय बहुत छाटा है। समाजवादी समाज का आधार भिन्न सिद्धाता पर है। **मार्क्सवादी समाजवाद ने कभी भी यह नहीं समझा कि समानता के विचार का मतलब व्यक्तिगत भेदा को मिटा देना है।** 'हर एक स उसकी योग्यता के अनुसार" का सिद्धात स्पष्टत यह मान कर चलता है कि याग्यताए भिन्न होती हैं और व्यक्तित्वा म फक हाता है। पूणतम सामाजिक समानता इन फर्कों को मिटाने के बजाय, व्यक्तित्व के सवतामुखी विकास और शख्सियत के पूरी तरह फलने-फूलने का अवसर प्रदान करेगा। इसी लिये **व्यक्तित्ववाद और व्यक्ति की स्वतत्रता को एक समझना उतना ही ग़लत है जितना अतिरिक्त मूल्य और अतिरिक्त पदावार को एक समझना।** व्यक्तित्ववाद का विकास व्यक्ति और समाज के प्रतिरोध की स्थिति मे हुआ और वह उस प्रतिरोध का प्रतिबिम्ब है, और जहा तक सामूहिकता का प्रश्न है, वह इस प्रतिरोध को दूर करती और व्यक्ति तथा समाज मे सामजस्यपूण एकता स्थापित करती है।

इतिहास म पहली बार कम्युनिज्म समाज के सभी सदस्यो क सम्पूण और सामजस्यपूण विकास की सम्भावना ही नही उत्पन्न करता, बल्कि वास्तव म उसको आवश्यक बनाता है। कम्युनिज्म का भौतिक और तकनीकी आधार इसके लिये तमाम जरूरी स्थितिया पैदा करेगा और वह

इस तरह कि आवश्यक काय समय मे कमी हो जायेगी, हर आदमी को फुसत का समय अधिक मिलेगा, काम सुविधाजनक होगा, अकुशल काम की जरूरत बाकी नही रहेगी और समाज मे उपयाग के सामान का बहुलता हो जायेगी। इन हालता मे हर व्यक्तित्व का विकास और उसकी सजनात्मक योग्यता की पूणतम अभिव्यक्ति सामाजिक समद्धि का मापक होती है। कम्युनिज्म सामाजिक जीवन के सगठन को नष्ट नही करता, बल्कि केवल सामाजिक सगठन के वियोजन को दूर करता है। कम्युनिज्म स्वतत्र मेहनतकश लागा का स्वचलित सगठन है। इस सामजस्यपूण रूप स विकसित व्यक्तित्वा की आवश्यक्ता हाती है और वह उन्हे पदा कर लेता है। केवल इसी हालत मे समाज का कायकलाप इसके सदस्यो की स्वतत्र और आजाद क्रिया का नतीजा हो सकता है। इसी लिये समाज प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताओ के विकास और अभिव्यजना के लिये पूरी आजादी प्रदान करता है। इसी के साथ प्रत्येक व्यक्ति को जब व्यक्तिगत विकास की आजादी मिलती है तो फौरन उसे यह एहसास भी होता है कि यह आजादी समाज की अवस्था पर निभर करती हे, क्याकि मौलिक प्राकृतिक शक्तिया की क्रिया से आजादी समाज की शक्तिशाली उत्पादक शक्तिया के द्वारा सुनिश्चित होती है सामाजिक शक्तिया के प्रभुत्व से आजादी कम्युनिस्ट उत्पादन सबधा द्वारा और व्यक्ति की स्वतत्रता समाज हित के लिये हर एक के काय द्वारा। जहा अतविरोधी सरचनाए वगपूव समाज के व्यक्ति और समूह के आदिम समाकलन का निषेध कर देती है, वहा कम्युनिज्म मनुष्य और समूह की उच्चतर एकता समस्त पूवकालीन विकास के आधार पर स्थापित करता हे। यह **निषेध का निषेध** है।

समाज और व्यक्ति के सबध की समस्या का यही एकमात्र सच्चा मानवतावादी समाधान हे।

जनता और व्यक्ति,
इतिहास मे उनकी भूमिका

अभी तक हमने व्यक्ति और समाज के प्रति उसकी अधीनता पर, समाज मे व्यक्ति के विकास पर विचार किया। हमने देखा कि व्यक्ति समाज की पैदावार है। परन्तु व्यक्ति और समाज के सबध का एक दूसरा पक्ष

भी है व्यक्ति किस प्रकार समाज के विकास को प्रभावित करता है, उसकी ऐतिहासिक भूमिका क्या है?

इस प्रश्न का वैज्ञानिक उत्तर **व्यक्ति और जनता** के संबंध का विश्लेषण किये बिना नहीं मिल सकता। समाज का इस हैसियत से विश्लेषण करते हुए कि वह मानवों की परस्पर क्रिया, वर्गों के संघर्ष की पैदावार है, हम इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट कर चुके हैं कि ऐतिहासिक क्रिया की मौलिक विशेषताओं और नियमितताओं का ज्ञान हासिल करने के लिये जरूरी है कि व्यक्तियों के कार्यों का जनता के कार्यों में व्यक्तिगत कार्य को जन कार्य में परिणत किया जाये। ऐतिहासिक प्रक्रिया में भाग लेनेवाले व्यक्ति तो जन समूह का कण मात्र है। हर व्यक्ति का कार्यकलाप किसी वर्ग, समाज या राष्ट्र के आन्दोलन और कार्यकलाप में शामिल है। इसी लिये मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत पहले **इतिहास में जनता की भूमिका** की समस्या को लेता है।

'जनता" की धारणा, जो इतिहास की सर्जनात्मक शक्ति का इंगित करने के लिये इस्तमाल की जाती है, एक ऐसा प्रवर्ग है जो बिल्कुल ठोस ऐतिहासिक है। ज्यों-ज्यों समाज बदलता है, लोग जिन वर्गों और श्रेणियों में बंटे होते हैं, वे भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए सामंती समाज में जनता में किसान, कारीगर, नवजात सर्वहारा और पूंजीपति शामिल है। पूंजीवादी समाज में जनता में मजदूर वर्ग किसान, शहरी निम्न पूंजीवादी, नौकरीपेशा लोग और बुद्धिजीवी शामिल हैं। प्रतिरोधी वर्गीय समाज में जनता में पूरा राष्ट्र शामिल नहीं होता क्योंकि वहां प्रतिक्रियावादी सामाजिक गिरोह और वर्ग भी होते हैं जो जनता के ऊपर खड़े होते और उसका शोषण करते हैं। इन गिरोहों के विरुद्ध जनता का विशाल बहुमत होता है। चुनांचे फ्रांस में १७८९ की क्रांति से पहले जनगण तीसरा वर्ग थे, जो प्रथम दो सुविधा प्राप्त और प्रतिक्रियावादी वर्गों—अभिजात वर्ग और पादरियों के विरुद्ध था। पूंजीवाद के अंतर्गत जनगण पूंजीपति वर्ग, खासकर इसके अगुआ इजारेदार पूंजीपतियों के खिलाफ खड़े हैं। राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग औपनिवेशिक तथा विकासमान देशों में कुछ स्थितियों में जनता का हिस्सा समझा जा सकता है।

समाजवादी समाज में जनता में समाज के सभी वर्ग तथा सामाजिक समूह शामिल हैं, क्योंकि वहां कोई शोषक नहीं, जो जनगण से अलग,

उनके ऊपर खडे हो, और इसलिए कि समाज मे नैतिक राजनीतिक एकता स्थापित होती है।

अत जनता सर्वप्रथम किसी समाज की श्रमजीवी जनता होती है, वे लोग, जो भौतिक मूल्यो का उत्पादन करते है और वे वर्ग और सामाजिक श्रेणिया भी, जो अपनी वस्तुगत अवस्था के कारण किसी देश और युग विशेष मे प्रगतिशील ऐतिहासिक कार्यों को पूरा करने के योग्य है।

इतिहास मे जनता की सच्ची भूमिका की व्याख्या करने मे शोषक वर्गों के विचारको का कोई फायदा नही था। इतिहास के अपने भाववादी विचार के अनुसार उन्होने हमेशा यही माना कि जो कार्यकलाप समाज की गति को निर्धारित करता है उसका संबंध विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र से है, और किसी क्षेत्र से नही। इस दृष्टिकोण से इतिहास के असली निर्माता जो इसका मार्ग निदेशन अपनी इच्छानुसार तथा ऊपरी शक्तियो के पूर्वनिर्णय के अनुसार करते हैं वे लोग है जो नये विचारो को जन्म देते है अथवा राजनीतिक फैसले किया करते है, जैसे विचारक, विद्वान, कानून-रचयिता, राजा, सैनिक तथा विभिन्न आन्दोलनो के नेता। यह दृष्टिकोण जनता की भूमिका की उपेक्षा करता है और अक्सर उनके प्रति तिरस्कार और यहा तक कि बिल्कुल शत्रुता का रवैया अपनाता है।

इसके विपरीत मार्क्सवाद व्यक्ति को जनता के खिलाफ़ नही खडा करता। लेनिन ने लिखा है "सारा इतिहास व्यक्तियो के कार्य से मिलकर बनता है, जो निस्सन्देह सक्रिय हस्तिया है।"* लेकिन मिलकर उनके कार्यकलाप मे एक नया गुण उत्पन्न हो जाता है। वह ऐतिहासिक प्रक्रिया की निर्णायक शक्ति बन जाता है। यह विचार इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण के बुनियादी उसूलो का अनिवार्य नतीजा है।

वास्तव मे, अगर उत्पादन पद्धति सामाजिक विकास की निश्चयात्मक शक्ति है, तो मेहनतकश जनता, वे लोग जिनके द्वारा भौतिक मूल्यो का उत्पादन होता है, उत्पादन मे निर्णयात्मक शक्ति होने के नाते, इतिहास मे भी निर्णयात्मक भूमिका अदा करते है। इतिहास का निर्माण व्यक्तियो द्वारा नही, बल्कि जनता की कोशिशो से होता है। मार्क्स-पूर्व के

---

*व्ला० इ० लेनिन, '"जनता के मित्र" क्या है और वे सामाजिक जनवादियो के विरुद्ध कैसे लडते है ?'

समाजशास्त्र ने भौतिक उत्पादन का विश्लेषण करने के लिये अगर कुछ किया भी तो वह नगण्य है, हालांकि वह मानव कायकलाप का निणयात्मक क्षेत्र है, और सामाजिक विकास म उसके महत्व पर प्रकाश डालने म असमथ रहा। यही कारण था कि वह मेहनतकश जनता की सच्ची भूमिका को भी समझने म असमथ था, इस तथ्य को समझने में कि जो लाग भौतिक मूल्यो का निर्माण करते हैं और उत्पादन का विकसित करत हैं वही इतिहास के असली निर्माता ह, कि इतिहास की रचना राजभवना तथा अध्यक्षा के कार्यालया म नही, मन्त्रिया के निवास स्थाना तथा ससद भवना मे नही, बल्कि खाना और कारखाना म, दुकाना में, निर्माण स्थलो पर और खेतो म—भौतिक उत्पादन के क्षेत्र म होती है। लकिन आम जनता का असर इतिहास के माग पर केवल यहा तक सीमित नही कि व भौतिक मूल्या का निर्माण करत ह। **जनता समस्त सामाजिक परिवतना की निर्णायक शक्ति है।** प्रजा के बिना राजा या सेना के बिना किसी सेनानायक का क्या महत्व है? उन दोना मे से कोई भी तभी कुछ कर सकता है, जब उसके पास आवश्यक ताकत हो, और राजनीति म यह ताकत जनता से मिलती है। यद्यपि अतीत म शोषक वर्गो न पूरी चेष्टा की कि जनता को राजनीति से अलग रखें और कभी-कभार इसम सफल भी हुए, मगर इतिहास के हर मोड पर आखिरी फसला हमेशा जनता के हाथो म था। सभी महान क्रातिया जनता द्वारा होती ह। जनता क्या चाहती है, वह किसके साथ जाती है और किधर जाती है, यही अतिम विश्लेषण म राजनीति के क्षेत्र मे सफलता की बुनियाद है। लेकिन जनता के आन्दोलन आकस्मिक या अस्थायी कारणो पर निभर नही करता, बल्कि गहरे तथा दीघकालीन भौतिक कारणा द्वारा निर्धारित हाता है।

अत जनता सामाजिक राजनीतिक क्षेत्र मे भी निर्णायक शक्ति है, जो मानव कायकलाप का दूसरा मुख्य क्षेत्र है। यह बात ध्यान म रखनी चाहिये कि इस क्षेत्र पर लागू करने मे "जनता" की धारणा का प्रयाग किसी हद तक भिन्न अथ म किया जाता है। यहा जनता म वे सभी शक्तिया और सामाजिक गिरोह शामिल हैं, जा तात्कालिक महत्व के राजनीतिक सवाला को हल करने का प्रयास करती ह।

बौद्धिक सस्कृति के विकास का विश्लेषण भी जनता की भूमिका को ध्यान म लिय बिना करना सही नही हागा। कोइ बौद्धिक सजनात्मकता

भाषा के विना असम्भव है, और इनका निर्माण जनगण करते है। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक खोजो तथा आविष्कारो के लिये भौतिक स्थितिया और उनकी सामाजिक आवश्यकता उत्पादन के विकास के साथ पैदा होता है, यानी करोडो आदमियो के काम के द्वारा। सच तो यह है कि स्वय आविष्कार और खोज ऐतिहासिक विकास के आम सिलसिले का एक अग तभी बनते है जब वे व्यक्तियो तक सीमित न रहकर आम जनता द्वारा उत्पादन मे लागू किये जाते है।

आम जनता, जनगण का जीवन **कला के क्षेत्र के विकास पर** विशेष रूप से विविध प्रभाव डालता है। लोक कला, जो खुद राष्ट्रीय कला का एक अग है, पेशावर कलाकारो की कृतियो के लिये एक स्रोत का काम देता है। सच्ची कला सदा जनगण के जीवन से, जनगण के विचारो और आकाक्षाओ से सबधित होती है। जनगण के जीवन से अलग होकर वह निरीह और बेकार हो जाती है। साहित्य जनगण के जीवन का दर्पण होता है।

अत **सामाजिक जीवन के जिस किसी क्षेत्र को भी हम ले, हर जगह हम यही देखते है कि जनगण, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से, निर्णायक भूमिका अदा करते है।** परन्तु जनता की क्रियाशीलता इतिहास के एक युग मे वही नही होती जो दूसरे युग मे होती है। मार्क्स ने इसी विचार की पुष्टि करते हुए लिखा था "ऐतिहासिक कार्यकलाप की गभीरता के साथ, उस जनता की विशालता भी बढती जायगी, जिसका कार्य वह है।"* यहा इतिहास मे **जनता की बढती हुई भूमिका** का विचार प्रकट किया गया है।

वास्तव मे सभी अतर्विरोधी सरचनाओ मे श्रमजीवी जनता उत्पीडन और शोषण की जजीरो मे जकडी रही। समाजवाद इन जजीरो को तोड फेंकता है, जनता के सर्जनात्मक कार्यकलाप के सुस्थिर विकास के लिये स्थितिया उत्पन्न करता तथा सम्भावनाओ के द्वार खोलता है। चुनाचे समाजवाद के अतर्गत अमली काम इन सम्भावनाओ को पूरी तरह इस्तेमाल करना है और इस तरह ऐतिहासिक विकास की रफ्तार को तेज करना है।

समाज का समाजवादी पुनर्निर्माण इतिहास के आज तक के सभी सामाजिक परिवर्तनो मे सबसे अधिक गहरा परिवर्तन है, और यही कारण

---

* का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, 'पवित्र परिवार'

है कि श्रमजीवी जनगण के व्यापकतम हिस्सा की शिरकत के बिना इसकी कल्पना भी नही की जा सकती। "जनता की विशालता" जो इस क्रांति का कर्ता है और जिसका हित इससे सम्बद्ध है आबादी का पूर्ण बहुमत है। लेनिन की यह बात बिल्कुल सही साबित हुई 'यह समझना जरूरी है कि समाजवाद के संबंध में यह साधारण पूजीवादी धारणा कि वह एक सर्वथा निर्जीव, मृत और हमेशा के लिये स्थिर चीज़ है कितनी नितांत मिथ्या है, जब कि वास्तविकता यह है कि **एकमात्र** समाजवाद से ही सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिये–पहले आबादी के बहुमत का, और फिर संपूर्ण आबादी का–एक तेज़, सच्चा और सचमुच जनव्यापी आन्दोलन का आरम्भ होगा।"*

बहुत से पूजीवादी विचारक "जनगण" का शब्द दिखावटी अन्दाज से इस्तेमाल करते और "जनगण के कल्याण" की बात करते हैं। मगर कौन नहीं जानता कि "पूजीवाद" के साथ "जनगण" का शब्द जोड़ देने से पूजीवाद के सारतत्व में कोई तब्दीली नहीं हुई, बल्कि उसके शोषणकारी सार पर परदा डालने के लिये एक नया शब्द गढ़ लिया गया है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद द्वारा इतिहास में जनता की निर्णायक भूमिका को मान्यता प्रदान करना एक घोषणा मात्र नहीं, बल्कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी दृष्टिकोण का एक सिद्धांत है और व्यावहारिक कार्य में मार्गदर्शक है।

परिणामस्वरूप, इतिहास में जनता की भूमिका का स्पष्टीकरण **ऐतिहासिक प्रक्रिया के सारतत्व** के विश्लेषण के लिये जरूरी है। लेकिन जब हम इस प्रक्रिया के ठोस रूप पर विचार करते हैं तो हमारे सामने एक और समस्या उठ खड़ी होती है और वह है इतिहास के ठोस भाग की व्याख्या करना, इसके तफसीली नकशे का, किसी देश में किसी युग विशेष में सजीव मानव व्यक्तित्वों के विशेष कार्यकलाप का विश्लेषण करना। इसका मतलब है **सामाजिक से आगे बढ़कर व्यक्तिगत पर विचार करने की समस्या।**

सन्तान में, समाजविज्ञान में सामाजिक से व्यक्तिगत में संक्रमण का मतलब, प्रथम, यह है कि व्यक्तिगत कार्यकलाप के सामाजिक महत्व का

---

*व्ला० इ० लेनिन, संकलित रचनाएं, तीन खंडों में, प्रगति प्रकाशन, मास्को, खंड २, भाग १, पृ० ८८६

स्पष्टीकरण किया जाये और, दूसरे, सामाजिक प्रक्रिया मे किसी व्यक्ति विशेष के "योगदान" का अदाजा और मूल्याकन किया जाये। यह योगदान भिन्न हो सकता है, मगर बहरहाल इतिहास के ठोस मार्ग को व्यक्ति प्रभावित करता है, यद्यपि वह इसकी आम नियमितताओ को नही वदलता।

इतिहास मे व्यक्ति की भूमिका इस बात पर निर्भर करती है कि स्वय उसके अपने गुण क्या है, समाज विशेष मे सबधो की व्यवस्था के भीतर तथा उस सामाजिक क्रिया विधि मे उसका क्या स्थान है, जिसके द्वारा व्यक्ति के प्रभाव की ताकत निश्चित होती है, और साथ ही इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज के समक्ष कौन सी समस्याए है। किसी न किसी ढग से हर व्यक्ति मानवजाति के ऐतिहासिक विकास मे भाग लेता है, परन्तु जिन व्यक्तियो ने घटनाक्रम पर अधिक प्रभाव डाला है और जो आज डाल रहे हैं, उनकी भूमिका – **प्रमुख व्यक्तियो की भूमिका** – का स्पष्टीकरण करना विशेष महत्व और दिलचस्पी रखता है।

किसी भी युग मे वर्गों के सघर्ष मे, जनता के आन्दोलन मे, राज्यो के झगडो मे तथा अन्य ऐतिहासिक प्रक्रियाओ मे हमेशा ऐसे लोगो की जरूरत होती है, जो वर्गो के कार्यभार को निरूपित करे, उनके सघर्ष का निदेशन करे, विभिन्न आन्दोलनो का नेतृत्व सभाले, लडाइयो मे सेना की कमान अपने हाथो मे ले, आदि। ऐसे लोग हमेशा सामने आते रहते है। अपनी प्रमुख योग्यताओ के कारण वे आम जनता की पाति से उभरकर आगे आते है और ऐसे स्थान पर पहुच जाते है, जहा वे कार्यभार निश्चित कर सकते और फैसले कर सकते है, जिनका प्रभाव जनता के कार्यकलाप पर पडता है। **प्रत्येक युग और प्रत्येक वर्ग आदमियो को अपने साचे मे ढालता है।** प्रमुख व्यक्ति अपने युग और अपने वर्ग की खास विशेषताओ को केवल सबसे ज्यादा स्पष्ट और प्रखर रूप से प्रतिबिम्बित करते है और दूसरो से अधिक गहराई के साथ अपने समय की आवश्यकताओ को व्यक्त करते है। निस्सन्देह, अकसर यह भी होता है कि वर्गों और पार्टियो, राज्यो और सेनाओ का नेतृत्व सही माने मे प्रमुख लोग नही करते। पूरे इतिहास मे अनेक निकम्मे राज सिहासन पर विराजमान हुए, घटिया दर्जे के लोगो के हाथ मे सेनाओ की बागडोर रही, या वे राजनीतिक पार्टियो के अगुआ बन बैठे, जिन्हे हालात ने राजनीतिक प्रमुखता के स्थान पर पहुचा दिया। आम तौर पर ऐसे लोग घटनाओ के बहाव मे बह जाते है

जब कि सचमुच जो प्रमुख नेता हाते ह व घटनाक्रम पर अपने व्यक्तित्व और अपने चरित्र का चिह्न छोड जाते ह।

प्रमुख व्यक्ति की भूमिका प्रत्यक्ष रूप से व्यापक जनता के कायकलाप पर निभर करती है। जनता जितनी सक्रिय होगी, उतना ही आदोलन की अगुआई करनेवाले व्यक्ति मे अधिक योग्यताओ की जरूरत होगी। मजदूर वग का सघष, जिसका महान काम सार शोषण का मिटाना है और जा सजनात्मक ऐतिहासिक काय म विशाल श्रमजीवी जनता को खीचना है, इतिहास का सबस क्रातिकारी आन्दोलन है। इस कारण इसके नेतृत्व की जिम्मेदारी और इसके नेताओ के व्यक्तिगत गुणा का महत्व बहुत बढ जाता है।

विभिन्न देशा म सवहारा के सभी सघष और इसकी वास्तविक सफलताए माक्सवादी-लेनिनवादी कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टिया के कायकलाप से सम्बद्ध ह। सवहारा की क्रातिकारी पार्टी अपने वग का हिरावल, उसका अगुआ दस्ता है, जो सचेत रूप से उसके बुनियादी हिता को व्यक्त करता है और मजदूर वग के सबसे चौकस और क्रातिकारी सदस्या को तथा इसकी तरफ आ जानेवाले अय वर्गों के सदस्या को अपने अदर समट लेता है। समाजवादी समाज मे कम्युनिस्ट पार्टी समस्त जनगण का हिरावल है, और यह विकासमान समाजवादी समाज मे मजदूर वग की नेतत्वकारी भूमिका की मायता का इजहार है। आधुनिक समाज म कम्युनिस्ट पार्टी की सामाजिक भूमिका वह है, जिसकी व्याख्या लेनिन ने की थी, अर्थात, वज्ञानिक समाजवाद को मजदूर वग के आन्दोलन से जोडना, सवहारा के वग सघष को सगठित करना तथा उसका नतत्व करना और समाजवाद तथा कम्युनिज्म का निर्माण करना। इन कामो म सफलता इस बात पर निभर करती है कि पार्टी का रिश्ता जनता से कितना मजबूत है, जनता म इसकी प्रतिष्ठा कितनी है, माक्सवादी-लेनिनवादी दष्टिकोण पर वह कितना दढतापूवक कायम है और इस विज्ञान को ठोस स्थितियो पर लागू करने मे उसकी दक्षता कितनी है, अतर्राष्ट्रीयतावाद की लाइन पर वह कितनी सुसगति के साथ अमल करती है, आदि। पार्टी के कायकलाप की सफलता उसके माक्सवादी-लेनिनवादी नेतृत्व के स्तर पर बहुत अधिक निभर करती है। इससे यह जाहिर है कि पार्टी नेताओ को बनाना, उनका प्रशिक्षण करना, उह आगे बढाना कितना महत्वपूर्ण है।

माक्सवाद लेनिनवाद व्यक्तियो की अत्यधिक उपासना को, व्यक्ति पूजा को, जिसमे जनता के कायकलाप और स्वत स्फूत क्रिया के महत्व से इनकार या उसकी उपेक्षा की जाती है, अस्वीकार करता है और साथ ही नेतत्व के महत्व से अराजकतावादी इनकार को भी रद्द करता है। माक्सवाद लेनिनवाद न जो सिद्धात निरूपित किये है उनके ज़रिये यह सम्भव हो गया है कि जनता, पार्टी और नेताओ मे सही सतुलन स्थापित किया जाये।

"एलीट" (प्रमुख व्यक्तिया) के सबध मे, जिनके विचारो और फैसलो द्वारा इतिहास का निर्माण बताया जाता है, विभिन धारणाओ क प्रति माक्सवादी दष्टिकोण, तथा व्यक्ति की भूमिका की अत्यधिक उपासना के प्रति इसके रुख की व्याख्या माक्स और एगेल्स तरुण हेगेलवादियो के साथ अपने वाद विवाद मे कर चुके थे। य तरुण हेगेलवादी सजनात्मक 'आलोचनात्मक चितन" वाले अल्पमत का "निर्जीव जनता" के खिलाफ खडा करते थे। इनके अलावा उसकी व्याख्या माक्स और एगेल्स अराजकतावाद के पूवसूचक माक्स स्टनर की आलाचना म, जो व्यक्ति की भूमिका को बहुत बढा चढाकर पेश करत थे कर चुके थे। और फिर लेनिन ने भी उसकी व्याख्या रूसी नारोदनिको तथा उनके "वीर" तथा "भीड" के सिद्धात के विरुद्ध, जिसके अनुसार जनता का कोई महत्व अपने "वीरो" के बिना नही है जस शून्य का कोई मूल्य अन्य आकडो के बिना नही है, सघष म की थी। इतिहास मे व्यक्ति और जनता की भूमिका के बारे म तरुण हेगेलवादियो, अराजकतावादियो तथा नारोदनिको के विचारो का इतिहास के वैज्ञानिक भौतिकवादी दष्टिकोण से कोई सबध नही है। य विचार व्यक्ति और जनता के वास्तविक सबध को तोड मरोड कर पेश करते हैं क्योकि वे व्यक्तियो या समूहो की ऐसी भूमिका का उल्लेख करते है, जो वे इतिहास मे अदा नही करते।

इसी लिये माक्सवाद-लेनिनवाद, सिद्धातत, व्यक्ति पूजा को एक आत्मनिष्ठ भाववादी धारणा मानता है, जिसकी वह नतिक दष्टि स निदा करता और राजनीतिक दष्टि से अत्यत दढतापूवक अस्वीकार करता है, क्योकि वह जनता, पार्टी और नेताओ के सही सबध का उल्लघन है और समाजवाद के हितो को नुक्सान पहुचाता है। माक्स अकसर व्यक्ति पूजा की निदा किया करते थे।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद के इन उसूलो की रोशनी म सोवियत कम्युनिस्टो ने जा० वि० स्तालिन की व्यक्ति पूजा तथा इसस सबधित समाजवादी वधानिकता के उल्लघन की निन्दा की क्योकि य बात समाजवाद के विपरीत है।

व्यक्ति एक वडी भूमिका ग्रदा करता ह केवल राजनीति क क्षेत्र म ही नही, बल्कि सस्कृति, विज्ञान ग्रौर तकनीकी तथा बौद्धिक सजनात्मक काय के हर क्षेत्र म। शोधकर्ता या कलाकार की महान प्रतिभा बडी दुलभ चीज होती है। महान वैज्ञानिक, कलाकार तथा ग्राविष्कारक पिछली उपलब्धिया स शुरू करके, उनक ग्रपने क्षेत्र म जो कुछ किया जा चुका है उसका सामान्यीकरण करके, विज्ञान, प्रविधि तथा कला म नई राह खोलत ह। उनका सृजनात्मक प्रयास सान्द्रित ग्रभिव्यक्ति ग्रौर पूणतम उपयाग है उन सम्भावनाग्रा का, जो प्रत्यक युग मानव सस्कृति का ग्रौर ग्रागे विकसित करने के लिये प्रदान करता है। राह बनाना बडा कठिन काम है। योग्यता ग्रौर प्रतिभा के ग्रतिरिक्त इसके लिये जरूरत होती हे कि ग्रादमी म काम की ग्रगाध क्षमता हो, इच्छा शक्ति ग्रौर दढ प्रतिज्ञा हो, यह पक्का विश्वास हो कि उसन जो रास्ता ग्रपनाया हे वह सही हे, तथा ग्रौर भी ग्रनेक गुण होन चाहिय, जो मानव ग्रात्मा की महानता ग्रौर उसकी प्रतिभा की शक्ति को ग्रभिव्यक्त करत हा।

सामाजिक प्रगति

हमने समाज के मार्क्सवादी सिद्धांत की मूल प्रस्थापनाओं पर, जो ठोस ऐतिहासिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक अध्ययन के आरम्भिक उसूल हैं, विचार कर लिया। अब हमें एक और धारणा का विश्लेषण करना है, जिसकी सहायता से हम सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को उसकी गति में, एक ही प्रक्रिया के रूप में जो अंदरूनी तौर पर विखंडित है चित्रित कर सकते हैं। वह है **सामाजिक प्रगति** की धारणा।

प्रगति, सामान्यतः द्वंद्ववाद का एक प्रवर्ग है, जो इस तथ्य को व्यक्त करता है कि विकास केवल परिवर्तन की प्रक्रिया नहीं और न एक दायरे के अन्दर चक्कर लगाने का नाम है, बल्कि **एक ऐसी गति है जिसमें क़दम आगे की ओर उठता है, ऊपर की दिशा में गति होती है, जो एक निम्नतर अवस्था से उच्चतर अवस्था की ओर ले जाती है।**

मानवजाति के इतिहास पर इस प्रवर्ग को लागू करने का आधार क्या है? सामाजिक जीवन में प्रगति क्या है और प्रतिप्रगति क्या? क्या कोई वस्तुनिष्ठ सूचक है, जो यह बता सके कि सामाजिक व्यवस्था के रूपों के परिवर्तन का मतलब कब निम्नतर अवस्था से उच्चतर अवस्था में प्रगति है? पाठक को इस समय तक इन सवालों के जवाब का, जो इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण के आधार पर दिया जा सकता है, आभास मिल गया होगा। फिर भी हम इनके उत्तरों पर विचार करें।

सामाजिक प्रगति का विचार सबसे पहले १८ वीं शती के ज्ञानोद्दीपकों ने पेश किया था, जिनमें जा कन्दारसे और जोहान हर्डर भी थे। उनका

राय मे प्रगति का ग्राधार मानव बोध और विज्ञान का आगे बढना, ज्ञान का फलना आदि था। उन्हे विश्वास था कि मानवजाति का भविष्य उज्ज्वल है, मगर वे सामाजिक प्रगति के सार और स्रोतो की वैज्ञानिक व्याख्या करने मे असमर्थ थे।

उन्नीसवी शती मे हेगेल ने मानव इतिहास की अपनी द्वद्वात्मक धारणा प्रस्तुत की कि वह "स्वतन्त्रता की चेतना" का विकास है। परन्तु हेगेल की दार्शनिक-ऐतिहासिक व्यवस्था की तान इस घिसे-पिटे विचार पर टूटी कि प्रशियन राजतन्त्र मानव इतिहास का शिखर है। इसके अलावा हेगेल का विश्वास था कि हर युग मे किसी एक जाति के लोग ही ऐतिहासिक प्रगति के सवाहक होते है, जब कि दूसरी जातियो के लोग मानो इतिहास की परिधि के बाहर होते है। हेगेल की धारणा पर जर्मन राष्ट्रवाद की छाप थी। उसने यह घोषणा की कि जर्मन लोग ही आधुनिक युग मे प्रगति के सवाहक है।

पूजीवादी समाजशास्त्र के सस्थापक हर्बर्ट स्पेन्सर और ओग्युस्त कोन्त भी सामाजिक प्रगति मे विश्वास रखते थे, मगर हेगेल के विपरीत उनका विचार द्वद्वात्मक नही था बल्कि भोडे तौर पर विकासवादी था। उनके सामाजिक विचारो को पूजीवादी उदारतावादी प्रगतिवाद कहा जा सकता है। यद्यपि १६ वी शती मे कुछ विचारको ने ऐतिहासिक प्रगति की सम्भावनाओ के बारे मे निराशाजनक विचार प्रकट किये, फिर भी वह एक ऐसा युग था, जिसमे पूजीवादी सामाजिक चिन्तन पर इतिहास का विकासवादी दृष्टिकोण हावी था। इसके बरखिलाफ २०वी शती मे, जो कि पूजीवादी व्यवस्था के पतन का युग है, पूजीवादी दार्शनिक और समाजशास्त्री अधिकाशत प्रगति के विचार के प्रति नकारात्मक रुख अपनाते है।

उनके तर्क क्या है? प्रगति के विचार की आलोचना करने मे उनके सबसे महत्वपूर्ण तर्क का आधार इस बात से इनकार है कि विश्व ऐतिहासिक प्रक्रिया कोई सुसम्बद्ध एकता है। वे इसके बजाय कहते है कि अनेक अलग अलग स्थानीय सस्कृतिया या सभ्यताए है, जिनमे से हर एक का अपना विकास चक्कर होता है। इस विचार के माननेवालो मे ओस्वाल्ड स्पेंगलर और आर्नल्ड टाएनबी है, जिनकी धारणाओ का आधार यह तथ्य है कि इतिहास मे अनेक सभ्यताओ और सस्कृतियो का उत्थान और पतन

हुआ है। कुछ पूजीवादी विचारको के पसन्दीदा "एक मार्गी प्रगति" के उसूल की कमज़ोरियो को उन्होने देख लिया, लेकिन इतिहास की विविधता को परम मानकर इस नतीजे पर जा पहुचे कि सस्कृतियो के बीच कोई सबध या सिलसिला नही होता। उनके नज़दीक वे अपने आप में सीमित अलग थलग इकाइया होती ह। इतिहास एक लहर नही है, फिर मानव जाति के वास्तविक इतिहास में प्रगति की एकमात्र रेखा का पता चलाने की कोशिश बेकार नही तो और क्या है?* इतिहास के इस दष्टिकोण को स्पष्टत ही वैज्ञानिक या यथार्थ का प्रतिबिम्ब नही माना जा सकता। इसमें सदेह नही कि हर जाति का स्वय अपना इतिहास होता है और इसकी कोई वजह नही कि एक जाति का इतिहास दूसरे के इतिहास को, उसकी अत्यत बुनियादी विशेषताओ को लेकर ही क्यो न हो, दुहराये। लेकिन सामान्य विशेषताओ के बिना, जो बार बार दुहरायी जाती है, केवल इतिहास की अलग अलग विशेषताओ पर ही विचार करना गलत होगा। इन सामान्य विशेषताओ की व्याख्या उत्पादक शक्तियो तथा उत्पादन सबधो के विश्लेषण द्वारा की जा सकती है। इस "सामान्य तत्व" और इसके परिवर्तनो के विश्लेषण से मानव समाज के विकास की आम रेखा को सामने लाने में आसानी होगी। इतिहास की एकता को दो स्तरो पर देखा जा सकता है। एक तो किसी एक सरचना की परिधि मे तमाम सामाजिक परिघटनाओ की एकता है। यह एकता किसी एक उत्पादन पद्धति के आधार पर परिघटनाओ के परस्पर मौलिक सबध के कारण पैदा होती है। दूसरे, देशो, जातियो, सस्कृतियो, राज्यो आदि की विविधता की एकता है। यह विचार कि विश्व इतिहास मे एकता और प्रगतिशील विकास है इस बात से इनकार नही करता कि विभिन्न जातियो के ऐतिहासिक मार्गों में विविधता हो सकती है, बल्कि वह एक दष्टिकोण से इस विविधता को समझने में, हर जाति के इतिहास को ऐतिहासिक प्रगति की आम लाइन से जोडने में सहायक होगा। लेकिन ऐतिहासिक विकास की प्रगतिशील रेखा को स्पष्ट

---

*यहा हम यह कह दे कि सच्ची बात यह है कि टाएनबी इस विचार को पूरी तरह नही मानते। वह विभिन्न सभ्यताओ के चक्करदार विकास के विचार के साथ प्रगति का विचार भी जोडते ह, जिसको वह धार्मिक तथा रहस्यपूर्ण दृष्टि से देखते हैं।

करना और पूरे इतिहास के भाग को समझना तभी सम्भव होगा, जब हम पूरे विश्व इतिहास पर इसके अन्दरूनी सबधो और तारतम्य पर विचार कर और केवल विभिन्न संस्कृतियो और सभ्यताओ की विशेषताओ पर ही नजर नही डाले, और इस बात को ध्यान म रखे कि यूरोप, एशिया या अफ्रीका "भौगोलिक धारणाए ह, ऐतिहासिक नही", जैसा कि अकादमीशियन कोनराद ने सही ही कहा है।*

सामाजिक प्रगति के विचार पर अन्य दृष्टिकोणो से भी चोट की जा रही है। पश्चिम के देशो मे आनुभविक समाजशास्त्र के विकास के कारण कुछ अवस्थाओ पर यह प्रवृत्ति पैदा हुई कि व्यापक सामाजिक सामान्यीकरण को यह कहकर त्याग दिया जाय कि अनुभव के जरिये इनके सही-गलत होने का पता नही लगाया जा सकता। इसका मतलब ऐसी धारणाओ को इस्तेमाल नही करना है, जो व्यापक सैद्धातिक सामान्यीकरण को व्यक्त करती ह। तथाकथित "सास्कृतिक मानवविज्ञान" ने भी ऐतिहासिक विधि पर चोट की और इसका भी समाजशास्त्र पर असर पडा।

१६२० के दशक के प्रारम्भ मे अमरीकी समाजशास्त्री विलियम आगबन ने दावा किया कि विकास के विचार को समाज पर लागू नही किया जा सकता। उनके बाद पूजीवादी समाजशास्त्रियो ने इस बात पर जोर दिया कि "विकास" और "प्रगति" की धारणाओ को समाज पर लागू करना छोड दिया जाये और इतिहास मे विकास की आम रेखा, एक प्रगतिशील विकास की प्रवृत्ति को ढूढना नही चाहिये।

१६५६ मे तीसरी अतर्राष्ट्रीय समाजविज्ञान काग्रेस मे कई प्रमुख पूजीवादी समाजशास्त्रियो ने सुझाव रखा कि प्रगति का १६वी शती का विचार, जो "विकास" के शब्द द्वारा व्यक्त किया जाता है, छोड देना चाहिये और अब उसके स्थान पर "सामाजिक परिवतनो" का इस्तेमाल करना चाहिये।

पूजीवादी चेतना का यह विकास, जिसम वह पूजीवादी समाज की भोर वेला मे प्रगति के विचार को मानती थी मगर साम्राज्यवाद के युग म इसको अस्वीकार करने लगी है, स्वभावत यही सकेत करता है कि

---

*न० इ० कोनराद, 'पश्चिम और पूर्व', मास्को, १६६६, पृ० ४७३ (रूसी मे)

पूजीवादी सरचना के पतन के स्पष्ट लक्षणा (विश्व युद्ध, जटिल अतविरोध, आदि) के कारण पूजीवादी चेतना मानवजाति के भविष्य के प्रति या कम से कम उसके ज्ञान के प्रति निराशाजनक दृष्टिकाण अपना रही है।

सयुक्त राज्य अमरीका तथा अन्य पूजीवादी देशा म यह धारा काफ़ी व्यापक रूप मे फली हुई है कि "हम नही मालूम हम कहा जा रहे ह, मगर हम जा रहे हैं।"

कुछ पूजीवादी समाजशास्त्री प्रगति के विचार के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण इस सैद्धातिक तर्क के आधार पर अपनाते है कि यह एक ऐसी धारणा है, जिसम विभिन्न सामाजिक अवस्थाश्रा की तुलना करनी और उन्ह उच्चतर और निम्नतर की श्रेणिया म रखना हागा, और ऐसा करना, उनके अनुसार, आदमी की मूल्या की प्रणाली पर निभर करता है, और इसलिये आत्मनिष्ठ है। परिणामस्वरूप—व कहते हैं—प्रगति के विचार का मतलब है कुछ मूल्या के आधार पर मापदड कायम करना और इसका विज्ञान से कोई सबध नही है।

कुछ अमरीकी समाजशास्त्रियो ने लिखा कि प्रथम विश्व युद्ध न, बाद की घटनाश्रो की चर्चा नही, भ्रम निवारण का एहसास पैदा किया और समाजशास्त्री प्रगति की आवश्यकता से इनकार करने लगे। इस शब्द ने एक आदशमूलक अथ ग्रहण कर लिया और इसकी वज्ञानिक हैसियत समाप्त हो गया। अगर प्रगति का अथ किसी अभीष्ट दिशा म विकास है, तो उन्हाने कहा, यह मानना पडेगा कि कुछ लोगा के लिये जो अभीष्ट है, वह औरो के लिये अवाछनीय हो सकता है। प्रगति की वैज्ञानिक व्याख्या के कुछ प्रयत्न किये गये, मगर आगे चलकर समाजविज्ञान को इस धारणा को त्याग देना पडा।

इससे केवल उनकी उलझन का पता चलता है। अवश्य ही समाजविज्ञान के लिये विभिन्न आत्मनिष्ठ (मनमाने) मापदडो के आधार पर विकास की विभिन्न मजिलो का मूल्याकन करना सही नही होगा। मगर, एक तो, पूजीवादी समाजशास्त्र को अभी यह साबित करना बाकी है कि विज्ञान म **सामाजिक प्रगति का कोई वस्तुनिष्ठ मापदड** नही है, और दूसरे, प्रगति के एक वस्तुनिष्ठ मापदड के आधार पर मूल्याकन भी बिल्कुल कल्पनीय है, जो पात्र के हितो और आवश्यकताश्रा तथा विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं

ग्रथवा ग्रवस्थाग्रा के सवध को व्यक्त कर सकता है। अगर मूल्याकन की कसौटी का ग्राधार विज्ञान को नही बनाया जायेगा तो वह ग्रात्मनिष्ठ होन लगेगा। इसके ग्रनेक उदाहरण सामाजिक विज्ञान क इतिहास म मिलते ह, विज्ञान पर ग्राधारित नैतिक तथा ग्रन्य मूल्याकन सवथा स्वीकरणीय ह। मिसाल के लिये हम एक वैज्ञानिक मूल्याकन के तौर पर कहते हैं कि फासिज्म साम्राज्यवादी प्रतिक्रियावाद तथा सामाजिक प्रतीपगमन की पदावार है, ग्रौर इस वज्ञानिक वर्गीय मूल्याकन क ग्राधार पर हम इसी के ग्रनुसार इसका नतिक तथा ग्रन्य मूल्याकन भी कर सकते हैं ग्रौर हम करना चाहिये।

ग्राखिर क्या सामाजिक प्रगति की कोई वस्तुनिष्ठ कसौटी भी है?

चूकि सामाजिक विकास का ग्राधार उत्पादन है, इसलिय स्वभावत सामाजिक प्रगति की वस्तुनिष्ठ कसौटी हमे वही ढूढनी चाहिये। वही हम ऐसा सकतक मिलेगा, जिसके द्वारा उन भिन्नताग्रा का वस्तुनिष्ठ मूल्याकन किया जा सकता है, जा ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान म उत्पन्न होत ह ग्रौर यह निर्धारित किया जा सकता है कि समाज विकास की किस मजिल पर पहुच गया है।

उत्पादन के विकास का ग्रदाजा चूकि इस बात से लगाया जाता है कि उत्पादक शक्तिया का विकास किस हद तक हुग्रा है इसलिय इतिहास के भौतिकवादी दृष्टिकोण की सपूण धारणा से यह ग्रनिवाय नतीजा निकलता है कि **सामाजिक प्रगति की परम वस्तुनिष्ठ कसौटी उत्पादक शक्तियो का विकास है।**

उत्पादक शक्तियो का विकास ही सामाजिक प्रगति की मजिला से मानव जाति के ग्रागे बढ़ते रहने मे धुरी का काम देता है क्याकि उन्ही मे एकत्रित रूप म यह बात जाहिर होती है कि प्रकृति की शक्तिया पर मानव प्रभुत्व किस हद तक स्थापित हुग्रा ह – किस हद तक वह उनको ग्रपनी सेवा म लगान मे सफल हुग्रा है – तथा मानवजाति क सामाजिक विकास की क्या सम्भावनाए उत्पन्न हो रही ह।

यह कसौटी वस्तुनिष्ठ सबसे बढकर इसलिय है कि इसकी सहायता स सामाजिक विकास की सीढियो पर किसी एक सामाजिक ग्रार्थिक सरचना का स्थान निश्चित किया जा सकता ह।

नये सामाजिक रूप उच्चतर ठीक इसी लिये होते है कि वे उत्पादक शक्तियो के पूव विकास पर आधारित होते है, उनको आगे बढाने म सहायक होते तथा उनके साथ साथ उच्चतर मजिल पर पहुचते ह। वही आर्थिक व्यवस्था अधिक प्रगतिशील मानी जायेगी, जो अधिक विकसित उत्पादक शक्तियो के अनुकूल हो, जिसमे उनके विकास की ज्यादा गुजाइश हो और जिसके द्वारा उत्पादक शक्तियो के विकास के लिये अधिक प्रोत्साहन मिलता हो।

लेकिन उत्पादन सबधो का हर रूप उत्पादक शक्तियो के विकास के हितो और तकाजो को एक सीमित अवधि के लिये ही पूरा करता है और यही कारण है कि ऐतिहासिक दृष्टि से वह अस्थायी होता है। इस अर्थ मे यह कहना सही होगा कि **सामाजिक प्रगति का सार यह है कि जिस समाज का आर्थिक ढाचा कम विकसित है और जो अब उत्पादक शक्तियो के अनुकूल नहीं रहा, उसका स्थान एक ऐसा समाज ले, जिसका ढाचा उच्चतर और अधिक परिपक्व है, और जिसका निरूपण अधिक विकसित उत्पादक शक्तियो के आधार पर हुआ है।**

उस सदर्भ मे मार्क्स ने लिखा कि एशियाई, प्राचीन यूनानी रोमन, सामतवादी तथा पूजीवादी उत्पादन पद्धतियो को आर्थिक सामाजिक सरचना की प्रगतिसूचक कडिया कहा जा सकता है। इनमे से हर एक अपने पहले की सरचना से उच्चतर मजिल पर है क्योकि वह अधिक विकसित उत्पादक शक्तियो के अनुकूल है तथा उसमे उनके विकास की अधिक गुजाइश होती है (उत्पादन की एशियाई पद्धति के सबध मे आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उल्लेख चौथे अध्याय मे किया जा चुका है)।

समाज की प्रगति का अगला कदम पूजीवादी सरचना से कम्युनिस्ट सरचना मे सक्रमण है, जिसकी पहली मजिल समाजवाद है।

समाजवादी व्यवस्था अभी अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे है। सामाजिक समाजवादी स्वामित्व से हमारे समय म उत्पादक शक्तियो के विकास की व्यापकतम सम्भावनाए मुहैया होती ह क्योकि इसम उत्पादन के विकास को निजी सम्पत्ति के मालिको के स्वार्थपूर्ण हितो–मुनाफे के लिये पूजीवादी इजारो की होड–के अधीन नही किया जाता, बल्कि सम्पूर्ण समाज के हित और स्वय श्रमजीवी जनता की बढती जरूरत पूरी करने के लिये इस्तेमाल किया जाता है। यद्यपि समाजवाद आज कुछ

आर्थिक सूचक आकडा म विभिन्न कारणा स विकसित पूजीवादी देशा से पीछे है, सम्पूर्ण पैमाने का कम्युनिस्ट समाज अवश्य ही पूजीवाद की तुलना म उत्पादक शक्तिया की उच्चतर मजिल पर पहुचेगा।

उत्पादक शक्तिया के स्तर का अदाजा श्रम की उत्पादकता से लगाया जाता है। इसी लिये लेनिन ने अक्तूबर क्राति के बाद कहा था कि पुरानी सामाजिक व्यवस्था पर नई सामाजिक व्यवस्था की विजय की मुख्य शत सामाजिक श्रम की उत्पादकता के उच्चतर स्तर पर पहुच जाना है। यही कारण है कि समाजवादी देश आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने पर बहुत ध्यान देते हैं। यह जरूरी सिफ इसी लिये नही है कि आर्थिक और सैनिक ताकत को बढाया जाये बल्कि इसलिये भी कि पूजीवाद पर समाजवाद की श्रेष्ठता स्थापित करने की मूल समस्या को हल किया जाये।

कुछ लोग कहते हैं कि पूजीवाद भी उत्पादन का विकसित करने की समान सम्भावनाए मुहैया करता है और इसके सबूत म कुछ पूजीवादी देशो की आर्थिक सफलताओ का तथा पूजीवादी अथव्यवस्था मे वैज्ञानिक तथा तकनीकी उपलब्धियो के प्रयोग का उल्लेख करते हैं। लेकिन इन अलग अलग और विशेष सफलताओ के कारण पूजीवाद का आम मूल्याकन नही बदल सकता, जो उसके आर्थिक तथा सामाजिक नियमो का नतीजा है, क्योकि ये विश्वव्यापी पमाने पर ज्यादा लम्बी ऐतिहासिक अवधिया पर लागू होते हैं। उत्पादक शक्तिया तथा उत्पादन सबधो के बीच पूजीवाद का बुनियादी अतविरोध ऐतिहासिक दृष्टिकोण से उसके विकास के रास्ते म बाधक है। पूजीपति वग ने खुद अथतन्त्र के राजकीय इजारेदाराना रूपो को विकसित करके इस अतविरोध को दूर करने का प्रयास किया है। मगर उन्हाने पूजीवाद का स्वभाव नही बदला और पूजीवादी विचारको के दावो के विपरीत, किसी भी अर्थ म, उसे "बदल" कर कोई नया समाज नही बना दिया।

अथतन्त्र पर समाज का सामाजिक ढाचा, उसकी विभिन्न सामाजिक सस्थाए तथा उसके ऊपरी ढाचे का पूरा क्षेत्र निभर करता है। यही कारण है कि सामाजिक ढाचो का मूल्याकन भी वस्तुनिष्ठ रूप म किया जा सकता है। चूकि वे उत्पादक शक्तिया पर निभर करते ह इसलिये उत्पादन सबधा के जरिये विभिन्न देशो और जातियो के विकास के आम पहलुओ को स्पष्टतया

व्यक्त किया जा सकता है तथा समाज के सम्पूर्ण सामाजिक ढाचे के मूल तत्वो के वस्तुगत मूल्याकन का आधार मिल सकता है।

प्रगति की कसौटी की इस व्याख्या पर आपत्ति यह की जाती है कि यह मानव, उसके हितो और विकास को नजरअदाज कर देती है। मगर यह आपत्ति सही नही क्योकि मानव सामाजिक प्राणी है, और उसका स्वभाव, उसका "सारतत्व" कोई ऐसी चीज नही, जो अपरिवर्तनीय तथा हमेशा के लिये स्थिर हो। यही कारण है कि पुराने, आदिम, मानववैज्ञानिक दृष्टिकोण के विपरीत, जिसके अनुसार किसी सामाजिक व्यवस्था की प्रगतिशीलता इस बात से निर्धारित की जाती थी कि वह मानव के "अपरिवर्तनीय स्वभाव" के अनुरूप है या नही है, समाजविज्ञान मनुष्य के हितो और आवश्यकताओ को इतिहास की पैदावार मानता है, जिसमे उत्पादन का विकास शामिल है। इसके जरिये सामाजिक प्रगति को सामाजिक मानव के विकास के रूप मे देखा जा सकता है। मानव, उसके अपने विकास की अवस्था सामाजिक प्रगति की कसौटी की ऐतिहासिक भौतिकवादी व्याख्या की अनुपूरक नही, बल्कि स्वय उस कसौटी के एक आवश्यक अग के रूप मे सामने आती है। यहा एक और सवाल पर विचार करना जरूरी है।

उत्पादक शक्तियो का विकास सम्पूर्ण सामाजिक विकास की परम कसौटी होने के नाते हमेशा अलग अलग सामाजिक परिघटनाओ के विकास के वस्तुनिष्ठ सूचक का काम नही देता। इन परिघटनाओ की अपनी अपनी विशेषताए होती है, जो अपेक्षाकृत स्वाधीन होती है और जिनके विकास स्तर के अपने विशेष सूचक होते हैं। यह बात खासकर सामाजिक चेतना के विभिन्न रूपो के विकास पर लागू होती है। नैतिकता, कला और दर्शनशास्त्र का सबध उत्पादन से मध्यस्थ कडियो के एक पेचीदा सिलसिले के जरिये ही कायम होता है उनके विकास की अपनी खास विशेषताए होती हैं और इसी लिये इनमे से प्रत्येक रूप की प्रगति का अपना विशेष सूचक होता है।

सामाजिक प्रगति की जो धारणा और कसौटी ऐतिहासिक भौतिकवाद ने मुहैया की है, उनका महत्व सैद्धातिक और विधिशास्त्रीय है, यानी वे ठोस ऐतिहासिक तथ्य-सामग्री के, सामाजिक विकास के दौरान मे उत्पन्न होनेवाले वास्तविक भेदो के अध्ययन मे मार्ग दर्शक का काम दे सकती हैं।

लेकिन वे हम यह नही बताती कि ठोस रूप मे ऐतिहासिक प्रक्रिया कौन सा रास्ता अपनायेगी तथा विभिन्न हालतो मे ऐतिहासिक विकास के दौरान म क्या वास्तविक भेद उत्पन्न होनेवाले है। इसी लिये इन प्रस्थापनाओ को प्रगति की उन आम "सूक्तियो" की हैसियत नही देनी चाहिये जिनका पूजीवादी समाजशास्त्रियो हर्बट स्पेन्सर, नि० मिखाइलोव्स्की आदि ने सुझाव दिया है। इन लोगो का प्रयास यह था कि वास्तविक इतिहास पर विकास के निश्चित "नियम" और स्कीमे लागू कर, जिनके अनुसार उसकी प्रगति होती। मार्क्सवादियो ने प्रगति की समस्या के प्रति इस दृष्टिकोण की हमेशा आलोचना की और कहा कि यह अमूर्त और इतिहासातिरिक्त है। प्रगति के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का तकाजा यह है कि वास्तविक इतिहास को इतिहासातिरिक्त चौखटो मे कसने की कोशिश न की जाये, बल्कि गुणात्मक दृष्टि से निश्चित समाजो – सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ – की वास्तविक प्रक्रियाओ और नियमितताओ, उनकी उत्पत्ति तथा विकास और एक सरचना से दूसरे म सक्रमण के नियमो का अध्ययन किया जाये।

यह दृष्टिकोण कि ऐतिहासिक प्रगति सामाजिक सरचनाओ का विकास और सिलसिला है, केवल यही नही बताता कि विश्व इतिहास सुसम्बद्ध है, बल्कि ऐतिहासिक प्रगति की विविधता का विश्लेषण करने के लिये भी एक आधार मुहैया करता है।

प्रत्येक सामाजिक सरचना और उसके विशिष्ट नियमो के विकास की विशेषता यह है कि उसके ऐतिहासिक विकास की विशिष्ट प्रक्रिया होती है, उसकी चालक शक्तियो की विशिष्टताए, विकास की गति और ऐतिहासिक परिधि होती है, जिसमे देखा जा सकता है कि यह प्रगति है, प्रगमन है और केवल सामाजिक अस्तित्व अथवा प्रतिगमन नही है। प्रत्येक सामाजिक सरचना विकास की निश्चित सम्भावनाए उपस्थित करती है, और जब ये सम्भावनाए पूरी हो जाती है तो वह अनिवार्यत विकास के गुणात्मक दृष्टि से एक नये स्तर की ओर कदम बढाती है या किसी न किसी रूप म सामाजिक पतन का रास्ता लेती है।

चूकि हर सामाजिक सरचना के नियम विशिष्ट होते है और चूकि इतिहास के आम नियम विभिन्न स्थितियो म अलग अलग ढग से व्यक्त होते है, इसलिये उनके द्वारा ऐतिहासिक प्रक्रिया की दिशा "सामान्य" रूप से निर्धारित नही होती, बल्कि किसी ठोस समाज म, किसी सामाजिक

सरचना, किसी सामाजिक गुणावस्था म एक परिवतन के रूप मे होती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इसके द्वारा ऐतिहासिक विकास का आगे का सारा माग पूवनिर्धारित हो जाता है। इसी लिये सामाजिक भविष्यवाणी की भी अपनी ऐतिहासिक सीमाए होती ह। वज्ञानिक दष्टि से यह सम्भव है कि जिन सामाजिक सरचनाओ और प्रक्रियाओ के प्रतिबिम्ब तथा अकुर वस्तुस्थिति म पहले म मौजूद ह, उनकी भविष्यवाणी की जा सके।

सामाजिक नियमो की कायविधि म, और इसलिये स्वय ऐतिहासिक प्रक्रिया की दिशा म भी कोई नियत अनिवायता नहीं है जिसका कारण ऐतिहासिक परस्पर क्रिया म भाग लेनवाली सामाजिक शक्तियो की विविधता और पचीदगी है, आत्मनिष्ठ तत्व का असर, ऐतिहासिक सयोग, आदि हैं।

ऐतिहासिक प्रगति समाज का आत्म विकास है, जो सामाजिक नियमों द्वारा निर्धारित और मानव कायकलाप के माध्यम से कार्यान्वित होता है। ऐतिहासिक प्रक्रिया के इस दष्टिकोण का मतलब यह है कि स्वय प्रगति की दिशा मानवो की इच्छा, कामना या आकाक्षाओ पर नहीं, बल्कि वस्तुनिष्ठ नियमो की क्रिया पर निभर करती है और यह कि मानव जो चेतन सामाजिक ध्येय अपन सामने रखते ह (सवप्रथम ऐसे ध्येय, जो मानवो की बडी सख्या के लिये, वर्गों के लिये सामाजिक रूप से महत्त्व पूण होते हैं) वे कामयाबी से पूरे तभी होते ह, जब ऐतिहासिक विकास की वस्तुनिष्ठ प्रवत्तियो के अनुकूल हो।

यह विचार कि भाग्य न इतिहास के सामने कोई ध्येय नियत कर दिया है और वहा तक पहुचन के लिये बराबर प्रयत्नशील है, भौतिकवादी दष्टिकोण से उसी तरह अमान्य है, जिस तरह ऐतिहासिक प्रगति के विचार के प्रति साहसहीन सन्देहवाद। सामाजिक नियमितताए गहरी ऐतिहासिक प्रवत्तियो के रूप म काम करती हैं और किसी खास सामाजिक स्थिति मे परिवतनो की आम दिशा को निर्धारित करती ह। लेकिन वास्तविक इतिहास मे, किसी निश्चित सरचना मे भौतिक स्थितियो द्वारा निर्धारित परिधि के भीतर सम्भावनाओ का एक पूरा वणक्रम उपस्थित होता है, जिनको अमली रूप देना जन कायकलाप पर, मानवो के ऐतिहासिक कायकलाप पर निभर करता है। इसका मतलब यह है कि मानवो के सामने सृजनात्मक ऐतिहासिक काय का व्यापक क्षेत्र मौजूद है। मसलन, हमारे युग मे सामाजिक

परिस्थिति में परिवर्तन की ग्राम प्रगतिशील प्रवृत्ति समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर प्रगमन के रूप में निर्धारित हो चुकी है। लेकिन यह प्रक्रिया क्या ठोस रूप धारण करेगी, प्रगति की व्यापकतम सम्भावनाएं या इसके बरख़िलाफ़ गतिहीनता और पतन कहां उत्पन्न होंगे—यह केवल नियमों की क्रिया पर ही निर्भर नहीं करता, बल्कि अनेक कारणों की परस्पर क्रिया पर, जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं और जिनसे किसी समय किसी देश की ठोस परिस्थिति बनती है, जनता के कार्यकलाप पर, सामाजिक समूहों के मुक़ाबले पर, पार्टियों, व्यक्तित्वों, आदि के कार्यकलाप पर भी निर्भर करता है।

इसी के साथ वर्तमान युग में यह तय करने के लिये कि कोई ठोस सामाजिक प्रक्रिया प्रगतिशील है या नहीं, आदमी को ऐतिहासिक विकास की इसी मुख्य रेखा—पूंजीवाद से समाजवाद में संक्रमण—के सन्दर्भ में विचार करना होगा।

प्रगति किस प्रकार की है, यह बात सामाजिक प्रगति के मार्क्सवादी सिद्धांत के लिये बुनियादी महत्व रखती है।

यद्यपि हर संरचना अपने तौर पर प्रगतिशील होती है (जैसे सामंतवाद या पूंजीवाद), फिर भी अनेक सामाजिक संरचनाओं में, जिनकी विशेषताएं समान हैं, ऐतिहासिक प्रगति के एक ही लक्षण मौजूद हो सकते हैं। जैसे, प्रगति का अंतर्विरोधी स्वरूप उन सभी संरचनाओं में मौजूद है, जिनमें समाज शासक तथा उत्पीडित वर्गों में बंटा हुआ है।

मार्क्स और एंगेल्स ने अपनी कृतियों में अंतर्विरोधी प्रगति का गहन विश्लेषण किया है। उन्होंने बताया है कि उत्पादन के विकास की निश्चित अवस्थाओं में प्रगति के अंतर्विरोधी रूप ऐतिहासिक तौर पर अनिवार्य थे। मार्क्स ने लिखा "विरोध नहीं तो प्रगति नहीं। सभ्यता ने हमारे समय तक इसी नियम का अनुसरण किया है।"*

जब समाज, विज्ञान, संस्कृति और सार्वजनिक धन में वृद्धि श्रमजीवी जनता को नुक़्सान पहुंचाकर, उसका उत्पीडन और शोषण करके हो रही हो तो, मार्क्स ने लिखा कि प्रगति उस राक्षस की भांति है, जो अपने

---

* Karl Marx *The Poverty of Philosophy* Moscow 1959 p 61

द्वारा आहत प्राणी की खोपडी से अमतरस पीता है। इतिहास मे इसका काफी सबूत मौजूद है कि आदिम कम्यून के विघटन के समय दास प्रथा के कारण सस्कृति की प्रगति सम्भव हुई और समाज के भावी विकास पर इसका गहरा प्रभाव पडा। दास प्रथा का पतन भी, जिसका स्थान सामतवाद ने लिया, प्रगति का कदम था क्योकि इससे उत्पादन के विकास की अधिक व्यापक सम्भावनाए उत्पन्न हुई।

मामती समाज का अस्तित्व भी असली उत्पादक, यानी सामती भूदास के अत्यत बबर शोषण पर आधारित था और यह शोषण अकसर व्यक्तिगत गुलामी का निहायत भयावह रूप धारण कर लेता था। आर्थिक उत्पीडन तथा राजनीतिक और बौद्धिक उत्पीडन का चोली दामन का साथ था। राजनीतिक और बौद्धिक क्षेत्र म सामतवाद की खासियत गतिशीलता और लचक नही, बल्कि गतिहीनता और हर परिवर्तन का विरोध था। हर क्षेत्र म कडी एकरूपता का राज था उत्पादन के लिये समान अधिनियम, एक राजा, एक मत तथा समान धामिक आदश। इस व्यवस्था के भीतर मानव का स्थान स्थिर था और वह इस तरह कि उसका सबध एक निश्चित वग, जात, पात, परिवार से होता था। मगर सामतवाद न प्रगति और प्रतिगमन दोनो के खिलाफ दीवारे खडी की। दास प्रथा के युग म अक्सर पूरी की पूरी जातियो और सस्कृतियो को नष्ट किया गया, मगर सामतवाद के अतगत वर्गीय समाज को स्थायी बनाया गया और उसकी नीव मजबूत की गई। कुछ देशा म यह प्रवृत्ति जमकर पत्थर की तरह बन गई और यही वह स्थिति थी, जिसमे किसी महान और बहुसख्यक जाति के शासक के दिमाग म यह बात आ सकती थी कि एक बहुत बडी दीवार खडी करके अपने देश को अन्य देशो से अलग कर ले। कोई आश्चय नही कि चीन की बडी दीवार सामती पथकता और सामाजिक गतिहीनता का प्रतीक बन गई है।

यूरोपीय देशो मे माल-मुद्रा के सबधो के विकास से सामतवाद के पथराये आर्थिक रूपो मे एक गतिशील तत्व का प्रवेश हुआ। इन आर्थिक प्रक्रियाओ से नयी सामाजिक शक्तिया और सामाजिक आन्दोलन उत्पन्न हुए और विज्ञान, दशनशास्त्र, कला के विकास को प्रोत्साहन मिला। इन शक्तिया ने सामती व्यवस्था के सामाजिक और बौद्धिक बधना को तोड डाला।

कुछ समय तक सामतवाद ने चच और राज्य की सहायता से इन शक्तियो को दवा देने और कुचलने की चेष्टा की ताकि उन्हे स्थापित व्यवस्था के दायरे मे सीमित रखा जाये। लेकिन अतत वह इनको रोकने म असमथ रहा।

एक नयी सामाजिक सरचना, पूजीवाद ने सामतवाद की जगह ली। यद्यपि पूजीवाद ने शोषण के सवधा को और विकसित तथा तीव्र वनाया, मगर वह कई लिहाज से सामतवाद का उलटा था। मुख्य चीज यह थी कि पूजीवादी व्यवस्था ने मशीनी उत्पादन के क्रातिकारी तकनीकी आधार के सहारे तकनीकी और वैज्ञानिक प्रगति के लिये, आधुनिक औद्योगिक उत्पादन के विकास तथा एक नये तकनीकी आधार पर राष्ट्रीय अथतत्र के पुनर्निर्माण के लिये व्यापक सम्भावनाए उत्पन्न कर दी।

पूजीपति को मजदूर की जरूरत थी, जिसको अपनी श्रम-शक्ति को वेचने मे आथिक प्रोत्साहन मिले। अत पूजीपति ने श्रम के साधन और उसकी पैदावार दोना को मजदूर से अलग कर लिया और इस तरह उसे अपनी श्रम शक्ति पजीपति के हाथ वेचने पर मजवूर किया। मजदूर के लिये श्रम की प्रक्रिया रोजी रोटी हासिल करने का एक साधन मात्र है और पूजीपति के लिये उत्पादन केवल मुनाफा कमाने का साधन है। इन हालता म उत्पादन मानव के विकास के साधन का काम नही देता, वल्कि उलटे मानव उत्पादन के विकास का साधन वना हुआ है।

अत सभी वर्गीय, अतविरोधी सरचनाओ मे मेहनतकश इन्सान हर जगह जजीरो मे जकडा हुआ है, कही प्रत्यक्ष रूप म दास या भूदास के रूप मे, धम अथवा पूवग्रह और कल्पित धारणाओ का गुलाम वन कर, या— पूजीवाद के अतगत—पूजी का दास, मशीन का चाकर, भौतिक पदार्थों का गुलाम वन कर।

सम्पूण इतिहास के दौरान म देशा और जातियो के बीच नाता वढता रहा है, यद्यपि इस प्रक्रिया की राह मे ऊच-नीच वहुत आये, क्योकि इस वीच मे ऐसे भी दौर आया किये, जिनम वने-वनाये रिश्ते ताड डाले गये, इत्यादि। इस लिहाज से पूजीवाद ने आगे की दिशा मे निर्णायक कदम उठाया, जातियो की पुरानी पृथक्ता का विल्कुल अत कर दिया, उन सवा को पूजीवादी विकास की मुख्य धारा के वहाव म खीच लिया। उपनिवेशन और नये मुलको पर कब्जा, श्रम विभाजन और व्यापार, विश्व वाजार

तथा विविध आर्थिक सबधो की स्थापना, रलवे, जल तथा वायु परिवहन के आधुनिक साधनो का विकास, और फिर अखबार, रेडियो और टेलीविजन— इन सभी राजनीतिक, आर्थिक और तकनीकी साधना से धरती की विभिन्न जातिया और देशो के बीच नाना प्रकार के सबध कायम करने मे मदद मिली। इन सभी चीजा से सस्कृति, विज्ञान तथा बौद्धिक उत्पादन क क्षत्र मे परस्पर प्रभावो को बढावा मिला। लेकिन यह प्रक्रिया मूलत अतविरोधी भी रही है क्योकि इसी के साथ साथ एक राष्ट्र द्वारा दूसरे का शोषण और उत्पीडन तथा विभिन्न राज्या के बीच अतविरोध और झगड भी बढे। उन्नत देशो के पूजीपति वग की समद्धि का मुख्य स्रोत उत्पीडित जातियो का शोषण है।

पूजीपतियो को इसम फायदा था कि कुछ देशा के पिछडेपन को कायम रखा जाये, क्योकि वहा स उनको श्रम शक्ति सस्ती मिल जाती थी। यही वजह है कि आज भी विभिन्न जातिया मे पूजीवाद से पूव की सभी सामाजिक सरचनाओ की—आदिम से लेकर सामती समाज तक की— आधुनिकीकृत तथा विकृत अभिव्यक्ति मिलेगी।

सामाजिक प्रगति का अतविरोधी स्वरूप सामाजिक विकास की अत्यत असमानता और टेढेमेढेपन मे भी प्रकट होता है। इतिहास बताता है कि प्रगति की राह कभी सीधे ऊपर को नहीं जाती, बल्कि हमेशा चक्कर लगाकर जाती है, जिसके दौरान मे पीछे हटने, लौटने और निश्चलता के दौर भी आते हैं। मानवजाति जहा एक क्षेत्र मे सफलीभूत होती है तो उसी की तुलना मे अन्य क्षेत्रा मे उसे घाटा भी उठाना पडता है। सामाजिक उत्थान और क्राति के दौर के बाद प्रतिक्रिया के दौर आते ह। स्वय प्रगति के किसी एक या अय क्षेत्र से प्रतिक्रियावादी प्रवत्तिया और आकाक्षाए जन्म लेती हैं। कभी कभी सामाजिक विकास की इन कठिनाइयो तथा अतविरोधो के कारण लागो म निराशा और उज्ज्वल भविष्य की सम्भावना मे सन्देह पैदा होने लगता है। इसके विपरीत माक्सवाद-लेनिनवाद, जो एक नये और प्रगतिगामी वग का विश्व दष्टिकोण है, ऐतिहासिक आशावादिता तथा इस विश्वास को जन्म देता है कि भविष्य महनतकश जनता का है। लेकिन यह आशावाद ऐसा है, जो सामाजिक प्रगति की कठिनाइया और अतविरोधा को नजरअन्दाज नही करता और इसको उस

भाडे और विचारहीन "वम अव क्या है, वाजी मार नो वाले ज्वय से कोई सबध नही।

यह काल मार्क्स ने साबित किया कि पूजीवाद इतिहास की अतिम अतविरोधी सरचना है, और इसकी पुष्टि बाद की घटनाओं से हो चुकी है।

आज पूजीवाद एक गम्भीर आर्थिक, सामाजिक तथा नतिक सकट म फसा हुआ है। **पूजीवादी व्यवस्था का अस्तित्व हमारे समय मे, जो मानव समाज के इतिहास मे एक मोड बिन्दु है, सामाजिक प्रगति के माग म सब से बडी बाधा है।**

मानवजाति का विकास केवल कम्युनिज्म की ओर प्रगति के माग पर ही जारी रह सकता है।

पूजीवाद से कम्युनिज्म मे सक्रमण के साथ ही एक नये प्रकार की सामाजिक प्रगति की उत्पत्ति होती है, प्रगति का सक्रमण अतविरोधी से अन-विरोधी स्वरूप मे होता है।

कम्युनिस्ट सरचना म प्रगति की मुख्य विशेषताए है उत्पादन साधना का सामाजिक स्वामित्व स्थापित हो जाने तथा शोषण का अत होने के कारण सामाजिक अतविरोधो का अत, सामाजिक विकास के नियमो पर काबू तथा सामाजिक सबधो को नियत्रित करने के लिये उनका चेतन और सतुलित इस्तेमाल, आर्थिक प्रबध की एक केंद्रित जनवादी व्यवस्था और समाजवादी जनतत्र के सर्वतोमुखी विकास के जरिये अधिक से अधिक सख्या म श्रमजीवी जनता को चेतन ऐतिहासिक क्रिया म शरीक करना, उत्पादन को मानव हितो और आवश्यकताओ के अधीन करना, भौतिक तथा बौद्धिक उत्पादन तथा सामाजिक सबधो की समस्त व्यवस्था को मनुष्य के सर्वतोमुखी, सुसगत विकास के लिये इस्तेमाल करना, और चेतना के भ्रामक रूपो से छुटकारा।

एक अत्यत स्वचालित उत्पादन के भौतिक तथा तकनीकी आधार पर कम्युनिस्ट सरचना के विकास तथा कम्युनिस्ट सामाजिक सबधो की उन्नति के साथ ही ऐसी परिस्थितिया उत्पन्न होगी, जब **"व्यष्टि की स्वतत्र प्रगति समष्टि की स्वतत्र प्रगति की शत होगी,"*** क्योकि तब समाज के एक

---

*का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, सकलित रचनाए, चार भागो म, प्रगति प्रकाशन, मास्को, भाग १, पृ० ६६

भाग की प्रगति दूसरे को नुकसान पहुचाकर नही होगी। स्वय अपना विकास— यही मानव का उद्देश्य बन जाता है और स्वय उसके विकास की अवस्था सामाजिक प्रगति की अवस्था की कसाटी बनती है।

कम्युनिस्ट सरचना मे सक्रमण अधी आवश्यकता के क्षेत्र से छलाग लगाकर स्वतत्रता के क्षेत्र मे पहुच जाना है। यहा मानवजाति के प्रागातिहास काल का अत आर उसके वास्तविक इतिहास का आरम्भ हाता है।

अवश्य ही, **नये प्रकार की सामाजिक प्रगति की उत्पत्ति** अचानक नहा, बल्कि धीरे धीरे हाती है। लेकिन महत्वपूण बात यह है कि एक बार **जब समाजवादी क्राति हो जाती है तो मानव उस सामाजिक कायभार को पूरा करने लगते हैं, जहा पहुचकर अतविरोधी समाज के कदम रक जाया करते ह क्योकि वह उसको हल करने मे असमथ है,** और वह कायभार है समाज की स्वतत्रता की स्थापना करना, इस अथ मे कि मानव स्वय अपने सामाजिक सबधा का नियत्रण करने लगता है। अनुभव बतलाता है कि यह एक बहुत पेचीदा काय है और इसको पूणत अदा करने क लिय जरूरी है कि, एक तो, उत्पादन शक्तियो, विज्ञान, सस्कृति तथा समाजवादा चेतना का विकास उच्च स्तर पर पहुच गया हो, और दूसरे, अनुकूल आथिक तथा सामाजिक प्रक्रमो की स्थापना हो चुकी हो।

समाजवादी समाज मे मानव ऐतिहासिक प्रक्रिया के स्वत स्फूत स्वरूप को क़ाबू मे ले आते ह, जिससे सामाजिक विकास की नियमितताग्रो का सज्ञान और चेतन उपयोग एक आवश्यकता का रूप धारण कर लेता है। अतीत म कभी ऐसा नही हुआ कि मानव के सामाजिक ऐतिहासिक कायकलाप का प्रत्यक्ष आधार वस्तुनिष्ठ सामाजिक नियमितताओ के ज्ञान पर हो। वस्तुस्थिति यह है कि समाजवाद का निर्माण तथा कम्युनिज्म की ओर समाज की प्रगति माक्सवादी-लेनिनवादी सिद्धात तथा कम्युनिस्ट और मजदूर पार्टियो के वैज्ञानिक कायक्रमा के आधार पर होती है, जिनम सैद्धातिक उसूला को जन काय की ठोस योजना के रूप म पेश किया जाता है। कम्युनिस्ट सरचना के अतगत सामाजिक विकास के वस्तुनिष्ठ नियम मानवा पर एक पराई शक्ति के रूप मे हावी नही होते, बल्कि मानव के चेतन नियत्रण म आ जाते हैं।

समाजवाद के अतगत समाज का विकास चेतन रूप धारण करता है, इस अथ म नही कि मानव मनमाने ढग से इतिहास की बाग को जिधर

चाह मोड सकते हो, बल्कि इस अर्थ मे कि वे इतिहास के नियमो के अनुसार, जिनको वे समझने लगे है, काम कर सकते हैं। इसी लिये समाजवाद के अतर्गत यह जरूरी है कि समाज के हर सदस्य की चेतना को बढाया जाये और उसे पूरे समाज के हितो व अववोधन, इसके विकास के नियमो के अववोधन के स्तर तक पहुचा दिया जाये। ज्यो ज्यो समाजवाद का विकास होता है, अधिक से अधिक सख्या मे लोग इतिहास के चेतन निर्माण मे शरीक होते है और इससे सामाजिक विकास की गति बहुत तेज हो जाती है।

जो कुछ कहा गया है उसका यह मतलब नही समझना चाहिये कि समाजवाद के अतर्गत अनियत्रित विकास के तत्व बिल्कुल नही रहते और यह कि मानव पूर्णतया अपने कार्यो के परिणामो का पूर्वानुमान कर सकते। वास्तविकता यह है कि सज्ञान की प्रक्रिया का कोई अत नही और व्यावहारिक तौर पर असम्भव है कि निश्चित ठोस स्थितियो मे वस्तुनिष्ठ नियमितताओ के तमाम तकाजो का हिसाब किया जा सके। इसके अलावा, समाज द्वारा स्वत स्फूर्त तत्वो का नियत्रित करने के लिये अकेला ज्ञान काफी नही है। ऐसा कर सकने के लिये भौतिक साधनो की भी जरूरत है। लेकिन सम्पूर्ण रूप से, ज्यो ज्यो समाजवाद का विकास होता है समाज अधिकाधिक मानवो के कार्यों के परिणामो का पूर्वानुमान करने तथा एक दूसरे के साथ और प्रकृति के साथ मानवो के सबधो का चेतन नियत्रण करने लगता है। कम्युनिज्म का निर्माण एक चेतन प्रक्रिया, करोडो इनसानो के चेतन प्रयास का नतीजा है। अभी तक किसी भी समाज का निर्माण सामाजिक विकास के आविष्कारित नियमो के आधार पर सचेत रूप से नही किया गया है। यही कम्युनिस्ट सामाजिक सरचना की उत्पत्ति और विकास की गुणात्मक दृष्टि से एक नयी विशेषता है। यह सरचना उत्पादन तथा समस्त सामाजिक जीवन के सगठन का चरम और सबसे युक्तिपूर्ण रूप है।

अत पूजीवाद से समाजवाद मे सक्रमण के साथ उत्पादन के नियोजित सगठन और पूरे समाज के पैमाने पर मनुष्यो के कार्यों के सामाजिक परिणामो का पूर्वानुमान करने की बढती सम्भावनाओ से सम्बद्ध चेतन कार्यकलाप का दायरा बढता जाता है। मानवो का व्यावहारिक कार्यकलाप एक नयी अवस्था पर पहुच जाता है। जहा अतीत मे इसका हासिल इससे ज्यादा नही थी कि प्रकृति की वस्तुओ मे उद्देश्यपूर्ण परिवर्तन किया जाता

तथा सामाजिक जीवन की स्वत स्फूत बदलनेवाली स्थितिया से चतन अनुकूलता स्थापित की जाती थी और क्राति के समय मे पुरानी व्यवस्था और सडे गले सवधो को सचेत ढग से नष्ट किया जाता था, वहा समाजवादी क्राति की सफलता के बाद मानव नये सामाजिक सवधो का चेतन निर्माण करने लगते हैं।

कम्युनिस्ट सरचना के विकास की समाजवादी मजिल पर मानव **आर्थिक तथा सामाजिक प्रक्रियाओ के सगठन और प्रबध** के ऐसे विशिष्ट रूपो जस सम्पूण समाज के पैमाने पर पूवज्ञापन और नियोजन, समाजवादी प्रतियोगिता, वैज्ञानिक निदेशन और प्रबध, आदि को विकसित करत और काम म लात हैं। मगर समाजवादी समाज चूकि पजीवाद की कोख से जम लेता है, उसे अनेक पुरानी आर्थिक तथा सामाजिक क्रियाविधिया विरासत मे मिलती हैं। वह उन्हे नया अतय प्रदान करता और उन्ह अपने विकास के लिये इस्तेमाल करता है। समाजवादी समाज माल उत्पादन, मूल्य नियम, मुद्रा तथा व्यक्तिगत भौतिक प्रोत्साहन का समाजवादी अथतत्र के आवश्यक तत्वो के रूप मे इस्तेमाल करता हैं। यह बात कि समाजवाद के अतगत मनुष्य सामाजिक उत्पादन मे व्यक्तिगत भौतिक लाभ के लिये भाग लेता है, पुराने ढग के ऐतिहासिक विकास का अवशेष है, यद्यपि समाजवाद के अतगत इससे एक नया अतय पैदा हो गया है। भविष्य म मूल्य नियम और इसके अनुवर्ती वृत्त मिट जायेगे और आर्थिक विकास केवल कम्युनिस्ट सरचना के विशिष्ट नियमो के अधीन होगा।

समाजवाद के अतगत सामाजिक नियमितताओ पर नियत्रण तथा समाज का प्रबध राज्य तथा कानूनी व्यवस्था द्वारा किया जाता है। सामाजिक सगठन के ये रूप भी वर्गीय समाज की पदावार ह। मगर समाजवादी राज्य श्रमजीवी जनगण का राज्य है, एक नये ढग का राज्य है, जो समाजवादी क्राति के दौरान मे पुरानी राज्य मशीनरी के खडहर पर कायम हुआ है।

अपने विकास के दौरान मे समाजवादी समाज ऐतिहासिक प्रगति को पुरानी कायविधिया के इन तत्वो का नये ढग से प्रयोग करते हुए, भविष्य म उनके मिट जाने की आवश्यक स्थितिया तैयार करता है। समाजवादी समाज उन्ही कायविधिया के दायरे म तथा उनकी सहायता से, जो उसे अतीत से विरासत म मिली है, नयी कायविधियो का निर्माण करता है,

गो कम्युनिस्ट सरचना की विशिष्टता है। इस तरह समाजवादी राज्य की परिधि के अन्दर और उसकी सहायता से कम्युनिस्ट सामाजिक स्वशासन के नये तत्वो की उत्पत्ति होती है।

ऐतिहासिक विकास की उन कार्यविधियो का उपयोग जो ऐतिहासिक प्रगति की अतर्विरोधी मजिल की पैदावार हैं, उसकी परिधि के भीतर धीरे धीरे ऐतिहासिक प्रगति की एक मूलत नयी कार्यविधि का निर्माण, जो कम्युनिस्ट सरचना की विशिष्टता है, तथा अतीत से मिले तत्वो का धीरे धीरे मिटते जाना, कम्युनिज्म की ओर प्रगति की समाजवादी अवस्था की एक खास विशेषता है। यह प्रक्रिया अतर्विरोधी है, मगर इसके अतर्विरोध प्रतिरोधी नही हैं। उनका समाधान कम्युनिज्म की उच्चतर मजिल मे सक्रमण के दौरान मे कम्युनिज्म के भौतिक और तकनीकी आधार के निर्माण, कम्युनिस्ट सामाजिक सबधो तथा समाजवादी जनवाद के विकास तथा प्रबध और सगठन के रूपो मे सुधार के जरिये हो जाता है।

इस सामाजिक कार्य की पूर्ति का सबध कम्युनिज्म की ओर प्रगति की एक और बुनियादी समस्या से है और वह है अर्थतत्र, विज्ञान तथा सस्कृति की समस्त उपलब्धियो का उपयोग मनुष्य के अपने सामजस्यपूर्ण विकास के लिये, व्यक्ति की स्वतत्रता के विकास के लिये। इन परिस्थितियो मे स्वय मानव, हर मेहनतकश, समाज के हर सदस्य के विकास की अवस्था नये समाज की सामाजिक प्रगति के स्तर की अभिव्यक्ति और उसका सूचक होती है। यह एक उत्कृष्ट और मानववादी कार्य है, और इसकी पूर्ति कम्युनिस्ट प्रगति का परम लक्ष्य है। कम्युनिज्म एक युक्तिपूर्ण सामाजिक सगठन है, जो एक अत्यत विकसित तकनीकी आधार पर क़ायम होता है, जो मानवो को एकताबद्ध करता है ताकि वे प्रकृति की शक्तियो पर आगे भी विजय पाते रहें, अपने सामाजिक सबधो पर अपना नियत्रण स्थापित करें तथा पूरी सामाजिक व्यवस्था तथा समस्त भौतिक और बौद्धिक सस्कृति का निदेशन मनुष्य के विकास के लिये, व्यक्ति के सामजस्यपूर्ण विकास के लिये करें। कम्युनिज्म का अर्थ है इतिहास के रहस्यो का आविष्कार, सामाजिक प्रगति का शिखर और यह एक विश्व व्यापी ऐतिहासिक परिघटना है। एकमात्र कम्युनिज्म ही मानवजाति को उसके दुखद द्विविधा से छुटकारा दिलाता है। इसी लिये देर सवेर सभी राष्ट्रो को कम्युनिज्म का मार्ग अपनाना पडेगा।

इसमें कोई सन्देह नही कि कम्युनिस्ट सरचना विश्व व्यापी होगी और आगे चलकर सभी राष्ट्र एक समान स्तर पर पहुच जायेंगे, जिसके बाद एकताबद्ध मानवजाति का एकताबद्ध इतिहास होगा।

यह है मार्क्सवादी दृष्टिकोण और इस सवाल का जवाब कि सामाजिक विकास की सम्भावनाए क्या ह।

आज जबकि ससार दो विरोधी व्यवस्थाओ म बटा हुआ है, भविष्य के प्रश्न पर, इस सवाल पर कि इनमे से कौन सी व्यवस्था मानवजाति के सामने क्या सम्भावनाए उपस्थित करती है, घोर सद्धातिक सघर्ष मचा हुआ है। पूजीवादी विचारक, चाहे सामाजिक प्रगति के प्रति उनका रुख कुछ भी हो, इस सवाल से बचकर नही निकल सकते। वे जिस सामाजिक व्यवस्था का समर्थन करते ह उसका तक़ाज़ा है कि वे किसी न किसी तरह उसकी सम्भावनाओ का नक्शा खीचे, हर सम्भव तरीके से वज्ञानिक कम्युनिज्म के विचारो के मुकाबले म ऐसी प्रस्थापनाए पश कर, जिनको विज्ञान का समर्थन प्राप्त हो, जिनमे विज्ञान का कुछ आभास हो। इसी लिये हम देखते ह कि पूजीवादी कृतियो मे केवल यही नही कि प्रगति के विचार के विरुद्ध तक प्रस्तुत किये जाते हैं, थर्मोन्युक्लियर युद्ध तथा उसके विनाशकारी परिणामो के खतरे की परिस्थिति मे निराशा की भावना प्रकट की जाती है, बल्कि भविष्य की ओर, चाहे अगले चन्द दशको के लिये ही क्या न हो, पूर्वसकेत करने, सामाजिक विकास की प्रवृत्तियो का सैद्धातिक विश्लेषण करने का प्रयास भी किया जाता है। इन सामाजिक तक़ाज़ो की ही पैदावार "औद्योगिक समाज" की धारणा और इसके भिन्न स्वरूप हैं।

इस धारणा के निर्माताओ ने शुरू किया इस मार्क्सवादी प्रस्थापना को अपना कर कि उत्पादक शक्तियो का विकास ही सामाजिक विकास का आधार है, मगर इसको उन्होने विकृत अर्थ देने का प्रयत्न किया है। जहा व ये कहते हैं कि उत्पादन का स्तर विभिन्न समाजो की तुलना करने का आधार बन सकता है, वही वे इस बात से इनकार करते हैं कि उत्पादक शक्तिया और उत्पादन सबधो का कोई नियमबद्ध ताल्लुक है। वे सामाजिक ढाचे को सीधे तकनीकी विकास की पैदावार मानते ह। इसका तात्पर्य यह है कि सभी देशो का उनके उत्पादन स्तर के अनुसार विभिन्न श्रेणियो म बाटा जा सकता है। जिन देशो मे आधुनिक उद्योग नही है, उन्हें

"परम्परागत समाज" कहा गया और जिन देशा मे विकसित उद्योग है, उन्ह "औद्योगिक समाज" का नाम दिया गया। इनके बीच मे सक्रमण की निश्चित मजिल निर्धारित कर ली गइ। अत "औद्योगिक समाज" की धारणा का प्रयोग पूजीवादी तथा समाजवादी समाजा को एक साथ लाने के लिये किया जाता है। इन दोनो को "औद्योगिक समाज" का केवल भिन्न रूप कहा जाता है।

"औद्योगिक समाज" की धारणा, जिसके बारे म रेमाड आरोन का कहना है कि वह "हमारे युग की बुनियादी धारणा" है, दरअसल हमारे युग के बुनियादी तथ्य पर परदा डालने के लिये पेश की गई है, यानी इस बात पर कि इस युग का अतय पूजीवाद से समाजवाद म सक्रमण है। मार्क्सवाद के वरखिलाफ पूजीवादी विचारक यह सिद्ध करना चाहत है कि समाजवाद पूजीवाद का स्थान नही लेता और यह कि पूजीवाद मे और अधिक विकास की सम्भावनाए मौजूद ह। ये सम्भावनाए क्या ह?

कुछ लोगा का कहना है कि विश्व का विकास "एक औद्योगिक समाज" की दिशा म हो रहा है, जिसम पूजीवाद और समाजवाद के अतर को बिल्कुल मिटा दिया जाता और गौण कर दिया जाता है। इस विचार का समथन, औरा के अलावा, दक्षिणपथी सोशल-डिमोक्रेसी के अनेक विचारक करते हैं। कई पूजीवादी समाजशास्त्रियो ने सगम (convergence) का सिद्धात प्रस्तुत किया है, जिसका विचार यह है कि पूजीवाद तथा समाजवाद एक दूसरे के निकट आ रहे हैं, जिसकी दिशा भविष्य मे पूवकालीन विकास के सभी परिणामा का "सामाजिक-सास्कृतिक सश्लेषण" की ओर है। पूजीवादी समाजशास्त्रियो की एक और टोली यह सावित करने मे सलग्न है कि "औद्योगिक समाज" के विकास के साथ कम्युनिज्म की सारी सम्भावनाए समाप्त हो गइ। इस सिद्धात को पेश करनेवालो म घोर कम्युनिस्ट विरोधी वाल्ट रोस्टो, "आर्थिक विकास की मजिलो" के सिद्धात के निर्माता, भी हैं। उनकी "मजिले" सामाजिक विकास की सीढिया ह, जिनम पहली सीढी "परम्परागत समाज" है और अतिम "अधिक जन उपभोग" समाज है, जहा सयुक्त राज्य अमरीका अभी से पहुच चुका ह। मगर सोवियत सघ उस मजिल पर कम्युनिज्म के कारण नही पहुच सका है, जो "जन उपभोग समाज" मे सक्रमण के साथ धीरे धीरे "मिट" जायेगा। इन लचर दावा को रोस्टो ने "गैर कम्युनिस्ट घोषणापत्र" के

नाम से प्रचारित किया है। यह विचार कि कम्युनिज्म का सबध उत्पादन के विकास के निम्न स्तर से, दरिद्रता और ग़रीबी से है, कोई नया विचार नही है और मार्क्सवाद ने बहुत पहले ही इनका खडन कर दिया है।

वास्तविकता यह है कि कम्युनिज्म केवल यही नही कि विशाल मेहनतकश जनता के सामने उच्चतर भौतिक स्तर तक पहुचने की सम्भावना पैदा कर देता है, बल्कि वह यह भी मानता है कि यह अपने आपमे कोई ध्येय नही, सिर्फ एक शर्त और साधन है व्यक्ति को भौतिक मूल्यो की चिन्ता से मुक्ति दिलाने का और उसकी दिलचस्पियो को सर्जनात्मक कायकलाप के क्षेत्र की ओर आकृष्ट करने का।

अत मे वैज्ञानिक और तकनीकी क्राति के तेज विकास तथा उत्पादन मे सगठन, प्रबध, इलेक्ट्रोनिक कम्प्युटर (उत्पादन के स्वचालन के सबध म) के महत्व मे बडी तेज़ी से वृद्धि होने के कारण अब यह दावा किया जाने लगा है कि "औद्योगिक समाज" की मजिल भी ऐतिहासिक दृष्टि से सीमित है और इस के बाद "औद्योगिकोत्तर समाज" आयेगा। इस शब्द का प्रयोग डैनियल बेल ने उस स्थिति का वणन करने के लिये किया है, जिसमे उसके ख्याल मे सयुक्त राज्य अमरीका और ससार के सबसे धनी देशो का एक छोटा सा गुट सन् २००० मे पहुच जायेगा। उनका कहना है कि अन्य देश "औद्योगिक" या "प्रागौद्योगिक" अवस्था मे हागे।

इसमे सन्देह नही कि "औद्योगिक समाज" की धारणा सवथा निराधार नही है। वास्तव मे आधुनिक उद्योग के विकास के कारण पूजीवाद तथा समाजवाद दोनो के अतर्गत अनेक समान प्रवृत्तिया और प्रक्रियाए जन्म लेने लगती है, जैसे नागरीकरण, रोज़मर्रे के जीवन का रूपातरण, आदि। सच तो यह है कि वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ग़रीबी को दूर करने और सामाजिक समस्याओ को हल करने की व्यापक सम्भावनाए उपस्थित करती है। लेकिन इनमे से कोई भी चीज इस मुख्य तथ्य का निराकरण नही करती कि पूजीवाद और समाजवाद ये दोनो विरोधी सामाजिक व्यवस्थाए ह। और पूजीवादी विचारक अपनी धारणाओ के ज़रिये इसी पर परदा डालने का प्रयास कर रहे हैं ताकि वे इस वास्तविकता से इनकार कर सके कि समाजवाद अनिवायत पूजीवाद का स्थान लेने के लिये अग्रसर है और यह कि केवल समाजवाद ही आधुनिक सामाजिक प्रगति की सभी मौलिक समस्याओ का जवाब दे सकता है।

हर राष्ट्र अपने ऐतिहासिक विकास के विभिन्न स्तरों तथा अपनी अपनी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक परम्पराओं सहित अपने अपने ढंग से समाजवाद और कम्युनिज्म की ओर कदम बढ़ायेगा। यह एक पेचीदा, अंतर्विरोधी मार्ग है, जिसमें कहीं जीत है और कभी हार। यह कठिन संघर्ष का मार्ग है। इन बहुमुखी प्रक्रियाओं का सही मूल्यांकन तथा हर अवसर पर सही लाइन और आचरण को तय करना सृजनात्मक मार्क्सवाद-लेनिनवाद का काम है।

शब्दार्थिका

अधिभूतवाद (Metaphysics) दशनशास्त्र के इतिहास मे यह शब्द दो भिन्न सदर्भों, दो भिन्न अर्थों म इस्तेमाल होता रहा है। प्राचीन काल मे इसका प्रयोग यूनानी दाशनिक अरस्तू की दाशनिक विरासत के उस भाग के लिए होने लगा, जिसमे अरस्तू ने सभी अस्तित्ववान वस्तुओ के "सर्वोच्च" सिद्धातो का अध्ययन किया है, जिन तक ज्ञानेन्द्रियो की पहुच नही है, जिनका केवल चिन्तन और मनन के ज़रिये बोध किया जा सकता और जो सभी विज्ञानो के लिये अनिवाय हैं। इसी अथ मे दशनशास्त्र मे इस शब्द का प्रचलन हुआ। आधुनिक युग म इसका प्रयोग द्वद्ववाद विरोधी चिन्तन शैली के लिये किया जाने लगा है, जिसका कारण सज्ञान के मामले मे अधिभूतवाद का एकागीपन है। वह वस्तुआ तथा परिघटनाओ को अचल, अपरिवतनशाल तथा एक दूसरे से असम्बद्ध और स्वाधीन मानता है। वह यह नही मानता कि अतनिहित द्वद्व ही प्रकृति और समाज के विकास का असली स्रोत है। द्वद्ववाद-विरोध के अथ म अधिभूतवाद का प्रयोग सबसे पहले हेगल न किया। लेकिन उन्होंने इसका विवेचन नही किया था। यह मार्क्स और एगेल्स ने किया, जिन्होने विज्ञान तथा सामाजिक प्रगति द्वारा उपलब्ध सामग्री का सामान्यीकरण करके चिन्तन की अधिभूतवादी शैली का वैज्ञानिक दीवालियापन सिद्ध किया।

अनुभववाद (Empiricism) सज्ञान सिद्धात मे एक प्रवृत्ति है, जो सवेदी यानी ज्ञानेद्रियो के अनुभव को ज्ञान का एकमात्र स्रोत स्वीकार करती

है। इसका मत है कि समस्त ज्ञान का आधार अनुभव है और वह अनुभव के माध्यम से प्राप्त होता है। भाववादी अनुभववाद (बर्कले, ह्यूम, आदि) अनुभव को संवेदनाओं तथा अनुबोधों के समूह तक सीमित मानता है और इस बात से इनकार करता है कि अनुभव का आधार वस्तुनिष्ठ जगत है। इसके विपरीत भौतिकवादी अनुभववाद (फ्रांसिस बेकन, हाब्स, लाक, तथा १८वीं सदी के फ्रांसीसी भौतिकवादी दार्शनिक) यह स्वीकार करता है कि संवेदी अनुभव का मूल स्रोत बाह्य जगत है।

अनुभववाद की मुख्य त्रुटियां हैं अनुभव की भूमिका के संबंध में अधिभूतवादी अतिशयोक्ति, ज्ञान में वैज्ञानिक विविक्तियों तथा सिद्धांतों की भूमिका का अल्पानुमान, चिन्तन की सक्रिय भूमिका तथा आपेक्षिक स्वतंत्रता से इनकार।

एकत्ववाद (Monism) एक दार्शनिक मत, जिसके अनुसार समस्त अस्तित्व का अंतर्निहित आधार एक है। एकत्ववाद दोनों प्रकार का होता है—भौतिकवादी भी और भाववादी भी। भौतिकवादी भूत को विश्व का आधार मानते हैं, और भाववादी, भाव, आत्मा या विचार को। भाववादी एकत्ववाद का सबसे व्यवस्थित उल्लेख हेगेल के दर्शनशास्त्र में किया गया है। वैज्ञानिक तथा अविरोध भौतिकवादी एकत्ववाद द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की विशेषता है, जो यह मानकर चलता है कि विश्व मूलतया भौतिक है, कि विश्व की सभी परिघटनाएं गतिमान भूत के विविध रूप हैं। मार्क्सवादी दर्शन में भौतिकवाद बढ़कर सामाजिक परिघटनाओं को भी अपने दायरे में ले लेता है। एकत्ववाद का उल्टा द्वैतवाद है।

उपयोगवाद (Pragmatism) आधुनिक दर्शनशास्त्र का एक प्रचलित आत्मनिष्ठ भाववादी मत है। इसके अनुसार सत्य का मूल्य उसके व्यावहारिक उपयोग पर निर्भर करता है। व्यावहारिक उपयोग से उपयोगवाद का आशय वस्तुनिष्ठ सत्य को व्यवहार की कसौटी पर रखना नहीं, बल्कि यह देखना है कि व्यक्ति के आत्मनिष्ठ हित कहां तक पूरे होते हैं। बहुत दिनों से संयुक्त राज्य अमरीका के दार्शनिक जीवन पर उपयोगवाद का प्रभुत्व रहा है।

द्वद्ववाद (Dialectics) अपने पूणतम, गहनतम तथा व्यापकतम रूप मे विकास का सिद्धात, बाह्य ससार, समाज और मानव चिंतन की गति के सामान्य नियमो का विज्ञान है जिसके अनुसार प्रकृति और समाज की हर वस्तु और परिघटना तथा स्वय मानव चिंतन और सज्ञान निरन्तर परिवतन और विकास की स्थिति मे है। वस्तुए और परिघटनाए वही कुछ है जो विकास की प्रक्रिया मे वे बन रही है और वे जो बन रही है उसमे प्रवृत्ति के रूप मे उनका भविष्य निहित है कि वे क्या बन जायेगी। द्वद्ववाद के लिये कुछ भी अतिम चिरकाल सत्य और पवित्र नही है। वह हर चीज मे, और हर चीज की अनित्यता का दशन कराता है। उसके नजदीक आवागमन के अबाध क्रम को छोडकर, निम्न से ऊर्ध्व की ओर अविराम उन्नति को छोडकर कुछ भी चिरन्तन नहीं है। इसका एक परिणाम मानव ज्ञान की आपेक्षिकता का सिद्धात है, जिसमे हमे सतत विकासमान भूत का, प्रकृति और समाज का प्रतिबिब मिलता है।

इस विकासक्रम का मुख्य स्रोत, उसकी चालक शक्ति द्वद्व है। किसी भी वस्तु, परिघटना या समाज मे घात प्रतिघात करनेवाली विभिन्न शक्तिया अथवा प्रवत्तिया के अन्तविरोध तथा टकराव स विकास के लिये आन्तरिक प्रेरणा मिलती है। विकासक्रम मे मालूम होता है कि पहले की मजिले फिर लौट कर आ रही ह परन्तु ये मजिले एक दूसरे ढग से, एक और ऊचे स्तर पर आती है ("नास्ति का नास्ति"), यह विकास सीधी रेखा मे न होकर शखुतुल्य आवतपूण होता है, यह विकास हठात, क्राति और विध्वस द्वारा भी होता है ("क्रमविकास मे खडन"), मात्रा का गुण मे परिवतन होता है, प्रत्येक घटनाक्रम के सभी अगा म परस्पर निभरता, और इस प्रकार निकटतम और अटूट सम्बद्धता होती है, इस सम्बद्धता से एकरूप, नियमचालित तथा विश्वव्यापी गतिक्रम सभव होता है। द्वद्ववाद की ये कुछ विशेषताए है।

द्वद्ववाद, प्रकृति तथा समाज की छानबीन करने की एक दाशनिक विधि है। एकमात्र सही द्वद्वात्मक दृष्टिकोण ही से वस्तुनिष्ठ सत्य की जटिल तथा विरोधपूण उत्पत्ति का बोध, विज्ञान के विकास म प्रत्येक पग पर निरपेक्ष तथा सापेक्ष स्थायी तथा परिवतनीय तत्वो के सबध का ज्ञान, तथा सामान्यीकरण के एक रूप स दूसरे, अधिक गम्भीर तक सक्रमण सम्भव होता है।

नियतिवाद और अनियतिवाद (Determinism and Interminism) कारणता के महत्व और भूमिका के सबध मे दो परस्पर विरोधी दल। नियतिवाद समस्त परिघटनाओ के साविक कारणवाची उत्पत्ति का सिद्धात है।

नियतिवाद की धारणाए प्राचीन दशनशास्त्र द्वारा ही पश की गयी थी। आगे चलकर प्राकृतिक विज्ञान तथा भौतिकवादी दशन (बेकन, गलिलिओ, न्यूटन, लोमोनोसोव, तथा अठारहवी शती के फ्रासीसी भौतिकवादियो) द्वारा इसको पुष्टि हुई। वैज्ञानिक विकास के स्तर के अनुरूप उस समय का नियतिवाद यान्त्रिकी तथा अमूत था। कारणता के रूपा को परम तथा यान्त्रिकी के ठेठ गत्यात्मक नियमा द्वारा नियन्त्रित माना जाता था, कारणता तथा आवश्यकता को एक समझा जाता था और आकास्मिकता की वस्तुनिष्ठता अस्वीकार की जाती थी। इस प्रकार का नियतिवाद आगे चलकर भाग्यवाद की ओर ले जाता है।

क्वाटम यान्त्रिकी म अनिश्चितताओ के परस्पर सबध की खोज ने यान्त्रिकी नियतिवाद को निरथक बना दिया, मगर इससे लाभ उठाकर भाववादी दाशनिको ने अनियतिवादी ढग से इसकी व्याख्या की। उन्हाने इससे एलेक्ट्रोन की "स्वतत्र इच्छा" तथा लघु क्रियाओ मे कारणता के अभाव आदि के निष्कष निकाले। द्वद्वात्मक भौतिकवाद ने यान्त्रिकी नियतिवाद की त्रुटिया को दूर किया। वह कारणता का वस्तुनिष्ठ तथा साविक स्वरूप स्वीकार करता है, मगर वह नही मानता कि कारणता और आवश्यकता एक है।

प्रत्यक्षवाद (Positivism) आधुनिक पूजीवादी दशन की एक प्रवृत्ति है। वह यह नही मानता कि दशन एक विश्व विचारधारा है और दशनशास्त्र की परम्परागत समस्याओ (चित और सत का सबध, आदि) को यह कह कर अस्वीकार करता है कि वे "अतिभौतिक" है और अनुभव से उनको परखा नही जा सकता। प्रत्यक्षवाद का प्रयत्न ऐसी विधि अथवा "विज्ञान का तक" विकसित करना है जो भौतिकवाद तथा भाववाद के अतविरोध के ऊपर या उनस परे हो। अध्ययन के सबध म प्रत्यक्षवादियो का एक मुख्य सिद्धात यह है कि विज्ञान का

काम तथ्यो का केवल विवरण करना है, उनकी व्याख्या करना नही। दशनशास्त्र म प्रत्यक्षवाद के "तटस्थता, निरपेक्षता" के दावा के गहरे सामाजिक ग्राधार हैं। उनम सबसे महत्वपूण विशिष्ट विज्ञाना के प्रति पूजीवादिया का ग्रतविरोधी रुख है। एक ग्रोर पूजीपति वग चाहता है कि प्राकृतिक विज्ञाना का विकास हो, क्याकि इसके बिना उत्पादन का विकास नही हो सकता। दूसरी ग्रोर वह उनसे ऐसे दाशनिक निष्क्ष नही निकालना चाहता, जो प्राकृतिक-वैज्ञानिक सिद्धातो की सीमा से बाहर जायें ग्रौर पूजीवादी समाज के सनातन होने के विचार को कमज़ोर करे।

भाग्यवाद (Fatalism) एक दाशनिक धारणा, जिसके ग्रनुसार ससार तथा मानव जीवन मे सब कुछ पहले ही से भाग्य द्वारा निर्धारित होता है। *प्राचीन काल मे यह धारणा ग्राम थी कि मनुष्य ग्रौर देवता दोना ही* भाग्य के ग्रधीन ह। दशनशास्त्र के इतिहास मे भाग्यवाद की भिन्न भिन्न व्याख्याए की गई हैं ग्रौर हर व्याख्या इस बात पर निभर करती थी कि इच्छा की स्वतत्रता के सवाल पर क्या धारणा ग्रपनाई गई है। कुछ लोगो ने मानव को भगवान या प्रकृति के हाथो की कठपुतली माना, जो पूव निर्धारित घटनाक्रम मे कोई हेर-फेर नही कर सकता। धामिक भाग्यवाद (इसलाम, सत ग्रगस्तीन, लूथर, कालविन, इत्यादि) ने यह स्वीकार किया कि कुछ सीमाग्रा के भीतर मानव को इच्छा की ग्राज़ादी प्राप्त है। परन्तु ये सिद्धान्त भगवान के "ग्रच्छे" इरादे तथा मानव के "बुरे" इरादो मे कोई तालमेल नही कायम कर सके। ऐतिहासिक दृष्टि से भाग्यवाद ने प्रतिक्रियावादी भूमिका ग्रदा की है। एक ग्रोर मानव के जीवनक्रम के पूवनिधारित होने की धारणा से ग्रकमण्यता तथा स्थितियो के ग्रागे चुपचाप सिर झुका देने की भावना पदा होती है ग्रौर दूसरी ग्रोर यह विश्वास कि ईश्वर सवशक्तिमान है तथा उसके "प्रिय पात्रो" की विजय ग्रौर प्रभुता ग्रवश्यभावी है, धामिक कट्टरता ग्रौर दुराग्रह को जम देता है।

भाववाद (Idealism) एक दाशनिक प्रवृत्ति है, जो भौतिकवाद की कट्टर विरोधी है ग्रौर यह मानकर चलती है कि ग्रध्यात्मिक तथा ग्रभौतिक

तत्व—आत्मा—मूल है तथा भूत गौण है। भाववाद के कुछ मतावलबियो के अनुसार भूत भी आत्मा की उपज है। इस प्रकार काल और स्थान म विश्व की परिमिति तथा भगवान द्वारा उसकी सप्टि के प्रश्न पर भाववाद धम के बहुत निकट जा पहुचा है।

भाववाद की दो मुख्य धाराए—आत्मनिष्ठ भाववाद तथा वस्तुनिष्ठ भाववाद ह। आत्मनिष्ठ भाववाद के अनुसार विश्व के अस्तित्व की कल्पना मानव क सवेदनात्मक धम तथा सवेदन के साधन से अलग करके की ही नहीं जा सकती। इसके क्लासीकी प्रतिनिधियो म बकले प्रसिद्ध हैं। वतमान काल म प्रागमातिज्म (उपयोगवाद) तथा एक्जिस्टेन-शलिज्म (अस्तित्ववाद) इसी के भिन्न रूप है।

वस्तुनिष्ठ भाववाद विश्व के अस्तित्व को परमात्मा के अधीन स्वीकार करता है, अत उसे अलग अलग व्यक्तियो की चेतना से स्वतन्त्र मानता है। विश्व क अधिकाश धर्मावलबियो का यही मत है।

भौतिकवाद क विपरीत भाववाद रूढिवादी तथा प्रतिक्रियावादी वर्गों और श्रेणियो का विश्वदृष्टिकोण रहा है, जिनका हित न तो अस्तित्व के सही प्रतिबिम्बन म होता है, और न उत्पादन शक्तियो के विकास और सामाजिक सबधो के बुनियादी पुनर्निर्माण म।

पूजीवाद की साम्राज्यवादी अवस्था म एक ओर भाववाद के विभिन्न अतविरोधी मतो का विकास हुआ है, जिसका कारण पूजीवादी चेतना का विगठन तथा साम्राज्यवाद की राजनीतिक शक्तियो से भाववादी दशन को "मुक्त" करने की इच्छा है, और दूसरी ओर, इसक विपरीत, समान कम्युनिस्ट विरोध के आधार पर समकालीन भाववाद की विभिन्न धाराए निकट आयी।

भूत (Matter) एक दाशनिक प्रवग के रूप म इससे वस्तुनिष्ठ यथाथ का सकेत मिलता है, जिसका अस्तित्व चेतना से स्वतत्र है, मगर जो चेतना म प्रतिबिंबित होता है। विज्ञान की प्रगति के साथ भूत के सबध म हमारी धारणा भी बदलती और विकसित होती रही है। अत आज यह कहा जा सकता है कि भूत परिघटनाओ, वस्तुओ एव व्यवस्थाओ की अनत बहुलता है। वह गति के सभी विभिन्न गुणो, सबधो, परस्पर क्रियाओ एव रूपो का आधोस्तर है। भूत का अस्तित्व सरचनात्मक

सगठन के ठोस रूपा की अनत विविधता म होता है। प्रत्येक रूप क विभिन्न गुण, परस्पर क्रियाए तथा सरचना की अपनी जटिलता होती है और हर रूप एक अधिक सामाय व्यवस्था का तत्व होता है। अत इसके ठोस रूपा से अलग किसी "प्राथमिक" वस्तु के रूप म भूत की तलाश व्यथ है। भूत की अभिव्यक्ति इसके विविध गुणा तथा परस्पर क्रियाग्रा के माध्यम से होती है और इ्ही को जानना भूत को जान लेना है। भूत की सरचना जितनी जटिल होगी उतने ही उसके परस्पर सवध और गुण अधिक विविधतापूण तथा अन्तरित होगे। अपनी जटिलता के उच्चतम स्तर पर, जहा चेतन प्राणिया का प्रादुर्भाव होता है, भूत मे कुछ नये गुणो जैसे चेतना की उत्पत्ति होती है, मगर ये इतने असाधारण प्रतीत होते हैं कि भूत से उनका कोई सवध ही नही जान पडता। चेतना और भूत के सवध को ही न समझ पाने के कारण भाववादी अथवा द्वैतवादी धारणाग्रा का ज म हुआ। एक ने चेतना को मूल तथा भूत को किसी न किसी प्रकार से उसकी उपज वताया, और दूसरी ने दोना को समानान्तर धाराए माना। द्वद्वात्मक भौतिकवाद की दृष्टि से भूत और चेतना का विरोध आपेक्षिक तथा सीमित है।

भूत की एकमात्र यही विशेपता नही कि उसका वस्तुनिष्ठ अस्तित्व है और वह मानव चेतना से स्वतत्व है। उसकी विशपता यह भी है कि गति, काल तथा स्थान के विना उसका अस्तित्व नही हो सकता। उसमे आत्मविकास की क्षमता होती है तथा वह अपने अस्तित्व के हर स्तर पर परिमाणात्मक और गुणात्मक दोना दष्टियो से अनत होता है।

भोडा भौतिकवाद (Vulgar Materialism) १६वी सदी के मध्य की वह धारणा थी, जो भौतिक्वाद के मूल सिद्धाता को अति सरलित रूप मे पेश करती थी।

प्राकृतिक विज्ञाना के विकास के कारण यूरोप मे जब धामिक विश्वासो और भाववादी धारणाग्रो की एक एक इट खिसकने लगी तो इससे प्रभावित होकर कुछ लोग सिरे से दशनशास्त्र तथा दाशनिक सामान्यीकरण की आवश्यक्ता से ही इनकार कर बठे। उनके नजदीक ससार की समस्त परिघटनाग्रा का बोध करने तथा तमाम दाशनिक

समस्याओ का समाधान करने के लिये अलग अलग प्राकृतिक विज्ञानो द्वारा शोधकार्य और छानबीन काफी थी।

यह एक यात्रिक धारणा थी जिसमे भूत के विकास के नये स्तरो पर नये गुणो की उत्पत्ति की कल्पना नही है। इस धारणा के समर्थक मानव चेतना और भूतद्रव्य को एक मानते थे, यानी यह समझते थे कि मनुष्य के मस्तिष्क से एक प्रकार का रस निकलता है और वही चेतना है। अत उनके अनुसार मानव मन की समस्त क्रियाओ का रहस्य शारीरिक प्रक्रियाओ म ढूढना चाहिये। यह बात कि चेतना मानव समाज के अस्तित्व और विकास की उपज है, उनकी समझ से बाहर थी।

भौतिकवाद (Materialism) एक वैज्ञानिक दार्शनिक मत है जिसके अनुसार भूत, भौतिक और मानस, चेतना गौण है।

भौतिकवाद की दृष्टि से जगत सनातन है, किसी भगवान ने इसकी सृष्टि नही की और वह काल तथा स्थान मे अपरिमित है। चेतना भूत की उपज, वस्तुनिष्ठ जगत का प्रतिबिब है। इसका अर्थ यह है कि विश्व ज्ञानयोग्य है। दर्शनशास्त्र के इतिहास मे भौतिकवाद हमेशा समाज के प्रगतिशील वर्गों और श्रेणियो की विचारधारा रहा है, जो विश्व का सही ज्ञान प्राप्त करना तथा प्रकृति पर मनुष्य का अधिकार जमाना या बढाना चाहते थे। भौतिकवादी सिद्धातो की उत्पत्ति दर्शनशास्त्र के उदय के साथ खगोलविज्ञान, गणितशास्त्र तथा अन्य क्षेत्रो म वैज्ञानिक ज्ञान के विकास के फलस्वरूप प्राचीन भारत, चीन तथा यूनान के दास प्रथावाले समाजो मे हुई। प्राचीन भारत मे लोकायत, चीन मे लाओ त्सू और यूनान म हेरैक्लिटस, एपिक्यूरस आदि भौतिकवाद के सस्थापको म उल्लेखनीय हैं।

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक प्राकृतिक विज्ञान की प्रगति तथा सामाजिक विकास के साथ भौतिकवाद का विकास विभिन्न अवस्थाओ से होता रहा। मार्क्स और एगेल्स द्वारा निरूपित और लेनिन द्वारा विकसित द्वद्वात्मक भौतिकवाद मे वह अपने विकास की चरम सीमा पर पहुच गया।

मार्क्स और एगेल्स ने पुराने, अपने से पहले के भौतिकवाद के ये दोष बताये थे १) वह प्रधानत यात्रिक था और प्राकृतिक विज्ञानो,

जीवशास्त्र ग्रादि के नवीनतम विकास की ग्रोर उसने ध्यान नही दिया था। मार्क्स ग्रौर एगेल्स के बाद लेनिन ने वैज्ञानिक भौतिकवाद के विवेचन मे बीसवी सदी मे भौतिकी की नवीनतम उपलब्धिया का भी ग्रपने सामान्यीकरण का ग्राधार बनाया है, २) वह ग्रनतिहासिक ग्रौर ग्रद्वद्वात्मक था ग्रौर सभी क्षेत्रा मे सगत रूप से विकास के दृष्टिकोण का ग्रनुसरण नही करता था, ३) वह "मनुष्य का सार" भाववाचक रूप मे समझता था, उसे सभी सामाजिक सबधा के समन्वय के रूप मे नही देखता था—ग्रौर इस प्रकार वह ससार की "व्याख्या करता था" जब कि प्रश्न उसे "बदलने" का था, ग्रर्थात "क्रातिकारी व्यावहारिक कारवाई" का महत्व उसने नही समझा था।

सकल्पवाद (Voluntarism) दशनशास्त्र की एक भाववादी प्रवत्ति, जिसके ग्रनुसार विश्व का प्राथमिक ग्राधार सकल्प है। यह प्रवृत्ति सकल्प को प्रकृति ग्रौर समाज के वस्तुनिष्ठ नियमो के विरुद्ध पेश करती तथा वातावरण पर मानव सकल्प की निभरता से इनकार करती है। सकल्पवाद के दो रूप ह—वस्तुनिष्ठ भाववादी (शोपनहावर) ग्रौर ग्रात्मनिष्ठ भाववादी (निटशे)। ग्रात्मनिष्ठ सकल्पवाद फासिज्म की विचारधारा का एक स्रोत तथा उसकी एक विशेपता है। रूस म सकल्पवाद नरोदनिको म बहुत प्रचलित था जो इतिहास के वस्तुनिष्ठ नियमा के बजाय "ग्रकेले सूरमाग्रा" की सरगर्मी पर ग्रधिक जोर देत थे। मार्क्सवाद-लेनिनवाद सकल्पवाद को ग्रस्वीकार करता है। उसके ग्रनुसार सकल्प की स्वतत्रता सापेक्ष है। वह मानव सकल्प को प्रकृति ग्रौर समाज के विकास के वस्तुनिष्ठ नियमा की उपज मानता है।

सापेक्षवाद (Relativism) मानव सज्ञान का एक भाववादी सिद्धात है, जो मनुष्य द्वारा वस्तुनिष्ठ ज्ञान प्राप्ति की सम्भावना को ग्रस्वीकार करता है। ग्रत यह धारणा ग्रज्ञेयवाद तथा सशयवाद से बहुत निकट है। द्वद्वात्मक भौतिकवाद सज्ञान की सापेक्षता को केवल इस ग्रथ म स्वीकार करता है कि मनुष्य का ज्ञान इतिहास की हर मजिल पर सीमित होता है ग्रौर इसकी यह सीमा उत्पादक शक्तिया ग्रौर विज्ञान के विकास द्वारा निर्धारित होती है। मगर इस सीमा के भीतर द्वद्वात्मक भौतिकवाद मानव ज्ञान की वस्तुनिष्ठ सत्यता को स्वीकार करता है।

पाठका से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विपय-वस्तु, अनुवाद और डिजाइन के बारे म आपके विचार जानकर अनुगहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हम वडी प्रसन्नता होगी। कृपया हम इस पते पर लिखिये

प्रगति प्रकाशन,
जूबोव्स्की बुलवार, २१
मास्को, सोवियत सघ।